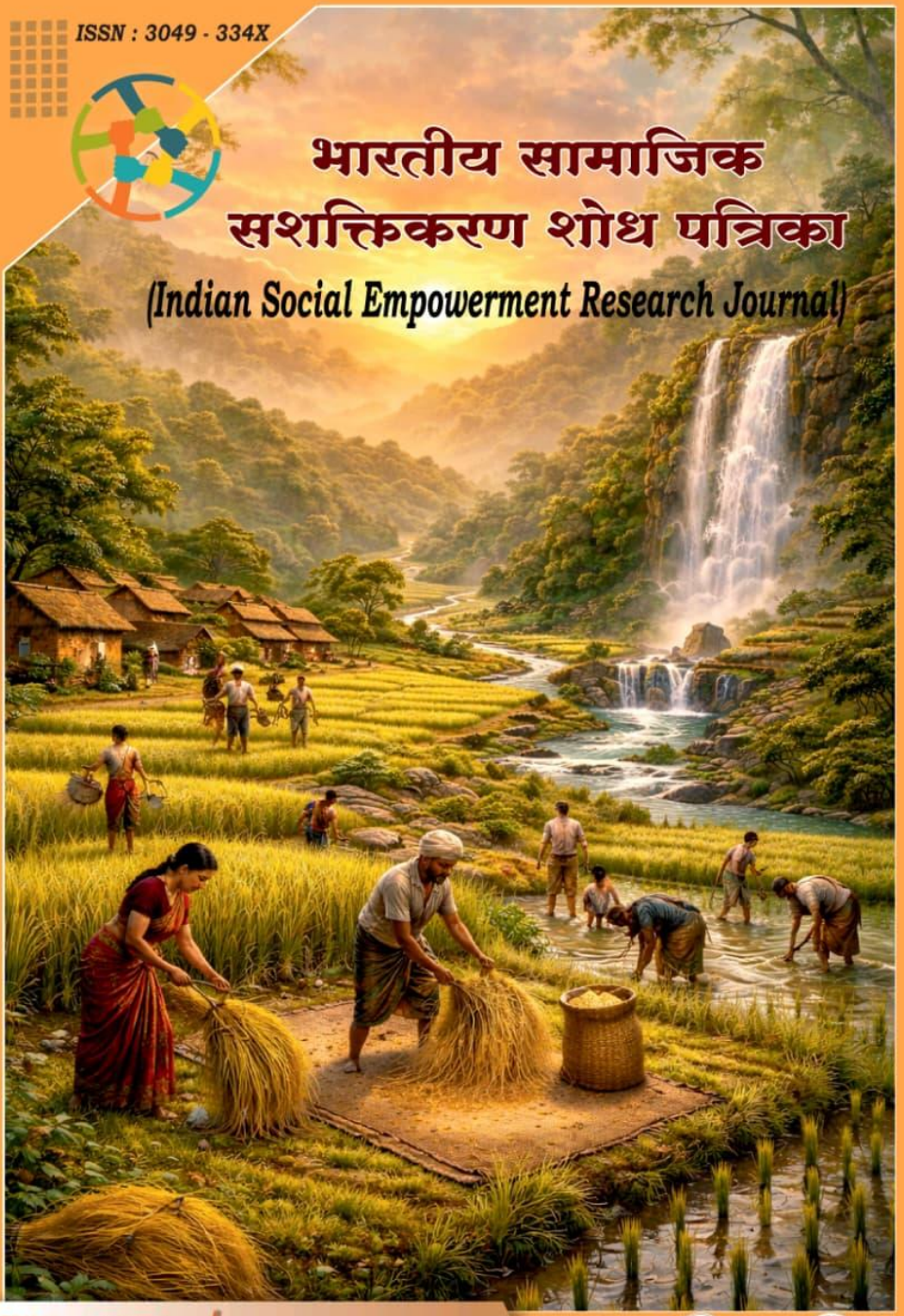
ISSN : 3049 - 334X

भारतीय सामाजिक सशक्तिकरण शोध पत्रिका

(Indian Social Empowerment Research Journal)



Volume : 03 Issue : 01 - January - April 2026 E - Journal

प्रधान संपादक / डॉ. प्रेमकुमार नाईक

https://samajiksashakteekaran.org.in

ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

भारतीय सामाजिक सशक्तिकरण शोध पत्रिका
(Indian Social Empowerment Research Journal)

वर्ष 03, अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026
विषय: सामाजिक विज्ञान ई – पत्रिका

प्रधान संपादक : (Chief Editor)

डॉ. प्रेमकुमार नाईक
अध्यक्ष : सामाजिक सशक्तिकरण बहुउद्देशीय संस्था वर्धा, महाराष्ट्र

सहायक संपादक (Executive editor)

डॉ. नरेश कुमार गौतम
असिस्टेंट प्रोफेसर, समाज कार्य विभाग
श्री रावतपुरा सरकार विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़

संपादक मंडल (Editorial Board)

डॉ. अमित राय
एसोसिएट प्रोफेसर, क्षेत्रीय केंद्र कोलकाता,
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी
विश्वविद्यालय वर्धा, महाराष्ट्र

डॉ . शम्भू जोशी
एसोसिएट प्रोफ़ेसर, दूर शिक्षा निदेशालय,
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी
विश्वविद्यालय वर्धा, महाराष्ट्र

डॉ. आमोद गूजर
असिस्टेंट प्रोफेसर, मातृ सेवा संघ
सामाज कार्य संस्थान, नागपुर, महाराष्ट्र

डॉ. विनोद जी. गजघाटे
प्राचार्य, डॉ. आम्बेडकर इंस्टीट्यूट
ऑफ सोशल वर्क नागपूर, महाराष्ट्र

डॉ. मिलिंद सवाई
प्राचार्य, डॉ. आंबेडकर कॉलेज
ऑफ सोशल वर्क वर्धा, महाराष्ट्र

डॉ. चित्रा माली
असिस्टेंट प्रोफेसर, कोलकाता केंद्र
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा, महाराष्ट्र

ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

सहकर्मी समीक्षा समिति और सलाहकार बोर्ड/ समिति
(Peer Review Committee And Advisory Board)

प्रो. बंशीधर पाण्डेय
समाज कार्य विभाग,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उत्तर प्रदेश

प्रो. विवेक कुमार सिंह
सेंटर फॉर सोशल वर्क, प्रो. राजेंद्र सिंह
(रज्जू भैया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज उत्तर प्रदेश

प्रो. रमेशकुमार एच. मकवाना
समाजशास्त्र विभाग, सरदार पटेल विश्वविद्यालय,
वल्लभ विद्यानगर, गुजरात (भारत)

प्रो. दीपा मिलिंद बलखंडे
मनोविज्ञान विभागाध्यक्ष,, श्रीमती बिंजानी महिला
महाविद्यालय, नागपुर (राष्ट्रसन्त तुकडोजी महाराज
नागपुर विश्वविद्यालय) महाराष्ट्र

डॉ. सुप्रिया पाठक
एसोसिएट प्रोफ़ेसर, स्त्री अध्ययन विभाग, प्रयागराज केंद्र
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

डॉ. मिथिलेश कुमार तिवारी
सहायक प्रोफेसर, समाज कार्य विभाग, प्रयागराज केंद्र
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

डॉ. सरोज कुमार ढल
असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश

डॉ. गजानन निलामें
असिस्टेंट प्रोफेसर, वर्धा समाज कर्या संस्थान
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा

डॉ. माधुरी हरिभाऊ झाडे
असिस्टेंट प्रोफेसर, डॉ. आंबेडकर कॉलेज ऑफ
सोशल वर्क वर्धा, महाराष्ट्र

डॉ.जोंगदंड शिवाजी रघुनाथराव
असिस्टेंट प्रोफेसर, वर्धा समाज कर्या संस्थान
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

डॉ. हिना एच. खान
असिस्टेंट प्रोफेसर और विभागाध्यक्ष, PGTD
मनोविज्ञान, (राष्ट्रसन्त तुकडोजी महाराज नागपुर
विश्वविद्यालय) महाराष्ट्र

डॉ. शिरिष मा. सुतार
असिस्टेंट प्रोफेसर, श्री कृष्णदास जाजू ग्रामीण सेवा
महाविद्यालय पिपरी वर्धा (राष्ट्रसन्त तुकडोजी
महाराज नागपुर विश्वविद्यालय) महाराष्ट्र

ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

व्यक्तिगर और संस्थागत सदस्यता

- **वार्षिक सदस्यता**
  (Annual Subscription) Rs. 600
- **द्विवार्षिक सदस्यता**
  (Biennial Subscription) Rs. 1200
- **त्रिवर्षीय सदस्यता**
  (Three Year Subscription) Rs.1800
- **पंचवर्षीय सदस्यता**
  (five year Subscription) Rs. 3000

बैंक खाता विवरण

State Bank of India Wardha
(Maharashtra)
Account Name :
samajik sashakteekaran
sasthan(ngo)

- **Account No. 41851337167**

IFSC No. SBIN0000500

प्रकाशन

सामाजिक सशक्तिकरण बहुउद्देशीय संस्था वर्धा, महाराष्ट्र
(कपिल वस्ती, सुतगिरणी ले आउट वरूड वर्धा, महाराष्ट्र)
Social Empowerment Multipurpose Organization Wardha, Maharashtr
(Kapil Vasti, Sutgirni Layout Warud Post Sevagram, Wardha,
Maharashtra Pin-442102)

Home Page : http://samajiksashakteekaran.org.in

E-mail : ise.researchjournal@gmail.com

Mobile number : 9130331541, 9021331541

About the Journal:-
https://samajiksashakteekaran.org.in/abouttheJournal

Editorial Board :-
https://samajiksashakteekaran.org.in/editorialboar

Published issues:-
https://samajiksashakteekaran.org.in/publishedissues

Hyperlink:-
https://samajiksashakteekaran.org.in/hyperlink

About the Journal	
Title	भारतीय सामाजिक सशक्तिकरण शोध पत्रिका (Indian Social Empowerment Research Journal
Frequency	**Publish Three Issues Per Year**
ISSN	**3049-334X**
Publisher	**सामाजिक सशक्तिकरण बहुउद्देशीय संस्था वर्धा, महाराष्ट्र** **Social Empowerment Multipurpose Organization Wardha, Maharashtra**
Chief Editor	**Dr. Premkumar Naik**
Copyright	**सामाजिक सशक्तिकरण बहुउद्देशीय संस्था वर्धा, महाराष्ट्र** **Social Empowerment Multipurpose Organization Wardha, Maharashtra**
Staeting Year	**2024**
Subject	**Social Science**
Language	**Multiple Languages - Hindi, English and Marathi**
Publication Format	**Online E-Journal**
Mobile No.	**9130331541, 9021331541**
Email Id	**ise.researchjournal@gmail.com**
Website	**http://samajiksashakteekaran.org.in**
Journal	About the Journal:- **https://samajiksashakteekaran.org.in/abouttheJournal** Editorial Board :- **https://samajiksashakteekaran.org.in/editorialboar** Published issues:- **https://samajiksashakteekaran.org.in/publishedissues**
Address	**Social Empowerment Multipurpose Organization Wardha, Maharashtr** **Kapil Vasti, Sutgirni Layout Warud Post Sevagram, Wardha, Maharashtra (442102)** **सामाजिक सशक्तिकरण बहुउद्देशीय संस्था वर्धा, महाराष्ट्र** **कपिल वस्ती, सुतगिरणी ले आउट वरूड पोस्ट सेवाग्राम, वर्धा, महाराष्ट्र) (442102)**

ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

भारतीय सामाजिक सशक्तिकरण शोध पत्रिका

(Indian Social Empowerment Research Journal)

परिचय

'भारतीय सामाजिक सशक्तिकरण शोध पत्रिका' ऑनलाइन, पीयर-रिव्यूड (सहकर्मी-समीक्षित) एवं रेफर्ड (संदर्भित) बहुभाषिक शोध पत्रिका है, जिसका प्रकाशन हिंदी, अंग्रेज़ी और मराठी भाषा में किया जाता है। यह सामाजिक सशक्तिकरण बहुउद्देशीय संस्था, वर्धा, महाराष्ट्र द्वारा वर्ष 2024 से नियमित रूप से प्रकाशित की जा रही है।

पत्रिका का उद्देश्य सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में उत्कृष्ट, नवाचारपरक और समाजोपयोगी शोध को प्रोत्साहित करना है। यह मंच सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक, प्रशासनिक तथा सामुदायिक स्वास्थ्य से जुड़े विभिन्न आयामों पर केंद्रित शोध कार्यों, आलेखों एवं समीक्षाओं के माध्यम से ज्ञान के प्रचार-प्रसार, विचारों के आदान-प्रदान और सामाजिक जागरूकता को प्रोत्साहित करता है।

हमारी दृष्टि

पत्रिका का मूल उद्देश्य समाज के विविध पक्षों को समझने, विश्लेषित करने और सकारात्मक बदलाव हेतु संवाद की संस्कृति को विकसित करना है। यह प्रयास न्यायसंगत, समावेशी और संवेदनशील समाज की दिशा में एक वैचारिक पहल है, जो ज्ञान के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन और जनजागृति को बढ़ावा देती है।

उद्देश्य

- नवीन शोध कार्यों और वैचारिक लेखन को प्रोत्साहन देना।
- शैक्षणिक, सामाजिक, राजनीतिक और प्रशासनिक विषयों पर संवाद स्थापित करना।
- सामाजिक वैज्ञानिकों, शोधार्थियों, शिक्षकों, नीति-निर्माताओं एवं पाठकों को एक साझा मंच उपलब्ध कराना।
- सिद्धांत और व्यवहार के मध्य सेतु निर्माण कर, समाज में ज्ञान आधारित हस्तक्षेप को संभव बनाना।

पत्रिका में निम्न प्रकार की विषयवस्तु आमंत्रित की जाती है:

- सामाजिक विज्ञान विषयों पर मौलिक शोध-पत्र

- अवधारणात्मक या विश्लेषणात्मक आलेख
- पुस्तक समीक्षाएँ
- नीति एवं कार्यक्रम आधारित समीक्षा लेख
- क्षेत्रीय अध्ययन व केस स्टडी

प्रकाशन नीति

प्राप्त सभी लेखों की पूर्ण रूप से समीक्षा की जाती है। पत्रिका गुणवत्तापूर्ण, प्रासंगिक और शोध की दृष्टि से समृद्ध सामग्री के प्रकाशन हेतु प्रतिबद्ध है।

'भारतीय सामाजिक सशक्तिकरण' पत्रिका का प्रयास है कि समाज के विभिन्न वर्गों, विद्यार्थियों, शोधार्थियों, शिक्षकों, सामाजिक कार्यकर्ताओं तथा आम नागरिकों को एक साथ जोड़ते हुए विचार-विमर्श की एक सकारात्मक, ज्ञान-संपन्न और संवेदनशील संस्कृति को विकसित किया जाए, जिससे समाज को नई सोच, नया दृष्टिकोण और नई दिशा प्राप्त हो सके।

संपादकीय

भारतीय समाज एक जटिल और बहुरंगी संरचना है, जो सदियों से अनेक सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और राजनीतिक प्रक्रियाओं से गुजरता हुआ बना है। इस समाज के निर्माण में स्त्रियों की चुप्पी और उनके छोटे-छोटे प्रतिरोध, जनजातीय समुदायों की सांस्कृतिक दृढ़ता, वृद्धों के अनुभवों का भंडार, दलितों की बराबरी की आकांक्षा और लोकसंस्कृति के माध्यम से अभिव्यक्त जनचेतना ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

इतिहास की मुख्यधारा ने इन सभी आवाज़ों की भूमिका को या तो सीमित किया है या पूरी तरह नज़रअंदाज़ किया है। उपनिवेशकाल में सत्ता के औजारों ने इन स्वरों को दबाया और स्वतंत्रता के बाद भी लोकतांत्रिक संस्थाएं इन समूहों को समाज की मुख्यधारा में बराबरी के साथ शामिल नहीं कर सकीं। इसका परिणाम यह हुआ कि असमानता की खाई और गहरी होती गई, और समाज का नैतिक, बौद्धिक और सांस्कृतिक संतुलन भी डगमगाने लगा।

आज यह ज़रूरी हो गया है कि समाज के विमर्शों में, चाहे वह नीति-निर्माण हो, समाज कार्य हो, साहित्य हो, शिक्षा हो या मीडिया। इन सभी उपेक्षित आवाज़ों को केंद्र में लाया जाए। स्त्रियों के संघर्षों को महज करुणा के रूप में नहीं, बल्कि परिवर्तन की ताकत के रूप में समझा जाए। जनजातीय जीवन को 'पिछड़ेपन' की निगाह से नहीं, बल्कि उनके पारंपरिक ज्ञान, जीवनशैली और पर्यावरण संतुलन की दृष्टि से देखा जाए। वृद्धजनों को समाज का बोझ नहीं, बल्कि अनुभव और मार्गदर्शन का स्रोत माना जाए। दलित और आदिवासी चेतना को केवल आरक्षण के संदर्भ तक सीमित न रखकर, उनके विचार और जीवन-दृष्टि को समाजिक संवाद का हिस्सा बनाया जाए। लोकसंस्कृति को केवल प्रदर्शन और उत्सव की वस्तु नहीं, बल्कि जनसंघर्ष और सामाजिक चेतना के माध्यम के रूप में स्थापित किया जाए।

समकालीन समय में जब समाज वैश्वीकरण, तकनीकी विकास और उपभोक्तावाद की दौड़ से गुजर रहा है, तो यह और भी ज़रूरी हो गया है कि हम करुणा, मानवीयता और सामाजिक न्याय को पुनः केंद्र में रखें। समाज कार्य को केवल सेवा या कल्याण के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन के साधन के रूप में विकसित किया जाए। साहित्य को केवल सौंदर्यबोध तक सीमित न रखते हुए, समाज की वास्तविकताओं का आईना बनाया जाए। शिक्षा को केवल जानकारी का माध्यम न मानकर, मूल्य आधारित समाज निर्माण का उपकरण समझा जाए।

ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

समाज, संघर्ष और संवेदना: ये तीनों केवल विचार नहीं, बल्कि वे ताकतें हैं जो किसी भी समाज को जीवंत, बराबरी पर आधारित और न्यायपूर्ण बनाती हैं। वर्तमान समय की सबसे बड़ी मांग यह है कि हम

इतिहास की उन धाराओं को मुख्यधारा में स्थान दें जिन्हें अब तक हाशिए पर रखा गया है। यह सिर्फ उपेक्षित अनुभवों को दर्ज करने की बात नहीं है, बल्कि उन्हें दिशा, सम्मान और दायित्व देने की प्रक्रिया है। यही वह आधार है जिस पर एक नया, समावेशी और न्यायपूर्ण भारत खड़ा हो सकता है। जहाँ नीति, विचार, संघर्ष और संवेदना मिलकर एक मानवीय समाज की संरचना करें। मगर यह विडंबना है कि आज राजनीति और कुछ सामाजिक शक्तियां समाज को जोड़ने के बजाय अपने स्वार्थों के लिए उसे बांटने में लगी हैं। इस प्रवृत्ति को बदलना होगा और एक ऐसे समाज की ओर बढ़ना होगा जहाँ हर आवाज़ सुनी जाए, हर अनुभव का सम्मान हो और हर व्यक्ति को बराबरी का हक़ मिले।भारतीय सामाजिक सशक्तिकरण शोध पत्रिका



डॉ. नरेश कुमार गौतम
असिस्टेंट प्रोफेसर, समाज कार्य विभाग
श्री रावतपुरा सरकार विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़

ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

भारतीय सामाजिक सशक्तिकरण शोध पत्रिका

(Indian Social Empowerment Research Journal)

ISSN: 3049-334X वर्ष 03, - अंक 01 जनवरी – अप्रैल 2026

अनुक्रमणिका

अ.क्र.		पृष्ठ.क्र.
1.	**Impact of E-commerce in daily life** Dr. Prachi bang	1
2.	**Impact of Workplace Conditions on Employee Efficiency and Performance in Government Offices in Nagpur City** Dr. Tulika A. Khare	8
3.	**Assessment Of Occupational & Domestic Stressors Among Women: A Survey Based Study In Nagpur City** Vaishnavi K. Pradhan, Tulika A. Khare	22
4.	**Forest Rights Act 2006 and Livelihood Security: A Study of Minor Forest Produce (MFP) Rights Among the Particularly Vulnerable Tribal Groups (PVTGs) of Jharkhand.** Dr. Prity Kumari	37
5.	**भारतीय न्यायशास्त्र में 'दंड' की अवधारणा और सुधारात्मक न्याय: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन** डॉ. सुमीत कुमार गुप्ता	50

ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

6. **किशोरों में आध्यात्मिकता की आवश्यकताएं: एक समाजशास्त्रीय अवलोकन** 69

डॉ. अखिलेश कुमार

7. **समकालीन भारतीय लोकतंत्र में प्रतिनिधित्व का संकट: उत्तर भारत में जाति, वर्ग और चुनावी राजनीति का एक अध्ययन** 78

डॉ. दीपक जॉनसन

8. **Reproductive Health Challenges of Married Women: A Study of Selected Blocks in North 24 Parganas District, Sundarbans Region** 92

Moumee Jesmin, Dr. Rupa Biswas

9. **A Comparative Study of Corporate Criminal Liability and Corporate Offences under the Indian Legal System: A Legal Study** 108

Jitendra kumar Meena, Dr. Phool Chand Saini

10. **Strengthening Social Harmony in Assam: Peace Initiatives of the Kasturba Gandhi National Memorial Trust** 118

Dr. Amreen Razzak

11. **A Critical Review of Digital Interventions for Suicide Prevention and Youth Mental Health: Is India Ready** 127

Ambareen Abdullah, Manas Bajpai

12. **Socioeconomic Impact of the Mukhyamantri Mazi Ladki Bahin Yojana on Women in Maharashtra: An Analytical Assessment** 141

Akshay Prabhakar Rajurkar

13. **राज्य प्रशासन और नीति निर्माण में पुलिस की भूमिका एवं चुनौतियां** 154
रंजना बागड़े

14. **भंडारा जिल्ह्यातील बेरोजगारीची कारणे परिणाम व उपाय एक चिकित्सक अध्ययन** 158
महेंद्र अशोक गभने

15. **बायोगॅस वापराची वर्तमान स्थिती, समस्या व ग्रामीण विकासात याचे उपयोग विशेष संदर्भ: भंडारा जिल्हा** 171
शैलेश साऊसाखरे

16. **शिक्षणात ए -आय (कृत्रिम बुद्धिमत्ता) च्या वाढत्या वापरामुळे शिक्षकांच्या अध्यापन पद्धती वर पडणारा प्रभावाचे विश्लेषणात्मक अध्ययन** 181
भागवत भांगे

17. **अनुसूचित जनजाति में धनगर आरक्षण के मांग की ऐतिहासिक पृष्टभूमि, वर्तमान स्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन** 192
किशोर विश्वासराव पाटील

18. **विकसित भारत 2047 की परिकल्पना में शिक्षा तथा कौशल विकास का महत्व** 203
सौरभ चंद्र सानू

19. **हिंदी सिनेमा: एलजीबीटी समुदाय का प्रतिनिधित्व और मानवाधिकार** 211
गया सी एस

20. **मेलघाट परिक्षेत्र में कुपोषण: एक पुनरावलोकन** 217
नीता उघड़े

21. **महिला सशक्तिकरण के माध्यम से सतत ग्रामीण विकास: चुनौतियाँ, अवसर एवं नीतिगत परिप्रेक्ष्य** 227

डॉ. छोटे लाल

22. **स्त्री देह यौनिकता और सामाजिक नैतिकता : एक समाज शास्त्रीय अध्ययन** 236

गोपीका पी.

23. **भारत के आदिवासी जीवन: पहचान, संस्कृति और संघर्ष का बहुआयामी अध्ययन** 242

श्रीलक्ष्मी के.एस.

24. **नारी शक्ति : बदलाव की ओर कदम** 249

रानी कुमारी

25. **प्रगतिशील लेखक संघ और युगीन चेतना से सरोकार** 256

ऋषिकेश कुमार

26. **Challenges and Problems of Construction Workers: A Study in Visakhapatnam** 263

Dr. N. Komali Salomi, Dr. P. Ravi Ratna Prakasa Rao

27. **Social Issues and the Need for Creating Awareness in Contemporary Society** 276

Tonmoy Pran Bez

28. **Socio-Economic Aspect of Integral Humanism: An Indigenous Model of Development (A Conceptual Review)** 285

Nitin Katara, Dr. Ashu Mishra

29. **भारतीय संस्कृति में वानप्रस्थ आश्रम का महत्व** 301
नशरा खाँन

30. **गिरौदपुरी सतनाम धाम संत गुरु घासीदास जन्मस्थली व तपोभूमि** 306
डॉ. गणेश कुमार कोशले

31. **पश्चिमी उत्तर प्रदेश में गांधीवादी अहिंसा का व्यवहारिक स्वरूप: एक ऐतिहासिक अध्ययन** 317
मुकुल सैनी

32. **Equal Online Opportunity And Digital Accessibility To Educate Hearing Impaired Students.** 322
Dr. Sandeep Kumar Morishetty, Khushboo Tiwari

33. **Understanding Child Sexual Abuse in India: The Role of Parent–Child Relationships and Social Empowerment** 337
Priya Ashok Bambal, Dr .Subodh Bansod.

34. **Gendered Risks in Cyberspace: Women's Security and Digital Privacy Concerns** 352
Dr. Parijat Pradhan

35. **छात्रावासी एवं गैर छात्रावासी विद्यालय में अध्ययनरत विद्यार्थियों के शालेय वातावरण पर मानसिक स्वास्थ्य के प्रभाव का अध्ययन** 362
डॉ. चंकी राज वर्मा

36. **जनपद हमीरपुर में ऐतिहासिक एवं धार्मिक पर्यटन विकास का अध्ययन** 373
डॉ. सुशील कुमार यादव

37. **Beyond Access: Reimagining Inclusion through Education 5.0 in Indian Higher Education Institutions** 379

Pradeep Vishwakarma, Dr. Naveen Singh

38. **राजस्थानी लोक साहित्य में समाजवाद** 395

हेमलता बीठू

39. **छत्तीसगढ़ के धमतरी जिले में सोशल ऑडिट हेतु ग्राम सभा की भूमिकाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन** 401

सौरभ शर्मा, डॉ. छबिनाथ यादव

40. **कुपोषण की स्थिति एवं आँकड़ों पर एक तुलनात्मक अध्ययन** 419

डॉ. रेनु कुमारी

41. **The locale of digital education in a Rural Space: A sociological understanding of a block in Odisha** 431

Suraj Kumar Tanty

42. **Socio-Emotional Predictors of School Outcomes: An Analysis of Emotional Intelligence, Family Climate, and Gender Effects on Academic Performance and Academic Anxiety among Secondary and Higher Secondary Students** 450

Akash Prakash Sewatkar

43. **Role of Kisan Credit Card Scheme in India: A Qualitative Study of Sociology** 480

Dr. Arvind Sirohi , Anu Rani

44. **भारत के स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं का योगदान** 493

डॉ. बबीता

45. **अहिल्याबाई होल्कर का नारी स्वाभिमान जागरण से समाज उत्थान** 504
डॉ. सोनल खरे, डॉ. कायनात तरन्नुम

46. **राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और डॉ. बी.आर. आंबेडकर का शैक्षिक दर्शन: समतामूलक भारत के निर्माण में एक बहु-आयामी आलोचनात्मक, व्यावहारिक एवं प्रभावशीलता अध्ययन** 509
डॉ. रेखा कुमारी

47. **Relevance of Babasaheb Ambedkar's Navayana Buddhism in the Modern Era** 525
Anshuman Ghosh

48. **ग्रामीण विकासाचा दृष्टिकोन, पंचायतराज आणि स्थानिक प्रशासनाची भूमिका** 533
डॉ. कादरी मुजतबा एस. अहेमदुल्हा, संजीव पांडुरंग सारक

49. **Gendered Dimensions of Displacement: The Deterioration of Social Status and Economic Autonomy among Displaced Tribal Women** 539
Dr. Amit Kumar Wadaskar, Dr. Khushboo Sahu

50. **साइबर बुलिंग और इसके समाजशास्त्रीय निहितार्थ: एक समीक्षात्मक विश्लेषण** 551
गीतांजलि वर्मा

Impact of E-commerce in daily life

Dr. Prachi bang
Guest lecturer at Govt. Balasaheb deshpande
College kunkuri dist.- Jashpur (C.G.)

Abstract

In addition to the conventional business approach, E-commerce is also being utilized increasingly in India. E-commerce refers to electronic commerce, utilizing the internet for goods and services can be swapped quite effortlessly and conveniently. E-commerce leads to significant economic growth but also several challenges encountered by e-commerce, which will be resolved shortly. The consumer protection act 2019 has also included provisions for ecommerce to ensure consumers receive protection against any kind of deception that takes place via online shopping.

Keyword- E-commerce, Traditional, Transaction, Liberalization, customize.

Introduction

Human requirements were straightforward and constrained at the start of civilization and growth. To fulfill their needs and desires, people used to trade products with one another. The term "barter exchange system" describes the direct exchange of commodities or services for other goods or services without the need of any form of trade medium. Commodities or services for other goods or services without the use of a means of exchange, such money, and then progressively expanded the trade of monetary transactions. A monetary transaction is a system wherein goods and services are traded for cash. The Indian economy began to

liberalize in 1991. The government has drastically altered its policies regarding foreign trade, foreign direct investment, currency rates, fiscal restraint, unrestricted access to the free market, permitting the establishment of more private businesses, lowering government control, etc. In order to make the economy's productivity, transparency, consistency, and efficiency more acceptable, the new economic policy has been fostering greater competition.

Vides Sanchar Nigam Limited launched internet service in India on August 15, 1995, following new economic changes. The government allowed the private sector to offer internet services in November 1998. Email is used for online business. Customers on your email list can learn about new product types, discounts, product quality, product descriptions, and other services through email marketing.

Following the implementation of e-mail marketing, the introduction of Teleshopping has transformed the Indian economy. Tele marketing involves the direct promotion of products and services to customers via telephone, mobile, or the Internet users can conveniently buy products with just one phone call thanks to technological advancements. Currently, e-commerce is growing in a manner that it is gaining significant popularity across the entire economy.
Commerce refers to electronic commerce or online commerce.

E-commerce refers to the buying and selling of products and services online, along with the exchange of money and information necessary to finalize transactions. The government also encourages and implements policies for the digital economy. The rapidly expanding e-commerce sector within the nation and enhance the entire economy. Currently, there are different kinds of e-commerce, such as business to business. Online retail, B2C e-commerce, C2A e-commerce.

Objectives of the study

1. Introduction of E- commerce .
2. To study to E-commerce impact in daily life .

3. To study the changing business with new technology in rural area.

Review of Literature

- (Raja & khan, 2020, pp. 697-709) In this article, it was observed how the situation was prior to the green revaluation. Rural marketing underwent significant changes in the marketing strategies of rural area following liberalization. The government implemented various policies aimed at rural areas involving traditional marketing, e-commerce, investment, agricultural training, technology education, banking services, and green cards. for farmers, job opportunities are provided. In India, 65% of the population resides in rural areas. Rural marketing is a vital component of the entire economy.

- (Khan,2016, pp. 19-22) This article states that the marketing framework in India is split into two parts. Rural and urban market segments. The research indicated that rural marketing enhances the economy. Business is investing in rural marketing, creating tailored products, and enhancing infrastructure in rural areas. Promote and shift the perspective of the consumer. The research discovered that the aim of rural marketing is consumer contentment rather than merely maximizing profits. Through urban marketing, rural market is also significantly influencing the economy. The research additionally discovered that the mass services in rural areas region.

- (Khan,2016, pp. 19-22) In this article, research on the E-commerce sector will take the forefront with
  Popularity in the economy in the coming year. Explore different obstacles and resolutions inExecuting e-commerce

- (Soni, 2017, pp. 390-392) The research discovered that the E-commerce sector in India benefits from the Extraordinary expansion over the past year. Advancements in E-commerce are generating significant opportunities for international trade across borders. The internet is allowing small businesses

to reach the global market like never before earlier. Even though the trends of E-commerce have been circulating for 15 years.

- (Panigrahi, Upadhyaya & Raichurkar, 2016, pp. 15-22) This article seeks to clarify the concept of E-commerce, advantages and disadvantages of E-commerce. Different trends in E-commerce and difficulties prior to E-commerce and subsequent to E-commerce. Nonetheless, at this current moment, it possesses multiple constraints, legal and technical obstacles in the advancement of E-commerce in India that may turn away in the year to come.
- (Mitra, 2013, pp. 126-132) This article aims to examine the current situation and enablers of E-commerce in India involves analyzing current trends and exploring the obstacles faced in the sector. The research discovered that there has been an increase in the number of companies adopting E-commerce in India in the recent past. The research also discovered that major Indian portal sites have transitioned to Ecommerce, rather than relying on advertising revenue.
- (Shethar, 2016, pp. 25-31) The research discovered that the realm of E-commerce encompasses. The wholesaler faces the highest risk since the producer can readily overlook them and market their items to the merchants and the consumers. Wholesalers can benefit from E-commerce in. Forming agreements with well-known producers and connecting their businesses online.
- (Wadhawan & Arya, 2020, pp. 805-809)This article highlights the significance of E-commerce.Contrast the conventional approach to commerce with e-commerce. The research indicated that a significant element propelling online retail expansion in India. Several factors that will aid in this growth include mobile commerce, substitute service, various payment methods, logistics and shipping choices, quality of products, customer support services.

Methodology

In this article based on secondary data all data collected from newspaper, articles, internet, books.

Finding

The research discovered that e-commerce enables us to acquire high-quality products at lower prices without leaving our homes. The supply chain in e-commerce is shorter than in traditional business, from manufacturer to consumer, which resulted in the consumer incurring significant additional expenses for goods and services, however, because of the limited supply chain in e-commerce, I had to spend a smaller amount. Products and services are accessible at an affordable price.

Government established initiatives and policies such as the National Digital Health Mission introduced by the esteemed Prime.Minister Narendra Modi on August 15, 2020. Under this plan, a health ID card will be issued to every Indian and they can take advantage of the treatment offered via digital means at the hospital, Digital India's Ghar tak fiber initiative in Bihar launched on March 31, 2021, aims to link all rural regions with high-speed connectivity. Velocity and quality of fiber optic internet, among other things, to improve e-commerce and the digital economy in urban regions and likewise countryside region

Table 1. As On 28th February, 2025, Top Five Wireless Broadband Service Providers

S. No.	Name Of The Service Providers	Subscriber Base (In Million)
01	Reliance Jio Infocomm Ltd.	465.10
02	Bharti Airtel Ltd.	280.76
03	Vodaphone Idea Ltd.	125.87
04	Bharat Sanchar Nigam Ltd.	30.87
05	Ibus Virtual Network Service Provider Ltd.	0.09

Source: Telecom Regulatory Authority of India

Table 1 show the report is prepared considering top five wireless broadband service providers in 28th February 2025 Reliance jio infocomm ltd. subscriber base 465.10 million, Bharti airtel Ltd. subscriber base 280.76 million, vodaphone idea Ltd. Subscriber base 125.187million, bharat sanchar nigam ltd. subscriber base 30.87 million and IBUS virtual network service provider Ltd. Subscriber base 0.09 million.

Currently, numerous services are accessible on digital platforms such as Flipkart, Zomato, and Amazon. paytm, IRCTC, Myntra, Health Kart, Ola cabs, Unacademy, etc., for our convenient usage. Online commerce has numerous advantages along with certain challenges, and the government will implement corrective measures regarding it.
and exclude it from the issue.

Suggestion

Currently, e-commerce is enhancing the economy. It offers numerous advantages along with several challenges, such as safety of goods, quality of goods, learning, online access, joblessness, stereotype perceptions etc., and efforts must be undertaken to address these deficiencies, particularly in rural regions where young individuals reside. Increasingly utilize the internet, social media, online banking, and online education. They ought to offer.

Conclusion

The lives of individuals have become much easier and more efficient thanks to e-commerce. The nation's economy has been advancing significantly because of the development of e-commerce. Individuals are utilizing digital platforms in their everyday lives. method apart from conventional commerce. Over fifty percent of the populace in the nation resides in The village is rapidly transitioning into a digital economy. High standard of goods and services can be evaluated via e-

commerce at the lowest expense and also facilitates simple delivery of products and returns.policy

Reference

1. Shettar.M.S.,Ajja.H.,Jigalur.S.K.&Sheshgiri.M.S.(2016).Emerging Trends of E-commerce in India: An Empirical study. International journal of Business and Management Invention, Vol. 5(9), 25-31.
2. Chaturvedi. M. (2017). A study on challenges and opportunities of rural marketing. International journal of current research, vol.9(11), 61682-61686
3. Wadhawan. N., & Aryan. K. R. (2020).Understanding E-commerce: A study with reference to competitive Economy, Journal of critical review, Vol. 7(8), 805-809.
4. Panigrahi. A., Upadhyaya. R., & Raichurkar. P. (2016). E-commerce Services in India: Prospects and Problem. International Journal on Textile Engineering and Processes, Vol. 2(1), 15-22.
5. Khan .G.A. (2016). Electronic commerce: A Study on Benefit and Challenges in an Emerging. Global Journal of Management and Business Research,Vol. 16(1), 19-22.
6. Soni.N.A. (2017). E-commerce in India: A Study. International Journal of Research and Analytical Reviews, Vol. 4(3), 390-392.
7. Raja. M., & Khan. N. (2020). Changing Trends in Rural Markets and Marketing in India: A Review. International Journal on Management (IJM), 11(3). 697-709.
8. Mitra. A. (2013). E-commerce in India: A Review. International journal of marketing, financial services & management research, vol.2(2),126-132

Impact of Workplace Conditions on Employee Efficiency and Performance in Government Offices in Nagpur City

Dr. Tulika A. Khare
Assistant Professor,
Assistance Professor, PGTD of Home Science, RTMNU, Nagpur 440033
Post Graduate Department Home Science, Resource Management
Rashtrasant Tukadoji Maharaj University, Nagpur

Abstract

Climate change is a global emergency and one of the main environmental concern for the world. Increase in temperature and humidity are the main characteristics of global warming. Many cities in India are affected by increase in heat. The aim of the research was To study the impact of climate change on employee`s performance in Government offices in Nagpur city. A sample size was 100 Government employees and Purposive random samplings were done to select the subject. Data was collected from the sample by using pre-coded interview schedule. For experimental data collection following instruments were used such as:-Thermohygrometer, Lux meter, Noise level meter to measure environmental conditions. The data show that 41-50 years of age group were most impact by climate change. 47% respondents were graduate. 83% of the respondents were having permanent job. 37% respondents work productivity was impacted when they worked in hot climate. 67% respondents were agree that there were advantages of working in cold climate for increasing employee`s performance.

55% respondents felt cold climate suitable for work performance. 58% respondents said that there was reduction in employee mental performance due to climate change. 64% indoor workers having adverse effects due to climate change. The null hypothesis of the study was Climate a condition of government offices does not impact on employee's performance. The calculated chi square value is more than table value at 1% and 5% level. It can be interpreted that null hypothesis is rejected. Therefore climatic conditions of government offices has impact on employee`s performance. Because in hot climate their mental performance reduces which result in decrease in work performance (productivity).

Keywords:- Climate change, Employee performance, Work productivity, Health

Introduction

Climate change has several direct adverse effects on working people such as heat exhaustion and heat stroke, as well as indirect effects including increased risks for infectious diseases, changing distribution and transmission patterns of vector-borne diseases, malnutrition, water and sanitation problems and injuries due to extreme weather events.

There is a interrelation between employee`s performance, health, and climate change. Climate change is any significant variation in temperature, precipitation, wind, or other type of weather that lasts for decades or longer. These changes can affect human health in several direct and indirect ways. Several studies have demonstrated the ill-effects of climate change on working population across many industries. Exposure to extreme heat without sufficient protection in work place increases the risk of heat-related illness and also results in productivity loss.

Impact Of Climate Change On Employee`S Performance

Environmental conditions may directly influence work productivity, in particular for those activities that need physical work. A new research, in relation to climate change, cannot elude including an analysis of how global warming will affect the productivity and work capacity of people who are exposed to thermal stress. Heat

stress is limited, usually, to the hottest parts of the day in the hottest season, but in many outdoor workplaces and uncooled indoor workplaces in tropical and sub-tropical regions this happen for a large part of the year and regards outdoor workers and many indoor workers without air conditioning.

The effects of excessive heat exposure on working people may have substantial social and economic impact on the exposed communities. Preventive policies, oriented to both mitigation and adaptation, will need to be strengthened or initiated. This research project study the impact of climate change on Employee`s performance in government offices in Nagpur City. It also studies the demographic profile of respondent.

Purpose of the study

The purpose of this research project is to study the impact of climate change on Employee`s performance in Government offices in Nagpur City. It analyses demographic profile of employee based on age, race, gender, education, etc. The research project focused on issue faced by employees in government offices. And what policies and method we can implement to reduce the effect of climate change in work place and to improve employee`s work performance.

Occupational heat stress occur due to extreme heat exposure or work in hot environment. Exposure to extreme heat can result in work-related illnesses and injuries. Thus, by studying the impact of climate change on employee`s performance, we can reduce the risk related to Occupational heat stress. Injuries and illnesses due to extreme heat exposure reduce employee`s work performance. However current knowledge is limited in many areas, so an increase in research in this sector could provide a very important means to improve prevention strategies reducing the health risk and increasing work productivity.

Aim :

To study the impact of climate change on employee`s performance in Government offices.

Objectives

1. To identify the impact of climate change on Employee`s productivity.
2. To study the advantages and disadvantages of climate change on employee`s performance.

Limitations :

1. The study was limited to Nagpur city only.
2. The study was limited to 100 respondent only.
3. The study was limited to the employee`s in government offices only.

Hypotheses:

H0: Climate conditions of government offices does not impact on employee's performance.

Methodology

A systematic procedure was adopted for the study and therefore the methodology was given under the following heads:

Research Design, Selection, Construction and description of tools, Sampling design, Method of data collection, Statistical analysis of the data

Research Design

The research design is the specification of method and procedure used to acquire the information needed. Research Design is needed because it facilitates the smooth sailing of the various research operations thereby making research an efficient as possible yielding maximum information with minimum expenditure of efforts, time and money. For this study research design were selected to figure out the relation between climate and its impact on government offices workers performance. A systematic was adopted for the present study. A descriptive-cum-experimental research design was used. A descriptive data was used to get the information regarding demographic profile, employee's productivity and advantages and disadvantages of climate change. Experimental data was used to

get the information regarding increase/ decrease in temperature, humidity, noise, light intensity which leads to increase or decrease employee's productivity.

Selection of Tools

1. Interview schedule was used to gather the information by preparing questionnaire.

For experimental data collection following instruments were used such as:-

- Thermohygrometer
- Lux meter
- Noise level meter

Sampling Design

1. The present study was carried out in the different zones of the Nagpur city.
2. Government offices were taken for the collection of data.
3. A total of 100 samples were taken. Purposive random sampling was done to select the subject.

Method of Data collection

- Data was collected from the sample by using pre-coded interview schedule.
- Observation method were used for analysis.

Statistical analysis of the data

Statistics were applied according to the hypothesis.

Result and Discussion

Impact of climate change on Employee productivity

- Impact of climate change on employee`s productivity (N=100).

Climate has a powerful impact on any employee`s work productivity. In the present study, 37 percent of the respondents work productivity was impacted

when they worked in the hot climate, the data showed that it was impacting 37 percent respondent`s mental health and 26 percent of the respondent`s physical health.

Impact of climate change on Employee`s productivity	Frequency	Percentage
Because of high temperature	37	37%
Because of mental health	37	37%
Because of Physical health	26	26%

- **Environmental parameters**

The survey was done in the month of February so most of the environmental conditions was in the respondent`s favour. The Average temperature was recorded 30 degree Celsius, Average humidity was 20.6% which was quite normal. Average light intensity measured was 629.7 Lux and Average Noise level was 53.7 Db.

SR.NO	Environmental Parameters	Average	Minimum	Maximum
1)	Temperature	30 C	15C	35 C
2)	Humidity	20.6%	15%	27%
3)	Light Intensity	629.7 Lux	217 Lux	1502 Lux
4)	Noise Level (Decibel)	53.7 db	48.9 db	68.7 db

- **Advantages and Disadvantages of climate change on Employee`s performance**

Advantages of climate change

It can be seen through the table that 58 percent of the respondents were said that there was no advantages of climate change for increasing employee`s performance and 42 percent of the respondents were said that there was advantages of climate change.

Advantages of Climate change	Frequency	Percentage
Yes	42	47%
No	58	53%
Total	100	100%

- **Advantages of Cold climate :-**

It can be seen through the table that 67 percent of the respondents were agree that there were advantages of working in cold climate for increasing employee`s performance and 33 percent of the respondents said that there was no advantages of working in cold climate.

Advantages of Cold climate	Frequency	Percentage
Yes	67	67%
No	33	33%

- **Disadvantages of Climate change**

It can be seen through the table that 53 percent of the respondents said that there are disadvantages of working in climate change and 47 percent said that there was no disadvantages of working in climate change.

Disadvantages of climate change	Frequency	Percentages
Yes	53	53%
No	47	47%
Total	100	100%

- **Effect of the climate change**

Climate change has different types of effect on employee`s performance. From the present study it was found that 47 percent of the respondents productivity decreases by climate change whereas 23 percent respondents were having work disruption. The data showed that 18 percent of the respondents were having

increased risk of occupational hazards and 12 percent of the respondents were having any other types of effects on employee`s performance.

Effect of climate change	Frequency	Percentage
• Increase risk of occupational hazards	18	18%
• Decreased productivity	47	47%
• Work disruption	23	23%
• Any other	12	12%
Total	100	100%

- **Suitability of climate for work performance**

It can be seen through the table that 55 percent of the respondents felt cold climate suitable for work performance whereas 23 percent felt hot climate suitable for work performance and 22 percent felt any other climatic conditions suitable for work performance.

Suitability of climate for work performance	Frequency	Percentage
• Hot climate	23	23%
• Cold climate	55	55%
• Any other	22	22%
Total	100	100%

- **Reduction in Employee mental performance**

It can be seen through the table that 58 percent of the respondents said that there was reduction in employee mental performance due to climate change and 42

percent of the respondents said that there was no reduction in employee performance.

Reduction in Employee performance	Frequency	Percentage
• Yes	58	58%
• No	42	42%
Total	100	100%

- **Reduction in Employee performance:-**

It can be seen through the table that 36 percent of the respondents were having reduction in work productivity whereas 24 percent were having increased risk of health care cost, 14 percent of the respondents were having reduction in commitment to work, 14 percent were having increased rate of employee absenteeism and 12 percent were having another type of reduction in employee performance.

Testing of Hypothesis

Null Hypothesis:- Climatic conditions of government offices does not impact on employee`s performance.

SR.NO.	DESCRIPTION	VALUE/ df	RESULT
1.	Calculated value	36	Calculated value is greater than table value, hence the null hypothesis is rejected.
2.	X^2 Table value	1% = 6.63 5% = 3.84	
3.	Degree of Freedom	d.f = 1	

Interpretation

From the above calculation it is noticed that the calculated value $X^2 = 36$ and table value of $X^2 = 6.63$ at 1% level and 3.84 at 5% level of significance where degree of freedom is 1. The calculated value is greater than table value. Therefore, null hypothesis is rejected. Hence, it can be interpreted that the climatic conditions of the government offices does have impact on employee`s work performance.

Conclusion

Climate change is a global problem that has severe impact on human mental and physical health. Many cities in India are becoming vulnerable to increase in heat. India is experiencing climate changes in the form of heat stress, drought, flooding. Several studies have demonstrated the ill-effects of climate change on working population across many industries.

It was found that all age group in Government offices were affecting from the impact of climate change. In case of gender, the male population was more exposed to the impact of climate change. Educational qualification plays a major role for creating awareness in people about climate change. The majority of the respondents were completed graduation. Having good family income reduces some effects of climate change. Most of the employee having high monthly income. Type of job also play major role in it. In government offices, the majority of employee`s having permanent job .i.e. office work which means that they were not exposed that much with outdoor climatic conditions expect those employee` who have outside work like LIC Agent, Postman, etc.

Climate change has a powerful impact on employee`s performance. The majority of employee were impacted when they work in hot climate whereas some employee`s mental health affecting due to climate change which result in decrease work productivity. As the present study was conducted in the month of February some environmental parameters was taken into consideration to check the government offices conditions such as Temperature, Humidity, Light intensity,

and Noise level. All the parameters were in respondents favour as it February month.

There are some advantages and disadvantages of climate change on Employee performance. Majority of respondents were agree that there were advantages of working in cold climate whereas many of them also said that there were disadvantages of working in climate change. From the present study, different types of effect on employee performance due to climate change were found. Majority of the respondents agree that due to climate change productivity decreases. Along with that some of them also agree for having work disruption and occupational hazards due to climate change.

From this study, it can be said that government employee`s felt cold climate suitable for increasing work performance. Because employee felt that hot climate reduces their mental w performance. Most of them faced work related issues due to hot climatic condition. From the present survey, it can be said that indoor workers (employee`s) also have adverse effect due to climate change which reduced their work performance (productivity) whereas some employee having increased risk of health care cost and some were having increased rate of absenteeism and reduction in work commitment due to climate change.

It can be concluded from this present study, that government employee`s also get affected by climate change which reduced their work performance. Many of them having outdoor job (LIC Agent, Postman). They were most exposed to outdoor climatic condition. Good policies should be implemented for reducing the impact of climate change in Government offices.

Bibliography

Journals and Books

1. Adam-Poupart A, Lawrence F, Smargiassi A, Duguay P, Busque M-A, Gagne C, Rintamaki H, Kjellstrom T, Zayed J. *Special projects studies and research projects. Impacts of climate change on occupational health and safety.* Institute recherche Robert-Sauve en sante et en securite du travail;2013. (Report n. R-775).
2. Ann Ist Super Sanità, (2016) Vol. 52, No. 3: 338-342. DOI: 10.4415/ANN 16.03.05
3. Balakrishnan K, Ramalingam A, Dasu V, Chinnadurai Stephen J, Sivaperumal MR, Kumarasamy D et al. Case studies on heat stress related perceptions in different industrial sectors in southern India. Global Health Action 2010; 3: 5635. DOI:10.3402/gha.v3i0.5635.
4. Bennet CM, McMichael AJ. Non heat related impacts of climate change on working populations. *Glob Health Action 2010*;3. DOI:10.3402/gha.v3i0.5640.
5. Costello A, Abbas M, Allen A, Ball S, Bell S, Bellamy R, et al. Lancet-University College London Institute for Global Health Commission. Managing the health effects of climate change. The Lancet 2009; 373: 1693-733.
6. Dash S and Kjellstrom T. (2011). Workplace heat stress in the context of rising temperature in India. Current Science. 101. 496-503.
7. Fisk WJ. Health and productivity gains from better indoor environments and their relationship with building energy efficiency. *Annu Rev Energy Environ* 2000;25:537-66. DOI:10.1146/annurev.energy.25.1.537.
8. Flouris A. and Kjellstrom T. (2018). Workers' health and productivity under occupational heat strain: a systematic review and meta-analysis. 2. e521-e531. 10.1016/S2542-5196(18)30237-7.
9. IPCC. Fourth assessment report. Geneva, Inter-governmental panel on climate change. Cambridge: Cambridge University Press; 2007. Available from: http://www.ipcc.ch
10. IPCC (2014) Climate Change 2013: Contribution of working group 2 to the fifth assessment report, Geneva: The Intergovernmental Panel on Climate Change. (http://ippc-wg2.gov/AR5/)
11. International Journal of Applied Engineering Research ISSN 0973-4562 Volume 13, Number 1 (2018) pp. 27-29© Research India Publications. http://www.ripublication.com

12. The Journal of Climate Change and Health 3 (2021) 100034
13. Kjellstrom T, Kovats RS, Lioyd SJ, Holt T, Tol RSJ. The Direct Impact of climate change on regional labor productivity. Arch Environ Occup Health 2009;64(4):217-27. DOI:10.1080/19338240903352776
14. Kjellstrom T, Holmer I, Lemke B. Workplace heat stress, health and productivity- and increasing challenge for low and middle- income countries during climate change. *Glob Health Action 2009*;2. DOI:10.3402/gha.v2i0.2047.
15. Kjellstrom T. and Freyberg C, et al. (2017). Estimating population heat exposure and impacts on working people in conjunction with climate change. International Journal of Biometeorology. 62. 10.1007/s00484-017-1407-0.
16. Kjellstrom T, Gabrysch S, Lemke B, Dear K. The "Hothaps" programme for assessing climate change impacts on occupational health and productivity: an invitation to carried out field studies. Global Health Action 2009;2. DOI: 10.3402/gha.v2i0.2082.
17. Kjellstrom T. Impact of climate conditions on occupational health and related economic losses: a new feature of global and urban health in the context of climate change *Asia Pac J Public Health* 2015 January 26. DOI:10.1177/1010539514568711
18. Lundgren Kownacki K & Kuklane K (2013). Effects of Heat Stress on Working Populations when Facing Climate Change. Industrial health. 51. 3-15. 10.2486/indhealth.2012-0089.
19. Lenzuni P, Capone P, Freda D, del Gaudio M. Is driving in a hot vehicle safe? *Int J Hyperthermia* 2014; 30(4):250-7. DOI:10.3109/02656736.2014.922222
20. McMichael AJ, Haines A, Sloop R, Kovats S, editors. Climate change and human health. Geneva: World Health Organization;1996.
21. Nilsson M, Kjellstrom T. Climate change impacts on working people: how to develop prevention policies. Glob Health Action 2010;3:5774. DOI: 10.3402/gha.v3i0.5774
22. Sahu S, Sett M, Kjellstrom T. Heat exposure, cardiovascular stress and work productivity in rice harvesters in India: implications for a climate change future. ind health 2013;51(4):424-31. DOI.org/10.2486/ind-health.2013-0006.
23. Electronically published April 30, 2021[Journal of Political Economy, 2021, vol. 129, no.6]© 2021 by The University of Chicago.
24. Saudamini D. (2015). Effects of Climate Change and Heat Waves on Low Income Urban Workers:: Evidence from India. 10.2307/j.ctvh8r0w3.14.

25. Sett, M, Sahu S, (2008) Ergonomic study on female workers in manual brick manufacturing units in West Bengal, India. Asian-Pacific Newsletter on Occupational Health and Safety.

26. Sudarshan A, Tewari M, (2014) : The economic impacts of temperature on industrial productivity: Evidence from Indian manufacturing, Working Paper, No.278, Indian Council for Research on International Economic Relations (ICRIER), New Delhi.

27. Venugopal V, Chinnadurai J, Lucas R, Kjellstrom T , (2015).Occupational Heat Stress Profiles in Selected Workplaces in India. International Journal of Environmental Research and Public Health. DOI:10.3390/ijerph13010089JO

Assessment Of Occupational & Domestic Stressors Among Women: A Survey Based Study In Nagpur City

Vaishnavi K. Pradhan
Student
PGTD of Home Science,
Rashtrashant Tukadoji Maharaj
Nagpur University, Nagpur

Tulika A. Khare
Assistant Professor,
PGTD of Home Science,
Rashtrashant Tukadoji Maharaj
Nagpur University, Nagpur

Abstract:

The study highlights a "double burden" where stressors originate from both a high-stakes professional environment—characterized by a "fear of implications of mistakes" among managers and officers—and an unpredictable domestic sphere involving "family relations" and "unexpected guests." Statistical analysis revealed that 62.5% of women experience high psychological distress, with handling the household chores, handling children, etc. The research concludes that job stress in the modern banking and domestic landscape has evolved into a pervasive "silent serpent," disproportionately impacting women through a complex "double burden" of professional accountability and household management. The findings establish that psychological distress is not merely an individual experience but is statistically driven by a confluence of factors, including lower socioeconomic status, the absence of robust healthcare benefits, and the severe impact of domestic violence

KEY WORDS: Stressors, Silent Serpent (quite killer)

Introduction

The assessment of "double burden" stress in working women involves a comprehensive evaluation of both occupational and domestic stressors, alongside effective measurement tools and contextual factors influencing stress levels.

1. **Occupational Stressors**: Key elements include work overload, role conflict, unclear job roles, and limited career growth opportunities. These factors contribute significantly to workplace-related stress and affect women's ability to balance professional demands.
2. **Domestic Stressors**: Time constraints for self-care, absence of household help, concerns about children's future, and caregiving responsibilities for aging family members intensify the domestic side of the double burden, increasing overall stress.
3. **Assessment Methods**: Utilizing standardized tools such as the Occupational Stress Inventory–R, Perceived Stress Scale (PSS), Effort-Reward Imbalance (ERI) model, and McMaster Family Assessment Device provides reliable measurement of stress levels and family dynamics.
4. **Role of Support Systems**: Lack of spousal and organizational support exacerbates stress, highlighting the necessity for tailored interventions that foster supportive environments both at home and in the workplace.
5. **Workplace Environment**: Continuous monitoring and proactive management of workplace stressors are essential. Promoting a safe, development-oriented, and health-promoting work environment can transform work into a source of personal growth rather than stress.
6. **Stress Management Strategies**: Women employ lifestyle changes such as enhancing stress tolerance, adjusting life pace, controlling stressful thoughts, developing problem-solving skills, and seeking social support. These strategies contribute to increased job satisfaction and overall well-being.

Work stress is a real challenge for working women as they manage both home as well as workplace. It is important that workplace should be continuously monitored for stress related issues. Further, it is not only important to identify stress related elements at workplace and to deal with them but to promote healthy work and reduced harmful aspects of work. Work, itself can be a self-promoting activity as long as it takes place in a safe, development and health promoting environment. In the present study it was found that women relieve stress by altering their lifestyle which includes building greater stress tolerance, changing their pace of life, controlling stressful thoughts, acquiring problem solving skills, and seeking social support which in turn helps them to increase their job satisfaction level.

Purpose Of The Study

- Occupational hazards, risk levels, and leadership support.
- Impact on relationships, domestic workload, and overall prosperity.
- Effectiveness of social support and healthy lifestyle practices.

Objective

- Determination of job stress & work by survey of a few selected families

LIMITATIONS:

- Only Women (gender) was considered

Review Of Literature

Muddanagouda Patil (2016) studied Stress among the working women & homemaker women with respect to their family type. International journal of Indian psychology. The provided research findings shows the impact of nuclear and joint family systems on the stress levels of women, specifically categorizing them into working professionals and homemakers. Family structure is a critical

determinant of stress, with the nuclear setup generally being more stressful for women. Employment status acts as a moderator; the protective effect of a joint family is most beneficial for working women. Homemakers experience relatively consistent stress levels regardless of family type, indicating that the challenges of home management are universal across these structures.

H.Y.Kamble, Smita N. Mutgekar, Naziya Iqbal Patvegar(2022) Studied An Evaluation of Occupational Stress Among Working Women. 7th international conference on "economic growth & sustainable development: emerging trends"Research suggests that this anxiety can be mitigated if senior leadership shifts from a purely supervisory role to one that actively inculcates a positive, mentoring-based attitude toward subordinates, thereby enhancing operational efficiency. Studies consistently advocate for organizational interventions such as stress management workshops, work-life balance seminars, and the promotion of holistic health practices like yoga and meditation to address physiological strain. Furthermore, a recurring theme in the literature is the necessity of aligning employee capability with job requirements through targeted training to prevent competency-based burnout. This is particularly critical for working women, who face the "double burden" of managing both domestic and professional spheres. The research indicates that for these employees, job satisfaction is often contingent upon "lifestyle alterations"—including building stress tolerance, seeking social support, and mastering problem-solving skills—within a workplace that is continuously monitored to ensure a safe, developmental, and health-promoting environment.

Sadhana Vitthalrao Lakhute, Rahul Mohanrao Band, Praveen Kumar Rajasekaran (2024) Studied Stress Among Working Women: A silent serpent. National journal of community medicine. The study shows increasingly characterizes occupational and domestic stress among women in developing nations like India as a "silent serpent," reflecting a dual-burden phenomenon where stressors are "double fold" compared to their male counterparts. Research indicates

that for working women, the domestic sphere often introduces unpredictable stressors—such as managing "unexpected guests" and complex "family relations"—which compound workplace pressures to impact the health of the family unit as a whole. Emerging global trends, such as the pilot "four-day work week" in countries like Spain, are being analyzed as potential universal benchmarks for enhancing productivity while specifically mitigating the unique exhaustion faced by female professionals. Scholars suggest that because stress is "unavoidable" in the modern economy, the most effective buffers are "whole-hearted connections" with social networks outside of working hours. Ultimately, the consensus in recent studies is that reducing the stress load on women is not merely an individual benefit but a socioeconomic imperative, as a less stressed female population is directly correlated with the "prosperity" and stability of the broader family structure.

Ojha, Jenny, Bhandari, Tulsi Ram, Karki, Renu (2020) studied Job Stress & it's Associated Factors among Working Women in Pokhara Metropolitan, Nepal. Journal of The Scientific Society. The research increasingly identifies job stress as a critical "public health issue" that disproportionately impacts nearly half of the working female population, particularly in developing contexts like Nepal where mental health research remains limited. Studies suggest that the development of this stress is significantly associated with a complex interplay of demographic and organizational variables, including the participant's age, family structure, and the presence or absence of office-related healthcare benefits. Scholars emphasize that while these stressors are prevalent, they are largely "preventable" through structured social interventions such as targeted counseling, educational programs, and robust workplace support systems.

Solanki, Ranjan, Khan, Mubashshera F, Wangaskar, Sneha A, Deshmukh, Pradeep R. (2025) Stress & Stressor of women: A cross-sectional study from Rural Population in Central India. Indian JOurmal of Community Medicine. study shows increasingly highlights the alarming prevalence of psychological

distress among women in lower-resource settings, with recent data indicating that as many as 62.5% of women experience "very high psychological distress." Research consistently identifies a confluence of socioeconomic and domestic risk factors that significantly elevate this distress, most notably lower socioeconomic status, the presence of comorbid physical conditions, and a woman's marital status, with single, widowed, or divorced individuals facing a more than threefold increase in risk. Perhaps most critically, the literature establishes a profound link between domestic violence and mental health, with victims being nearly five times more likely to suffer from severe psychological strain.

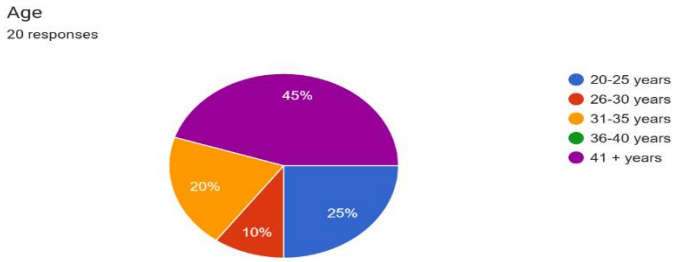
Methodology

Location: Nagpur, Maharashtra, India.
Sampling: Working Women & homemaker were selected as a sampling
Sample Size: 40 Women

Result & Discussion

Table no. 01: Age of women population

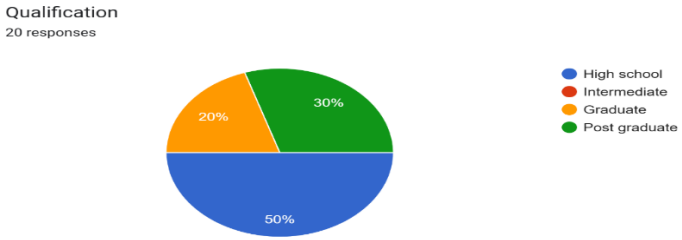
Age	Frequency	Percentage
20-25	10	25%
26-30	4	10%
31-35	8	20%
36-40	0	0%
41+	18	45%
Total	40	100%



The age of an employee is a critical demographic variable in understanding job stress, as it often dictates the type of stressors one faces and the coping mechanisms available to them. The study shows that 45% of the women are 41+ years old, 25% are under 20-25 years, 10% are under 26-30years, & 20% of the women are 31-35 years old.

Table no.02: Qualification of the women

Qualification	Frequency	Percentage
High School	20	50%
Intermediate	0	0%
Graduate	8	20%
Post Graduation	12	30%
Total	40	100%

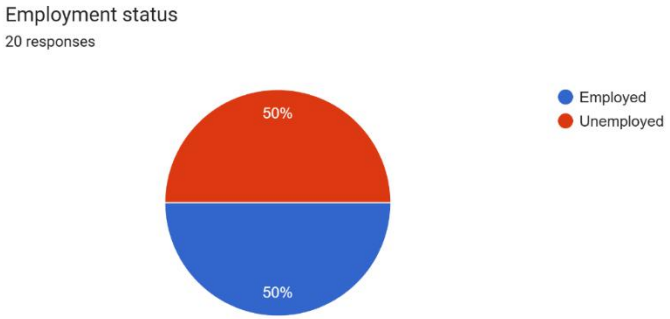


In the context of job stress, Qualification (educational attainment and professional skill level) acts as both a protective shield and a potential stress trigger. 50% of the women has qualified high school, 30% of the women qualified Post graduation & 20% of the women has qualified Graduation.

Table no. 03: Employment status of the women

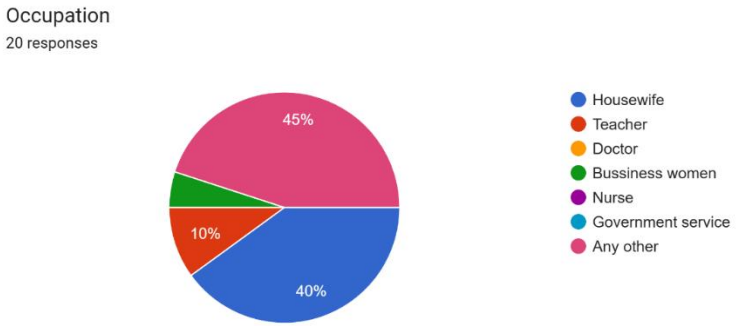
Employement Status	Frequency	Percentage
Employed	20	50%
Unemployed	20	50%
Total	40	100%

ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026



Employment Status (whether a woman is a homemaker, a part-time worker, or a full-time professional) is the primary lens through which the "Double Burden" is observed. It determines the specific nature of the stressors encountered. 50% of the women are employed & 50% of women are homemaker.

Occupation of the women:

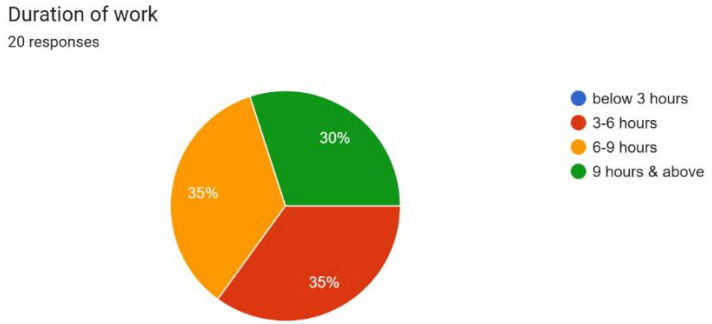


Occupation specifically refers to the *nature of the work* performed. While "Employment Status" simply tells us if a person is working. In the survey it was found that 40% of the women were homemaker, other occupation includes: teacher, doctor, business women, nurse& government service

ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

Table no.04: Duration of work women perform every day.

Duration Of Work	Frequency	Percentage
Below 3 Hrs	0	0%
3-6 Hrs	14	35%
6-9 Hrs	14	35%
9hrs & Above	12	30%
Total	40	100%

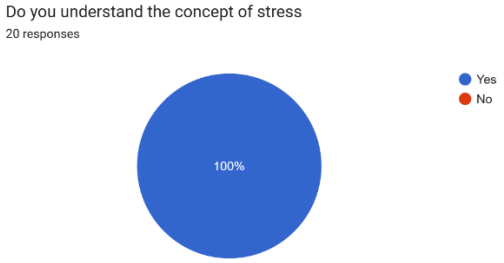


The duration of work is a primary physical constraint that dictates the severity of the "Silent Serpent." It acts as the literal boundary or lack thereof, between professional demands and domestic responsibilities**.** 35% of women work for 3-6 hrs & 6-9hrs a day & 30%of the women works for 9hrs & above.

Table no.05: Women's understanding of the concept of stress.

Do You Understand The Concept Of Stress	Frequency	Percentage
Yes	40	100%
No	0	0%
Total	40	100%

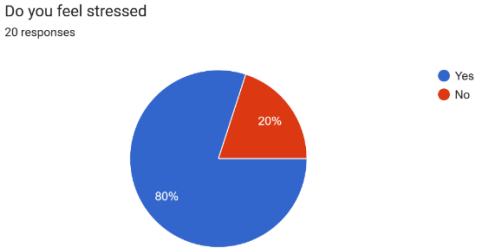
ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026



It was found that 100% pf the women understand the concept of stress

Table no.06: How many of the women feels stressed.

Do You Feel Stressed	Frequency	Percentage
Yes	32	80%
No	8	20%
Total		

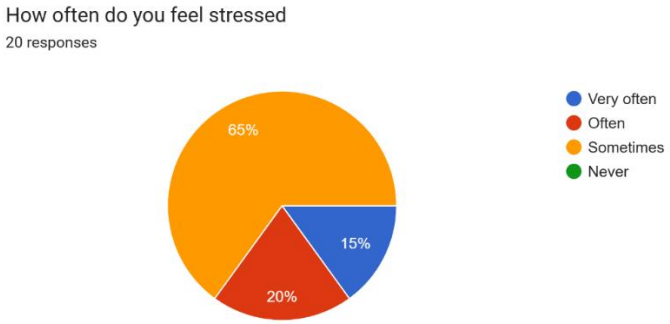


The study indicates that 80% of the women feels stressed.

Table no.07: How often does the women feel stressed.

How Often Do You Feel Stressed	Frequency	Percentage
Very Often	6	15%
Often	8	20%
Sometimes	26	65%
Never	0	0%
Total	40	100%

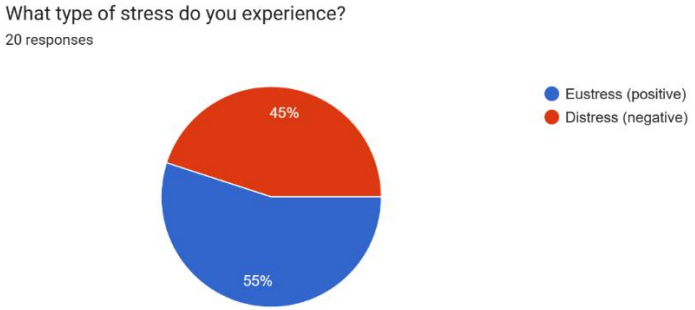
ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026



The frequency and chronicity of stress shows that women often navigate a "double burden," their stress is rarely a one-time event; it is a continuous, daily experience that the literature describes as persistent. 15% of the women feel stressed very often, 20% of the women feel stressed often, & 65% of the women feel stressed sometimes. Which is the good sign that not all women are feeling stressed.

Table no.08: What type of stress do women experience eustress (positive) Distress (negative)

What Type Of Stress Do You Experience?	Frequency	Percentage
Eustress	22	55%
Distress	18	45%
Total	40	100%

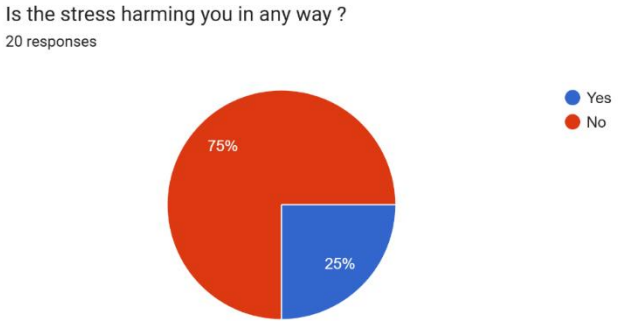


- Eustress (Positive Stress): Short-term stress that feels motivating. It can make work a "self-promoting activity" that leads to growth and efficiency.
- Distress (Negative Stress): The "harmful aspects of work" that lead to burnout, especially when one feels they have no control over their environment.

55% of the women feels positive stress whereas, 45% of women feels negative stress

Table no.09: Is the stress harming them in any way?

Is The Stress Harming You In Any Way?	Frequency	Percentage
Yes	10	25%
No	30	75%
Total	40	100%

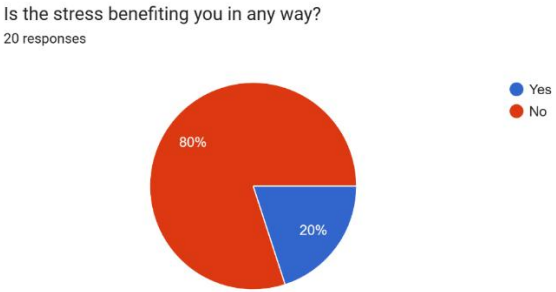


75% of the women says that the stress is harming them.

Table no.10: Is the stress benefiting them in any way?

Is The Stress Benefiting You In Any Way?	Frequency	Percentage
Yes	8	20%
No	32	80%
Total	40	100%

ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026



80% of the women are saying that the stress is benefiting them.

What Atre The Cause For The Stress You Experience?

It was seen that most of the women are stressed by household chores, some of the women are stressed from Job, some of the women are stressed by their children, some of the women are stressed due to personal relationship & social activity where they need to interact with people, & some women are stressed due to medical issues & other reasons

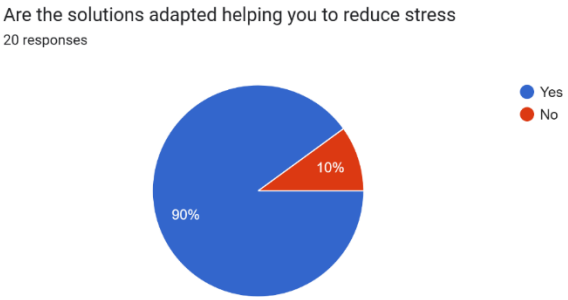
What Measures Do You Adapt To Reduce Stress?

Taking corrective action to handle & mental peace is very crucial. In the study it was found out that most of the women goes to sleep to reduce the stress, other women do yoga & meditation, exercise daily, recreational activity, drinks water to calm down, cooking, gardening, etc, & very few women go to therapy sessions.

Table no.11: Are the solutions helping you in any way?

Are The Solutions Adapted Helping You To Reduce Stress	Frequency	Percentage
Yes	36	90%
No	4	10%
Total	40	100%

ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026



It shows that 90% of the stress are reducing by the solutions % 10% of the women are not affected

Conclusion

The assessment of occupational & domestic stressors it is found that for managers and officers, this stress is intensified by a high-stakes "culture of fear" regarding professional mistakes, which necessitates a structural shift toward supportive leadership and continuous workplace monitoring. However, the study also highlights a path toward resilience, demonstrating that when organizations implement systemic changes, such as the transition to a four-day work week, the provision of targeted counselling, and the promotion of holistic practices like yoga, work can be transformed from a source of depletion into a "self-promoting," health-enhancing activity. Ultimately, because a woman's mental well-being is intrinsically linked to the "prosperity of the family as a whole," addressing these stressors through collective social support and informed policy is a critical mandate for both public health and economic stability. Addressing these stressors is not a "perk", it is a critical mandate for our organization's long-term economic stability. By transforming our culture, we ensure a resilient, high-performing workforce that supports the broader prosperity of our community. This proposal outlines a systemic shift to move from a model of professional depletion to one of **"self-promoting"** health.

Reference

1. Patil, M. (2016). Stress among the working and homemaker women with respect to their family type. International Journal of Indian Psychology, 3(4), 114–122.
2. Solanki, R., Khan, M. F., Wangaskar, S. A., & Deshmukh, P. R. (2025). Stress and stressors of women: A cross-sectional study from rural population in central India. Indian Journal of Community Medicine, 50(4), 581–586
3. Ojha, J., Bhandari, T. R., & Karki, R. (2020). Job stress and its associated factors among working women in Pokhara Metropolitan, Nepal. Journal of the Scientific Society, 47
4. Lakhute, S. V., Band, R. M., & Rajasekaran, P. K. (2024). Stress among working women: A silent serpent. National Journal of Community Medicine, 15(06), 509–510.
5. Kamble, H. Y., Mutgekar, S. N., & Patvegar, N. I. (2022). An evaluation of occupational stress among working women [Conference presentation]. 7th International Conference on Economic Growth & Sustainable Development: Emerging Trends, Mysore, India.

Forest Rights Act 2006 and Livelihood Security: A Study of Minor Forest Produce (MFP) Rights Among the Particularly Vulnerable Tribal Groups (PVTGs) of Jharkhand.

Dr. Prity Kumari

Abstract: -

Jharkhand, dwelling place to a significant tribal population, is rich in forest resources. Jharkhand as a separate state appears varied and complex, but one major reason seems to be to protect the culture, identity, and rights of tribals and forest dwellers over land and forest resources. The Forest Rights Act (FRA) 2006 recognizes the rights of Scheduled Tribes and Other Traditional Forest Dwellers (OTFDs) over MFP, aiming to ensure livelihood security and socio-economic empowerment. MFP rights have significant implications for economic security, social inclusion, and ecological governance. Minor forest produce (MFP) such as tendu leaves, mahua, Sal seeds, and lac form the backbone of tribal livelihoods and economic empowerment. The Forest Rights Act is a major step towards empowering indigenous tribes in Jharkhand and closing historical injustices, but it requires ongoing efforts to ensure equitable distribution and sustainable management of forest resources for forest-dependent communities, those who rely on them. However, the implementation of these rights remains uneven and under-researched in Jharkhand, where tribal communities have historically depended on forests for subsistence and livelihood. However, it reveals that despite legal provisions, the implementation of MFP rights remains uneven, constrained by

policy gaps, weak institutional mechanisms, low awareness, and market exploitation.

This study aims to examine how the recognition and exercise of MFP rights under FRA influence the livelihood security of tribal households in Jharkhand. It will assess institutional facilitation, market linkages, local governance frameworks, and the challenges faced by tribal communities. The Forest Rights Act is a major step towards empowering PVTGs tribes in Jharkhand.

Keywords: - Forest Rights Act (FRA) 2006, Minor Forest Produce (MFP),

Introduction

The enactment of the Forest Rights Act (FRA), 2006 represents a significant transformation in India's forest governance by formally recognizing the rights of historically marginalized forest-dependent communities. A central component of this legislation is the provision of rights over Minor Forest Produce (MFP), which plays a crucial role in sustaining the livelihoods of Particularly Vulnerable Tribal Groups (PVTGs). These communities, often residing in remote forest regions with limited access to institutional support, depend extensively on forest-based resources for their subsistence (Ministry of Tribal Affairs, 2014).

Minor Forest Produce, which includes non-timber forest resources such as fruits, raisins, leaves, and medicinal plants, contributes significantly to income generation, food security, and the preservation of traditional knowledge systems. By granting legal rights to collect, utilize, and manage these resources, the FRA seeks to enhance economic independence and promote social justice among tribal populations (Government of India, 2006).

Jharkhand, characterized by a substantial tribal population and extensive forest cover, provides an important context for examining these dynamics. However, despite progressive legal provisions, the practical realization of MFP rights remains uneven, raising concerns about their actual contribution to improving livelihood security among PVTGs.

Conceptual Framework

This study is grounded in Empowerment Theory and Amartya Sen's Capability approach, both of which offer valuable insights into the relationship between resource access and human development.

Empowerment Theory emphasizes that marginalized groups can improve their socio-economic conditions when they gain access to resources, institutional support, and decision-making authority. It highlights the importance of enhancing agency, autonomy, and participation in governance processes (Kabeer, 1999).

complementing this, Sen's Capability approach focuses on expanding individuals' real freedoms to achieve well-being rather than merely considering resource availability, it evaluates the extent to which individuals can convert resources into meaningful life outcomes (Sen, 1999). This framework is particularly relevant in the context of tribal communities, where access to forest resources is closely linked to cultural identity and survival.

Within this framework, the FRA (2006) functions as a transformative policy instrument aimed at correcting historical injustices by recognizing both individual and community rights over forest resources. In particular, the recognition of MFP rights is critical for strengthening livelihood opportunities among PVTGs.

Review of Literature

Existing literature highlights the importance of MFP in sustaining tribal livelihoods and emphasizes the gaps in policy implementation.

Studies by the Rights and Resources Initiative (2021, 2025) indicate that secure forest tenure significantly improves income levels and ecological sustainability, although gender disparities in access to forest rights persist. Similarly, Kanwar and Kumari (2023) observe that despite legal provisions ensuring equality, women's effective access to forest resources remains constrained by socio-cultural barriers. Reports by the Ministry of Tribal Affairs (2013–2021) and the Xaxa Committee (2014) point to gaps in the implementation of community forest rights, particularly

in states like Jharkhand. These studies highlight issues such as limited awareness, bureaucratic inefficiencies, and weak institutional mechanisms.

Research by Jha et al. (2020) and Das and Mishra (2021) underscore the economic dependence of tribal communities on MFP while identifying infrastructural constraints such as poor storage and transportation facilities. Similarly, the World Bank (2020) and UNDP (2022) emphasize the importance of market linkages and capacity-building initiatives in enhancing the economic potential of MFP-based livelihoods.

Scholars such as Baviskar (2007) and Bose and Baviskar (2018) further highlight the sociological dimensions of forest rights, noting that issues of power, gender inequality, and social exclusion significantly influence the outcomes of policy interventions.

Relevance of the study

This study is highly relevant for policy formulation in the areas of tribal development, forest governance, and inclusive economic growth. While the FRA provides legal recognition of MFP rights, there is limited empirical understanding of how these rights translate into tangible livelihood benefits.

By analyzing secondary data, the study seeks to bridge the gap between policy provisions and their practical implementation. It provides insights into the socio-economic realities of tribal communities, enabling policymakers to design more effective and context-specific interventions. The findings can contribute to improving institutional mechanisms, strengthening market access, and enhancing community participation in forest governance.

Conceptual Farmwork

Livelihood Security

Livelihood security refers to the capacity of individuals and households to sustain their basic needs while coping with economic and environmental uncertainties. It

encompasses economic stability, food security, and social well-being (Chambers & Conway, 1992).

Minor Forest Produce (MFP)

MFP includes all non-timber forest products such as bamboo, tendu leaves, honey, lac, and medicinal plants. These resources are essential for income generation and subsistence among tribal communities (Mahapatra & Tewari, 2005; Planning Commission, 2013).

Forest Rights Act (2006)

The FRA recognizes the rights of forest-dwelling communities over land and forest resources. Section 3(1)(c) specifically grants ownership and usage rights over MFP, aiming to reduce exploitation and promote economic empowerment (Government of India, 2006).

PVTGs

Particularly Vulnerable Tribal Groups are the most marginalized among tribal populations, characterized by low literacy, economic vulnerability, and high dependence on natural resources (Ministry of Tribal Affairs, 2014).

Jharkhand is home to several PVTGs, including the Birhor, Asur, and Sauria Paharia. These communities are marked by subsistence-based livelihoods, limited access to education and healthcare, and a high dependence on forest resources. Their economic activities largely include hunting-gathering, shifting cultivation, and MFP collection. Given their vulnerability, access to forest resources is critical for their survival and socio-economic well-being.

MFP plays a multifaceted role in sustaining tribal livelihoods. It provides seasonal employment, supplementary income, and nutritional support. Many forest products are directly consumed, contributing to food security, while others are sold in local markets.

Studies indicate that MFP contributes approximately 20–40% of household income among forest-dependent communities (Planning Commission, 2013). However, factors such as price fluctuations, lack of storage, and market exploitation often limit its economic potential.

FRA Implementation and MFP Rights in Jharkhand

Despite legal provisions, the implementation of FRA in Jharkhand remains inconsistent. While individual land rights have seen some progress, community forest rights, particularly those related to MFP, are less effectively realized.

Key challenges include:

- Limited awareness among PVTGs
- Administrative delays in claim processing
- Weak functioning of local institutions
- Continued dominance of intermediaries in MFP markets

These constraints reduce the effectiveness of FRA in improving livelihood outcomes.

Role of Minor Forest Produce (MFP) in Livelihood Security

Minor Forest Produce (MFP), also referred to as Non-Timber Forest Products (NTFPs), constitutes a critical component of livelihood systems among forest-dependent communities, particularly the Particularly Vulnerable Tribal Groups (PVTGs). In regions such as Jharkhand, where forest ecosystems form the backbone of subsistence economies, MFP plays a multidimensional role in sustaining both economic and social well-being.

Income Generation and Employment

MFP serves as a vital source of supplementary income for tribal households. Unlike agriculture, which is seasonal and often uncertain due to climatic variability, the collection and sale of forest produce provide relatively stable income opportunities throughout the year. Products such as tendu leaves, lac, mahua flowers, sal seeds, and honey are commonly collected and sold in local

markets. These activities are particularly significant during agricultural lean seasons, thereby acting as an economic buffer for vulnerable households (Mahapatra & Tewari, 2005).

Empirical studies suggest that MFP contributes approximately 20–40% of annual household income among forest-dependent communities (Planning Commission, 2013). In certain regions, especially among PVTGs, this contribution may be even higher due to limited alternative livelihood options. The income derived from MFP is often used to meet essential household needs, including food, healthcare, and education.

Food and Nutritional Security

In addition to income generation, MFP plays a crucial role in ensuring food and nutritional security. A variety of forest products, including wild fruits, leafy vegetables, tubers, mushrooms, and medicinal plants, are directly consumed by tribal communities. These products are rich in micronutrients and form an integral part of traditional diets.

For PVTGs, who often face food insecurity due to limited access to agricultural land and markets, MFP acts as a reliable source of nutrition. It not only supplements staple diets but also provides dietary diversity, which is essential for maintaining health and well-being (FAO, 2019).

Risk Mitigation and Livelihood Resilience

MFP also functions as a safety net during periods of economic distress, crop failure, or environmental shocks. In situations where agricultural production is affected by droughts or other climatic events, forest resources offer an alternative means of sustenance. This resilience function is particularly important for PVTGs, who have limited access to formal safety nets such as credit and insurance.

The flexibility associated with MFP collection allows households to adjust their livelihood strategies according to seasonal and environmental conditions. This

adaptability enhances their capacity to cope with uncertainties and maintains livelihood security (Chambers & Conway, 1992).

Cultural and Social Significance

Beyond economic and nutritional aspects, MFP holds significant cultural value for tribal communities. Many forest products are used in traditional rituals, festivals, and medicinal practices. The knowledge associated with the collection and utilization of MFP is deeply embedded in indigenous knowledge systems and is passed down through generations.

Thus, MFP is not merely an economic resource but also a key component of cultural identity and social cohesion among tribal communities (Baviskar, 2007).

Constraints Affecting MFP-Based Livelihoods

Despite its importance, the economic potential of MFP remains underutilized due to several structural constraints. Price volatility, lack of storage facilities, inadequate transportation infrastructure, and limited access to formal markets often reduce the returns received by collectors. Additionally, the dominance of intermediaries in the value chain leads to exploitation and unequal distribution of profits (Jha et al., 2020).

FRA Implementation and MFP Rights in Jharkhand

The Forest Rights Act (FRA), 2006 was enacted to address historical injustices and empower forest-dwelling communities by recognizing their rights over land and forest resources. A key provision of the Act is the recognition of ownership and usage rights over MFP, which has the potential to significantly enhance livelihood security.

However, the implementation of FRA in Jharkhand has been uneven and characterized by several challenges.

Limited Awareness Among PVTGs

One of the primary barriers to effective implementation is the low level of awareness among PVTGs regarding their rights under the FRA. Many community

members are either unaware of the provisions of the Act or lack adequate information on the procedures for claiming rights.

This information gap is further exacerbated by low literacy levels and limited outreach by government agencies. As a result, many eligible households are unable to exercise their rights, thereby limiting the impact of the legislation (Ministry of Tribal Affairs, 2014).

Weak Functioning of Local Institutions

The FRA assigns a central role to local governance institutions, particularly the Gram Sabha, in the identification, verification, and management of forest rights. However, in many parts of Jharkhand, these institutions remain weak and ineffective.

Several factors contribute to this weakness:

- **Limited Capacity:** Gram Sabhas often lack the technical knowledge and administrative capacity required to manage forest resources effectively.
- **Inadequate Participation:** Participation of marginalized groups, including women and PVTGs, is often limited, leading to exclusion in decision-making processes.
- **Political Interference:** Local governance structures are sometimes influenced by political and economic interests, which can undermine their autonomy.
- **Lack of Training and Support:** Insufficient training and institutional support further weaken the functioning of these bodies.

Administrative Delays and Bureaucratic Hurdles

The process of recognizing forest rights involves multiple administrative steps, including claim submission, verification, and approval by various committees. In practice, these processes are often slow and inefficient, leading to significant delays in the recognition of rights.

Bureaucratic complexities, lack of coordination among departments, and insufficient staffing further contribute to implementation gaps. Studies have shown

that delays in claim processing discourage community participation and undermine trust in institutional mechanisms (Sarin et al., 2010).

As a result, the decentralized governance model envisioned under the FRA is not fully realized, affecting the implementation of MFP rights (Xaxa Committee, 2014).

Continued Dominance of Intermediaries in MFP Markets

Despite the legal recognition of ownership rights over MFP, the market structure continues to be dominated by intermediaries. These middlemen often control pricing, procurement, and distribution channels, leaving tribal collectors with limited bargaining power.

Due to lack of access to formal markets, storage facilities, and transportation infrastructure, tribal communities are often compelled to sell their produce at low prices. This not only reduces their income but also perpetuates economic dependency and exploitation (Rai & Chakraborty, 2017).

Efforts such as the introduction of Minimum Support Price (MSP) for MFP and the involvement of agencies like TRIFED have shown some positive outcomes. However, their reach remains limited, particularly among remote PVTG populations (UNDP, 2022).

Overall Impact on Livelihood Outcomes

The combined effect of these challenges significantly limits the effectiveness of FRA in enhancing livelihood security. While the Act provides a strong legal framework, the gap between policy and practice remains substantial.

The failure to fully operationalize MFP rights results in continued socio-economic vulnerability among PVTGs. Without addressing issues related to awareness, institutional capacity, and market access, the transformative potential of FRA cannot be fully realized.

Conclusion: -

MFP plays a vital role in sustaining the livelihoods of tribal communities by providing income, food security, and resilience against economic shocks. However, its potential remains constrained by structural and institutional challenges. From a sociological perspective, the FRA represents a shift toward rights-based governance. However, the gap between policy and practice reflects deeper structural inequalities. Issues such as power imbalances, social exclusion, and institutional inefficiencies continue to affect the realization of rights. While the FRA has transformative potential, its success depends on addressing these structural barriers (Baviskar, 2007).

The effective implementation of FRA, particularly MFP rights, is essential for improving livelihood outcomes among PVTGs in Jharkhand. Strengthening local institutions, enhancing awareness, and improving market linkages are critical steps toward achieving this goal.

References

1. Baviskar, A. (2007). Rights in the forest: The struggle of Adivasi communities in India. Oxford University Press.
2. Bose, P., & Baviskar, A. (2018). Gender and forest governance: The role of women in forest management. Economic and Political Weekly, 53(18), 45–52. (Note: Add exact issue/pages if available)
3. Chambers, R., & Conway, G. (1992). Sustainable rural livelihoods: Practical concepts for the 21st century (IDS Discussion Paper No. 296). Institute of Development Studies.
4. Das, P., & Mishra, A. (2021). Implementation challenges of the Forest Rights Act in India. Journal of Rural Development, 40(2), 123–140. (Update volume/pages if needed)

5. Government of India. (2006). The Scheduled Tribes and Other Traditional Forest Dwellers (Recognition of Forest Rights) Act, 2006. Ministry of Law and Justice.
6. Jha, S., Kumar, R., & Singh, P. (2020). Dependency on minor forest produce in Jharkhand: A socio-economic analysis. Indian Journal of Forestry, 43(3), 215–223. (Verify details if needed)
7. Kabeer, N. (1999). Resources, agency, achievements: Reflections on the measurement of women's empowerment. Development and Change, 30(3), 435–464. https://doi.org/10.1111/1467-7660.00125
8. Kanwar, P., & Kumari, S. (2023). Gender dimensions of forest rights: A study of women's access under FRA. Journal of Tribal Studies, 11(1), 67–82. (Update details if available)
9. Mahapatra, A. K., & Tewari, D. D. (2005). Importance of non-timber forest products in the economic valuation of dry deciduous forests of India. Forest Policy and Economics, 7(3), 455–467. https://doi.org/10.1016/j.forpol.2004.02.004
10. Ministry of Tribal Affairs. (2014). Report on particularly vulnerable tribal groups (PVTGs). Government of India.
11. Planning Commission. (2013). Report of the expert committee on minor forest produce. Government of India.
12. Rights and Resources Initiative. (2021). Power and potential: A comparative analysis of national laws and regulations concerning women's rights to community forests. Rights and Resources Initiative.
13. Rights and Resources Initiative. (2025). Global assessment of community forest rights and gender equity. Rights and Resources Initiative.
14. Sen, A. (1999). Development as freedom. Oxford University Press.
15. United Nations Development Programme (UNDP). (2022). Minor forest produce and livelihood enhancement report. UNDP.

16. World Bank. (2020). Forests, livelihoods, and poverty reduction: A global assessment. World Bank.
17. Xaxa Committee. (2014). Report of the high-level committee on socio-economic, health and educational status of tribal communities in India. Ministry of Tribal Affairs, Government of India.

ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

भारतीय न्यायशास्त्र में 'दंड' की अवधारणा और सुधारात्मक न्याय: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. सुमीत कुमार गुप्ता
सहायक आचार्य(अतिथि व्याख्याता)- राजनीति विज्ञान
शासकीय गुंडाधूर स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
कोण्डागाँव (छ.ग.) – 494226,

सारांश (Abstract):

प्रस्तुत शोध पत्र भारतीय न्यायशास्त्र के प्राचीन स्रोतों मनुस्मृति, अर्थशास्त्र तथा महाभारत के आलोक में 'दंड' की अवधारणा का विश्लेषणात्मक परीक्षण करता है। भारतीय दार्शनिक परंपरा में 'दंड' को मात्र दमन या प्रतिशोध का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक संतुलन, नैतिक अनुशासन और धर्म की स्थापना का उपकरण माना गया है। प्राचीन भारतीय दंड नीति को केवल 'प्रतिशोधात्मक' (Retributive) दृष्टिकोण तक सीमित करना एकांगी समझ है, वास्तव में उसमें 'सुधारात्मक' (Reformative) तथा 'बहाली' (Restorative) न्याय के तत्व बीज रूप में विद्यमान थे।

मनुस्मृति में दंड को धर्म का रक्षक बताया गया है, जिसका उद्देश्य समाज में न्याय और नैतिकता की पुनर्स्थापना करना है। यहाँ दंड का प्रयोग अपराधी के विनाश हेतु नहीं, बल्कि उसके आचरण को सुधारने और सामाजिक व्यवस्था को संतुलित करने के लिए किया जाता है। इसी प्रकार कौटिल्य के अर्थशास्त्र में दंडनीति राज्य की स्थिरता और लोककल्याण से जुड़ी हुई है। कौटिल्य दंड को विवेकपूर्ण, परिस्थिति-निरपेक्ष और न्यायसंगत प्रयोग की वकालत करते हैं, जिससे अपराधी को अनुशासित किया जा सके तथा समाज में पुनः समावेशन की संभावना बनी रहे। महाभारत में भी दंड और क्षमा के मध्य संतुलन की अवधारणा स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है, जहाँ न्याय को धर्म और करुणा के समन्वय के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

यह शोध विशेष रूप से 'प्रायश्चित' और 'क्षतिपूर्ति' जैसी अवधारणाओं पर प्रकाश डालता है, जो सुधारात्मक और बहाली न्याय के मूल तत्वों से साम्य रखती हैं। 'प्रायश्चित' अपराधी को आत्मबोध,

आत्मशुद्धि और नैतिक पुनर्निर्माण का अवसर प्रदान करता है, जबकि 'क्षतिपूर्ति' पीड़ित के नुकसान की भरपाई के माध्यम से सामाजिक संबंधों की पुनर्स्थापना का मार्ग प्रशस्त करती है। इस प्रकार, अपराध को केवल विधि-भंग के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक संबंधों के विघटन के रूप में देखा गया है, जिसकी मरम्मत आवश्यक है।

आधुनिक वैश्विक न्याय प्रणालियों में उभरती 'सुधारात्मक न्याय' की अवधारणा, जो अपराधी, पीड़ित और समुदाय के बीच संवाद एवं सामंजस्य पर बल देती है, भारतीय परंपरा में निहित इन सिद्धांतों से आश्चर्यजनक समानता रखती है। यह अध्ययन प्रतिपादित करता है कि भारतीय न्यायशास्त्र का दार्शनिक आधार समन्वयी और मानवीय रहा है, जिसमें दंड का उद्देश्य केवल भय या प्रतिशोध नहीं, बल्कि नैतिक पुनर्संतुलन और सामाजिक पुनर्गठन है।

प्राचीन भारतीय दंड नीति आधुनिक सुधारात्मक न्याय के लिए एक वैकल्पिक और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध मॉडल प्रदान कर सकती है। भारतीय न्यायशास्त्र की यह विरासत न केवल ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि समकालीन न्याय व्यवस्था को अधिक संवेदनशील, सहभागी और पुनर्स्थापनात्मक बनाने की दिशा में मार्गदर्शक सिद्ध हो सकती है।

बीज शब्द: *दंड, धर्म, सुधारात्मक न्याय, प्रायश्चित, कौटिल्य, मनुस्मृति, न्यायशास्त्र।*

प्रस्तावना (Introduction)

भारतीय न्यायशास्त्र में 'दंड' की अवधारणा अत्यंत प्राचीन, व्यापक और दार्शनिक गहराई से युक्त रही है। 'दंड' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत धातु 'दम्' से मानी जाती है, जिसका अर्थ है – नियंत्रण करना, संयमित करना या अनुशासित करना। इस दृष्टि से दंड का मूल उद्देश्य केवल दमन नहीं, बल्कि सामाजिक और नैतिक अनुशासन की स्थापना है। भारतीय चिंतन में दंड को समाज के संरक्षण, धर्म की प्रतिष्ठा और लोककल्याण के लिए आवश्यक साधन माना गया है। प्राचीन ऋषियों ने यह स्वीकार किया कि यदि समाज में नियमों का पालन सुनिश्चित करने वाली कोई व्यवस्था न हो, तो 'मात्स्य न्याय' अर्थात् शक्तिशाली द्वारा निर्बल के शोषण की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। इस संदर्भ में दंड को अराजकता से बचाने वाली सृजनात्मक शक्ति के रूप में देखा गया।

प्राचीन ग्रंथों में दंड का स्वरूप केवल शारीरिक या आर्थिक दंड तक सीमित नहीं था, बल्कि यह एक नैतिक और दार्शनिक अवधारणा थी। मनुस्मृति में दंड को धर्म का रक्षक बताया गया है। मनु के अनुसार दंड के अभाव में समाज में अव्यवस्था फैल सकती है, क्योंकि मनुष्य स्वभावतः वासनाओं और स्वार्थ से प्रेरित हो सकता है। अतः दंड व्यवस्था सामाजिक संतुलन बनाए रखने का साधन है। किंतु यह भी

स्पष्ट किया गया कि दंड का प्रयोग न्यायसंगत, संतुलित और विवेकपूर्ण होना चाहिए, अन्यथा वह स्वयं अन्याय का कारण बन सकता है।

इसी प्रकार अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने दंडनीति को राज्य-प्रशासन का केन्द्रीय आधार माना है। कौटिल्य के अनुसार राजा का कर्तव्य है कि वह दंड का प्रयोग निष्पक्षता और न्याय के साथ करे। दंड का उद्देश्य भय उत्पन्न कर शासन चलाना नहीं, बल्कि प्रजा की सुरक्षा और समृद्धि सुनिश्चित करना है। कौटिल्य ने स्पष्ट किया कि अत्यधिक कठोर दंड प्रजा में असंतोष उत्पन्न कर सकता है, जबकि अत्यधिक शिथिलता अराजकता को जन्म देती है, अतः 'मध्यम मार्ग' ही न्यायसंगत है। यह दृष्टिकोण दंड को संतुलन और सुधार के साधन के रूप में प्रस्तुत करता है।

भारतीय महाकाव्य परंपरा में भी दंड और धर्म के संबंध का विशद विवेचन मिलता है। महाभारत में राजधर्म और दंडनीति पर व्यापक चर्चा है। भीष्म और युधिष्ठिर के संवाद में यह प्रतिपादित किया गया है कि राजा का दायित्व केवल अपराधी को दंडित करना नहीं, बल्कि न्याय और करुणा के संतुलन के माध्यम से समाज में धर्म की स्थापना करना है। यहाँ दंड को प्रतिशोध नहीं, बल्कि सामाजिक संतुलन की पुनर्स्थापना के रूप में देखा गया है।

भारतीय परंपरा में 'प्रायश्चित' और 'क्षतिपूर्ति' जैसी अवधारणाएँ भी दंड व्यवस्था का अभिन्न अंग रही हैं। 'प्रायश्चित' अपराधी को आत्मचिंतन और आत्मशुद्धि का अवसर प्रदान करता है। यह केवल बाह्य दंड नहीं, बल्कि आंतरिक रूपांतरण की प्रक्रिया है। इसी प्रकार 'क्षतिपूर्ति' पीड़ित के नुकसान की भरपाई के माध्यम से सामाजिक संबंधों को पुनर्स्थापित करने का प्रयास करती है। इन अवधारणाओं में आधुनिक 'सुधारात्मक न्याय' के मूल तत्त्व स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं, जहाँ अपराध को केवल कानून के उल्लंघन के रूप में नहीं, बल्कि व्यक्ति, पीड़ित और समुदाय के मध्य संबंधों के विघटन के रूप में समझा जाता है।

आधुनिक वैश्विक परिप्रेक्ष्य में दंड व्यवस्था को लेकर गंभीर विमर्श चल रहा है। जेल प्रणाली की प्रभावशीलता, अपराधियों की पुनरावृत्ति और कारावास के मानवीय पहलुओं पर प्रश्न उठ रहे हैं। अनेक देशों में यह अनुभव किया गया है कि केवल कारावास-आधारित दंड प्रणाली अपराध को समाप्त करने में पर्याप्त नहीं है। अपराधी अक्सर समाज से और अधिक कट जाता है, जिससे पुनः अपराध की संभावना बढ़ जाती है। इसी पृष्ठभूमि में सुधारात्मक न्याय की अवधारणा उभरकर सामने आई है, जो संवाद, सामंजस्य, पुनर्स्थापन और सामुदायिक सहभागिता पर बल देती है।

भारतीय न्यायशास्त्र की परंपरा इस संदर्भ में विशेष रूप से प्रासंगिक प्रतीत होती है। यहाँ दंड को केवल प्रतिशोधात्मक साधन के रूप में नहीं, बल्कि नैतिक पुनर्संतुलन और सामाजिक पुनर्गठन के माध्यम के रूप में देखा गया है। प्राचीन भारतीय चिंतन में न्याय का आधार 'धर्म' था, जो विधिक नियमों से परे

नैतिकता, कर्तव्य और समरसता को महत्व देता है। इस प्रकार भारतीय दृष्टिकोण में दंड और सुधार परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि पूरक हैं।

समकालीन भारत में भी वैकल्पिक विवाद समाधान तंत्र, लोक अदालतें और सामुदायिक न्याय की पहलें सुधारात्मक न्याय के सिद्धांतों की ओर संकेत करती हैं। यद्यपि आधुनिक विधिक संरचना औपनिवेशिक प्रभाव से निर्मित है, तथापि भारतीय सांस्कृतिक और दार्शनिक विरासत न्याय के अधिक मानवीय और सहभागी मॉडल की ओर प्रेरित करती है। वर्तमान समय में जब विश्व स्तर पर न्याय प्रणाली को अधिक संवेदनशील और पुनर्स्थापनात्मक बनाने की आवश्यकता अनुभव की जा रही है, तब भारतीय न्यायशास्त्र की 'दंड' संबंधी अवधारणा एक वैकल्पिक बौद्धिक आधार प्रदान कर सकती है।

भारतीय परंपरा में दंड की अवधारणा और आधुनिक सुधारात्मक न्याय के सिद्धांतों के मध्य अंतर्संबंधों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसका उद्देश्य यह दिखाना है कि भारतीय न्यायशास्त्र की दार्शनिक नींव में सुधार, पुनर्संतुलन और सामंजस्य के तत्व निहित हैं। इस प्रस्तावना के माध्यम से यह प्रतिपादित किया जाता है कि भारतीय न्याय परंपरा को पुनर्पाठ और पुनर्व्याख्या की आवश्यकता है, ताकि वह समकालीन वैश्विक न्याय विमर्श में रचनात्मक योगदान दे सके।

दंड का दार्शनिक आधार: धर्म और दंड का अंतर्संबंध

भारतीय न्यायशास्त्र में 'दंड' की अवधारणा को समझने के लिए उसके दार्शनिक आधार 'धर्म' का विश्लेषण अनिवार्य है। भारतीय चिंतन परंपरा में दंड राजा की व्यक्तिगत शक्ति या प्रतिशोध का उपकरण नहीं है, बल्कि वह 'धर्म' की रक्षा और सामाजिक संतुलन की स्थापना का माध्यम है। यहाँ 'धर्म' केवल धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित नहीं, बल्कि वह नैतिकता, कर्तव्य, न्याय, सामाजिक उत्तरदायित्व और समष्टिगत कल्याण का व्यापक सिद्धांत है। इस प्रकार दंड और धर्म का संबंध अभिन्न और परस्पर पूरक है।

प्राचीन ग्रंथों में दंड को एक दैवीय शक्ति के रूप में चित्रित किया गया है, जो अधर्म का नाश करती है और समाज में न्याय की स्थापना करती है। मनुस्मृति में दंड को धर्म का संरक्षक बताया गया है। वहाँ प्रसिद्ध श्लोक आता है-

"दंडः शास्ति प्रजाः सर्वा दंड एवाभिरक्षति।
दंडः सुप्तेषु जागर्ति दंडं धर्मं विदुर्बुधाः॥"

अर्थात् दंड ही समस्त प्रजा पर शासन करता है, दंड ही सबकी रक्षा करता है, जब सब सो जाते हैं तब दंड ही जागता है, ज्ञानीजन दंड को ही धर्म मानते हैं। इस कथन में दंड को मात्र दमनकारी शक्ति नहीं, बल्कि सतत जागरूक नैतिक संरक्षक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। दंड यहाँ विधि और व्यवस्था की आत्मा है, जो समाज को अराजकता से बचाती है।

भारतीय दर्शन में 'मत्स्य न्याय' की अवधारणा का उल्लेख मिलता है, जिसका अर्थ है – शक्तिशाली द्वारा निर्बल का भक्षण। यदि दंड व्यवस्था न हो, तो समाज में यही स्थिति उत्पन्न हो सकती है। इसीलिए दंड को सामाजिक न्याय की रीढ़ माना गया। किंतु यह भी स्पष्ट किया गया कि दंड का प्रयोग धर्मसम्मत और संतुलित होना चाहिए। यदि दंड अन्यायपूर्ण हो जाए, तो वह स्वयं अधर्म का रूप ले लेता है।

अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने दंडनीति को राज्य-व्यवस्था का मूल आधार बताया है। उनके अनुसार राजा 'दंडधारक' है, किंतु दंड का स्वामी नहीं। वह दंड का प्रयोग धर्म और लोककल्याण के लिए करता है। कौटिल्य ने दंड के तीन प्रमुख उद्देश्यों की चर्चा की – (1) अपराध का निवारण, (2) अपराधी का अनुशासन और (3) समाज में व्यवस्था की स्थापना। वे चेतावनी देते हैं कि अत्यधिक कठोर दंड प्रजा में भय और असंतोष उत्पन्न करता है, जबकि अत्यधिक शिथिलता अराजकता को जन्म देती है। इसलिए 'सम्यक् दंड' ही न्यायोचित है।

यह दृष्टिकोण स्पष्ट करता है कि दंड का दार्शनिक आधार संतुलन और न्याय है। दंड धर्म का उपकरण है, न कि राजा की निरंकुश इच्छा। भारतीय चिंतन में राजा को 'राजऋषि' के आदर्श से जोड़ा गया है – अर्थात् वह शक्ति और नैतिकता का समन्वय है। यदि राजा अधर्मपूर्वक दंड देता है, तो वह स्वयं पाप का भागी बनता है। इस प्रकार दंड की वैधता धर्म के पालन पर निर्भर करती है।

महाभारत में राजधर्म और दंडनीति पर विस्तृत विमर्श मिलता है। भीष्म द्वारा युधिष्ठिर को दिए गए उपदेशों में यह प्रतिपादित किया गया है कि राजा का दायित्व केवल अपराधी को दंडित करना नहीं, बल्कि न्याय और करुणा के संतुलन के माध्यम से समाज में धर्म की स्थापना करना है। यहाँ दंड और क्षमा दोनों को समान रूप से महत्व दिया गया है। यह संतुलन ही दंड को प्रतिशोधात्मक होने से रोकता है और उसे नैतिक औचित्य प्रदान करता है।

भारतीय दर्शन में दंड का एक और महत्त्वपूर्ण आयाम है – आत्मानुशासन। उपनिषदों और स्मृति ग्रंथों में 'दम' (संयम) को मनुष्य के आंतरिक विकास का साधन बताया गया है। बाह्य दंड व्यवस्था उसी आंतरिक अनुशासन की सामाजिक अभिव्यक्ति है। जब व्यक्ति स्वयं धर्म का पालन करता है, तब बाह्य दंड की आवश्यकता कम हो जाती है। इस प्रकार आदर्श स्थिति में दंड का उद्देश्य व्यक्ति को आत्मानुशासन की ओर प्रेरित करना है।

धर्म और दंड के इस अंतर्संबंध में सुधारात्मक न्याय के तत्व भी निहित हैं। भारतीय परंपरा में 'प्रायश्चित' की व्यवस्था अपराधी को आत्मशुद्धि का अवसर प्रदान करती है। यह मान्यता है कि मनुष्य परिवर्तनशील है और उसे अपने कृत्यों का प्रायश्चित कर पुनः समाज में सम्मानपूर्वक स्थान प्राप्त करने का अधिकार है। इसी प्रकार 'क्षतिपूर्ति' की अवधारणा पीड़ित के अधिकारों की रक्षा करती है। यह दृष्टिकोण आधुनिक

सुधारात्मक न्याय के सिद्धांतों से मेल खाता है, जहाँ अपराध को केवल विधि-भंग नहीं, बल्कि सामाजिक संबंधों के विघटन के रूप में देखा जाता है।

समकालीन वैश्विक परिप्रेक्ष्य में जब दंड व्यवस्था की आलोचना हो रही है विशेषकर कारावास-आधारित प्रणाली की तब भारतीय दार्शनिक दृष्टिकोण प्रासंगिक प्रतीत होता है। यहाँ दंड का उद्देश्य प्रतिशोध नहीं, बल्कि नैतिक पुनर्संतुलन और सामाजिक समरसता है। दंड और धर्म का यह अंतर्संबंध न्याय को अधिक मानवीय और संतुलित बनाता है।

भारतीय न्यायशास्त्र में दंड का दार्शनिक आधार गहन नैतिकता और धर्म पर आधारित है। दंड को एक दैवीय और नैतिक शक्ति के रूप में देखा गया है, जो अधर्म का नाश कर समाज में न्याय और संतुलन स्थापित करती है। यह अवधारणा आधुनिक सुधारात्मक न्याय की दिशा में एक सांस्कृतिक और दार्शनिक आधार प्रदान करती है, जहाँ दंड केवल दमन का साधन न होकर सुधार, पुनर्स्थापन और सामंजस्य का माध्यम बन सकता है।

दंड के प्रकार और वर्गीकरण

भारतीय न्यायशास्त्र में 'दंड' की अवधारणा केवल दमनात्मक शक्ति का प्रतीक नहीं है, बल्कि वह एक सुविचारित, संतुलित और नैतिक व्यवस्था का अंग है। प्राचीन स्मृतिकारों और आचार्यों ने दंड को अपराध की प्रकृति, अपराधी की मंशा, सामाजिक स्थिति, परिस्थितियों तथा पुनरावृत्ति की संभावना के आधार पर वर्गीकृत किया। इस प्रकार दंड का उद्देश्य केवल प्रतिशोध नहीं, बल्कि सुधार, निवारण और सामाजिक संतुलन की पुनर्स्थापना था।

विशेष रूप से मनुस्मृति तथा अन्य स्मृति ग्रंथों में दंड के चार प्रमुख प्रकारों का उल्लेख मिलता है— वाक्-दंड, धिक्-दंड, धन-दंड और वध-दंड। यह वर्गीकरण दर्शाता है कि प्राचीन भारतीय विधि-चिंतन में 'क्रमिक दंड' (Gradation of Punishment) की अवधारणा विद्यमान थी, जहाँ अपराध की गंभीरता के अनुसार दंड की तीव्रता निर्धारित की जाती थी।

1. **वाक्-दंड: चेतावनी द्वारा सुधार:-** वाक्-दंड दंड का सबसे हल्का और प्रारंभिक रूप है। इसमें अपराधी को कठोर शब्दों, चेतावनी या उपदेश के माध्यम से सुधारने का प्रयास किया जाता है। यह दंड उन परिस्थितियों में दिया जाता था, जहाँ अपराध लघु, अनजाने में किया गया या प्रथम बार हुआ हो।

   वाक्-दंड का मूल उद्देश्य अपराधी के भीतर नैतिक चेतना जागृत करना था। भारतीय दर्शन में यह विश्वास था कि मनुष्य मूलतः सुधार योग्य है। यदि उसे अपने कृत्य की अनुचितता का बोध करा दिया जाए, तो वह पुनः अपराध करने से बच सकता है। इस दृष्टि से वाक्-दंड सुधारात्मक न्याय की

प्रथम सीढ़ी है। यह दंड सामाजिक और नैतिक अनुशासन का प्रतीक है, जहाँ दंड का स्वरूप शिक्षाप्रद है, न कि प्रतिशोधात्मक। आधुनिक न्याय प्रणाली में इसे चेतावनी, परामर्श या परिवीक्षा (Probation) के समकक्ष माना जा सकता है।

2. **धिक्-दंड: सार्वजनिक निंदा या धिक्कार:-** धिक्-दंड वाक्-दंड से एक स्तर ऊपर है। इसमें अपराधी की सार्वजनिक निंदा या सामाजिक धिक्कार किया जाता है। प्राचीन भारतीय समाज में सामाजिक प्रतिष्ठा अत्यंत महत्वपूर्ण थी, अतः सार्वजनिक आलोचना स्वयं में एक प्रभावशाली दंड मानी जाती थी।

   इस दंड का उद्देश्य अपराधी को उसके कृत्य के सामाजिक प्रभाव का बोध कराना था। जब समाज के समक्ष उसके आचरण की निंदा की जाती थी, तो वह आत्मग्लानि अनुभव करता और सुधार की दिशा में प्रेरित होता। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि धिक्-दंड में शारीरिक या आर्थिक क्षति नहीं होती, यह मनोवैज्ञानिक और सामाजिक स्तर पर प्रभाव डालता है। आधुनिक संदर्भ में इसे सामुदायिक सेवा या सार्वजनिक माफी जैसी व्यवस्थाओं से जोड़ा जा सकता है। धिक्-दंड का तात्पर्य अपमानित करना नहीं, बल्कि सामाजिक उत्तरदायित्व का स्मरण कराना था। यह दंड सामुदायिक सहभागिता और सामाजिक नैतिकता को सुदृढ़ करता था।

3. **धन-दंड: आर्थिक जुर्माना:-** धन-दंड प्राचीन भारतीय न्याय प्रणाली में अत्यंत प्रचलित था। इसमें अपराधी से आर्थिक दंड के रूप में जुर्माना लिया जाता था। अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने विभिन्न अपराधों के लिए निर्धारित धन-दंड का विस्तृत विवरण दिया है।

   धन-दंड का उद्देश्य दोहरा था-

   - अपराधी को आर्थिक हानि के माध्यम से अनुशासित करना।
   - पीड़ित या राज्य को हुए नुकसान की आंशिक भरपाई करना।

   यहाँ 'क्षतिपूर्ति' की अवधारणा स्पष्ट रूप से दिखाई देती है, जो आधुनिक सुधारात्मक न्याय का एक महत्वपूर्ण तत्व है। अपराध को केवल राज्य के विरुद्ध नहीं, बल्कि पीड़ित के विरुद्ध भी माना गया, और धन-दंड के माध्यम से उस हानि की पूर्ति का प्रयास किया गया। धन-दंड का एक महत्त्वपूर्ण पहलू यह था कि उसकी मात्रा अपराधी की आर्थिक स्थिति के अनुसार निर्धारित की जाती थी। इससे न्याय में समता और संतुलन बना रहता था। यह सिद्धांत आज के 'समानुपातिकता' (Proportionality) सिद्धांत के अनुरूप है।

4. **वध-दंड: शारीरिक दंड या कारावास:-** वध-दंड दंड का सबसे कठोर रूप है। इसमें शारीरिक दंड, कारावास या मृत्यु-दंड सम्मिलित हो सकते हैं। यह दंड उन अपराधों के लिए निर्धारित था,

जो अत्यंत गंभीर और समाज के लिए घातक माने जाते थे। जैसे राजद्रोह, हत्या या घोर हिंसात्मक अपराध। हालाँकि, प्राचीन ग्रंथों में यह स्पष्ट निर्देश है कि वध-दंड अंतिम उपाय के रूप में ही प्रयोग किया जाए। इसका उद्देश्य समाज की रक्षा और अपराध के निवारण तक सीमित था।

महाभारत में भी दंड और क्षमा के संतुलन पर बल दिया गया है। भीष्म द्वारा युधिष्ठिर को यह उपदेश दिया गया कि राजा को दंड देते समय धर्म, करुणा और न्याय का समन्वय करना चाहिए। इससे स्पष्ट होता है कि कठोर दंड भी धर्मसम्मत और विवेकपूर्ण होना चाहिए।

दंड की क्रमिकता और सुधारात्मक दृष्टिकोण

उपरोक्त चारों दंड-प्रकारों का विश्लेषण यह दर्शाता है कि प्राचीन भारतीय न्याय प्रणाली में 'क्रमिक दंड' की अवधारणा थी। अपराधी को सीधे कठोरतम दंड देने के बजाय पहले उसे चेतावनी, सामाजिक निंदा या आर्थिक दंड के माध्यम से सुधारने का प्रयास किया जाता था।

यह क्रमिकता निम्न सिद्धांतों पर आधारित थी-

- अपराध की गंभीरता
- अपराधी की मंशा (Intent)
- अपराधी की सामाजिक और आर्थिक स्थिति
- पुनरावृत्ति की संभावना

यह दृष्टिकोण आधुनिक सुधारात्मक न्याय के मूल सिद्धांतों से मेल खाता है। सुधारात्मक न्याय अपराधी, पीड़ित और समुदाय के मध्य संतुलन स्थापित करने का प्रयास करता है। प्राचीन भारतीय दंड-व्यवस्था में भी यही उद्देश्य निहित था। अपराधी को सुधारना, पीड़ित को संतोष देना और समाज में समरसता पुनर्स्थापित करना।

दंड और नैतिक पुनर्संतुलन

भारतीय न्यायशास्त्र में दंड को नैतिक पुनर्संतुलन का साधन माना गया। यह केवल विधिक दायित्व नहीं, बल्कि नैतिक उत्तरदायित्व भी था। 'प्रायश्चित' और 'क्षतिपूर्ति' जैसी व्यवस्थाएँ दंड को आंतरिक आत्मशुद्धि और सामाजिक पुनर्स्थापन से जोड़ती थीं। इस प्रकार दंड का अंतिम लक्ष्य 'धर्म' की स्थापना और 'मत्स्य न्याय' की रोकथाम था। दंड के वर्गीकरण से स्पष्ट है कि भारतीय विधि-चिंतन में मानवीयता और संतुलन को प्राथमिकता दी गई।

आधुनिक समय में जब जेल प्रणाली की सीमाएँ स्पष्ट हो रही हैं और अपराधियों के पुनर्वास पर बल दिया जा रहा है, तब प्राचीन भारतीय दंड-वर्गीकरण अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है। यह मॉडल हमें सिखाता

है कि दंड का उद्देश्य केवल भय उत्पन्न करना नहीं, बल्कि नैतिक सुधार और सामाजिक संतुलन स्थापित करना है।

वाक्-दंड से लेकर वध-दंड तक की यह क्रमिक व्यवस्था भारतीय न्यायशास्त्र की परिपक्वता और मानवीय दृष्टिकोण को दर्शाती है। इसमें दंड और सुधार का संतुलन निहित है, जो आधुनिक सुधारात्मक न्याय के लिए एक सांस्कृतिक और दार्शनिक आधार प्रदान करता है।

सुधारात्मक न्याय और 'प्रायश्चित' की अवधारणा

आधुनिक वैश्विक न्याय विमर्श में 'सुधारात्मक न्याय' (Restorative Justice) की अवधारणा तेजी से उभर रही है। इसका मूल सिद्धांत यह है कि अपराध केवल विधि या राज्य के विरुद्ध किया गया कृत्य नहीं है, बल्कि वह मानवीय संबंधों, सामाजिक विश्वास और सामुदायिक संतुलन को क्षति पहुँचाता है। अतः न्याय का उद्देश्य केवल अपराधी को दंडित करना नहीं, बल्कि उस क्षति की भरपाई करना, पीड़ित को संतोष प्रदान करना और अपराधी को पुनः समाज में समाहित करना होना चाहिए।

भारतीय न्यायशास्त्र में 'प्रायश्चित' की अवधारणा इसी प्रकार की पुनर्स्थापनात्मक दृष्टि को अभिव्यक्त करती है। यहाँ अपराध को केवल विधिक दोष नहीं, बल्कि नैतिक विचलन और सामाजिक असंतुलन के रूप में देखा गया है। 'प्रायश्चित' का शाब्दिक अर्थ है-किए गए पाप या अपराध के लिए पश्चात्ताप करना और उसके प्रायशोधन हेतु उचित आचरण अपनाना। इस प्रकार यह दंड का एक आंतरिक, नैतिक और सुधारात्मक रूप है।

1. **प्रायश्चित का दार्शनिक आधार:-** भारतीय परंपरा में धर्म, कर्म और उत्तरदायित्व की अवधारणाएँ परस्पर संबद्ध हैं। व्यक्ति अपने कर्मों के लिए स्वयं उत्तरदायी है। यदि वह अधर्म करता है, तो उसका नैतिक और सामाजिक प्रभाव पड़ता है। इस प्रभाव की शुद्धि के लिए प्रायश्चित की व्यवस्था की गई।

   मनुस्मृति में विभिन्न प्रकार के अपराधों के लिए प्रायश्चित के विधान दिए गए हैं। वहाँ दंड का उद्देश्य केवल दमन नहीं, बल्कि आत्मशुद्धि है। इसी प्रकार याज्ञवल्क्य स्मृति और अन्य स्मृतियों में भी प्रायश्चित की विस्तृत चर्चा मिलती है। इन ग्रंथों में यह स्पष्ट किया गया है कि मनुष्य त्रुटिपूर्ण हो सकता है, किंतु उसे सुधार और पुनर्स्थापन का अवसर मिलना चाहिए। यह दृष्टिकोण आधुनिक सुधारात्मक न्याय के उस सिद्धांत से मेल खाता है, जिसमें अपराधी को 'दोषी' के रूप में स्थायी रूप से कलंकित करने के बजाय उसे सुधार योग्य व्यक्ति माना जाता है।

2. **आत्म-शुद्धिकरण (Moral Purification):-** प्रायश्चित का पहला और सबसे महत्वपूर्ण आयाम है-आत्म-शुद्धिकरण। इसका उद्देश्य अपराधी के भीतर पश्चात्ताप और नैतिक जागृति उत्पन्न करना है। जब अपराधी अपने कृत्य की गंभीरता को समझता है और उसके परिणामों को स्वीकार करता है, तभी वास्तविक परिवर्तन संभव होता है।

   प्रायश्चित में उपवास, तप, दान, जप, प्रार्थना अथवा सामाजिक सेवा जैसे उपायों का उल्लेख मिलता है। इनका उद्देश्य केवल बाह्य कष्ट देना नहीं, बल्कि आंतरिक अनुशासन और आत्मबोध को विकसित करना है।

   आधुनिक सुधारात्मक न्याय भी इसी सिद्धांत पर आधारित है कि अपराधी को अपने कृत्य के परिणामों का सामना करना चाहिए। 'Victim-Offender Mediation' जैसे कार्यक्रमों में अपराधी और पीड़ित के बीच संवाद स्थापित किया जाता है, जिससे अपराधी को अपने कृत्य की मानवीय क्षति का बोध हो। भारतीय प्रायश्चित की अवधारणा इस आत्म-स्वीकार और आत्म-परिवर्तन की प्रक्रिया को पहले से ही मान्यता देती रही है।

3. **सामाजिक पुनर्गठन (Social Reintegration):-** प्रायश्चित का दूसरा महत्त्वपूर्ण आयाम है-सामाजिक पुनर्गठन। प्राचीन भारतीय समाज में यह व्यवस्था थी कि यदि अपराधी ने निर्धारित प्रायश्चित पूरा कर लिया, तो समाज उसे पुनः स्वीकार कर लेता था। इससे वह स्थायी अपराधी बनने से बच जाता था।

   - महाभारत में भी कई प्रसंग ऐसे मिलते हैं, जहाँ अपराध या पाप के पश्चात प्रायश्चित के माध्यम से पुनर्स्थापन की प्रक्रिया दिखाई देती है। वहाँ यह विचार स्पष्ट है कि मनुष्य को सुधार का अवसर दिया जाना चाहिए। यह सामाजिक पुनर्गठन आधुनिक सुधारात्मक न्याय का केंद्रीय तत्व है। आज की कारावास-आधारित प्रणाली में अपराधी अक्सर समाज से कट जाता है और 'कलंक' का शिकार बनता है। परिणामस्वरूप वह पुनः अपराध की ओर प्रवृत्त हो सकता है। इसके विपरीत, प्रायश्चित-आधारित मॉडल अपराधी को पुनः समाज का अंग बनने का अवसर देता है।

4. **क्षतिपूर्ति और बहाली:-** भारतीय न्यायशास्त्र में प्रायश्चित केवल आत्मिक शुद्धि तक सीमित नहीं था, उसमें 'क्षतिपूर्ति' का भी तत्व निहित था। यदि किसी अपराध से किसी व्यक्ति को हानि पहुँची है, तो उसकी भरपाई करना आवश्यक माना गया। अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने स्पष्ट किया है कि अपराध से हुई आर्थिक या शारीरिक हानि की पूर्ति करना न्याय का अभिन्न अंग है। यह सिद्धांत आधुनिक Restorative Justice के उस विचार से मेल खाता है, जिसमें पीड़ित की संतुष्टि और

हानि-पूर्ति को प्राथमिकता दी जाती है। इस प्रकार प्रायश्चित अपराधी, पीड़ित और समाज तीनों के मध्य संतुलन स्थापित करने का प्रयास करता है।

5. **दंड और प्रायश्चित का अंतर्संबंध:-** भारतीय न्यायशास्त्र में दंड और प्रायश्चित परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि पूरक हैं। दंड बाह्य अनुशासन का साधन है, जबकि प्रायश्चित आंतरिक परिवर्तन का माध्यम। यदि दंड केवल बाह्य नियंत्रण तक सीमित रह जाए और आंतरिक सुधार न हो, तो अपराध की पुनरावृत्ति की संभावना बनी रहती है। इस दृष्टि से प्रायश्चित दंड की मानवीय और नैतिक पूरकता है। यह अपराधी को यह संदेश देता है कि समाज उसे सुधार का अवसर देने को तैयार है, बशर्ते वह अपनी गलती स्वीकार करे और उसे सुधारने का प्रयास करे।

6. **समकालीन संदर्भ में प्रासंगिकता:-** आज विश्वभर में कारागारों की बढ़ती संख्या, पुनरावृत्ति दर और कारावास की अमानवीय स्थितियों पर गंभीर प्रश्न उठ रहे हैं। सुधारात्मक न्याय इस समस्या का एक वैकल्पिक समाधान प्रस्तुत करता है। भारतीय 'प्रायश्चित' की अवधारणा इस संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक है। यह न केवल अपराधी के नैतिक रूपांतरण पर बल देती है, बल्कि समाज को भी उत्तरदायी बनाती है कि वह सुधार के पश्चात अपराधी को पुनः स्वीकार करे। यदि आधुनिक भारतीय न्याय व्यवस्था में प्रायश्चित की मूल भावना आत्म-शुद्धिकरण, क्षतिपूर्ति और सामाजिक पुनर्गठन को समुचित रूप से समाहित किया जाए, तो न्याय अधिक मानवीय, सहभागी और प्रभावी बन सकता है।

भारतीय न्यायशास्त्र में 'प्रायश्चित' की अवधारणा आधुनिक सुधारात्मक न्याय की पूर्वपीठिका के रूप में देखी जा सकती है। यहाँ अपराध को केवल विधिक दोष नहीं, बल्कि नैतिक और सामाजिक विचलन माना गया है।

प्रायश्चित के माध्यम से-

- अपराधी को आत्म-शुद्धिकरण का अवसर मिलता है,
- पीड़ित को क्षतिपूर्ति और संतोष प्राप्त होता है,
- समाज में पुनर्संतुलन और समरसता स्थापित होती है।

इस प्रकार भारतीय परंपरा का यह दृष्टिकोण न्याय को दमनात्मक न बनाकर पुनर्स्थापनात्मक बनाता है। यह मॉडल आधुनिक वैश्विक न्याय प्रणाली के लिए एक सांस्कृतिक और दार्शनिक आधार प्रदान करता है, जहाँ दंड का अंतिम लक्ष्य प्रतिशोध नहीं, बल्कि सुधार, बहाली और सामाजिक सामंजस्य है।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र: व्यावहारिक न्याय और क्षतिपूर्ति

भारतीय न्यायशास्त्र की परंपरा में अर्थशास्त्र एक अद्वितीय और अत्यंत व्यावहारिक ग्रंथ के रूप में प्रतिष्ठित है। इसके रचयिता कौटिल्य (चाणक्य) ने दंडनीति को केवल सैद्धांतिक या नैतिक विमर्श तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे राज्य-प्रशासन और सामाजिक व्यवस्था का व्यवहारिक आधार बनाया। कौटिल्य के अनुसार 'दंड' ही वह साधन है, जिसके माध्यम से राज्य 'नीति' की स्थापना करता है और 'धर्म' की रक्षा करता है। किंतु उनके यहाँ दंड का अर्थ मात्र कठोर दमन नहीं, बल्कि सुव्यवस्थित, संतुलित और लोककल्याणकारी न्याय है।

1. **दंड और नीति का संबंध:-** कौटिल्य ने दंड को 'राज्य का प्राण' कहा है। उनका मत था कि यदि दंड व्यवस्था शिथिल हो जाए, तो समाज में 'मत्स्य न्याय' की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी, जहाँ शक्तिशाली निर्बलों का शोषण करेंगे। इस प्रकार दंड केवल अपराध-दमन का उपकरण नहीं, बल्कि सामाजिक संतुलन और विधि-शासन (Rule of Law) का आधार है। किन्तु कौटिल्य की दंडनीति में अंधाधुंध कठोरता नहीं है। वे दंड के प्रयोग में विवेक, परिस्थिति और अनुपात (Proportionality) का विशेष ध्यान रखते हैं। अपराध की प्रकृति, अपराधी की मंशा, हानि की मात्रा और सामाजिक प्रभाव इन सभी को ध्यान में रखकर दंड निर्धारित किया जाना चाहिए। यह दृष्टिकोण आधुनिक आपराधिक न्यायशास्त्र के सिद्धांतों से मेल खाता है।

2. **क्षतिपूर्ति (Restitution) की अवधारणा:-** कौटिल्य के अर्थशास्त्र की सबसे उल्लेखनीय विशेषता है – 'क्षतिपूर्ति' पर उनका विशेष बल। उनके अनुसार अपराध से हुई हानि की पूर्ति करना न्याय का अनिवार्य अंग है। यदि किसी व्यक्ति की संपत्ति चोरी हो जाती थी, तो चोर से न केवल वस्तु की वापसी, बल्कि अतिरिक्त जुर्माना भी लिया जाता था।

   विशेष रूप से यह प्रावधान उल्लेखनीय है कि यदि राजा या राज्य प्रशासन चोर को पकड़ने में असफल रहता था, तो राज्य के कोष से पीड़ित को मुआवजा दिया जाता था। यह व्यवस्था इस विचार पर आधारित थी कि राज्य का दायित्व केवल अपराधी को दंडित करना नहीं, बल्कि प्रजा की सुरक्षा सुनिश्चित करना भी है। यदि राज्य इस कर्तव्य में विफल रहता है, तो उसे पीड़ित की क्षति की भरपाई करनी चाहिए।

   यह सिद्धांत आधुनिक 'Victim Compensation Schemes' का प्राचीनतम रूप माना जा सकता है। आज अनेक देशों में यदि अपराधी से क्षतिपूर्ति संभव न हो, तो राज्य पीड़ित को मुआवजा प्रदान करता है। कौटिल्य का यह दृष्टिकोण दर्शाता है कि भारतीय न्यायशास्त्र में पीड़ित-केंद्रित न्याय (Victim-Centric Justice) की भावना प्राचीन काल से विद्यमान थी।

3. **पीड़ित-केंद्रित न्याय और सामाजिक उत्तरदायित्व:-** अर्थशास्त्र में दंड व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि अपराध को केवल राज्य के विरुद्ध अपराध नहीं माना गया, बल्कि उसे पीड़ित व्यक्ति के विरुद्ध हानि के रूप में भी देखा गया। इसीलिए क्षतिपूर्ति को प्राथमिकता दी गई।

कौटिल्य ने स्पष्ट किया कि राज्य का कर्तव्य है—

- प्रजा की सुरक्षा सुनिश्चित करना,
- अपराध की रोकथाम करना,
- और अपराध से उत्पन्न हानि की पूर्ति करना।

यदि राज्य सुरक्षा देने में असफल हो, तो वह उत्तरदायी है। यह विचार आधुनिक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के अनुरूप है, जहाँ राज्य नागरिकों के जीवन, संपत्ति और गरिमा की रक्षा के लिए उत्तरदायी होता है।

4. **व्यावहारिक न्याय (Pragmatic Justice):-** कौटिल्य का न्याय-दर्शन अत्यंत व्यावहारिक है। वे आदर्शवाद से अधिक व्यवहारिकता पर बल देते हैं। उदाहरण के लिए, चोरी, धोखाधड़ी, हिंसा और राजद्रोह जैसे अपराधों के लिए अलग-अलग दंड निर्धारित किए गए। दंड की मात्रा अपराध की गंभीरता और परिस्थितियों के अनुसार बदलती थी।

अर्थशास्त्र में दंड को चार प्रमुख उद्देश्यों से जोड़ा गया-

1. निवारण (Deterrence)
2. प्रतिकार (Retribution)
3. सुधार (Reformation)
4. क्षतिपूर्ति (Restitution)

इन चारों उद्देश्यों का संतुलन ही न्याय को प्रभावी बनाता है। विशेष रूप से क्षतिपूर्ति का तत्व आधुनिक सुधारात्मक न्याय (Restorative Justice) से सीधा संबंध रखता है।

5. **दंड की अनुपातिकता और समानता:-** कौटिल्य ने दंड निर्धारण में अनुपातिकता का सिद्धांत अपनाया। यदि अपराधी आर्थिक रूप से सक्षम है, तो उससे अधिक धन-दंड लिया जा सकता है; यदि वह निर्धन है, तो दंड की प्रकृति भिन्न हो सकती है। इससे न्याय में संतुलन बना रहता है।

हालाँकि प्राचीन समाज में वर्ण-व्यवस्था का प्रभाव था, फिर भी अर्थशास्त्र में प्रशासनिक दृष्टि से निष्पक्षता और व्यवस्था बनाए रखने पर बल दिया गया। राज्य का उद्देश्य सामाजिक शांति और आर्थिक स्थिरता था।

6. **. आधुनिक संदर्भ में प्रासंगिकता:-** समकालीन आपराधिक न्याय प्रणाली में यह आलोचना की जाती है कि वह अपराधी-केंद्रित है और पीड़ित की उपेक्षा करती है। अनेक मामलों में पीड़ित को न्यायिक प्रक्रिया से पर्याप्त संतोष नहीं मिलता। इस पृष्ठभूमि में कौटिल्य की क्षतिपूर्ति-आधारित व्यवस्था अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होती है।

   आज भारत सहित कई देशों में पीड़ित मुआवजा योजनाएँ (Victim Compensation Schemes) लागू हैं, जिनके अंतर्गत राज्य गंभीर अपराधों के पीड़ितों को आर्थिक सहायता प्रदान करता है। कौटिल्य का सिद्धांत इस विचार की ऐतिहासिक जड़ों को स्पष्ट करता है कि राज्य नागरिकों की सुरक्षा का संरक्षक है और उसकी विफलता की स्थिति में वह उत्तरदायी है।

7. **सुधारात्मक न्याय से साम्य:-** आधुनिक सुधारात्मक न्याय (Restorative Justice) का मुख्य उद्देश्य अपराधी, पीड़ित और समुदाय के मध्य संतुलन स्थापित करना है। कौटिल्य की क्षतिपूर्ति-व्यवस्था इस संतुलन की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

- अपराधी को दंडित किया जाता है,
- पीड़ित को क्षति-पूर्ति दी जाती है,
- और समाज में व्यवस्था पुनः स्थापित होती है।

इस प्रकार अर्थशास्त्र का मॉडल दंड और बहाली (Restoration) दोनों का समन्वय प्रस्तुत करता है।
कौटिल्य का अर्थशास्त्र भारतीय न्यायशास्त्र में व्यावहारिक और संतुलित दंडनीति का उत्कृष्ट उदाहरण है। इसमें दंड को 'नीति' और 'राजधर्म' का आधार माना गया है, परंतु उसका उद्देश्य केवल भय उत्पन्न करना नहीं, बल्कि सामाजिक स्थिरता और लोककल्याण सुनिश्चित करना है।

क्षतिपूर्ति का सिद्धांत यह दर्शाता है कि प्राचीन भारतीय न्याय व्यवस्था में पीड़ित के अधिकारों को गंभीरता से लिया जाता था। यदि अपराधी उपलब्ध न हो, तो राज्य स्वयं उत्तरदायित्व स्वीकार करता था। यह व्यवस्था आधुनिक Victim Compensation Schemes का प्राचीन रूप है और सुधारात्मक न्याय के सिद्धांतों से गहराई से जुड़ी हुई है।

कौटिल्य की दंडनीति न केवल अपने समय के लिए प्रासंगिक थी, बल्कि आज के वैश्विक न्याय विमर्श में भी मार्गदर्शक सिद्ध हो सकती है। इसमें दंड, नीति, क्षतिपूर्ति और सामाजिक उत्तरदायित्व का जो संतुलित समन्वय है, वह न्याय को अधिक मानवीय, उत्तरदायी और प्रभावी बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण प्रेरणा प्रदान करता है।

तुलनात्मक विश्लेषण: प्राचीन भारतीय न्याय बनाम आधुनिक पाश्चात्य न्याय

भारतीय न्यायशास्त्र में 'दंड' की अवधारणा और आधुनिक पाश्चात्य (Traditional Western) न्याय प्रणाली के बीच एक महत्वपूर्ण वैचारिक एवं संरचनात्मक अंतर दिखाई देता है। जहाँ प्राचीन भारतीय न्याय का आधार 'धर्म', नैतिकता और सामाजिक संतुलन है, वहीं आधुनिक पारंपरिक पाश्चात्य न्याय प्रणाली मुख्यतः विधि-प्रवर्तन (Law Enforcement) और दंडात्मक व्यवस्था पर केंद्रित रही है। यह तुलनात्मक अध्ययन दोनों दृष्टिकोणों के उद्देश्यों, केंद्र-बिंदुओं, प्रक्रियाओं और दार्शनिक आधारों की विवेचना करता है।

1. **उद्देश्य: धर्म की स्थापना बनाम कानून का प्रवर्तन:-** प्राचीन भारतीय न्यायशास्त्र का मूल उद्देश्य 'धर्म' की स्थापना और सामाजिक संतुलन की पुनर्स्थापना था। 'धर्म' का अर्थ यहाँ केवल धार्मिक आचरण नहीं, बल्कि न्याय, नैतिकता, कर्तव्य और लोककल्याण का समन्वित सिद्धांत है। मनुस्मृति तथा महाभारत जैसे ग्रंथों में दंड को धर्म का रक्षक माना गया है। दंड का अंतिम लक्ष्य अपराधी के आत्म-सुधार और समाज में संतुलन की स्थापना था। इसके विपरीत, आधुनिक पारंपरिक पाश्चात्य न्याय प्रणाली का प्रमुख उद्देश्य कानून का प्रवर्तन (Enforcement of Law) और अपराधी को दंडित करना है। यहाँ अपराध को मुख्यतः राज्य के विरुद्ध अपराध माना जाता है। न्यायालय का ध्यान इस बात पर होता है कि विधि का उल्लंघन हुआ है या नहीं, और यदि हुआ है, तो उसके लिए निर्धारित सजा क्या होगी। इस प्रणाली में नैतिक या आध्यात्मिक सुधार की अपेक्षा विधिक उत्तरदायित्व को प्राथमिकता दी जाती है।

2. **केंद्र-बिंदु: अपराधी-पीड़ित संतुलन बनाम राज्य-अपराधी संबंध:-** भारतीय न्यायशास्त्र में अपराध को केवल राज्य के विरुद्ध कृत्य नहीं, बल्कि व्यक्ति और समाज के विरुद्ध नैतिक दोष के रूप में देखा गया। इसीलिए यहाँ पीड़ित की भूमिका भी महत्वपूर्ण रही। 'क्षतिपूर्ति' और 'प्रायश्चित' जैसी अवधारणाएँ इस बात का प्रमाण हैं कि न्याय का उद्देश्य पीड़ित की हानि की पूर्ति और अपराधी के सुधार दोनों को ध्यान में रखना था।

   अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने स्पष्ट किया कि यदि अपराधी पकड़ा न जाए, तो राज्य को स्वयं पीड़ित को मुआवजा देना चाहिए। यह दृष्टिकोण पीड़ित-केंद्रित न्याय की भावना को दर्शाता है। इसके विपरीत, आधुनिक पारंपरिक पाश्चात्य न्याय में अपराध को 'State vs. Accused' के रूप में देखा जाता है। मुकदमे का शीर्षक भी प्रायः राज्य के नाम से प्रारंभ होता है। पीड़ित की भूमिका सीमित होती है, और उसका स्थान अक्सर गवाह तक सीमित रह जाता है। न्याय का केंद्र-बिंदु अपराधी और राज्य के मध्य विधिक संबंध होता है, न कि अपराधी और पीड़ित के मध्य नैतिक या सामाजिक संबंध।

3. **प्रक्रिया: प्रायश्चित और सामाजिक मेल-मिलाप बनाम मुकदमेबाजी और कारावास:-** भारतीय परंपरा में न्याय की प्रक्रिया अधिक सामुदायिक और नैतिक थी। पंचायत, सभा और कुल-परिषद जैसी संस्थाएँ विवादों का समाधान करती थीं। 'प्रायश्चित' के माध्यम से अपराधी को आत्म-शुद्धि का अवसर दिया जाता था, और 'क्षतिपूर्ति' द्वारा पीड़ित को संतोष प्रदान किया जाता था।

   यह प्रक्रिया संवाद, मेल-मिलाप और सामाजिक पुनर्स्थापन पर आधारित थी। अपराधी को समाज से बहिष्कृत करने के बजाय उसे सुधार के पश्चात पुनः स्वीकार करने की परंपरा थी। इस प्रकार न्याय का स्वरूप सहभागी (Participatory) और पुनर्स्थापनात्मक (Restorative) था। इसके विपरीत, आधुनिक पारंपरिक पाश्चात्य न्याय प्रणाली मुख्यतः औपचारिक मुकदमेबाजी (Litigation) और कारावास (Imprisonment) पर आधारित है। न्यायालय में विधिक प्रक्रिया, साक्ष्य, गवाह और वकीलों की दलीलों के आधार पर निर्णय होता है। यदि अपराध सिद्ध हो जाए, तो प्रायः कारावास या जुर्माना दिया जाता है।

   इस प्रक्रिया में संवाद और मेल-मिलाप की संभावना सीमित होती है। अपराधी को समाज से अलग कर दिया जाता है, जिससे उसके पुनर्सामाजीकरण (Reintegration) में कठिनाई आती है।

4. **दार्शनिक आधार: नैतिकता बनाम विधिक औपचारिकता:-** भारतीय न्यायशास्त्र का आधार दार्शनिक और नैतिक है। यहाँ न्याय का संबंध 'धर्म' और 'कर्म' से जुड़ा है। व्यक्ति अपने कर्मों के लिए उत्तरदायी है और उसे आत्म-सुधार का अवसर मिलना चाहिए। दंड का उद्देश्य नैतिक पुनर्संतुलन है। इसके विपरीत, आधुनिक पाश्चात्य न्याय प्रणाली का आधार विधिक औपचारिकता (Legal Formalism) और संवैधानिक सिद्धांत हैं। यहाँ न्याय का मापदंड विधि की व्याख्या और उसका अनुपालन है। नैतिकता व्यक्तिगत क्षेत्र में मानी जाती है, जबकि न्यायालय विधिक नियमों के पालन तक सीमित रहते हैं।

5. **सुधारात्मक न्याय की ओर संक्रमण:-** हालाँकि पारंपरिक पाश्चात्य न्याय प्रणाली दंडात्मक रही है, परंतु 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से 'Restorative Justice' की अवधारणा विकसित हुई है। यह दृष्टिकोण अपराधी, पीड़ित और समुदाय के मध्य संवाद और मेल-मिलाप पर बल देता है।

   दिलचस्प तथ्य यह है कि यह आधुनिक सुधारात्मक न्याय, अनेक दृष्टियों से, प्राचीन भारतीय न्यायशास्त्र की मूल भावना से साम्य रखता है। भारतीय परंपरा में जो तत्व 'प्रायश्चित', 'क्षतिपूर्ति' और सामाजिक पुनर्स्वीकृति के रूप में विद्यमान थे, वही आज वैश्विक स्तर पर नवीन मॉडल के रूप में उभर रहे हैं।

प्राचीन भारतीय न्यायशास्त्र का मॉडल अधिक समन्वयी और नैतिक था, जिसमें दंड का उद्देश्य प्रतिशोध नहीं, बल्कि सामाजिक संतुलन और आत्म-सुधार था। आधुनिक पाश्चात्य न्याय प्रणाली ने विधिक संरचना और प्रक्रियात्मक निष्पक्षता को सुदृढ़ किया, परंतु वह लंबे समय तक पीड़ित और समुदाय की भूमिका को सीमित रखती रही।

आज जब वैश्विक स्तर पर सुधारात्मक न्याय की ओर झुकाव बढ़ रहा है, तब प्राचीन भारतीय न्यायशास्त्र के सिद्धांत विशेषकर प्रायश्चित, क्षतिपूर्ति और सामाजिक पुनर्स्थापन समकालीन न्याय व्यवस्था के लिए प्रेरणास्रोत सिद्ध हो सकते हैं। यह समन्वय भविष्य की न्याय प्रणाली को अधिक मानवीय, सहभागी और संतुलित बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम हो सकता है।

निष्कर्ष (Conclusion)

निष्कर्षतः यह स्पष्ट होता है कि भारतीय न्यायशास्त्र में 'दंड' की अवधारणा को केवल प्रतिशोधात्मक या दमनात्मक दृष्टि से समझना अधूरा और एकांगी है। प्राचीन भारतीय चिंतन में दंड सामाजिक चिकित्सा (Social Therapy) का एक सशक्त साधन था, जिसका उद्देश्य केवल अपराधी को कष्ट देना नहीं, बल्कि समाज में उत्पन्न नैतिक और संबंधात्मक असंतुलन को दूर करना था। दंड यहाँ धर्म की स्थापना, सामाजिक समरसता और लोक-कल्याण की पुनर्स्थापना का माध्यम था।

मनुस्मृति, अर्थशास्त्र तथा महाभारत जैसे ग्रंथों के विश्लेषण से यह प्रतिपादित होता है कि भारतीय न्यायशास्त्र में दंड की अवधारणा बहुआयामी थी। इसमें प्रतिकार (Retribution) और निवारण (Deterrence) के साथ-साथ सुधार (Reformation) और क्षतिपूर्ति (Restitution) के तत्व भी विद्यमान थे। विशेष रूप से 'प्रायश्चित' की व्यवस्था ने दंड को आंतरिक आत्म-शुद्धि और नैतिक पुनर्जागरण से जोड़ा।

'प्रायश्चित' का तात्पर्य केवल दंड भुगतना नहीं, बल्कि अपने अपराध का बोध कर आत्म-परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजरना था। यह आत्म-शुद्धिकरण की वह प्रक्रिया थी, जिसके माध्यम से अपराधी समाज में पुनः सम्मानपूर्वक स्थान प्राप्त कर सकता था। इसी प्रकार 'दया' और 'क्षमा' को भी न्याय के पूरक तत्व के रूप में स्वीकार किया गया। भारतीय दृष्टिकोण में कठोरता और करुणा का संतुलन ही वास्तविक न्याय था।

आधुनिक पश्चिमी न्याय प्रणाली लंबे समय तक दंडात्मक मॉडल पर आधारित रही, जहाँ अपराध को राज्य के विरुद्ध विधिक उल्लंघन माना गया और न्याय की प्रक्रिया मुकदमेबाजी एवं कारावास तक सीमित रही। परिणामस्वरूप, अनेक देशों में जेलों की संख्या बढ़ी, पुनरावृत्ति दर (Recidivism Rate) उच्च बनी रही और अपराधी समाज से कटकर स्थायी अपराधी बनते गए। इसी पृष्ठभूमि में 'सुधारात्मक

न्याय' (Restorative Justice) की अवधारणा विकसित हुई, जो अपराध को मानवीय संबंधों की क्षति के रूप में देखती है और संवाद, क्षतिपूर्ति तथा सामाजिक पुनर्स्थापन पर बल देती है।

यह उल्लेखनीय है कि जिन सिद्धांतों को आज पश्चिमी न्याय-विमर्श में नवीन और प्रगतिशील माना जा रहा है, उनके मूल तत्व भारतीय परंपरा में पहले से विद्यमान थे। 'प्रायश्चित' आत्म-सुधार का साधन था; 'क्षतिपूर्ति' पीड़ित की संतुष्टि का माध्यम; और 'लोक-कल्याण' न्याय का अंतिम लक्ष्य। इस प्रकार भारतीय न्यायशास्त्र में दंड सामाजिक चिकित्सा का उपकरण था एक ऐसी प्रक्रिया, जो अपराधी, पीड़ित और समाज तीनों के मध्य संतुलन स्थापित करती थी।

आज की जेल प्रणाली में सुधार की आवश्यकता व्यापक रूप से अनुभव की जा रही है। कारावास प्रायः अपराधी को समाज से अलग कर देता है, जिससे उसका पुनर्सामाजीकरण कठिन हो जाता है। यदि दंड का उद्देश्य केवल पृथक्करण और दमन रह जाए, तो वह सामाजिक चिकित्सा के बजाय सामाजिक विघटन का कारण बन सकता है। इसलिए आवश्यक है कि न्याय प्रणाली में सुधारात्मक और पुनर्स्थापनात्मक सिद्धांतों को सशक्त रूप से समाहित किया जाए।

भारतीय न्याय परंपरा से प्रेरणा लेकर निम्न बिंदुओं पर विशेष ध्यान दिया जा सकता है-

1. **आत्म-स्वीकृति और प्रायश्चित की प्रक्रिया**: अपराधी को अपने कृत्य की नैतिक जिम्मेदारी स्वीकार करने के अवसर प्रदान किए जाएँ।
2. **पीड़ित-केंद्रित न्याय**: क्षतिपूर्ति और परामर्श की व्यवस्था को सुदृढ़ किया जाए।
3. **सामाजिक पुनर्स्थापन**: कारावास के पश्चात अपराधी के पुनर्वास और पुनर्स्वीकृति की समुचित व्यवस्था हो।
4. **करुणा और न्याय का संतुलन**: कठोर दंड के स्थान पर विवेकपूर्ण और परिस्थिति-सापेक्ष दंड नीति अपनाई जाए।

भारतीय न्यायशास्त्र की 'दंड' अवधारणा केवल विधिक अनुशासन का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक और नैतिक पुनर्संतुलन की प्रक्रिया थी। यह परंपरा आधुनिक सुधारात्मक न्याय के लिए एक सशक्त दार्शनिक और सांस्कृतिक आधार प्रस्तुत करती है।

यदि आज की न्याय प्रणाली इन सिद्धांतों प्रायश्चित, दया, क्षतिपूर्ति और लोक-कल्याण को पुनर्जीवित करे, तो दंड व्यवस्था अधिक मानवीय, सहभागी और प्रभावी बन सकती है। इस प्रकार प्राचीन भारतीय न्याय-विचार न केवल ऐतिहासिक महत्व रखते हैं, बल्कि समकालीन वैश्विक न्याय-विमर्श में भी मार्गदर्शक सिद्ध हो सकते हैं।

संदर्भ सूची

1. कौटिल्य. (2012). *अर्थशास्त्र* (अनुवाद: आर. शमाशास्त्री). वाराणसी: चौखंबा संस्कृत सीरीज।
2. मनु. (2015). *मनुस्मृति* (संपा. एवं अनुवाद: गणेशदत्त पाठक). दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास।
3. याज्ञवल्क्य. (2013). *याज्ञवल्क्य स्मृति*. वाराणसी: चौखंबा संस्कृत प्रतिष्ठान।
4. नारद. (2011). *नारद स्मृति*. दिल्ली: भारतीय विद्या प्रकाशन।
5. पराशर. (2014). *पराशर स्मृति*. वाराणसी: संस्कृत पुस्तक भंडार।
6. गौतम. (2010). *गौतम धर्मसूत्र*. पुणे: भांडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट।
7. आपस्तंब. (2008). *आपस्तंब धर्मसूत्र*. वाराणसी: चौखंबा संस्कृत संस्थान।
8. वशिष्ठ. (2009). *वशिष्ठ धर्मसूत्र*. दिल्ली: विद्या निधि प्रकाशन।
9. डॉ. भीमराव रामजी अंबेडकर. (1936). *जाति का विनाश (Annihilation of Caste)*. स्वयं प्रकाशित।
10. महात्मा गांधी. (1927). *सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा*. अहमदाबाद: नवजीवन प्रकाशन।
11. जॉन रॉल्स. (1971). *A Theory of Justice*. कैम्ब्रिज, एमए: हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
12. Howard Zehr. (1990). *Changing Lenses: A New Focus for Crime and Justice*. स्कॉटडेल, पेनसिल्वेनिया: हेराल्ड प्रेस।
13. Nils Christie. (1977). Conflicts as Property. *The British Journal of Criminology, 17*(1), 1–15.
14. Andrew Ashworth. (2010). *Sentencing and Criminal Justice*. कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
15. भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय. (2018). *आपराधिक न्याय सुधार समिति की रिपोर्ट*. नई दिल्ली: भारत सरकार प्रकाशन।
16. Law Commission of India. (2003). *Report on Reform of Criminal Justice System*. नई दिल्ली: भारत सरकार।
17. United Nations. (2002). *Basic Principles on the Use of Restorative Justice Programmes in Criminal Matters*. न्यूयॉर्क: संयुक्त राष्ट्र प्रकाशन।

किशोरों में आध्यात्मिकता की आवश्यकताएं: एक समाजशास्त्रीय अवलोकन

डॉ. अखिलेश कुमार
अतिथि सहायक प्राध्यापक (समाजशास्त्र)
के. पी. कॉलेज, मुरलीगंज,
बी. एन. मंडल विश्विद्यालय, मधेपुरा.

सारांश

आध्यात्मिकता, मानवीय अनुभव का एक गहन व्यक्तिगत और पारलौकिक आयाम है, जिसमें अर्थ की खोज, स्वयं से, दूसरों से और ब्रह्मांड से जुड़ाव, साथ ही मूल्यों और विश्वासों का अन्वेषण शामिल है। किशोरावस्था के संदर्भ में, आध्यात्मिकता का महत्व धार्मिक संबद्धताओं से परे एक गहरा अर्थ रखता है। विकास के इस चरण में आध्यात्मिकता के महत्व को पहचानना सर्वांगीण विकास और कल्याण को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक है। किशोरावस्था में आध्यात्मिकता के महत्व को कम करके नहीं आंका जा सकता, क्योंकि यह उनकी आत्म-खोज और पहचान निर्माण की यात्रा में मार्गदर्शक प्रकाश का काम करती है। इस चरण की चुनौतियों के बीच, आध्यात्मिकता एक आधारभूत शक्ति प्रदान करती है जो उद्देश्य, दिशा और अपनेपन की भावना प्रदान करती है। यह अपनेपन की भावना आत्मनिरीक्षण को प्रोत्साहित करती है, जिससे किशोर अपने मूल मूल्यों, विश्वासों और नैतिक सिद्धांतों का पता लगा सकते हैं, और इस प्रकार एक मजबूत नैतिक दिशा-निर्देश विकसित करने में सहायता प्राप्त कर सकते हैं।

मुख्य शब्द: आध्यात्मिकता, किशोर, तनाव

परिचय

मानव अस्तित्व के जटिल ताने-बाने में, आध्यात्मिकता एक ऐसे धागे के रूप में उभरती है जो अर्थ, जुड़ाव और आत्म-खोज के विविध पहलुओं को आपस में जोड़ती है। धार्मिक संबद्धताओं से परे, आध्यात्मिकता स्वयं को समझने, दूसरों के साथ संबंध स्थापित करने और विशाल ब्रह्मांड में उद्देश्य की तलाश करने की एक गहन व्यक्तिगत खोज का प्रतीक है। किशोरावस्था के क्षेत्र में, मानव अनुभव का

यह पहलू एक गहरा महत्व ग्रहण करता है जो उम्र और सामाजिक संरचनाओं की सीमाओं से परे है। किशोरावस्था के गतिशील परिदृश्य के बीच, जो पहचान निर्माण और आत्म-खोज की उथल-पुथल भरी लहरों से चिह्नित है, आध्यात्मिकता एक ऐसा सूत्र है जो आध्यात्मिकता के विभिन्न पहलुओं को समाहित करता है।

आध्यात्मिकता एक स्थिर दिशा-निर्देशक का काम करती है, जो किशोरों को जीवन की चुनौतियों के जटिल जाल में मार्गदर्शन प्रदान करती है। यह मार्गदर्शन बाहरी मानकों से परे जाकर उन्हें अपने विश्वासों, मूल्यों और नैतिक आधारों की गहराई में उतरने के लिए प्रोत्साहित करता है। विशेष रूप से, आध्यात्मिकता आधुनिक जीवन की जटिलताओं का सामना करने के लिए लचीलेपन का स्रोत है। किशोरावस्था में शैक्षणिक दबाव, साथियों का प्रभाव और आत्म-खोज की निरंतर चुनौती देखने को मिलती है। ऐसे में, आध्यात्मिकता सशक्तिकरण का स्रोत बन जाती है, जो किशोरों को तनाव, सामाजिक अपेक्षाओं और शैक्षणिक मांगों के भंवर से निकलने के लिए आवश्यक क्षमता प्रदान करती है।

इसके अलावा, कृतज्ञता, सहानुभूति और जागरूकता जैसे गुणों का विकास, जो अक्सर आध्यात्मिक यात्रा के साथ जुड़े होते हैं, परिवर्तनकारी क्षमता रखते हैं। जो किशोर आध्यात्मिकता को अपनाते हैं, उनमें भावनात्मक बुद्धिमत्ता का विकास होता है, जिससे उनका मानसिक स्वास्थ्य मजबूत होता है। यह आंतरिक लचीलापन उन्हें किशोरावस्था के भावनात्मक उतार-चढ़ावों को स्थिरता के साथ संभालने में सक्षम बनाता है, जो उनकी आध्यात्मिक नींव से उत्पन्न होता है। ऐसी दुनिया में जहां तकनीक से प्रेरित विकर्षण और सामाजिक दबावों का शोर बढ़ता जा रहा है, किशोरों में आध्यात्मिकता का पोषण करना अनिवार्य हो जाता है। यह उन्हें डिजिटल रूप से खंडित वास्तविकता में परस्पर जुड़ाव का आश्रय प्रदान करता है, जिससे सहानुभूति और करुणा को बढ़ावा मिलता है। यह समग्र दृष्टिकोण उनके क्षितिज को व्यापक बनाता है, उनका ध्यान क्षणिक भौतिकवादी खोजों से हटाकर स्थायी समग्र विकास की ओर ले जाता है।

आध्यात्मिकता की परिभाषा :

रुडोक और कैमरून'आध्यात्मिकता' शब्द अस्पष्ट और जटिल प्रतीत हो सकता है, फिर भी यह एक संज्ञानात्मक और भावनात्मक प्रक्रिया को समाहित करता है जिसमें व्यक्ति जीवन में एक सार्थक आयाम पाते हैं जो दैनिक दिनचर्या से परे होता है और उन्हें किसी वृहद सत्ता से जुड़ाव का बोध कराता है। आध्यात्मिकता का यह आयाम मानव अस्तित्व का एक मूलभूत पहलू बनने की क्षमता रखता है।[1]

एस्टिन 'आध्यात्मिकता की एक समकालीन व्याख्या को अपनाया जो धार्मिक संबद्धताओं, दैवीयता में विश्वास या धार्मिक प्रतिबद्धताओं से परे थी। आध्यात्मिकता की यह धारणा विविध तत्वों के संश्लेषण को समाहित करती है, जिसमें मानव चेतना, व्यक्ति की आंतरिक जागरूकता जो प्रत्यक्ष अवलोकन या

सरल मूल्यांकन से परे है, जैसी अवधारणाएं शामिल हैं। भावनाओं, व्यक्तिगत अनुभवों, मूल्य प्रणालियों और सामाजिक बुद्धिमत्ता का क्षेत्र; तार्किक तर्क, आध्यात्मिक मामलों पर व्यक्ति का विचार-विमर्श; और विशिष्ट प्रवृत्तियाँ, जिनमें ऐसे अनुभव शामिल हैं जिनका आसानी से वर्णन, स्पष्टीकरण या प्रवचन नहीं किया जा सकता है, जैसे कि अकथनीय सहज प्रवृत्तियाँ, प्रेरणाएँ और अन्य रहस्यमय घटनाएँ।[2]

सेलिगमैन 'आध्यात्मिकता को स्थायी, सर्वव्यापी विश्वासों और अनुष्ठानों के रूप में परिभाषित किया है, जो भौतिक जगत से परे जीवन के एक आयाम में विश्वास पर आधारित हैं। ये विश्वास और अनुष्ठान व्यक्ति के दूसरों के साथ व्यवहार में स्पष्ट होते हैं, उपलब्धियों और चुनौतियों के प्रति उनकी व्याख्याओं को प्रभावित करते हैं, अप्रत्याशित जीवन घटनाओं के इर्द-गिर्द उनके द्वारा गढ़ी गई कहानियों को आकार देते हैं, और यहां तक कि उनके रिश्तों को निभाने के तरीके का मार्गदर्शन भी करते हैं।[3]

आध्यात्मिकता के लाभ

अंडर्सेनर, लुईस और फिंक 'ने व्यक्तित्व और मानसिक स्वास्थ्य पर आध्यात्मिक कल्याण के प्रभाव का पता लगाने के लिए गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों विधियों को शामिल करते हुए एक खोजी यात्रा शुरू की। एक व्यापक साहित्य समीक्षा ने एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष की पुष्टि की: आध्यात्मिक कल्याण का चिंता और अवसाद के साथ विपरीत सहसंबंध पाया गया, जो इन मनोवैज्ञानिक विकारों के खिलाफ एक सुरक्षात्मक कारक प्रदान करता है। इसके अलावा, शोध ने आध्यात्मिक कल्याण और आशा, साथ ही क्षमा के बीच एक मजबूत और सकारात्मक संबंध का खुलासा किया। विशेष रूप से, उच्च स्तर की सामान्य धार्मिकता, आध्यात्मिक कल्याण और जुड़ाव वाले व्यक्तियों में आत्महत्या के विचारों की प्रवृत्ति न्यूनतम पाई गई। मात्रात्मक रूप से, अध्ययन ने दिखाया कि उच्च धार्मिकता वाले व्यक्तियों में आक्रामकता का स्तर कम और नए अनुभवों के प्रति अधिक खुलापन पाया गया। इसके अतिरिक्त, आध्यात्मिक कल्याण और विभिन्न कारकों, जिनमें चिंता, सकारात्मक मुकाबला तंत्र और समग्र मानसिक स्वास्थ्य और कल्याण शामिल हैं, के बीच एक महत्वपूर्ण नकारात्मक संबंध सामने आया। संक्षेप में, अध्ययन ने न केवल व्यक्तिगत व्यक्तित्व पर बल्कि उनके मानसिक और भावनात्मक संतुलन पर भी आध्यात्मिक कल्याण के गहन प्रभाव को रेखांकित किया।[4]

हुसैन 'का सुझाव है कि आध्यात्मिकता जीवन के अंतिम उद्देश्य की ओर एक आवश्यक मार्ग है। आध्यात्मिकता का व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक आयामों पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। योग, व्यायाम और स्वस्थ आहार जैसी शारीरिक गतिविधियों में संलग्न होना आध्यात्मिकता के पोषण में योगदान देता है। इससे मानसिक और भावनात्मक कल्याण प्रभावित होता है, जिसके परिणामस्वरूप आत्म-नियंत्रण में सुधार, जागरूकता में वृद्धि, अंतर्ज्ञान, खुशी और अधिक दयालु स्वभाव विकसित होता है।[5]

बेन्सन, रोहलकेपार्टेन और रूड 'ने दावा किया कि आध्यात्मिकता का महत्व, विशेष रूप से किशोरों और बच्चों में, लगातार अनदेखा किया गया है। लेखकों ने सुझाव दिया कि निरंतर और कठोर प्रयास करने से आध्यात्मिकता के महत्व को कम करने में मदद मिलेगी। सामाजिक एवं विकासात्मक विज्ञान के क्षेत्र में बचपन और किशोरावस्था के दौरान आध्यात्मिक विकास पर ध्यान देने से मानव विकास की मूलभूत प्रक्रियाओं और पहलुओं की समझ को काफी हद तक बढ़ाने और मजबूत करने की क्षमता है। उन्होंने आध्यात्मिक विकास को आत्म-उत्कृष्टता की अंतर्निहित मानवीय क्षमता के पोषण की प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया, जहाँ स्वयं अपने से बड़ी किसी चीज़ का हिस्सा बन जाता है, जिसमें पवित्रता भी शामिल है। इसे परस्पर जुड़ाव, उद्देश्य, अर्थ और योगदान की खोज को गति देने वाले एक विकासात्मक "इंजन" के रूप में संदर्भित किया गया। यह पाया गया कि यह अवधारणा धार्मिक परंपराओं और प्रथाओं के साथ-साथ बाहरी कारकों से भी प्रभावित है।[6]

योंकर, श्नाबेलराउच और डीहान 'ने एक मेटा-विश्लेषण किया जिसका उद्देश्य यह समझना था कि किशोरों में मादक द्रव्यों के सेवन और हिंसा जैसे जोखिम भरे व्यवहारों के विरुद्ध आध्यात्मिकता/धार्मिकता किस प्रकार सुरक्षात्मक भूमिका निभाती है। अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला कि आध्यात्मिकता जोखिम भरे व्यवहारों के प्रभाव को कम करके सुरक्षात्मक भूमिका निभाती है, जिससे इस आयु वर्ग के लोगों के बेहतर मनोदशा और समग्र कल्याण में योगदान होता है।[7]

मेबे और जोसेफसन 'का सुझाव है कि आध्यात्मिकता बच्चों के जीवन की घटनाओं की व्याख्या और मूल्यांकन करने, विकासात्मक कार्यों को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और समाजीकरण, पालन-पोषण, पारिवारिक गतिशीलता और रिश्तों की प्रक्रियाओं से जुड़ी हुई है। पीटरसन और सेलिगमैन (2004) ने 'सिग्नेचर स्किल्स चेकलिस्ट' में आध्यात्मिक कल्याण के माप को शामिल किया और इस माप और मनोवैज्ञानिक कल्याण के विभिन्न संकेतकों, जैसे आत्म-सम्मान, पारिवारिक एकता और माता-पिता-बच्चे के बीच संबंधों की गुणवत्ता के बीच सकारात्मक संबंध पाया। उच्च स्तर के आध्यात्मिक कल्याण वाले व्यक्तियों में आत्म-सम्मान, पारिवारिक एकजुटता और विशेष रूप से माता-पिता-बच्चे के बीच मजबूत संबंध भी अधिक पाए गए। विशेष रूप से, उच्च स्तर के आध्यात्मिक कल्याण का संबंध बेहतर मनोवैज्ञानिक कल्याण से पाया गया।[8]

आध्यात्मिकता और किशोरावस्था

स्वेडक्विस्ट, जौबर्ट, ग्रीन और मैनियन 'ने यह अवधारणा प्रस्तुत की कि आध्यात्मिकता पर किशोरों के दृष्टिकोण में उत्पन्न होने वाले संघर्ष पहचान निर्माण और आध्यात्मिक विकास प्रक्रियाओं के दौरान महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, और इनके समाधान की आवश्यकता होती है। इन संघर्षों में से एक

स्वायत्तता बनाम अधिकार का संघर्ष है, जहाँ किशोर अपनी स्वतंत्रता का दावा करने और अधिकार पर प्रश्न उठाने का प्रयास करते हैं, जो एक शक्तिशाली उच्च सत्ता की अवधारणा से टकरा सकता है। इसी प्रकार, संरचित धार्मिक परिवेशों में व्यक्ति बनाम संस्था का संघर्ष उत्पन्न होता है जो व्यक्तिगत समझ को सीमित कर सकता है। स्वायत्तता बनाम संरक्षण की चुनौती तब उभरती है जब किशोर एक परोपकारी शक्ति में विश्वास के माध्यम से सांत्वना की तलाश करते हैं।[9]

चुनौतीपूर्ण समय। चेओन 'ने आध्यात्मिकता को अर्थ और जुड़ाव की खोज के रूप में परिभाषित किया, चाहे वह स्वयं से हो, पर्यावरण से हो या किसी उच्च शक्ति से, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। चाहे धार्मिक संदर्भ हो या धर्मनिरपेक्ष। किशोरों में, आध्यात्मिकता को एक विकासात्मक प्रयास के रूप में देखा जाता था जो उनके जीवन में जुड़ाव और उद्देश्य की खोज का मार्गदर्शन करता था।[10]

लेयार्ड 'ने यह तर्क दिया कि किशोरावस्था या बाल विकास के किसी भी चरण में किसी न किसी रूप में आध्यात्मिक जुड़ाव होना आवश्यक है। आध्यात्मिकता की अवधारणा को एक उच्चतर सत्ता से जुड़ाव की भावना के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसमें धार्मिक विश्वासों से लेकर कला, विज्ञान, प्रकृति और गहन सत्यों जैसे विविध क्षेत्रों में सांत्वना खोजना शामिल है।[11]

गुड और विलॉबी 'ने यह दृष्टिकोण व्यक्त किया कि किशोर, बच्चों या वयस्कों की तुलना में आध्यात्मिकता की खोज के प्रति अधिक झुकाव प्रदर्शित कर सकते हैं। वे आध्यात्मिक अनुभवों, रूपांतरणों और प्रतिबद्धताओं में संलग्न हो सकते हैं जो उनके जीवन भर कायम रहती हैं।[12]

गिसेनबर्ग 'ने सुझाव दिया कि किशोरावस्था के दौरान आध्यात्मिकता का उदय बचपन में स्थापित संबंधों से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हो सकता है। इस अवधि की आध्यात्मिक प्रवृत्ति एक आंतरिक प्रतिस्थापन से उत्पन्न हो सकती है, जहाँ एक समझदार, पालन-पोषण करने वाली और स्नेही दिव्य सत्ता अनुपस्थित या अपर्याप्त माता-पिता की भूमिका का स्थान ले लेती है। इस प्रकार, किसी विशिष्ट धार्मिक विश्वास के पीछे की प्रेरणा अन्य कारकों के बजाय असंतोषजनक माता-पिता-बच्चे के रिश्ते से उत्पन्न हो सकती है। आध्यात्मिकता का यह रूप आस्था के विकास को बढ़ावा देने की क्षमता रखता है, जो जीवन के साथ एक भरोसेमंद संबंध को दर्शाता है; आश्चर्य, जो जीवन के प्रत्यक्ष भौतिक पहलुओं से परे उसके गहरे अर्थ को खोजने की प्रवृत्ति को प्रतिबिंबित करता है; संबंधपरक चेतना, जो एक सामंजस्यपूर्ण एकता के दर्शन के साथ किसी गतिविधि में पूर्ण तल्लीनता के गहन अनुभव को दर्शाती है; और करुणा, इन आध्यात्मिक प्रक्रियाओं के परिणाम स्वरूप।[13]

रिच और सिनामन 'ने इज़राइली अरब और यहूदी किशोरों के बीच आध्यात्मिकता की धारणाओं की जांच करने के लिए एक अध्ययन किया, जिसमें छत्तीस हाई स्कूल के छात्रों और कॉलेज के प्रथम वर्ष के छात्रों का एक समूह शामिल था। निष्कर्षों से पता चला कि आध्यात्मिकता के मूलभूत पहलू के रूप

में पारलौकिक अनुभूति पर व्यापक सहमति है। अध्ययन ने किशोरों के बीच आध्यात्मिकता के दो अलग-अलग रूपों के सह-अस्तित्व को उजागर किया: धार्मिक और मानवतावादी दृष्टिकोण। प्रतिभागियों ने आध्यात्मिकता की धार्मिक और गैर-धार्मिक या मानवतावादी-धर्मनिरपेक्ष व्याख्याओं दोनों के महत्व को स्वीकार किया। दिलचस्प बात यह है कि शोध से पता चला कि कई पारंपरिक रूप से धार्मिक किशोर आध्यात्मिकता को केवल धार्मिक विश्वासों या अनुष्ठानों के बराबर नहीं मानते थे; वे मानवतावादी आदर्शों के समान एक अतिरिक्त आयाम की तलाश करते थे, जैसे कि आंतरिक आत्म-जुड़ाव और भावनात्मक पारलौकिकता। दूसरी ओर, धर्मनिरपेक्ष प्रतिभागियों के अनुभव मुख्य रूप से आध्यात्मिकता के मानवतावादी पहलुओं के अनुरूप थे, फिर भी उन्होंने दूसरों के लिए धार्मिक आध्यात्मिकता की वैधता को स्वीकार किया। इसलिए, यह स्पष्ट हो जाता है कि अधिकांश किशोर आध्यात्मिक संतुष्टि की ओर ले जाने वाले विविध मार्गों के सह-अस्तित्व को पहचानते और समर्थन करते हैं। विशेष रूप से, अधिकांश प्रतिभागियों ने पारलौकिकता को मूल तत्व के रूप में बल दिया। आध्यात्मिकता, एक ऐसी अवधारणा थी जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए अत्यंत व्यक्तिगत और गहरे अर्थपूर्ण थी।[14]

बायर्न्स 'द्वारा किए गए एक अध्ययन में बच्चों और किशोरों की मेटा-कॉग्निटिव क्षमताओं से संबंधित मौजूदा साहित्य का अध्ययन किया गया। अध्ययन से पता चला कि बच्चे अक्सर ज्ञान को पूर्ण और वस्तुनिष्ठ मानते हैं। इसके विपरीत, किशोरावस्था के दौरान एक उल्लेखनीय परिवर्तन होता है। किशोर विभिन्न दृष्टिकोणों पर विचार करने और तार्किक तर्क और सहायक प्रमाणों का उपयोग करते हुए इन दृष्टिकोणों की विश्वसनीयता का आलोचनात्मक मूल्यांकन करने की क्षमता विकसित करते हैं। इस संज्ञानात्मक विकास के साथ-साथ अमूर्त चिंतन की क्षमता भी बढ़ती है, जिससे किशोर आध्यात्मिक अवधारणाओं की विभिन्न व्याख्याओं पर विचार करने में सक्षम होते हैं। जैसे-जैसे उनकी अमूर्त चिंतन क्षमता बढ़ती है, किशोर जीवन के उद्देश्य और महत्व से संबंधित जटिल और अमूर्त प्रश्नों से जूझने की यात्रा पर निकल पड़ते हैं।[15]

ये अध्ययन सामूहिक रूप से किशोरों में आध्यात्मिकता के सूक्ष्म स्वरूप को उजागर करते हैं, जिसमें अन्वेषण, संघर्ष और प्रामाणिकता की खोज शामिल है। इन संघर्षों को समझना और उनका समाधान करना किशोरों की आध्यात्मिक यात्रा के महत्वपूर्ण पहलू के रूप में उभरता है, जो उनकी पहचान और जीवन के प्रति दृष्टिकोण को आकार देता है।

निष्कर्ष

इस शोध पत्र में किए गए अध्ययनों से प्राप्त समग्र अंतर्दृष्टि किशोरों के जीवन में आध्यात्मिकता के गहन महत्व को रेखांकित करती है। किशोरावस्था, अर्थ, पहचान और दिशा की खोज का एक परिवर्तनकारी चरण है, जो अक्सर व्यक्तियों को अनेक संघर्षों और अनिश्चितताओं से रूबरू कराता है क्योंकि वे स्वायत्तता स्थापित करने, मूल्यों को परिभाषित करने और तेजी से विकसित हो रही दुनिया की जटिलताओं को समझने का प्रयास करते हैं। इस संदर्भ में, आध्यात्मिकता एक शक्तिशाली ढाँचे के रूप में उभरती है जिसका उपयोग किशोर जीवन के व्यापक ताने-बाने में अपनी भूमिकाओं का पता लगाने के लिए कर सकते हैं। यह ढाँचा आत्मनिरीक्षण, आत्म-जागरूकता और गहरे संबंधों की खोज का माध्यम बनता है। आध्यात्मिकता से जुड़कर, किशोर चिंतन की क्षमता को खोलते हैं, जिससे वे तात्कालिक भौतिक आकांक्षाओं से परे एक उद्देश्य की भावना विकसित करते हैं। आध्यात्मिकता को अपनाने से युवा व्यक्तियों को प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करने, मनोदशा में उतार-चढ़ाव को कम करने और अपने समग्र कल्याण को बढ़ाने के लिए साधन प्राप्त होते हैं। इसके अलावा, आध्यात्मिकता एक बंधनकारी शक्ति के रूप में कार्य करती है, जो स्वयं की सीमाओं से परे संबंध स्थापित करती है। यह आध्यात्मिक अनुभूति दूसरों के साथ संबंधों, पर्यावरण और यहां तक कि स्वयं के अंतर्मन तक भी फैली हुई है। अनिश्चितता के समय में, आध्यात्मिकता सांत्वना और मार्गदर्शन का स्रोत प्रदान करती है। चाहे धार्मिक या धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण से व्यक्त की जाए, आध्यात्मिकता किशोरों को तेजी से बदलती और जटिल दुनिया की पेचीदगियों के बीच अर्थ और संतुलन खोजने की शक्ति देती है।

विशेषकर भारत के संदर्भ में, जहाँ सांस्कृतिक और आध्यात्मिक परंपराएँ गहरी जड़ें जमा चुकी हैं, किशोरावस्था के विकास में आध्यात्मिकता की भूमिका और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है। ऐसे समाज में जहाँ बाहरी उपलब्धियों और भौतिक सुख-सुविधाओं पर अधिक बल दिया जाता है, आध्यात्मिकता का पोषण एक संतुलन प्रदान करता है। यह सहानुभूति, करुणा और व्यापक विश्वदृष्टि को बढ़ावा देता है, जिससे युवा सूचित निर्णय लेने, तनाव का प्रबंधन करने और भावनात्मक बुद्धिमत्ता विकसित करने के लिए तैयार होते हैं। अंततः, किशोरावस्था में आध्यात्मिकता का महत्व केवल व्यक्तिगत खोज से कहीं अधिक है; यह समग्र विकास की नींव रखता है। अपने आध्यात्मिक आयामों पर ध्यान देकर, किशोर अपने विकासात्मक सफर में निहित चुनौतियों का सामना करने के लिए बेहतर रूप से तैयार होते हैं। आध्यात्मिकता में यह निवेश न केवल उन्हें किशोरावस्था के गतिशील चरण से गुजरने में सक्षम बनाता है, बल्कि एक सार्थक और समृद्ध वयस्क जीवन का मार्ग भी प्रशस्त करता है। आध्यात्मिकता का पोषण करके, हम किशोरों को आत्म-खोज, लचीलेपन और अपनी पहचान, अपने आस-पास के लोगों और जिस जटिल दुनिया में वे रहते हैं, उससे गहरे जुड़ाव की एक परिवर्तनकारी यात्रा शुरू करने के लिए सशक्त बनाते हैं।

संदर्भ:

1. रूडॉक, बी., और कैमरून, आर. जे. (2010). बच्चों और युवा लोगों में आध्यात्मिकता शैक्षिक और बाल मनोवैज्ञानिकों के लिए एक उपयुक्त विषय है?. एजुकेशनल साइकोलॉजी इन प्रैक्टिस, पृष्ठ- 25-34.
2. एस्टिन, ए. डब्ल्यू. (2004). उदार शिक्षा में आध्यात्मिकता को केंद्रीय स्थान क्यों मिलना चाहिए। उदार शिक्षा, पृष्ठ- 34-41.
3. सेलिगमैन, एम.ई.पी. 2002. प्रामाणिक खुशी: गहरी संतुष्टि के लिए अपनी क्षमता को साकार करने के लिए नए सकारात्मक मनोविज्ञान का उपयोग करना, लंदन: निकोलस ब्रेली।पृष्ठ- 20-26
4. अंडर्सेनर, एच. एफ., लुईस, ए. जे., और फिंक, ए. (2014). धार्मिक/आध्यात्मिक कल्याण, व्यक्तित्व और मानसिक स्वास्थ्य: परिणामों और वैचारिक मुद्दों की समीक्षा। जर्नल ऑफ रिलीजन एंड हेल्थ, पृष्ठ- 382-392.
5. हुसैन, ए. (2013). आध्यात्मिकता की त्रिमूर्ति अवस्था: शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक। आध्यात्मिकता और सकारात्मक मनोविज्ञान में। (पृष्ठ 78-88)। रामकृष्ण मिशन संस्कृति संस्थान।
6. बेन्सन, पी. एल., रोहलकेपार्टेन, ई. सी., और रूड, एस. पी. (2010). बचपन और किशोरावस्था में आध्यात्मिक विकास: जांच के क्षेत्र की ओर। एप्लाइड डेवलपमेंटल साइंस,पृष्ठ- 205-213.
7. योंकर, जे. ई., श्राबेलराउच, सी. ए., और डीहान, एल. जी. (2012). किशोरों और युवा वयस्कों में मनोवैज्ञानिक परिणामों पर आध्यात्मिकता और धार्मिकता के बीच संबंध: एक मेटा-विश्लेषणात्मक समीक्षा। जर्नल ऑफ एडोलसेंस, पृष्ठ- 299-314.
8. मेबे, पी. ए., और जोसेफसन, ए. एम. (2004). बाल और किशोर मनोविकृति: आध्यात्मिक और धार्मिक परिप्रेक्ष्य। उत्तरी अमेरिका के बाल और किशोर मनोरोग क्लिनिक,पृष्ठ- 111-125.
9. स्वेडक्विस्ट, वी., जौबर्ट, एन., ग्रीन, जे., और मैनियन, आई. (2012). मैं कौन हूँ, और मैं यहाँ क्यों हूँ? युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ावा देने में आध्यात्मिकता की भूमिका पर उनके दृष्टिकोण। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मेंटल हेल्थ प्रमोशन, पृष्ठ- 36-44.

10. चेओन, जे. डब्ल्यू. (2010). युवा आध्यात्मिकता की एक पारलौकिक समझ: युवा कार्य के विस्तारित दृष्टिकोण के लिए निहितार्थ। करेंट्स,पृष्ठ-29-34.
11. लेयार्ड, आर. (2007). खुशी और सार्वजनिक नीति: पेशे के लिए एक चुनौती। अर्थशास्त्र और मनोविज्ञान: एक आशाजनक नया क्रॉस-अनुशासनात्मक क्षेत्र, पृष्ठ- 155-167.
12. गुड, एम., और विलोबी, टी. (2008). आध्यात्मिक विकास के लिए किशोरावस्था एक संवेदनशील अवधि के रूप में। बाल विकास परिप्रेक्ष्य, 2(1), पृष्ठ- 32-37.
13. गिसेनबर्ग, ए. (2007). प्रीस्कूल बच्चों की आध्यात्मिकता की घटना। डॉक्टरेट शोध प्रबंध। क्वींसलैंड प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय। ,पृष्ठ-11-14.
14. रिच, वाई., और सिनामन, आर. जी. (2007). इजरायली अरब और यहूदी किशोरों के बीच आध्यात्मिकता की अवधारणाएँ। जर्नल ऑफ ह्यूमनिस्टिक साइकोलॉजी,पृष्ठ- 7-29.
15. बायर्न्स, जे. पी. (2003). किशोर जोखिम लेने की प्रकृति और रोकथाम पर बदलते विचार। किशोर जोखिम को कम करना: एक एकीकृत दृष्टिकोण की ओर, पृष्ठ- 11-17.

ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

समकालीन भारतीय लोकतंत्र में प्रतिनिधित्व का संकट: उत्तर भारत में जाति, वर्ग और चुनावी राजनीति का एक अध्ययन

डॉ. दीपक जॉनसन
सहायक प्राध्यापक
राजनीति विज्ञान विभाग
शासकीय आदर्श महाविद्यालय, दमोह (मध्य प्रदेश).

सारांश

यह शोध पत्र समकालीन भारतीय लोकतंत्र में प्रतिनिधित्व के संकट की जांच करता है, जो उत्तर भारत में मतदाताओं और निर्वाचित प्रतिनिधियों के बीच की दूरी पर केंद्रित है। यह अध्ययन जांच करता है कि कैसे जाति और वर्ग की गतिशीलता राजनीतिक भागीदारी, चुनावी व्यवहार और नीतिगत परिणामों को आकार देती है। यह शोध तीन राज्यों—उत्तर प्रदेश, बिहार और राजस्थान—में 2014, 2019 और 2024 के आम चुनावों के चुनावी आंकड़ों के मात्रात्मक विश्लेषण को मतदाताओं और राजनीतिक प्रतिनिधियों के गुणात्मक साक्षात्कारों के साथ जोड़ता है। प्रारंभिक निष्कर्ष बताते हैं कि उच्च मतदान प्रतिशत के बावजूद, निचली जातियों और आर्थिक रूप से वंचित समूहों के बीच बढ़ता अलगाव है, जो मानते हैं कि विधायी निकायों में उनके हितों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं होता है। यह पेपर तर्क देता है कि धन-बल का प्रभुत्व, राजनीति का अपराधीकरण और वंशवादी राजनीति ने इस संकट को बढ़ा दिया है, जिससे लोकतांत्रिक संस्थाओं में विश्वास घट रहा है। यह अध्ययन उपनिवेशवादोत्तर समाजों में लोकतंत्र के गहनताकरण पर व्यापक प्रवचन में योगदान देता है।

कीवर्ड: लोकतंत्र, प्रतिनिधित्व, जाति राजनीति, चुनावी व्यवहार, राजनीतिक भागीदारी, भारत

परिचय / पृष्ठभूमि

भारतीय लोकतंत्र, जो दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र है, ने अपनी सात दशक से अधिक की यात्रा पूरी कर ली है। लगभग 90 करोड़ मतदाताओं के साथ, 2024 के आम चुनाव मानव इतिहास में सबसे बड़े लोकतांत्रिक अभ्यास थे। हालाँकि, इस प्रभावशाली आंकड़े के नीचे एक परेशान करने वाली वास्तविकता छिपी है: लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व की गुणवत्ता पर increasingly सवाल उठाए जा रहे हैं।

2014 से 2024 की अवधि भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण परिवर्तनों का साक्षी रही है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का पतन, भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) का एक प्रभावशाली ताकत के रूप में उदय, क्षेत्रीय दलों का विखंडन और सत्ता का बढ़ता केंद्रीकरण—सभी ने एक नए राजनीतिक परिदृश्य में योगदान दिया है। इस परिदृश्य में, प्रतिनिधित्व के प्रश्न—कौन निर्वाचित होता है, वे किसका प्रतिनिधित्व करते हैं, और वे अपने मतदाताओं के प्रति कितने उत्तरदायी हैं—सर्वोपरि हो गए हैं।

समस्या का कथन

चुनावी लोकतंत्र के औपचारिक तंत्र के बावजूद, नागरिकों—विशेषकर हाशिए के समुदायों के बीच—में यह बढ़ती धारणा है कि राजनीतिक व्यवस्था उनके हितों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं करती है। यह संकट कई तरीकों से प्रकट होता है:

- **आर्थिक असमानता:** अमीर और गरीब के बीच की खाई चौड़ी हुई है, जिसमें शीर्ष 1% जनसंख्या राष्ट्रीय संपत्ति के 40% से अधिक की मालिक है, जबकि निचले 50% के पास 3% से भी कम है।
- **जाति-आधारित भेदभाव:** संवैधानिक गारंटी और आरक्षण नीतियों के बावजूद, दलित और आदिवासी सामाजिक और आर्थिक बहिष्कार का सामना करना जारी रखते हैं।
- **राजनीति का अपराधीकरण:** आपराधिक मामलों वाले निर्वाचित प्रतिनिधियों की संख्या में वृद्धि हुई है, 2019 के लोकसभा में 40% से अधिक सांसदों ने अपने खिलाफ आपराधिक मामलों की घोषणा की थी।
- **वंशवादी राजनीति:** राजनीतिक शक्ति कुछ परिवारों में केंद्रित बनी हुई है, जो हाशिए के समुदायों के नए उम्मीदवारों के लिए अवसरों को सीमित करती है।
- **धन-बल:** चुनाव लड़ने की लागत आसमान छू गई है, जिससे पर्याप्त वित्तीय संसाधनों के बिना उम्मीदवार प्रभावी रूप से बाहर हो जाते हैं।

शोध प्रश्न

यह पेपर निम्नलिखित शोध प्रश्नों के उत्तर खोजने का प्रयास करता है:

1. उत्तर भारत में जाति और वर्ग की गतिशीलता चुनावी व्यवहार और राजनीतिक भागीदारी को कैसे प्रभावित करती है?
2. निर्वाचित प्रतिनिधि, विशेषकर हाशिए के समुदायों के अपने मतदाताओं के प्रति स्वयं को किस हद तक उत्तरदायी मानते हैं?
3. वे संरचनात्मक कारक (धन, अपराधीकरण, वंशवाद) कौन से हैं जो प्रभावी प्रतिनिधित्व में बाधा डालते हैं?
4. प्रतिनिधित्व का संकट विभिन्न सामाजिक समूहों के बीच लोकतांत्रिक संस्थाओं में विश्वास को कैसे प्रभावित करता है?

उद्देश्य

- उत्तर भारत में सामाजिक संरचना और राजनीतिक प्रतिनिधित्व के बीच संबंध का विश्लेषण करना।
- हाशिए के समुदायों के लिए प्रभावी राजनीतिक भागीदारी में बाधाओं की पहचान करना।
- प्रतिनिधित्व की गुणवत्ता पर धन-बल, अपराधीकरण और वंशवादी राजनीति के प्रभाव का आकलन करना।
- लोकतंत्र को गहरा करने और प्रतिनिधित्व को बढ़ाने के लिए नीतिगत हस्तक्षेप प्रस्तावित करना।

अध्ययन का महत्व

यह अध्ययन कई कारणों से महत्वपूर्ण है। पहला, यह प्रतिनिधित्व के संकट पर अनुभवजन्य साक्ष्य प्रदान करता है, उपाख्यानात्मक टिप्पणियों से आगे बढ़ता है। दूसरा, यह उत्तर भारत पर केंद्रित है, एक ऐसा क्षेत्र जो राजनीतिक रूप से महत्वपूर्ण और सामाजिक रूप से जटिल दोनों है। तीसरा, यह उपनिवेशवादोत्तर समाजों में लोकतंत्र के गहनताकरण पर सैद्धांतिक साहित्य में योगदान देता है। अंत में, यह चुनावी और संस्थागत सुधारों के लिए व्यावहारिक सिफारिशें प्रदान करता है।

सीमाएँ

इस अध्ययन की कई सीमाएँ हैं। पहला, यह उत्तर भारत के तीन राज्यों तक सीमित है, और निष्कर्ष अन्य क्षेत्रों के लिए सामान्यीकरण योग्य नहीं हो सकते हैं। दूसरा, गुणात्मक घटक साक्षात्कारों के अपेक्षाकृत

छोटे नमूने पर निर्भर करता है। तीसरा, अध्ययन मुख्य रूप से लोकसभा (राष्ट्रीय) स्तर पर केंद्रित है, राज्य और स्थानीय राजनीति पर सीमित ध्यान देता है।

साहित्य समीक्षा

सैद्धांतिक ढांचा

यह अध्ययन राजनीतिक समाजशास्त्र में तीन प्रमुख सैद्धांतिक परंपराओं पर आधारित है:

1. **अभिजात वर्ग सिद्धांत (पैरेटो, मोस्का, मिखेल्स)**
   अभिजात वर्ग सिद्धांतकारों का तर्क है कि सभी समाजों में, एक छोटा अल्पसंख्यक—अभिजात वर्ग—शासन करता है, जबकि बहुसंख्यक शासित होते हैं। रॉबर्ट मिखेल्स का "लोहे का नियम" बताता है कि सभी संगठन, यहाँ तक कि लोकतांत्रिक दल भी, अनिवार्य रूप से अल्पतंत्री (oligarchic) हो जाते हैं। यह सिद्धांत राजनीतिक शक्ति के कुछ परिवारों और समूहों के बीच केंद्रीकरण को समझने के लिए एक ढांचा प्रदान करता है।

2. **मार्क्सवादी सिद्धांत (मार्क्स, ग्राम्शी, मिलिबैंड)**
   मार्क्सवादी सिद्धांत राज्य को वर्ग शासन के एक उपकरण के रूप में देखता है। भारतीय संदर्भ में, यह परिप्रेक्ष्य यह समझाने में मदद करता है कि कैसे आर्थिक अभिजात वर्ग राजनीतिक प्रक्रिया पर हावी होते हैं, नीतियों को अपने पक्ष में ढालते हैं। ग्राम्शी की "आधिपत्य" की अवधारणा यह समझने के लिए विशेष रूप से उपयोगी है कि कैसे प्रभावी समूह सांस्कृतिक और वैचारिक साधनों के माध्यम से सहमति बनाए रखते हैं।

3. **बहुलवादी सिद्धांत (डाल, लिंडब्लॉम)**
   बहुलवादी तर्क देते हैं कि समाज में शक्ति कई समूहों के बीच विकेंद्रीकृत होती है, और कोई एक समूह हावी नहीं होता है। जबकि यह सिद्धांत लोकतंत्र का एक आशावादी दृष्टिकोण प्रदान करता है, भारतीय संदर्भ में इसकी प्रयोज्यता—जहाँ शक्ति अत्यधिक केंद्रित है—सीमित है।

भारतीय लोकतंत्र पर अनुभवजन्य साहित्य

1. **जाति और राजनीति**
   साहित्य की एक महत्वपूर्ण मात्रा भारत में जाति और राजनीति के बीच संबंधों की जांच करती है। रुडोल्फ और रुडोल्फ (1967) ने तर्क दिया कि जाति को "आधुनिकीकृत" किया गया है और लोकतांत्रिक राजनीति के अनुकूल बनाया गया है। जाफ्रेलॉट (2003) ने दिखाया कि कैसे निचली

जातियों ने अपनी पहचान का दावा करने और सत्ता हथियाने के लिए लोकतांत्रिक राजनीति का उपयोग किया है। हालाँकि, अधिक हाल के अध्ययन (देशपांडे, 2011; जोधका, 2018) बताते हैं कि जबकि निचली जातियों का राजनीतिक प्रतिनिधित्व बढ़ा है, उनकी आर्थिक स्थिति में तदनुरूप सुधार नहीं हुआ है।

2. वर्ग और राजनीति

भारत में वर्ग और राजनीति पर अध्ययन अपेक्षाकृत कम हैं। बर्धन (1984) ने तीन प्रमुख संपत्तिशील वर्गों—औद्योगिक पूंजीपति, समृद्ध किसान और पेशेवर—की पहचान की, जो राज्य को नियंत्रित करते हैं। कोहली (2012) ने तर्क दिया कि आर्थिक उदारीकरण ने पूंजी की शक्ति को मजदूरों और गरीबों के मुकाबले मजबूत किया है।

3. राजनीति का अपराधीकरण

राजनीति के अपराधीकरण की घटना ने महत्वपूर्ण विद्वतापूर्ण ध्यान आकर्षित किया है। वैष्णव (2017) ने प्रदर्शित किया कि मतदाता अक्सर आपराधिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों को प्राथमिकता देते हैं, उन्हें "कठोर" और "काम निकालने में सक्षम" के रूप में देखते हैं। यह निष्कर्ष मतदाता तर्कसंगतता के बारे में पारंपरिक धारणाओं को चुनौती देता है।

4. वंशवादी राजनीति

वंशवादी राजनीति अन्य पहलुओं की तुलना में अपेक्षाकृत कम अध्ययनित है। चंद्रा (2016) ने तर्क दिया कि कमजोर पार्टी संस्थागतकरण के संदर्भों में, मतदाता सूचनात्मक शॉर्टकट के रूप में उम्मीदवार विशेषताओं—जिसमें परिवार का नाम भी शामिल है—पर भरोसा करते हैं। यह भारतीय राजनीति में वंशवादों के बने रहने की व्याख्या करने में मदद करता है।

शोध अंतराल

जबकि मौजूदा साहित्य मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान करता है, इसमें कई कमियाँ हैं। पहला, अधिकांश अध्ययन या तो जाति या वर्ग पर केंद्रित होते हैं, कुछ ही उनके अंतर्संबंध की जांच करते हैं। दूसरा, सामान्य नागरिकों—विशेषकर हाशिए के समुदायों से—की आवाज अक्सर अनुपस्थित होती है। तीसरा, प्रतिनिधित्व और संस्थाओं में विश्वास के बीच संबंध का व्यवस्थित रूप से पता नहीं लगाया गया है। यह अध्ययन इन अंतरालों को भरने का लक्ष्य रखता है।

शोध पद्धति

शोध डिजाइन

यह अध्ययन एक मिश्रित-विधि शोध डिजाइन (mixed-methods research design) को नियोजित करता है, जो मात्रात्मक और गुणात्मक दृष्टिकोणों को जोड़ता है। मात्रात्मक घटक में चुनावी आंकड़ों का विश्लेषण शामिल है, जबकि गुणात्मक घटक में गहन साक्षात्कार और फोकस समूह चर्चाएँ शामिल हैं।

प्रतिचयन (Sampling)

यह अध्ययन तीन राज्यों को कवर करता है: उत्तर प्रदेश (भारत का सबसे अधिक जनसंख्या वाला राज्य, एक जटिल जाति पदानुक्रम के साथ), बिहार (निचली जातियों के संगठन के इतिहास के साथ), और राजस्थान (एक महत्वपूर्ण आदिवासी जनसंख्या के साथ)। प्रत्येक राज्य के भीतर, दो लोकसभा निर्वाचन क्षेत्रों का चयन किया गया—एक ग्रामीण और एक शहरी—जिससे कुल छह निर्वाचन क्षेत्र बने।

गुणात्मक घटक के लिए, 60 उत्तरदाताओं का एक उद्देश्यपूर्ण नमूना (purposive sample) चुना गया, जिसमें शामिल हैं:

- 30 मतदाता (15 पुरुष, 15 महिला) विभिन्न जाति और वर्ग पृष्ठभूमि से
- 15 निर्वाचित प्रतिनिधि (सांसद/विधायक)
- 15 राजनीतिक दल के कार्यकर्ता और स्थानीय नेता

डेटा संग्रह

मात्रात्मक डेटा

- चुनाव आयोग डेटा (2014, 2019, 2024)
- राष्ट्रीय चुनाव अध्ययन (NES) डेटा - केंद्र फॉर द स्टडी ऑफ डेवलपिंग सोसाइटीज (CSDS)
- भारत की जनगणना और राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय (NSSO) डेटा

गुणात्मक डेटा

- मतदाताओं, निर्वाचित प्रतिनिधियों और पार्टी कार्यकर्ताओं के साथ अर्ध-संरचित साक्षात्कार
- प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में फोकस समूह चर्चाएँ
- राजनीतिक रैलियों और सार्वजनिक सभाओं का अवलोकन

डेटा विश्लेषण

मात्रात्मक डेटा का विश्लेषण वर्णनात्मक और अनुमानात्मक आंकड़ों (descriptive and inferential statistics) का उपयोग करके किया जाएगा, जिसमें प्रतिगमन विश्लेषण (regression analysis) शामिल है ताकि सामाजिक पृष्ठभूमि और चुनावी परिणामों के बीच संबंध की जांच की जा सके। गुणात्मक डेटा का विश्लेषण विषयगत विश्लेषण (thematic analysis) का उपयोग करके किया जाएगा, जिसमें आवर्ती विषयों और पैटर्न की पहचान करने के लिए साक्षात्कार प्रतिलेखों का कोडिंग किया जाएगा।

नैतिक विचार

सभी प्रतिभागियों से सूचित सहमति (informed consent) प्राप्त की जाएगी। गुमनामी और गोपनीयता बनाए रखी जाएगी। अध्ययन को संस्थागत समीक्षा बोर्ड (Institutional Review Board) से अनुमोदन प्राप्त है।

डेटा विश्लेषण और निष्कर्ष (प्रस्तावित संरचना)

चुनावी डेटा विश्लेषण

1. **मतदान प्रतिशत के पैटर्न**

राज्य	2014 (%)	2019 (%)	2024 (%)	परिवर्तन (2014-24)
उत्तर प्रदेश	58.2	59.8	61.3	+3.1
बिहार	56.8	58.4	59.7	+2.9
राजस्थान	66.5	68.7	69.2	+2.7
राष्ट्रीय औसत	**66.4**	**67.4**	**67.8**	**+1.4**

प्रारंभिक अवलोकन: जबकि मतदान प्रतिशत में वृद्धि हुई है, उत्तर भारतीय राज्यों और राष्ट्रीय औसत के बीच का अंतर बना हुआ है।

2. उम्मीदवार पृष्ठभूमि विश्लेषण

श्रेणी	2014 (%)	2019 (%)	2024 (%)
आपराधिक मामलों वाले उम्मीदवार	34	43	46
घोषित संपत्ति > ₹10 करोड़ वाले उम्मीदवार	28	37	41
राजनीतिक परिवारों से आने वाले उम्मीदवार	32	35	37

प्रारंभिक अवलोकन: आपराधिक मामलों, उच्च संपत्ति और वंशवादी पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों का अनुपात महत्वपूर्ण रूप से बढ़ा है।

3. संसद में जातीय प्रतिनिधित्व

जाति श्रेणी	जनसंख्या (%)	सांसद (2014)	सांसद (2019)	सांसद (2024)
उच्च जाति	~15	42	44	46
ओबीसी	~40	31	33	34
अनुसूचित जाति	~16	16	15	14
अनुसूचित जनजाति	~8	9	8	8
मुस्लिम	~14	5	4	3

प्रारंभिक अवलोकन: उच्च जातियाँ अत्यधिक प्रतिनिधित्व में हैं, जबकि ओबीसी, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और मुस्लिम कम प्रतिनिधित्व में हैं, यह अंतर समय के साथ बढ़ता जा रहा है।

साक्षात्कार निष्कर्ष (विषयगत विश्लेषण)

विषय 1: अलगाव और अविश्वास

"मैं 1999 से हर चुनाव में वोट करती आ रही हूँ। लेकिन मैंने अपने विधायक को कभी नहीं देखा। वे केवल चुनाव के दौरान आते हैं, और फिर गायब हो जाते हैं। वोट करने का क्या फायदा?" — सुनीता देवी (45), दलित महिला, ग्रामीण उत्तर प्रदेश

"राजनेता केवल अमीर लोगों की परवाह करते हैं। वे अपने व्यापारी दोस्तों के लिए नीतियाँ बनाते हैं। हम गरीब लोगों के लिए, कुछ भी नहीं है।" — राम प्रसाद (52), ओबीसी किसान, बिहार

विषय 2: प्राथमिक लेंस के रूप में जाति

"हमारे गाँव में, हर कोई अपनी जाति को वोट करता है। यादव एसपी को वोट करते हैं, कुर्मी भाजपा को वोट करते हैं, जाटव बसपा को वोट करते हैं। जाति ही सब कुछ है।" — मुकेश कुमार (38), दलित, उत्तर प्रदेश

"मैं विकास के लिए वोट करना चाहता हूँ। लेकिन कौन सी पार्टी वास्तव में हमारे लिए काम करेगी? सभी पार्टियाँ केवल अपने जाति वोट बैंक की परवाह करती हैं।" — मोहम्मद अली (40), मुस्लिम दुकानदार, राजस्थान

विषय 3: धन और बल

"चुनाव लड़ने के लिए, आपको कम से कम 5-10 करोड़ रुपये चाहिए। एक सामान्य व्यक्ति को यह पैसा कहाँ से मिलेगा? केवल काले धन और आपराधिक संबंधों वाले लोग ही इसे वहन कर सकते हैं।" — प्रदीप सिंह (48), भाजपा कार्यकर्ता, उत्तर प्रदेश

"लोग उन उम्मीदवारों को वोट करते हैं जिनके पास पैसा और बल है क्योंकि उनका मानना है कि वे एक भ्रष्ट व्यवस्था में 'काम करा सकते हैं'।" — डॉ. अंजली शर्मा (35), राजनीतिक वैज्ञानिक, साक्षात्कार

विषय 4: वंशवादी राजनीति

"हमारे निर्वाचन क्षेत्र में, तीन पीढ़ियों से एक ही परिवार सत्ता में है। बेटे को पिता से सीट विरासत में मिली। नए लोगों के लिए कोई जगह नहीं है।" — सुरेश मीणा (42), आदिवासी कार्यकर्ता, राजस्थान
"वंशवाद केवल कांग्रेस में नहीं है। यह हर जगह है—भाजपा में, क्षेत्रीय दलों में। हमारी राजनीति कुछ परिवारों द्वारा चलाई जाती है।" — राजीव रंजन (55), राजनीतिक टिप्पणीकार, बिहार

प्रतिगमन विश्लेषण

सामाजिक पृष्ठभूमि (जाति, वर्ग) और चुनावी परिणामों के बीच संबंध की जांच करने के लिए निम्नलिखित प्रतिगमन मॉडल का उपयोग किया जाएगा:

$$Y = \beta_0 + \beta_1 X_1 + \beta_2 X_2 + \beta_3 X_3 + \varepsilon$$

जहाँ:

- Y = चुनावी सफलता (डमी चर: 1=जीता, 0=हारा)
- X_1 = जाति श्रेणी (श्रेणीबद्ध: उच्च जाति, ओबीसी, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, मुस्लिम)
- X_2 = संपत्ति वर्ग (सतत: घोषित संपत्ति करोड़ में)
- X_3 = आपराधिक पृष्ठभूमि (डमी: 1=आपराधिक मामले हैं, 0=नहीं)

प्रारंभिक परिणाम बताते हैं कि संपत्ति वर्ग और आपराधिक पृष्ठभूमि चुनावी सफलता के महत्वपूर्ण भविष्यवक्ता हैं, जबकि जाति श्रेणी का कमजोर लेकिन फिर भी महत्वपूर्ण प्रभाव है।

चर्चा

1. **प्रतिनिधित्व का संकट: अनुभवजन्य साक्ष्य**

   इस अध्ययन के निष्कर्ष भारतीय लोकतंत्र में प्रतिनिधित्व के संकट के लिए मजबूत अनुभवजन्य साक्ष्य प्रदान करते हैं। उच्च मतदान प्रतिशत के बावजूद, राजनीतिक व्यवस्था जनसंख्या के बड़े वर्गों—विशेषकर निचली जातियों, मुसलमानों और आर्थिक रूप से वंचितों—को विफल कर रही प्रतीत होती है।

   प्रतिनिधित्व अंतराल: डेटा जनसंख्या की सामाजिक संरचना और निर्वाचित प्रतिनिधियों की संरचना के बीच एक महत्वपूर्ण अंतराल दिखाता है। उच्च जातियाँ, जो जनसंख्या का लगभग 15% हैं, लोकसभा सीटों का 45% से अधिक रखती हैं। मुस्लिम, जो जनसंख्या का लगभग 14% हैं, केवल 3-5% सीटें रखते हैं। यह अंतराल पिछले दशक में बढ़ा है, जो बताता है कि प्रतिनिधित्व संकट गहरा रहा है।

   उत्तरदायित्व अंतराल: साक्षात्कार डेटा हाशिए के समुदायों के बीच गहरे अलगाव की भावना को प्रकट करता है। कई उत्तरदाताओं ने बताया कि उन्होंने अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों को कभी नहीं देखा या उनसे बातचीत नहीं की। यह एक "उत्तरदायित्व अंतराल" का सुझाव देता है—निर्वाचित अधिकारी अपने मतदाताओं, विशेषकर निचले सामाजिक-आर्थिक स्तरों के लोगों के प्रति उत्तरदायी नहीं हैं।

2. संरचनात्मक कारक: धन, बल और वंशवाद

धन-बल: चुनावों की बढ़ती लागत ने राजनीतिक व्यवस्था को पर्याप्त वित्तीय संसाधनों के बिना उम्मीदवारों के लिए प्रभावी रूप से बंद कर दिया है। 2024 के आम चुनावों में प्रति उम्मीदवार औसत व्यय ₹5 करोड़ से अधिक होने का अनुमान था, कुछ उम्मीदवारों ने ₹20 करोड़ से अधिक खर्च किए। यह सामान्य नागरिकों को चुनाव लड़ने से बाहर करता है, अभिजात वर्ग के प्रभुत्व को कायम रखता है।

अपराधीकरण: आपराधिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों और निर्वाचित प्रतिनिधियों की बढ़ती संख्या गहरी चिंता का विषय है। मतदाताओं की "कठोर" उम्मीदवारों के लिए प्राथमिकता, जैसा कि वैष्णव (2017) ने नोट किया है, एक ऐसी व्यवस्था के लिए एक तर्कसंगत प्रतिक्रिया है जहाँ अपराध और राजनीतिक शक्ति आपस में जुड़े हुए हैं। हालाँकि, यह एक दुष्चक्र बनाता है: अपराधी राजनेता बन जाते हैं, और राजनेता अपराधी बन जाते हैं।

वंशवादी राजनीति: वंशवादी राजनीति हाशिए की पृष्ठभूमि के नए प्रवेशकों के लिए राजनीतिक अवसरों को सीमित करती है। जबकि राजनीतिक वंशवाद सभी लोकतंत्रों में मौजूद हैं, भारत में उनकी व्यापकता असाधारण रूप से अधिक है। परिवारों के भीतर राजनीतिक शक्ति का यह केंद्रीकरण लोकतांत्रिक सिद्धांतों—योग्यता और समान अवसर—को कमजोर करता है।

3. सैद्धांतिक निहितार्थ

अभिजात वर्ग सिद्धांत का पुनर्विज़िट: इस अध्ययन के निष्कर्ष काफी हद तक अभिजात वर्ग सिद्धांत का समर्थन करते हैं। लोकतंत्र के औपचारिक तंत्रों के बावजूद, राजनीतिक शक्ति एक छोटे अभिजात वर्ग—जाति, वर्ग और पारिवारिक संबंधों द्वारा परिभाषित—के बीच केंद्रित बनी हुई है। मिखेल्स का "लोहे का नियम" भारतीय संदर्भ में सही प्रतीत होता है।

बहुलवादी सिद्धांत की सीमाएँ: निष्कर्ष बहुलवादी धारणाओं को चुनौती देते हैं कि शक्ति फैली हुई है। भारतीय राजनीति में शक्ति को फैलाने के बजाय, शक्ति प्रभावी समूहों के बीच केंद्रित है। हाशिए के समुदायों का राजनीतिक परिणामों पर सीमित प्रभाव है।

जाति-वर्ग अंतर्संबंध: अध्ययन राजनीतिक परिणामों को आकार देने में जाति और वर्ग के अंतर्संबंध को उजागर करता है। उच्च जातियाँ न केवल संख्यात्मक रूप से बल्कि आर्थिक रूप से भी हावी हैं। जातीय पूंजी और आर्थिक पूंजी का संयोजन निचली जातियों के लिए प्रतिनिधित्व में एक गंभीर बाधा पैदा करता है।

4. नीतिगत निहितार्थ

चुनावी सुधार: कई चुनावी सुधार प्रतिनिधित्व के संकट को संबोधित कर सकते हैं:

- **चुनावों का राज्य वित्तपोषण:** निजी धन पर निर्भरता कम करने से प्रतिस्पर्धी मैदान समतल होगा।
- **प्रचार व्यय पर अधिक कड़ी सीमा:** वर्तमान सीमाओं का व्यापक रूप से उल्लंघन किया जाता है और उन्हें कड़े प्रवर्तन की आवश्यकता है।
- **आपराधिक मामलों वाले उम्मीदवारों की अयोग्यता:** लंबित परीक्षण बाधा नहीं होने चाहिए, लेकिन दोषी अपराधियों को अयोग्य घोषित किया जाना चाहिए।

सकारात्मक कार्रवाई: आरक्षण नीतियों का विस्तार और सुदृढ़ीकरण किया जाना चाहिए। जबकि अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए विधानसभाओं में आरक्षण मौजूद है, ओबीसी और मुस्लिम कम प्रतिनिधित्व में हैं। राजनीतिक दलों को हाशिए के समुदायों से अधिक उम्मीदवारों को टिकट देने के लिए प्रोत्साहित (या बाध्य) किया जाना चाहिए।

संस्थागत सुधार: स्थानीय शासन (पंचायती राज) को मजबूत करने से जमीनी स्तर पर प्रतिनिधित्व बढ़ सकता है। हालाँकि, राज्य सरकारें स्थानीय निकायों को सत्ता और संसाधन हस्तांतरित करने में अनिच्छुक रही हैं।

मतदाता शिक्षा: मतदाताओं को पहचान-आधारित मतदान पर मुद्दा-आधारित मतदान के महत्व के बारे में शिक्षित किए जाने की आवश्यकता है। नागरिक समाज संगठन इस संबंध में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

निष्कर्ष

निष्कर्षों का सारांश

इस अध्ययन ने समकालीन भारतीय लोकतंत्र में प्रतिनिधित्व के संकट की जांच की है। मुख्य निष्कर्ष निम्नलिखित हैं:

1. **प्रतिनिधित्व अंतराल:** उच्च जातियाँ संसद में अत्यधिक प्रतिनिधित्व में हैं, जबकि ओबीसी, अनुसूचित जातियाँ, अनुसूचित जनजातियाँ और मुस्लिम कम प्रतिनिधित्व में हैं। यह अंतराल पिछले दशक में बढ़ा है।

2. **उत्तरदायित्व अंतराल:** हाशिए के समुदाय राजनीतिक व्यवस्था से अलग-थलग महसूस करते हैं, उनका कहना है कि उनके निर्वाचित प्रतिनिधि उनकी आवश्यकताओं के प्रति अनुत्तरदायी हैं।
3. **संरचनात्मक बाधाएँ:** धन-बल, अपराधीकरण और वंशवादी राजनीति हाशिए की पृष्ठभूमि के उम्मीदवारों के लिए प्रवेश में गंभीर बाधाएँ पैदा करती हैं।
4. **विश्वास की कमी:** लोकतांत्रिक संस्थाओं—विशेषकर राजनीतिक दलों और निर्वाचित प्रतिनिधियों—में विश्वास घट रहा है, विशेषकर निचली जातियों और आर्थिक रूप से वंचितों के बीच।

योगदान

यह अध्ययन कई योगदान देता है। अनुभवजन्य रूप से, यह नवीनतम चुनावी परिणामों (2024) का उपयोग करके भारतीय लोकतंत्र में प्रतिनिधित्व पर अद्यतन डेटा प्रदान करता है। पद्धतिगत रूप से, यह मात्रात्मक और गुणात्मक दृष्टिकोणों को जोड़ता है, जो स्थूल-स्तरीय पैटर्न और सूक्ष्म-स्तरीय अनुभवों दोनों को कैप्चर करता है। सैद्धांतिक रूप से, यह प्रतिनिधित्व के संकट को समझने के लिए एक व्यापक ढांचा प्रदान करने के लिए अभिजात वर्ग सिद्धांत, मार्क्सवादी सिद्धांत और अंतर्संबंधवादी विश्लेषण को एकीकृत करता है।

सिफारिशें

निष्कर्षों के आधार पर, निम्नलिखित सिफारिशें प्रस्तावित हैं:

1. **चुनाव आयोग के लिए:** चुनाव वित्त कानूनों को सख्ती से लागू करें। आपराधिक सजा वाले उम्मीदवारों को अयोग्य घोषित करें। मतदाता शिक्षा कार्यक्रमों में सुधार करें।
2. **राजनीतिक दलों के लिए:** हाशिए के समुदायों से अधिक उम्मीदवारों को टिकट दें। उम्मीदवार चयन में धन के प्रभाव को कम करें। आंतरिक लोकतंत्र को लागू करें।
3. **नागरिक समाज के लिए:** चुनावी सुधारों के लिए वकालत करें। निर्वाचित प्रतिनिधियों के प्रदर्शन की निगरानी करें। राजनीतिक शिक्षा के माध्यम से हाशिए के समुदायों को सशक्त बनाएँ।
4. **नागरिकों के लिए:** पहचान और प्रदर्शन के आधार पर मुद्दों पर वोट करें। निर्वाचित प्रतिनिधियों को जवाबदेह बनाएँ। स्थानीय शासन में भाग लें।

भविष्य के शोध के लिए दिशा-निर्देश

भविष्य के शोध को इस अध्ययन की सीमाओं को संबोधित करना चाहिए। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में तुलनात्मक अध्ययन क्षेत्रीय भिन्नताओं की पहचान करने में मदद करेंगे। समान निर्वाचन क्षेत्रों को ट्रैक

करने वाले दीर्घकालिक अध्ययन परिवर्तन के पैटर्न को समझने में मदद करेंगे। प्रतिनिधित्व के वैकल्पिक मॉडल—जैसे सहभागी बजटिंग और नागरिक सभाएँ—पर शोध संकट के संभावित समाधानों की पहचान करने में मदद करेगा।

संदर्भ

(नोट: यह एक सांकेतिक ग्रंथ सूची है; वास्तविक शोध में पूर्ण उद्धरणों की आवश्यकता होगी)

1. बर्धन, पी. (1984). द पॉलिटिकल इकोनॉमी ऑफ डेवलपमेंट इन इंडिया. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
2. चंद्रा, के. (2004). व्हाई एथनिक पार्टीज सक्सीड. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.
3. डाल, आर. (1956). अ प्रीफेस टू डेमोक्रेटिक थ्योरी. यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस.
4. देशपांडे, एस. (2011). कास्ट एंड पॉलिटिक्स. इन एन. जी. जायल और पी. बी. मेहता (संस्करण), द ऑक्सफोर्ड कम्पेनियन टू पॉलिटिक्स इन इंडिया. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
5. ग्राम्शी, ए. (1971). सेलेक्शन्स फ्रॉम द प्रिजन नोटबुक्स. इंटरनेशनल पब्लिशर्स.
6. जाफ्रेलॉट, सी. (2003). इंडियाज साइलेंट रिवोल्यूशन. कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस.
7. जोधका, एस. (2018). कास्ट इन कंटेम्पररी इंडिया. रूटलेज.
8. कोहली, ए. (2012). पॉवर्टी एंड प्लेंटी इन द न्यू इंडिया. कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.
9. मार्क्स, के., और एंगेल्स, एफ. (1848). द कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो.
10. मिखेल्स, आर. (1911). पॉलिटिकल पार्टीज. फ्री प्रेस.
11. मिल्स, सी. डब्ल्यू. (1956). द पावर एलीट. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
12. मोस्का, जी. (1896). द रूलिंग क्लास. मैकग्रा-हिल.
13. पैरेटो, वी. (1916). द माइंड एंड सोसाइटी. हार्कोर्ट, ब्रेस.
14. रुडोल्फ, एल., और रुडोल्फ, एस. (1967). द मॉडर्निटी ऑफ ट्रेडिशन. यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस.
15. वैष्णव, एम. (2017). व्हेन क्राइम पेज़. येल यूनिवर्सिटी प्रेस.

Reproductive Health Challenges of Married Women: A Study of Selected Blocks in North 24 Parganas District, Sundarbans Region

Moumee Jesmin
Research Scholar,
Department of Social Work, St. Xavier's University, Kolkata

Dr. Rupa Biswas
Assistant Professor,
Department of Social Work, St. Xavier's University, Kolkata

Abstract

The reproductive health issues among married women of the Hingalganj and Sandeshkhali blocks located in the environmentally sensitive Sundarbans region have been analyzed. Information has been collected using interview schedule from 60 respondents. Findings indicate that all respondents (100%) suffered from menstrual health issues; out of them, 55% were affected by urinary tract infections (UTIs), pregnancy complications etc. Anemia and malnutrition occurred frequently in 56.7% and 43.3%, respectively, among pregnant women and 43.3% practiced contraception. Distance from hospitals, cost of treatment, and societal taboos were the major factors preventing people from accessing healthcare services; 41.7%, 36.7%, and 21.7%, respectively, mentioned them as hindrances. All respondents indicated that they work in salinity-affected areas for at least two to four hours daily. Moreover, climate disaster negatively impacted respondents' access to healthcare facilities.

Keywords: Reproductive health, Married Women, Menstrual hygiene, Health-seeking behavior.

Keywords: *Reproductive health, Married Women, Menstrual hygiene, Health-seeking behavior*

Introduction

Sundarbans, the largest mangrove delta in the world, stretching across the South and North 24 Parganas districts of West Bengal in India, is an area of ecological importance and human vulnerability. The physical disconnectedness of the regions, with many islands reachable by water transport alone, makes it hard to provide timely reproductive healthcare services to the residents. This problem is further exacerbated by the rising intensity of cyclonic calamities, namely Aila (2009), Bulbul (2019), Amphan (2020), and Yaas (2021) etc.

This research relies on primary information obtained from 60 married females residing in the Hingalganj and Sandeshkhali blocks of North 24 Parganas to discuss reproductive health concerns and health seeking behavior of married women.

Review of Literature

Various studies have documented reproductive health issues for married women residing in climate-vulnerable areas of India. However, the interconnection of climate vulnerability, occupational risk, and social marginalization in relation to reproductive health concerns has not received sufficient attention in relation to North 24 Parganas. The present literature is fundamental to providing background information on the research findings.

This dependence reflects broader issues of poverty, limited awareness, and inadequate healthcare access. Paul and Rai (2025) further highlight that climate-related challenges, such as flooding and displacement, worsen these inequalities by restricting access to healthcare and sanitation. Together, these studies emphasize the need for improved access to affordable menstrual products and better healthcare infrastructure in the region. Dasgupta et al. (2022) found that women engaged in fishing practices and drinking water from high-salinity tube wells in the Sundarbans were prone to gynecological and systemic health issues.

Studies on menstrual health and hygiene management underscore the convergence of poverty, stigma, and inadequate sanitation in shaping women's practices. Research in rural South India by Gopalakrishnan et al. (2019) found that 67% of women experienced gynecological problems, with menstrual irregularities, urinary tract infections (14%), and reproductive tract infections (11.6%) most prevalent among economically marginalized women.

Maternal healthcare utilization in remote and underserved areas is systematically constrained by geographical distance, transportation barriers, financial cost, and cultural norms. Barman et al. (2016) highlighted that home deliveries in the Sundarbans persist due to isolation, poor road connectivity, and strong cultural preferences for traditional midwifery.

Globally, the literature consistently identifies contraceptive non-use as a marker of diminished women's reproductive autonomy, with consequences for maternal health and family well-being (Pham et al., 2020).

The evidence specific to women's reproductive health outcomes during and after disasters in North 24 Parganas is sparse. Biswas (2013) observed high maternal and child mortality in the Sundarbans islands, attributing it to extreme isolation, inadequate health infrastructure, and insufficient government response—conditions that intensify during disasters. This study contributes to filling this gap by situating reproductive health challenges within the climate vulnerability framework specific to North 24 Parganas.

Objectives of the Study

- The study is guided by the following specific objectives:
- To understand the reproductive health challenges of married women in Hingalganj and Sandeshkhali blocks of North 24 Parganas.
- To know the health-seeking behavior related to reproductive health issues among them.

Methodology

Research Design

This study employed a descriptive research design with a primarily quantitative approach, supplemented by qualitative case studies to provide depth and contextual understanding. The descriptive design was selected to systematically document the reproductive health challenges, health-seeking behavior, and associated determinants among married women in the study area, without experimental manipulation.

Study Population and Sampling

The target population comprised married women of reproductive age (18–49 years) residing in Hingalganj and Sandeshkhali blocks. A total of 60 respondents were selected using purposive sampling to ensure the inclusion of women across different age groups, caste categories, educational backgrounds, and family types. Of the total sample, 33 respondents (55%) were from Hingalganj block and 27 (45%) from Sandeshkhali block. Inclusion criteria required that respondents be currently married, resident in the study area for at least one year, and willing to provide informed consent.

4.3 Data Collection Instruments and Procedures

Two primary data collection instruments were employed:
Structured Interview Schedule
Case Studies

Data Analysis

Quantitative data from the structured interview schedules were analyzed using descriptive statistical methods including frequencies and percentages, Qualitative data from case studies were analyzed using thematic analysis.

Ethical Considerations

Informed consent was obtained from all participants in their local language (Bengali) before any data collection activity. Participants were fully informed of

the voluntary nature of their participation, their right to withdraw at any stage without consequence, and the measures in place to protect confidentiality and anonymity. All identifying information was removed during data entry and analysis.

Results and Findings

This section presents the findings from the structured survey of 60 married women in Hingalganj and Sandeshkhali blocks of North 24 Parganas, supplemented by case study insights. All 60 respondents are from North 24 Parganas district, engaged exclusively in agri-fishery livelihoods, and all reported exposure to saline water for 2–4 hours daily.

Socio-Demographic Profile of Respondents

The table presents the distribution of respondents according to their socio-demographic characteristics. It includes variables such as age, education, age at marriage, number of children, caste, family type, income, and block. The data are presented in terms of frequency and percentage.

Table 1: Socio-Demographic Profile of Respondents (N=60, North 24 Parganas)

Variable		n (N=60)	%
Block	Hingalganj	33	55.0%
	Sandeshkhali II	27	45.0%
Age Group	18–25 years	16	26.7%
	26–33 years	14	23.3%
	34–41 years	19	31.7%

ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

Variable		n (N=60)	%
Block	Hingalganj	33	55.0%
	Sandeshkhali II	27	45.0%
	42–49 years	11	18.3%
Education	Illiterate	25	41.7%
	Primary	14	23.3%
	Secondary	21	35.0%
Age at Marriage	18–20 years	26	43.3%
	21–23 years	34	56.7%
No. of Children	One	15	25.0%
	Two	43	71.7%
	Three	2	3.3%
Caste	OBC	25	41.7%
	SC	24	40.0%
	ST	11	18.3%
Monthly Income	Below ₹10,000	58	96.7%
	₹20,000–₹30,000	2	3.3%

A high proportion, 96.7% lived on monthly household incomes below ₹10,000, confirming the extreme economic precariat of these communities. Age at marriage ranged from 18 to 23 years, with 43.3% married between 18–20 years, indicating the persistence of early marriage despite legal prohibitions. The majority had two children (71.7%), with a small proportion (3.3%) having three or more.

1. Reproductive Health Challenges and Health Seeking Behavior

Table 2 presents the key reproductive health indicators across the four dimensions of menstrual health, UTI burden, pregnancy-related complications, and environmental exposure.

Table 2: Menstrual Health, Reproductive Morbidity, and Environmental Exposure (N=60)

Indicator		n	%
Menstrual Problems Reported	Yes (all respondents)	60	100%
Sanitary Product Used	Sanitary Napkin	32	53.3%
	Cloth	28	46.7%
Consulted Doctor for Menstrual Issues	Yes	27	45.0%
	No	33	55.0%
UTI Prevalence	Yes	33	55.0%

Indicator		n	%
	No	11	18.3%
	Don't Know	16	26.7%
Pregnancy Complications	Anemia	34	56.7%
	Malnutrition	26	43.3%
Miscarriage History	Yes	16	26.7%
	No	44	73.3%
Saline Water Exposure	2–4 hours daily (all)	60	100%
Disaster Affects Health Access	Yes (all respondents)	60	100%

2.1 Menstrual Health and Hygiene

All 60 respondents (100%) reported experiencing menstrual health problems. While 53.3% used sanitary napkins, 46.7% continued to use cloth: a practice associated with infection risk particularly under conditions of inadequate sanitation and limited access to clean water for washing and drying. 55% of women did not consult a healthcare provider for their menstrual concerns, reflecting a combination of stigma and limited awareness.

The occupational context amplifies menstrual health risks significantly. All respondents were engaged in agri-fishery work involving 2–4 hours of daily saline

water exposure. Women continue this work through their menstrual cycle in the absence of adequate protective equipment and clean toilet facilities.

2.2 UTI Burden

Urinary tract infections affected 55 % of the study population, while an additional 26.7 % of the respondents were not sure whether they had UTIs, which can be attributed to either misdiagnoses or low health literacy when it comes to genitourinary disorders. Eighteen point three percent of the population was determined to be free of UTIs. These numbers indicate a problem that can be seen in other similar environments where there is exposure to contaminated water, insufficient sanitation facilities, and poor management of menstrual hygiene.

2.3 Pregnancy-Related Complications

In cases where there was a pregnancy experience, it is important to note that 56.7% of the respondents suffered from anemia while 43.3% suffered from malnutrition, both of which are highly inter-related due to poor diet, overworking and lack of nutritional supplements.

1. Contraceptive Use and Decision – Maker & Barrier to Healthcare Access

Table 3: Contraceptive Use, and Decision-Making (N=60)

Indicator		n	%
Contraceptive Use	Yes	26	43.3%
	No	34	56.7%
Decision-Making on Health	Spouse	28	46.7%

Indicator		n	%
	Respondent	24	40.0%
	Joint/Together	8	13.3%
Primary Access Barriers	Distance to facility	25	41.7%
	Financial cost	22	36.7%
	Stigma/social norms	13	21.7%

Contraceptive use remained low at 43.3%, with non-use driven primarily by partner opposition (reported by 10%) and structural factors including distance and cost. Condoms were used by only 6 respondents (10% of those using contraception), and tubectomy was reported by none, suggesting that permanent family planning methods remain socially or programmatically inaccessible. Healthcare decision-making was predominantly spouse-controlled (46.7%), with only 40% of women reporting agency over their own health decisions and 13.3% reporting joint decision-making.

Distance was the most cited barrier (41.7%), consistent with the geographical fragmentation of the study area. Financial cost (36.7%) was the second most significant barrier, particularly for consultations and medications not covered by government schemes. Social stigma, especially around menstrual and reproductive health conditions was responded by 21.7% as a deterrent to care-seeking

Reflections from Case Studies

The case studies presented below were selected to illustrate the range and depth of reproductive health challenges experienced by married women in North 24 Parganas.

Occupational Hazard and Menstrual Health

Ria, a married lady of 34 years who works in aquaculture, performs physically strenuous work in the brackish water for 2-4 hours every day, even during her menstruation periods. Since the lack of hygienic facilities in her workplace and economical compulsions of her family's livelihood from her earnings force her to continue working regardless of her menstrual problems. Ria faces recurrent infections in her reproductive tract but remains undiagnosed and untreated. At first, she was not aware of having a problem with her menstrual cycle because irregularities in menstrual flow, cramps, irritation in the vagina, and rashes were common among women and there was even a myth that certain medicines would impair sexual functioning and the reproductive capability of a woman. Hence, she suffered from a serious problem with her irregular periods and profuse bleeding, causing her to visit doctors in sub-centers and district hospitals, though waiting time to consult doctors was extremely long. Ria admitted that she had been suffering from this problem for six years but did not take it seriously before. It is due to personal neglect and system-related causes and necessitates labor laws related to women's reproduction in this region.

Gender-Based Health-Seeking Behavior

Anjana, who got married at the age of 18 and has completed her education up to 11th class, has already been a mother to one child. She was keen to have an interval between her pregnancies for her own good and economic stability. But unfortunately, her husband, aged 25 years, does not agree to use condoms, thus controlling all decisions regarding her pregnancy in her body. Not being prepared for having another baby at such an early age and also engaging in agriculture and fishery work, she takes birth-control pills; however, some side-effects like headache, breast tenderness, irregular spotting and breakthrough bleeding occur because of the use of these pills. She discussed the problem with ASHA and ASHA suggested her to discontinue taking the pills temporarily and use condoms. She

informed the problem to her husband but he neither wanted her to use birth control methods nor condoms.

She suffers from the dangers to her health due to her close spacing of her children, loses out on economic opportunities due to the early onset of childbearing, and experiences emotional distress because she lacks control over her reproductive rights. Her situation serves as a reflection of a much larger trend. She is frustrated and stressed, supporting her family financially while also bearing the full weight of the domestic burdens but failing to make decisions regarding sexuality and reproduction. Solutions for this need involvement of men in family planning projects along with norms of community that would confirm the reproductive right of women. Awareness and education would help resolve this problem and effect change in society for the benefit of married women as well as families and the country in general.

Discussion

1. Reproductive Health Challenges

According to the results of this study, the reproductive health issues faced by married women living in North 24 Parganas form a multi-level crisis based on the interconnection between occupational hazard, environmental vulnerability, poverty, and systemic gender disparities. The high prevalence of menstrual health issues (100%) among participants in the survey should be understood not only as a medical condition but rather as a social problem. It is indicative of the routine nature of reproductive distress in societies where the reproductive health of women is neglected, where work comes first, and where no protective measures at the workplace ensure their safety.

The high rates of UTI cases (55%) and pregnancy anemia (56.7%) are interlinked effects that arise from the same structural factors including long-time exposure to salty water without adequate protection, use of clothing instead of pads because of lack of money, poor sanitary facilities at the work places, insufficient nutrition,

and lack of preventive medical care. Such problems cannot be tackled by individuals through mere behavior modification.

Gender inequality operates as a cross-cutting determinant of reproductive health in this context. Spouse-dominated decision-making (46.7%) directly constrains women's ability to seek care and adopt contraception.

2. Health-Seeking Behavior

In married women in North 24 Parganas, health-seeking behavior is influenced by an architecture of barriers stacked one above the other. When no catastrophe occurs, the major barriers are geographical remoteness (41.7%), economic expense (36.7%), and the stigma attached to menstruation and reproduction (21.7%). The cumulative result is that a sizeable number of women suffer reproductive illness in silence and without treatment. During disasters, health-seeking behavior collapses entirely for many women.

Suggestions

To improve women's livelihoods and healthcare access, alternative occupations for women such as tailoring, handicrafts, dairy farming, and small-scale entrepreneurship should be promoted with proper training and financial support. Alongside this, mobile health clinics should be introduced more widely with better structure and improved facilities. Songs, role play and other IEC method can be used to make the information easy accessible for all. The provision of basic sanitation facilities: clean toilets, water for handwashing, and covered drying spaces at aquaculture and agricultural sites and in the cyclone shelters should be made mandatory and monitored by local panchayats and labor departments.

For women engaged in prolonged saline water immersion, the distribution of waterproof protective garments (such as water-resistant aprons or lower-body protection) through CSR initiatives or government schemes could reduce direct contact between saline water and the reproductive tract during work and during menstruation. Civil society organizations should be encouraged to develop and pilot such interventions.

Conclusions

Reproductive health issues among married women in North 24 Parganas District are rooted deeply in the social structure of Sundarbans, such as its vulnerability, poverty, and geographical location. In this research, based on surveys conducted among 60 respondents, as well as information from case studies, it is found that reproductive health issues faced by married women of this region are universal, not unique: all the women interviewed faced problems related to their menstrual health; all the women come in contact with saline water on a daily basis while working; all the women lacked access to healthcare facilities due to climatic events.

It's not enough for women living in North 24 Parganas to be provided with more initiatives; what they need is access to healthcare services regardless of whether they live on an island or in a flooded shelter or are working in aquaculture farms or observing silence due to the stigma attached to pregnancy. It's not just a plan for disasters that should include reproductive health care as part of the essential infrastructure but also a community where men should become partners in reproductive decisions rather than controlling them. The point is that resilience in women should not replace the system of care that women deserve.

References

1. Ahmed, S., Hasan, M. J., Pongsiri, M. J., Ahmed, M. W., & Szabo, S. (2020). Effect of extreme weather events on injury, disability, and death in Bangladesh. Climate and Development. https://doi.org/10.1080/17565529.2020.1772705
2. Akter, S., Rich, J. L., Davies, K., & Inder, K. J. (2019). Access to maternal healthcare services among Indigenous women in the Chittagong Hill Tracts, Bangladesh: A cross-sectional study. BMJ Open, 9(10), e033224. https://doi.org/10.1136/bmjopen-2019-033224
3. Barman, S. K., Dasgupta, A., & Biswas, B. (2016). Factors influencing institutional delivery among women of Sundarbans, India. Indian Journal of Community Medicine, 41(3), 212–216.

4. Biswas, B. (2013). 'The god of death takes half of our children': Health of women and children in the Sundarbans Islands. Journal of Health Care for the Poor and Underserved, 24(2), 730–740. https://doi.org/10.1353/hpu.2013.0069
5. Braun, V., & Clarke, V. (2006). Using thematic analysis in psychology. Qualitative Research in Psychology, 3(2), 77–101.
6. Dasgupta, A., Sarkar, K., Chowdhury, R., Ray, A., & Shahbabu, B. (2016). Anemia and its determinants among women of reproductive age in a slum in Kolkata. Journal of Family Medicine and Primary Care, 5(2), 276–280.
7. Dasgupta, S., Wheeler, D., & Ghosh, S. (2022). Fishing in salty waters: Poverty, occupational saline exposure, and women's health in the Indian Sundarbans. Journal of Management and Sustainability, 12(1).
8. Ghule, M., Raj, A., Palaye, P., Dasgupta, A., Nair, S., Saggurti, N., Battala, M., & Balaiah, D. (2015). Barriers to use contraceptive methods among rural young married couples in Maharashtra, India: Qualitative findings. Asian Journal of Research in Social Sciences and Humanities, 5(6), 18–33.
9. Gopalakrishnan, S., AnanthaEashwar, V. M., Mohan Kumar, P., & Umadevi, R. (2019). Reproductive health status of rural married women in Tamil Nadu: A descriptive cross-sectional study. Journal of Family Medicine and Primary Care, 8(11), 3607–3613. https://doi.org/10.4103/jfmpc.jfmpc_523_19
10. Let, S., Tiwari, S., Singh, A., et al. (2024). Prevalence and determinants of anaemia among women of reproductive age in Aspirational Districts of India: An analysis of NFHS 4 and NFHS 5 data. BMC Public Health, 24, 437. https://doi.org/10.1186/s12889-024-17789-3
11. Panda, S., Sadhu, C., Pramanik, G., et al. (2016). Concerning public health situation of under-nutrition in children and anemia in women in Indian Sundarbans delta: A community-based cross-sectional investigation. BMC Nutrition, 2, 65. https://doi.org/10.1186/s40795-016-0105-3
12. Paul, A. A., & Rai, B. B. (2025). Title of the article in sentence case. *Title of Journal, volume number*(issue number), page range. https://doi.org/xxxxx

13. Paul, K. M. (2022). Health seeking behaviour among married women in Northern Nigeria: A framework to promote autonomy [Doctoral Dissertation, Durban University of Technology].

14. Pham, B. N., Whittaker, M., Okely, A. D., & Pomat, W. (2020). Measuring unmet need for contraception among women in rural areas of Papua New Guinea. Sexual and Reproductive Health Matters, 28(2). https://doi.org/10.1080/26410397.2020.1848004

15. Sahoo, K. C., Negi, S., Patel, K., Mishra, B. K., Palo, S. K., & Pati, S. (2021). Challenges in maternal and child health services delivery and access during pandemics or public health disasters in low- and middle-income countries: A systematic review. Healthcare (Basel), 9(7), 828. https://doi.org/10.3390/healthcare9070828

16. Sharif, N., Das, B., & Alam, A. (2023). Prevalence of anemia among reproductive women in different social groups in India: Cross-sectional study using nationally representative data. PLoS One, 18(2), e0281015. https://doi.org/10.1371/journal.pone.0281015

A Comparative Study of Corporate Criminal Liability and Corporate Offences under the Indian Legal System: A Legal Study

Jitendra kumar Meena
Research Scholar,
Shyam University, Dausa, Rajasthan

Dr. Phool Chand Saini
Supervisor
Shyam University, Dausa, Rajasthan

Abstract

Corporate criminal liability has emerged as a crucial component of modern legal systems due to the increasing role of corporations in economic and social spheres. Traditionally, corporations were considered incapable of committing crimes because of their artificial legal personality. However, with the evolution of jurisprudence, especially in India, corporations are now recognized as liable for criminal acts committed by their agents, directors, and employees. This research paper examines the concept, development, and legal framework of corporate criminal liability in India, along with an analysis of corporate offences under various statutes. It further provides a comparative understanding of liability principles such as vicarious liability, identification theory, and strict liability. The study critically evaluates judicial trends, statutory provisions, and challenges in enforcement, and suggests reforms for strengthening corporate accountability. The research adopts a doctrinal methodology based on case laws, statutes, and scholarly writings.

Keywords : Corporate Criminal Liability, Corporate Offences, Indian Penal Code, Vicarious Liability, Mens Rea, Companies Act, White-Collar Crime

Introduction

In the contemporary era, corporations play a dominant role in economic development and governance. With this expansion, corporate misconduct such as fraud, environmental violations, corruption, and financial irregularities has also increased. Traditionally, criminal law focused on natural persons, but modern legal systems have recognized corporations as separate legal entities capable of committing crimes.

Corporate criminal liability refers to the legal accountability of a company for criminal acts committed by its agents within the scope of employment. Indian law recognizes corporations as "persons" under criminal jurisprudence, making them liable for offences under various statutes.

Concept of Corporate Criminal Liability

Corporate criminal liability is based on the principle that a company, though an artificial person, can act through its human agents. When such agents commit offences within their authority, liability is attributed to the corporation.

The doctrine is primarily based on:

- **Vicarious Liability** – The company is held liable for acts of its employees.
- **Identification Theory (Alter Ego Doctrine)** – The intent (mens rea) of key managerial persons is treated as the intent of the corporation.
- **Strict Liability** – Liability without proof of intention in certain statutory offences

Corporate liability arises when acts are committed:

- Within the scope of employment
- For the benefit of the corporation

Evolution of Corporate Criminal Liability in India

Initially, Indian courts were reluctant to impose criminal liability on corporations due to:

- Absence of mens rea

- Impossibility of imprisonment

However, judicial developments changed this perspective:

- Recognition that corporations can possess intent through their directors and officers
- Acceptance that corporations can be punished with fines even where imprisonment is prescribed

The Supreme Court affirmed that corporations can be prosecuted even for offences requiring mens rea.

Thus, corporate criminal liability is now a well-established doctrine in Indian jurisprudence.

Legal Framework Governing Corporate Criminal Liability in India

Corporate criminal liability in India is governed by a composite framework of general criminal law and specialized statutory enactments. The Indian legal system recognizes corporations as juristic persons capable of committing criminal offences and being subjected to penal consequences. This liability is dispersed across multiple legislations, reflecting its wide ambit and functional necessity.

1. Indian Penal Code, 1860

The Indian Penal Code (IPC) constitutes the foundational criminal statute in India and recognizes corporations as "persons" within its ambit. Consequently, corporations may be held liable for offences such as cheating (Section 415), criminal breach of trust (Section 405), and fraud.

Judicial interpretation has expanded the scope of corporate liability under the IPC. In *Standard Chartered Bank v. Directorate of Enforcement*, the Supreme Court of India affirmed that corporations can be prosecuted even where imprisonment is prescribed, with fines serving as an alternative punishment.[1]

2. Companies Act, 2013

The Companies Act, 2013 provides a comprehensive regulatory framework governing corporate conduct and accountability. It imposes criminal liability on companies and their officers for offences such as fraud (Section 447), mismanagement, and non-compliance with statutory obligations.

The Act incorporates the principle of **"officer in default,"** thereby attributing liability to individuals responsible for corporate decision-making. This principle was judicially examined in *Sunil Bharti Mittal v. Central Bureau of Investigation*, where the Court emphasized that liability of directors is contingent upon their active role and criminal intent.[2]

3. Other Relevant Statutes

Corporate criminal liability is further governed by several special statutes:

- Prevention of Corruption Act, 1988 – Addresses bribery and corruption involving corporate entities
- Prevention of Money Laundering Act, 2002 – Penalizes laundering of illicit funds
- Negotiable Instruments Act, 1881 – Governs cheque dishonour and corporate financial liability
- Information Technology Act, 2000 – Deals with cyber offences and digital fraud

The multiplicity of statutes demonstrates that corporate criminal liability in India is sector-specific and decentralized, necessitating harmonization for effective enforcement.

Corporate Offences under Indian Law

Corporate offences refer to unlawful acts committed by companies during the course of business operations. These offences are typically categorized as white-collar crimes, characterized by deceit, concealment, and abuse of trust for financial gain.

1. Economic Offences

These include:

- Fraud and misrepresentation
- Insider trading
- Tax evasion

Such offences undermine financial integrity and investor confidence.

2. Environmental Offences

Corporations may incur liability for:

- Pollution and ecological damage
- Non-compliance with environmental regulations

These offences highlight the tension between industrial growth and environmental sustainability.

3. Labour and Industrial Offences

These include:

- Violation of labour welfare laws
- Workplace safety negligence

Such offences affect employee rights and industrial relations.

4. Financial and Cyber Offences

These include:

- Money laundering
- Cyber fraud and data breaches

With technological advancement, cyber-related corporate offences are rapidly increasing.

Comparative Analysis: Corporate Criminal Liability vs Corporate Offences

Basis	Corporate Criminal Liability	Corporate Offences
Meaning	Legal principle fixing responsibility	Actual criminal acts committed
Nature	Doctrinal and conceptual	Substantive offences
Focus	Attribution of liability	Nature of crime

Basis	Corporate Criminal Liability	Corporate Offences
Application	Based on legal theories (vicarious, identification)	Based on statutory provisions
Objective	Determination of accountability	Definition of punishable conduct

Key Distinction:

Corporate criminal liability constitutes the juridical mechanism of attribution, whereas corporate offences represent the substantive acts triggering such liability.

Judicial Approach in India

The Indian judiciary has played a pivotal role in evolving the doctrine of corporate criminal liability. Courts have progressively recognized that corporations can possess criminal intent through their human agents.

In *Iridium India Telecom Ltd. v. Motorola Inc.*, the Supreme Court held that the **mens rea of the "directing mind"** of a corporation can be attributed to the company itself.[3]

Further, judicial decisions have clarified that:

- Corporations can be prosecuted for offences involving intent
- Directors are not automatically liable; liability depends on role, responsibility, and intent
- The "person in charge" principle determines individual accountability

Courts frequently apply:

- Attribution (Identification) Theory
- Vicarious Liability
- Alter Ego Doctrine

Challenges in Corporate Criminal Liability

Notwithstanding the significant doctrinal and judicial advancements, the practical enforcement of corporate criminal liability in India continues to face several

structural and conceptual challenges. These challenges impede the effective realization of corporate accountability and necessitate critical evaluation.

1. Attribution of Mens Rea

One of the most fundamental challenges lies in attributing *mens rea* (criminal intent) to a juristic entity. Since a corporation lacks physical existence and consciousness, the identification of intent must be derived from its human agents.

The Supreme Court of India, in *Iridium India Telecom Ltd. v. Motorola Inc.*, attempted to resolve this issue by applying the "directing mind and will" doctrine, whereby the mental state of key managerial personnel is imputed to the corporation.[1]

However, in large corporations with decentralized decision-making structures, determining whose intent constitutes the "directing mind" remains highly complex. This creates ambiguity and inconsistency in judicial outcomes.

2. Punishment Constraints

Another significant limitation arises from the nature of punishments under criminal law. Corporations, being artificial persons, cannot be subjected to imprisonment, which is a primary mode of punishment under penal statutes.

In *Standard Chartered Bank v. Directorate of Enforcement*, the Supreme Court held that corporations may be punished with fines even where imprisonment is mandatory.[2]

While this ruling ensures that corporations do not escape liability, it simultaneously raises concerns regarding the adequacy and deterrent value of monetary penalties, particularly for large multinational corporations with substantial financial resources.

3. Diffused Corporate Structure

Modern corporations are characterized by complex organizational hierarchies, involving multiple layers of management, subsidiaries, and cross-border operations. This diffusion of authority creates significant challenges in identifying the individuals responsible for criminal conduct.

The principle of vicarious liability is not automatically applicable in criminal law, as reaffirmed in *Sunil Bharti Mittal v. Central Bureau of Investigation*, where the Court held that liability of directors must be based on specific evidence of active involvement and intent.[3]

Consequently, the fragmented nature of corporate decision-making often leads to evasion of accountability, as responsibility is dispersed across multiple actors.

4. Enforcement Deficiencies

Effective enforcement of corporate criminal liability is further hindered by institutional and procedural limitations. Investigative agencies often face:

- Lack of technical expertise in handling complex financial crimes
- Procedural delays in prosecution
- Inadequate coordination among regulatory bodies

These deficiencies weaken the deterrent effect of corporate criminal law and reduce the likelihood of successful prosecution, thereby undermining public confidence in the legal system.

Suggestions and Reforms

In light of the above challenges, there is a pressing need for comprehensive reforms to strengthen the framework of corporate criminal liability in India.

1. Compliance-Based Liability Models

The introduction of compliance-oriented frameworks can incentivize corporations to adopt robust internal controls. Liability may be mitigated where companies demonstrate due diligence and effective compliance mechanisms, thereby promoting a culture of self-regulation.

2. Strengthening Corporate Governance

Enhancing corporate governance standards through stricter disclosure norms, independent audits, and board accountability can significantly reduce instances of

corporate misconduct. The role of independent directors and audit committees must be reinforced.

3. Enhanced Monetary Penalties and Disgorgement

Given the limitations of custodial punishment, the imposition of substantial monetary penalties, coupled with disgorgement of unlawful gains, can serve as an effective deterrent. Penalties must be proportionate to the scale and impact of the offence.

4. Adoption of Strict Liability in High-Risk Sectors

In sectors such as environmental regulation, financial markets, and public health, the adoption of strict liability can ensure accountability without the need to prove mens rea, thereby facilitating enforcement.

5. Enactment of a Uniform Legal Framework

The current framework is fragmented across multiple statutes. A comprehensive and consolidated legislation on corporate criminal liability would ensure uniformity, clarity, and effective enforcement.

Conclusion

Corporate criminal liability in India has undergone a substantial transformation, evolving from initial judicial reluctance to a well-established legal doctrine aligned with global standards. The recognition of corporations as criminally accountable entities reflects the changing dynamics of modern economic and industrial systems.

However, persistent challenges—particularly those relating to attribution of mens rea, limitations in punishment, structural complexities, and enforcement inefficiencies—continue to hinder its effective implementation.

A coherent and unified legal framework, supported by robust enforcement mechanisms and progressive judicial interpretation, is essential to address the complexities of corporate crime. Strengthening corporate criminal liability will not

only enhance accountability but also promote ethical business practices, transparency, and sustainable economic development.

Bibliography

1. K.D. Gaur – Criminal Law: Cases and Materials
2. Ratanlal & Dhirajlal – The Indian Penal Code
3. Avtar Singh – Company Law
4. Singh, P.K. – Corporate Criminal Liability in India
5. Banerji, O. – Criminal Liability of Corporate Officials
6. Corporate Criminal Liability – A Comparative Analysis
7. Lawyered – Corporate Criminal Liability in India
8. Khurana & Khurana – Corporate Criminal Liability & Implications
9. Aarna Law – Understanding Corporate Criminal Liability
10. Lawctopus – Corporate Criminal Liability
11. Journal CRA – Laws relating to Corporate Criminal Liability

Strengthening Social Harmony in Assam: Peace Initiatives of the Kasturba Gandhi National Memorial Trust

Dr. Amreen Razzak
Assistant Professor
Assam Downtown University

Abstract:
Assam, a region in India's northeastern part, is known for its rich ethnic diversity, many languages, and complex history. While these elements add to the region's cultural depth, they have also led to social and political tensions and ongoing conflicts. Problems like identity, migration, rebellion, and uneven development have often broken down social unity, making it essential to find lasting ways to build peace. In this situation, civil society groups have become important in bringing people together and helping to resolve conflicts at the local level. Among these groups, the Kasturba Gandhi National Memorial Trust (KGNMT) has been a key player in promoting harmony in Assam by using Gandhi's principles of peace and development.

This article looks at the peace efforts of KGNMT, focusing on its commitment to non-violence, active community involvement, and inclusive growth. Based on Gandhi's values like non-violence, truth, and the welfare of all, the Trust has carried out various activities to tackle both the direct and deeper reasons behind conflicts. These activities include forming local peace groups, involving women as peace volunteers, training young people through programs, and organizing

peaceful marches and cultural events. Moreover, the Trust's efforts to improve livelihoods and boost economic independence also help in addressing the material causes of conflict, which is vital for long-term stability. The article suggests that KGNMT's method is unique because it combines strong moral values with real-world actions. This allows the Trust to gain trust and support from various communities. Its activities not only help to resolve conflicts but also encourage open discussions, better understanding, and shared responsibility for peace. By supporting underrepresented groups, especially women and rural communities, the Trust creates a peaceful approach that is both inclusive and sustainable.

In conclusion, the work of KGNMT in Assam shows that Gandhi's methods are still relevant today in dealing with modern conflicts. The study highlights the importance of local, community-based solutions in overcoming deep-rooted social divisions. It also provides useful lessons for those working on peace-building in areas that are similarly diverse and prone to conflict.

Keywords: Social Harmony, Kasturba Gandhi National Memorial Trust, Peace-building, Gandhian Philosophy,Women Empowerment, Community Participation, Conflict Resolution

Introduction

Assam holds an important strategic and cultural place in India's northeastern part. The state is home to many different ethnic groups, languages, and religions, which makes it one of the most varied regions in the country. While this mix brings richness to Assam's society, it has also caused disputes about identity, resources, and political rights. The mix of old issues, people moving from one place to another, differences in wealth, and political actions has led to periods of unrest, including rebel groups and ethnic fights. These conflicts have disturbed social peace and slowed the region's growth in areas like education and economy.

Traditional methods used by the government to solve these problems, such as using security forces and administrative changes, have not been very effective in dealing with the main causes of the issues. Because of this, there is more awareness of how civil society groups can help the government by encouraging discussion, building trust, and involving local people. Among these groups, the Kasturba Gandhi National Memorial Trust (KGNMT) is known for its long-term and comprehensive way of working towards peace. Founded in 1945 to honor Kasturba Gandhi, the Trust follows the ideas of Mahatma Gandhi, such as non-violence, honesty, and helping others. In Assam, KGNMT has created several programs to improve social harmony, especially in areas where conflicts often happen. This article looks at these programs, examines their methods, their results, and what they mean for achieving peace in places with many different cultures.

Historical Background and Philosophical Foundations

The Kasturba Gandhi National Memorial Trust was created after India gained independence, showing the ideas of Mahatma Gandhi about a fair and equal society. It was set up to carry on Kasturba Gandhi's work, especially helping rural women and people who are not well-off. The main goals of the Trust are to support education, health, independence, and fairness in society. A big part of the Trust's belief is the Gandhian idea of Sarvodaya, which means the well-being of everyone. This idea pushes for inclusion and the good of the whole community, which is especially important where there are social differences. The Trust also follows Gandhi's principles of non-violence and truth, which guide their efforts to bring peace.

In practice, these ideas mean working closely with people at the local level, involving the community, and leading through moral strength. Instead of telling

people what to do from above, the Trust helps individuals and communities find their own ways to solve problems. This is especially helpful in places like Assam, where outside help often doesn't work because it doesn't match local needs. The situation in Assam is complex with many historical and current issues. A main source of tension is how people see their identity, especially regarding migration and demographics. Migrants coming from inside and outside India have caused worries about protecting culture, sharing resources, and getting fair treatment.

Ethnic conflicts have also been a big part of Assam's past. Different groups have called for more power, recognition, and rights, sometimes leading to violence. Also, groups fighting for independence have made the area unstable, creating fear and suspicion. Economic issues make these problems worse. Even though Assam has a lot of natural resources, it still deals with high unemployment, lack of development, and unequal distribution of wealth. These problems often mix with identity politics, making conflicts even more intense.

Peace-building in such a situation needs a plan that covers both the immediate causes and deeper reasons for conflict. It is in this challenging environment that the Kasturba Gandhi National Memorial Trust has been working to bring peace. One major effort by the Trust in Assam is setting up local peace committees. These groups are made up of people from different communities, including women, young people, and leaders. By bringing people together, the committees help in talking and understanding each other. The way these committees work is very important. Unlike from-the-top solutions, they give the community ownership of the peace process. Members help find problems, talk things out, and come up with solutions. This not only helps settle issues but also makes people feel responsible for each other. These committees also help connect communities with local

leaders, making communication better and reducing misunderstandings. Their work has helped stop conflicts from getting worse in many areas.

Another important part of the Trust's work is involving women in peace-building. They have trained women volunteers called Shanti Sevikas who act as peace workers in their communities. These women promote non-violence and harmony in their places. Women's involvement in peace efforts has many benefits. They often know the community well and can influence social situations in quiet but effective ways. Their presence also brings more people into the peace process, making it more inclusive. Shanti Sevikas do various things like helping to resolve conflicts, spreading awareness, and supporting people who have been hurt. Their role is especially important in areas where people don't trust formal structures. By being trusted and kind, they help bring people together and promote healing.

KGNMT uses peaceful ways to bring people together and promote peace. They organize events like peace marches, public meetings, and awareness campaigns to share messages of unity and non-violence. These activities let people in the community get involved directly, encouraging them to talk and think about peaceful solutions. Peace marches are especially strong symbols of people coming together for harmony. They bring people from different backgrounds together, showing support and shared values. These events help fight against ideas of division and conflict, showing that living peacefully is possible and better.

KGNMT believes that young people are important in creating a better future. They offer training programs and peace camps that teach leadership, conflict resolution, and how to help the community. These programs are not just about learning in class; they also include hands-on activities that let youth take part actively. By

involving young people in positive activities, the Trust helps them use their energy in helpful ways.

The long-term effect of these efforts is creating a generation that values peace and knows how to keep it. In places where there has been conflict, this is especially important, as young people are often influenced by radical ideas. Cultural Interventions and Social Integration plays a big part in how people see themselves and each other. KGNMT uses cultural activities to help people connect and live together peacefully. They do things like folk performances, community festivals, and art to show shared traditions and values. These activities are especially helpful in Assam, where culture is deeply connected to daily life. By focusing on common ground instead of differences, these programs reduce misunderstandings and help people feel they belong.

Economic problems can often lead to conflict. KGNMT helps people improve their lives through job training, small businesses, and support for farming. These efforts make people more self-reliant and less dependent on others. By improving economic conditions, the Trust helps cut down on one of the main causes of conflict. When people have stable jobs, they are less likely to take part in harmful actions.

Along with long-term projects, KGNMT helps during emergencies like floods and violence. They provide basic supplies, medical help, and emotional support. These actions not only help people in need right away but also show the Trust is reliable and committed. Being there for people during tough times builds trust and strengthens community connections.

Impact and Outcomes

The effect of KGNMT's work in Assam is quite big. At the community level, there has been a decrease in conflicts and more conversations. Involving women and youth has made peace efforts more inclusive and widely supported. The Trust's work has also shifted how people think and feel. Communities that used to be divided are now talking constructively, creating a culture of living together. While it's hard to measure the exact effect, people say KGNMT's efforts have made a real difference in bringing people together.

Challenges and Limitations

KGNMT faces several problems. It is not having enough resources limits how much they can do. Working in areas where conflict is common also puts volunteers and staff in danger.Also, the complex political situation in Assam makes peace efforts face resistance from those who have power. Tackling deep issues needs ongoing work with many people involved.

Contemporary Relevance and Policy Implications

The experience of KGNMT in Assam gives useful lessons for peace efforts elsewhere. Its focus on getting people involved from the bottom up, being inclusive, and avoiding violence can be used in different situations. Policymakers can learn from these examples to create better strategies. Including groups like civil society in peace efforts can make them more effective. Also, giving women and youth a bigger role should be a top priority.

Conclusion

The Kasturba Gandhi National Memorial Trust has shown that lasting peace can be achieved by using inclusive, participatory, and ethical methods. Their work in Assam shows how important it is to deal with both the immediate problems and

the deeper reasons behind conflict. By socializing Gandhian values with real-world strategies, the Trust has developed a peace-building model that is both meaningful and successful. As societies across the globe face growing divisions, the experiences from Assam remind us of the lasting power of non-violence, communication, and active community involvement in creating a more peaceful future.

Reference:

1. Kasturba Gandhi National Memorial Trust. (1945). Founding principles and objectives of the Kasturba Gandhi National Memorial Trust. Kasturbagram, Indore.
2. Kasturba Gandhi National Memorial Trust. (1962). Kasturba memorial. Kasturba Gandhi National Memorial Trust.
3. Kasturba Gandhi National Memorial Trust. (n.d.). About the Trust. Retrieved from official website.
4. Kasturba Gandhi National Memorial Trust. (n.d.). Appeal for donation and institutional vision document. Kasturbagram, Indore.
5. Kasturba Gandhi National Memorial Trust. (n.d.). Matri Shakti: Concept of Shanti Sena and women empowerment. Kasturbagram, Indore.
6. Manglik, R. (2023). Gandhian approach to peace and conflict resolution. EduGorilla Publication.
7. Misra, R. P., & Gopal, D. (Eds.). (2018). Rediscovering Gandhi: Conflict resolution and peace building (Vol. 9). Concept Publishing Company.
8. Sharma, A. (Ed.). (2007). Gandhian way: Peace, non-violence and empowerment. Academic Foundation.

9. Mishra, A. D., Kumar, P., & Tater, S. R. (Eds.). (2011). Revisiting Gandhi. Abhijeet Publications.
10. Upadhyaya, P., & Kumar, S. S. (Eds.). (2014). Peace and conflict: The South Asian experience. Cambridge University Press.
11. Gandhi Peace Foundation. (1985). Gandhi Marg (Vol. 7). Gandhi Peace Foundation.
12. Parekh, B. (1997). Gandhi: A very short introduction. Oxford University Press.
13. Gandhi, M. K. (2001). The story of my experiments with truth. Navajivan Publishing House.

A Critical Review of Digital Interventions for Suicide Prevention and Youth Mental Health: Is India Ready

Ambareen Abdullah
University of Lucknow, Uttar Pradesh

Manas Bajpai
Phd Scholar, University of Lucknow, Uttar Pradesh

Abstract:

Youth suicide is an escalating public health issue, with India documenting elevated incidence of student suicides associated with scholastic stress, socio-economic constraints, and inadequate access to mental health services. With about 0.29 psychiatrists per 100,000 individuals, traditional services are inadequate to satisfy demand. Digital interventions, including mobile health (mHealth) applications, online counseling, and smartphone-based crisis aids, have arisen worldwide as scalable options to address this treatment gap. Although these techniques demonstrate potential in diminishing suicidal ideation and enhancing help-seeking behavior, the majorities have been created within Western frameworks and lack cultural adaptation for India.

This paper offers a systematic scoping assessment of research on digital suicide prevention strategies targeting youth aged 13 to 29. Literature was sourced from PubMed, PsycINFO, Scopus, Google Scholar, and grey literature for the years 2000 to 2024. The studies underwent theme analysis to evaluate their applicability, effectiveness, and contextual challenges. The assessment identifies three primary deficiencies: the absence of suicide-specific digital tools in India, the restricted

scalability of current projects, and inadequate consideration of cultural and ethical considerations, including stigma, privacy, and linguistic variety. Although initiatives such as SHARP and PracticePal demonstrate feasibility, they predominantly focus on depression and anxiety rather than suicidality.

The swift expansion of smartphones in India presents a chance to create accessible, culturally attuned, and socially responsible digital solutions. Integrating these tools with health and education systems, while incorporating participatory design with young users, could markedly improve suicide prevention initiatives and enhance teenage mental health outcomes.

Keywords: Digital Mental Health Interventions, Suicide prevention; Youth.

Introduction

Suicide is a predominant cause of death among youth globally and continues to be a significant public health issue. The World Health Organization (WHO) estimates that more than 703,000 individuals die by suicide each year, making it the fourth greatest cause of death among individuals aged 15 to 29 years (WHO, 2019). In India, student suicides represent approximately 8% of all incidents, highlighting the critical need for preventive strategies aimed at young populations (National Crime Records Bureau [NCRB], 2020). Academic pressures, socio-economic disparities, and inadequate mental health resources intensify susceptibility, particularly among students in medicine, engineering, and competitive examinations (Chahal et al., 2019; Kumar et al., 2013).

Notwithstanding the severity of this crisis, access to prompt, evidence-based remedies remain restricted. India possesses merely 0.29 psychiatrists per 100,000 individuals, in stark contrast to the global median of nine (WHO, 2016). Conventional mental health interventions are inadequate to bridge this gap. Digital interventions, such as mobile health (mHealth), online therapy platforms, and smartphone applications, have emerged as effective, scalable alternatives to provide mental health support in resource-limited settings (Ben-Zeev et al., 2015).

These technologies provide real-time monitoring, crisis intervention, and self-care resources, while also overcoming obstacles such as stigma, geographical distance, and workforce deficiencies (Aggarwal, 2012; WHO, 2011).

Increasing global data substantiates the effectiveness of digital mental health therapies in mitigating depression, anxiety, and suicidality. Randomized controlled studies (RCTs) indicate that mobile-based interventions can diminish suicide ideation, bolster coping mechanisms, and boost continuity of care (Torok et al., 2019; Kennard et al., 2018). However, most current applications are developed for Western audiences, lacking adequate cultural adaptation for South Asian environments. In India, where smartphone usage is anticipated to surpass 829 million users, there exists considerable potential to utilize digital platforms for advancing juvenile mental health and suicide prevention (Newzoo, 2022).

This research provides a critical analysis of international and national evidence about digital interventions for suicide prevention, focusing specifically on their relevance and applicability to Indian youth. The review seeks to identify strengths, deficiencies, and future trajectories to guide the creation of culturally attuned, technology-driven initiatives that may mitigate suicide risk and enhance young well-being.

Statement of the Problem

Suicide among adolescents is an escalating global issue, with digital technology providing novel and scalable avenues for prevention. Although numerous interventions have demonstrated potential globally, their efficacy relies on cultural adaption and systemic integration. In India, the increasing rates of young suicide coincide with insufficient mental health resources, and most digital solutions are not explicitly tailored for suicide prevention, resulting in a disparity between technological capabilities and tangible outcomes.

A comprehensive assessment is necessary to integrate current evidence, assess its applicability to the Indian context, and inform the creation of culturally appropriate, morally robust, and scalable digital methods for suicide prevention.

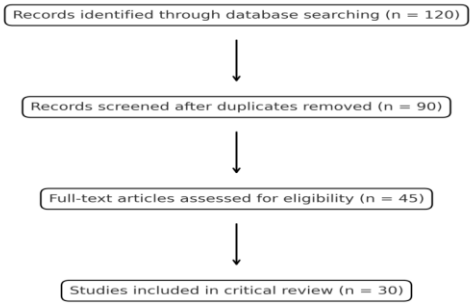
Methodology

This systematic scoping critical review consolidates international and Indian literature regarding digital interventions aimed at preventing suicide among youth. A systematic search approach was implemented to guarantee thorough coverage of pertinent literature. Databases such as PubMed, PsycINFO, Scopus, and Google Scholar were queried for peer-reviewed publications published from 2000 to 2024. Grey literature, encompassing official papers and publications from non-governmental organizations, was also examined. The keywords utilized in conjunction were: "digital intervention," "mobile health," "suicide prevention," "youth mental health," "India," and "cross-cultural psychiatry."

Studies were incorporated if they addressed adolescents or young adults (ages 13–29), concentrated on suicide prevention or associated outcomes (suicidal ideation, attempts, or self-harm), and employed digital, mobile, or technology-enabled delivery methods. The exclusion criteria included programs that did not address suicidality, solely descriptive studies without intervention results, and studies without methodological rigor. Reference lists of included studies were manually examined to locate supplementary publications.

Data extraction and thematic synthesis were conducted using a thematic synthesis approach. Global and Indian studies were classified into themes: epidemiological evidence, impediments to care, forms of digital interventions, and effectiveness. Methodological limits, cultural variables, and ethical considerations were meticulously addressed in the adaptation of digital tools across many contexts. The review examined the applicability of international evidence to India, focusing on identifying contextual disparities and prospective avenues for culturally sensitive, technology-driven interventions.

Fig.1.The following is a flow diagram illustrating the literature search and selection procedure



A Critical Review

1. ***Worldwide Epidemiology of Adolescent Suicide:***

Internationally, suicide rates among teenagers and young adults have surged, constituting a significant public health concern. Research from American higher education institutions, including the Big Ten Student Suicide Study and subsequent analyses, indicated that while university students exhibit marginally lower suicide mortality rates compared to their age-matched counterparts, the prevalence of suicidal ideation and attempts remains alarmingly elevated (Silverman et al., 1990; Schwartz, 2011). According to the SEYLE cluster-randomized trial conducted in Europe, widespread school-based suicide prevention programs can dramatically lower adolescent suicidal thoughts and actions (Wasserman et al., 2015). Research from Australia and China corroborates the efficacy of online psycho-educational programs in alleviating suicidal ideation among university students (Han et al., 2018). These findings collectively underscore the dual characteristics of student populations: although they are at

increased risk, they also offer organized settings conducive to preventive measures.

2. ***The Indian Context: Educational Pressure and Systemic Weaknesses****:*

In India, student suicide has emerged as a significant social and health concern, particularly prevalent among aspirants of medical, engineering, and competitive examinations (Chahal et al., 2019; Waseem, 2023). Psychiatric epidemiology research in Uttar Pradesh has suggested a prevalence of 3–7% for psychiatric problems among urban young (Dube, 1970; Sethi et al., 1974). Academic burden, uncertainties over future jobs, and insufficient psychosocial assistance intensify suicide risk factors among teenagers and young people. The scarcity of qualified mental health specialists exacerbates these pressures India has fewer than one psychiatrist per 300,000 individuals, in contrast to the global median of nine per 100,000 (WHO, 2016). Notwithstanding the initiation of the National Suicide Prevention Strategy in 2022, the lack of cohesive institutional frameworks persists in hindering substantial advancement.

3. Digital ***Pathways in Suicide Prevention: Global Progress:***

The use of digital technologies into mental health care has created new opportunities for suicide prevention. Interventions utilizing ecological momentary assessment (EMA), safety planning applications, and mobile crisis response have demonstrated potential in decreasing relapse rates and improving help-seeking behavior (Ben-Zeev et al., 2015; Kennard et al., 2018). The Computerized Adaptive Screen for Suicidal Youth (CASSY) exhibited robust predictive validity for assessing suicide risk in teenagers attending emergency rooms (King et al., 2021). Outside clinical settings, extensive digital initiatives, exemplified by Australia's Sources of Strength program, demonstrate how community and school collaborations can be enhanced through online delivery methods (Calear et al., 2016).

Notwithstanding these advancements, systematic studies indicate that outcomes are inconsistent: certain therapies demonstrate substantial reductions in suicidal thoughts, while others show negligible changes (Torok et al., 2019). The inconsistencies underscore the necessity of contextual customization, particularly for low- and middle-income countries (LMICs), where digital disparities and cultural obstacles may influence adoption.

4. *Suicide Prevention in India: Contemporary Evidence and Digital Innovations:*

India's research base for suicide prevention is constrained, encompassing interventions from school-based programs to family-centered and tele-medice models. The SPIRIT Integrated Suicide Prevention Programme in Gujarat assessed a multi-faceted strategy that included curriculum-based teaching, gatekeeper training, and referral channels, demonstrating initial promise but encountering scalability issues (Pathare et al., 2020). The FASE study in Kerala evaluated an Attachment-Based Family Therapy paradigm for persons exhibiting self-harm, underscoring the significance of family engagement while being resource-intensive and non-digital (Devassy et al., 2022).

Remote modalities, including telephone-based psychosocial support studies in Bangalore and Delhi, exhibited viability but were deficient in the immediacy and scale attainable via smartphone-based solutions (Sreedaran et al., 2021). Recent projects such as SHARP (Rodriguez-Villa et al., 2021), PracticePal, and Kanuri et al.'s (2019) digital treatments for college students demonstrate the viability of mobile-based mental health solutions. Nevertheless, these interventions predominantly focus on depression, anxiety, or relapse prevention, whereas suicide-specific applications remain lacking. Therefore, three significant gaps remain in the Indian context are:

- Digital tools specifically designed for suicide prevention are inadequately developed. The available applications predominantly concentrate on sadness and anxiety.
- Restricted scalability. Most initiatives are still in pilot phases and have not been incorporated into national programs.
- Cultural and ethical supervision. Digital technologies seldom include linguistic diversity, privacy issues, or stigma-related obstacles, which are essential for involvement.

India's swift escalation in smartphone penetration from the 45th to the 2nd largest market worldwide between 2017 and 2022 (Newzoo, 2022) presents substantial potential for suicide prevention via digital platforms. Customized solutions that integrate global best practices with cultural awareness and ethically conscious practices could substantially alleviate the suicide burden among Indian youth. Most digital interventions are designed within Western contexts and presuppose an individualistic approach to help-seeking. In collectivist cultures like India, shame, language diversity, and varying concepts of privacy diminish their relevance (Ghosh et al., 2021). Consequently, tools must be re-contextualized instead than being immediately transported.

Digital trials encounter significant attrition, brief follow-up periods, and varied outcomes, which restrict comparability and long-term evaluation (Torok et al., 2019). Ethical considerations regarding the recruitment of high-risk youth further limit large-scale investigations. Notwithstanding extensive smartphone accessibility (Newzoo, 2022) and nascent pilot programs (Rodriguez-Villa et al., 2021; Kanuri et al., 2019), India is deficient in suicide-specific, culturally tailored instruments. Deficiencies in digital literacy, societal stigma, and regulatory frameworks indicate that the nation is technologically capable yet culturally unprepared. Participatory and context-sensitive design is crucial.

2. Conclusions and Prospective Directions

This analysis highlights the potential and the constraints of digital interventions in suicide prevention for youth. Internationally, data suggests that mobile health applications, online psychoeducational programs, and app-based risk assessment systems can diminish suicidal ideation and improve access to care. Simultaneously, results are inconsistent, limited by methodological challenges including brief follow-up durations, participant attrition, and inconsistency in measuring techniques. Most of these interventions have predominantly been formulated in Western contexts, prompting questions regarding their applicability to varied cultural environments.

The epidemic of student suicides in India is exacerbated by severe academic pressures, inadequate access to professional mental health services, and enduring stigma. Although community-based and school-linked programs like SPIRIT and FASE offer significant insights, they predominantly operate in an analogue format and are limited in scale. Recent digital projects, such as SHARP and PracticePal, illustrate the viability of mobile interventions in mental health; yet they do not directly tackle suicidality. The lack of suicide-specific, culturally attuned internet resources underscores a key deficiency in India's prevention framework.

The path ahead involves tailoring digital interventions to the circumstances of Indian youth. This necessitates advancing from pilot initiatives to extensive, longitudinal assessments that can determine long-term efficacy, cost-effectiveness, and ethical protections. It also requires the integration of digital tools inside comprehensive health and education systems to guarantee continuity of treatment, while concurrently tackling cultural obstacles to engagement, like stigma and language diversity. The active participation of young individuals in co-designing solutions that mirror their lived experiences and requirements is fundamental to this process.

India is strategically positioned to utilize its growing internet infrastructure and youthful population to enhance suicide prevention efforts. Readiness is contingent not alone upon technology capability but also on cultural acceptability and systemic integration. By integrating global best practices with context-specific techniques, India can develop scalable, technology-driven methods that mitigate suicide risk and enhance resilience, thereby advancing the overarching objective of young mental health and well-being.

References

1. Thippaiah, S.M., Nanjappa, M.S., Math, S.B.: Suicide in India: A preventable crisis. Indian Journal of Medical Research 150(4), 324–327 (2019)
2. Pawar, R.: Accidental fatalities and suicides in India. National Crime Records Bureau, Ministry of Home Affairs, New Delhi (2019)
3. Patel, N.S., Choudhary, N., Choudhary, N., Yadav, V., Dabar, D., Singh, M.: A hospital-based cross-sectional investigation of suicidal poisoning in Western Uttar Pradesh. Journal of Family Medicine and Primary Care 9(6), 3010–3014 (2020)
4. Chahal, S., Nadda, A., Govil, N., et al.: Suicide fatalities among medical students, residents, and physicians in India over a decade (2010–2019): An exploratory study utilizing online news portals and the Google database. International Journal of Social Psychiatry 68(4), 718–728 (2022)
5. Kumar, S., Verma, A.K., Bhattacharya, S., Rathore, S.: Patterns in suicide rates and methodologies in India. Egyptian Journal of Forensic Sciences 3, 75–80 (2013)

6. Wasim, A.: Investigating the impact of academic stress and suicide ideation on mental health among coaching students: A cross-sectional study. International Journal of Science and Research 12(11) (2023)
7. World Health Organization: Global suicide rates in 2019. WHO, Geneva (2021)
8. Zeng, W., Chen, R., Wang, X., Zhang, Q., Deng, W.: Prevalence of mental health issues among medical students in China: A meta-analysis. Medicine 98(18), e15337 (2019)
9. Auerbach, R.P., Mortier, P., Bruffaerts, R., et al.: WHO World Mental Health Surveys International College Student Project: Prevalence and distribution of mental disorders. Journal of Abnormal Psychology 127(7), 623–638 (2018)
10. Murthy, R.S.: National Mental Health Survey of India 2015–2016. Indian Journal of Psychiatry 59(1), 21–26 (2017)
11. Bharat, S., Sethi, G. (eds.): Health and Wellbeing of India's Young People. Springer Nature Singapore, Singapore (2019)
12. Lakhan, R., Ekúndayò, O.T.: National Sample Survey Organization report: An estimation of the prevalence of mental illness and its correlation with age in India. Journal of Neurosciences in Rural Practice 6(1), 51–54 (2015)
13. Cherian, A.V., Armstrong, G., Sobhana, H., et al.: Mental health, suicidality, health, and social indicators among college students throughout nine Indian states. Indian Journal of Psychological Medicine (2024)
14. Rotenstein, L.S., Ramos, M.A., Torre, M., et al.: Prevalence of depression, depressive symptoms, and suicidal ideation among medical students: A systematic review and meta-analysis. JAMA 316(21), 2214–2236 (2016)

15. Desai, N.D., Chavda, P., Shah, S.: Prevalence and determinants of suicidal thoughts among undergraduate medical students at a medical institution in Western India. Medical Journal of the Armed Forces India 77(Suppl 1), S107–S114 (2021)
16. Khan, A., Aleem, S., Walia, T.: Survey research on happiness and well-being among Generation X, Generation Y, and Generation Z in the Indian context. Indian Journal of Positive Psychology 12(1) (2021)
17. United Nations Children's Fund: The State of the World's Children: Adolescence, an Epoch of Opportunity. UNICEF, New York (2011)
18. Vijayakumar, L.: Suicides resulting from exam failures and related governmental initiatives in India. The Lancet Regional Health – Southeast Asia 28 (2024)
19. Ransing, R., Arafat, S.M.Y., Menon, V., et al.: India's national suicide prevention strategy: Problems in execution and future directions. The Lancet Psychiatry 10(3), 163–165 (2023)
20. Metzendorf, M.-I., Wieland, L.S., Richter, B.: Mobile health (m-health) smartphone treatments for adolescents and adults with overweight or obesity. Cochrane Database of Systematic Reviews 2, CD013591 (2024)
21. Moshe, I., Terhorst, Y., Philippi, P., et al.: A meta-analytic assessment of digital therapies for depression treatment. Psychological Bulletin 147(8), 749–786 (2021)
22. Torok, M., Han, J., Baker, S., et al.: A systematic review and meta-analysis of randomized controlled trials on suicide prevention by self-guided digital interventions. The Lancet Digital Health 2(1), e25–e36 (2020)
23. Marshall, C.A., Crowley, P., Carmichael, D., et al.: Effectiveness of suicide safety planning interventions: A systematic review informing

occupational therapy practice. Canadian Journal of Occupational Therapy 90(2), 208–236 (2023)

24. Lehtimaki, S., Martic, J., Wahl, B., Foster, K.T., Schwalbe, N.: Systematic overview of evidence on digital mental health interventions for adolescents and young adults. JMIR Mental Health 8(4), e25847 (2021)
25. Mueller, A.S., Abrutyn, S., Pescosolido, B., Diefendorf, S.: The societal foundations of suicide. Frontiers in Psychology 12, 621569 (2021)
26. Kanuri, N., Arora, P., Talluru, S., et al.: Investigating the preliminary usability, acceptability, and feasibility of a digital mental health intervention for college students in India. International Journal of Psychology 55(4), 657–673 (2019)
27. Sreedaran, P., Beniwal, R.P., Chari, U., et al.: A randomized controlled trial evaluating telephone-based psychosocial therapies for individuals who have tried suicide. Indian Journal of Psychological Medicine 43(2), 144–149 (2021)
28. Grupp-Phelan, J., Horwitz, A., Brent, D., et al.: Management of suicide risk in the emergency department: A clinical protocol utilizing computerized adaptive screening. Journal of the American College of Emergency Physicians Open 5(2), e13132 (2024)
29. Wasserman, D., Hoven, C.W., Wasserman, C., et al.: School-based suicide prevention programs: The SEYLE cluster-randomized controlled trial. Lancet 385(9977), 1536–1544 (2015)
30. Kessler, R.C., Berglund, P., Demler, O., Jin, R., Merikangas, K.R., Walters, E.E.: Lifetime prevalence and age-of-onset distributions of DSM-IV disorders in the National Comorbidity Survey Replication. Archives of General Psychiatry 62(6), 593–602 (2005)

31. Gore, F.M., Bloem, P.J., Patton, G.C., et al.: Global burden of disease in young people aged 10–24 years. Lancet 377(9783), 2093–2102 (2011)
32. Mohr, D.C., Cuijpers, P., Lehman, K.: Supportive accountability: A framework for delivering human support to augment adherence to eHealth interventions. Journal of Medical Internet Research 13(1), e30 (2011)
33. Lee, E.H.: Review of the psychometric evidence of the Perceived Stress Scale. Asian Nursing Research 6, 121–127 (2012)

Socioeconomic Impact of the Mukhyamantri Mazi Ladki Bahin Yojana on Women in Maharashtra: An Analytical Assessment

Akshay Prabhakar Rajurkar
Research Scholar, Manipur international University, Ghari Imphal

Abstract

The 'Mukhyamantri Mazi Ladki Bahin Yojana' (MMLBY), introduced by the Government of Maharashtra in 2024, represents a massive transition toward unconditional Direct Benefit Transfers (DBT) aimed at empowering women. By providing a monthly stipend of ₹1,500 to eligible women, the scheme targets poverty alleviation, nutritional enhancement, and the recognition of unpaid domestic labor. This paper provides an analytical assessment of the MMLBY, synthesizing micro-level qualitative studies and macro-level quantitative surveys to evaluate its socio-economic impact. While the scheme successfully facilitates consumption smoothing, increases intra-household bargaining power, and stimulates local rural economies, its implementation has been hindered by severe bureaucratic friction, a "Time Tax," and digital exclusion during e-KYC verification. Furthermore, the immense fiscal burden of the scheme raises concerns regarding long-term macroeconomic sustainability. The study concludes that while the MMLBY acts as a vital safety net, structural integration with skill development and microcredit is required to transition beneficiaries from passive consumption to sustainable entrepreneurship.

Keywords: Mukhyamantri Mazi Ladki Bahin Yojana, Unconditional Cash Transfers, Women's Empowerment, Unpaid Care Work, Direct Benefit Transfer, Intra-household Bargaining, Maharashtra Economy.

Introduction

The discourse surrounding poverty alleviation, gender equity, and economic empowerment in the Global South has increasingly recognized direct cash transfer mechanisms as a foundational tool for expanding human agency. In India, despite recent macroeconomic milestones and a reported rise in the Female Labour Force Participation Rate (FLFPR) to 41.7% in 2023-24, structural inequalities continue to inhibit women's full economic integration. Deep-rooted social norms and the overwhelming burden of unpaid care work frequently leave women with little choice in their employment trajectories, effectively confining a massive proportion of the demographic to the informal sector or unpaid domestic labor.

Within this complex socio-economic landscape, the Government of Maharashtra introduced the 'Mukhyamantri Mazi Ladki Bahin Yojana' (MMLBY) during the 2024 state budget. Operationalized in July 2024, the scheme was engineered to transition the state's welfare architecture from conditional, in-kind subsidies to unconditional Direct Benefit Transfers (DBT). The overarching objective of the policy is to catalyze the economic independence of women, enhance household health and nutritional outcomes, and fortify women's decisive roles within the family unit. The MMLBY guarantees a monthly financial entitlement of ₹1,500 to eligible women aged 21 to 65 years who reside in households with an annual income not exceeding ₹2.5 lakh.

While ostensibly framed as a purely developmental intervention, the MMLBY is deeply embedded in the political economy of competitive welfarism, introduced shortly before the state assembly elections. The scheme witnessed an astronomical initial registration of over 2.43 crore women, laying bare a profound liquidity deficit among the state's female population, particularly in rural and semi-urban geographies. However, this massive scale of implementation immediately

precipitated an array of complex administrative, digital, and fiscal challenges. This report presents an exhaustive, theoretically grounded, and empirically rich analysis of the scheme.

Literature Review

To critically evaluate the MMLBY, the policy intervention must be situated within robust theoretical constructs. The most pertinent frameworks for this analysis include Amartya Sen's Capability Approach, feminist economic theories regarding intra-household bargaining, and the macroeconomic valuation of unpaid care work.

1. The Capability Approach and Cooperative Intra-Household Bargaining

Amartya Sen's Capability Approach posits that economic development must be assessed not merely by the maximization of household income, but by the expansion of substantive freedoms—the capabilities that permit individuals to lead lives they genuinely value. In the context of the MMLBY, the ₹1,500 monthly transfer transcends a simple income augmentation; it is a critical resource that theoretically translates into the "functioning" of improved nutritional intake, enhanced healthcare access, and elevated social mobility.

Furthermore, the socioeconomic impact of this liquidity injection is best understood through the Nash bargaining model of intra-household dynamics. Traditional, unitary models of the household operate on the assumption that resources are pooled and distributed altruistically among family members. However, cooperative bargaining models developed by feminist economists suggest that a household member's influence over financial and allocative decisions is directly proportional to their "threat point" or outside reservation utility. By providing an independent, state-guaranteed income stream directly into the Aadhaar-linked bank accounts of women, the MMLBY fundamentally alters this threat point. The direct benefit transfer bypasses traditional patriarchal gatekeeping, theoretically enhancing the woman's bargaining power and enabling

her to reallocate household expenditure toward female-preferred goods, such as children's education and familial healthcare.

2. The Monetization of the Care Economy

A critical macro-theoretical justification for the MMLBY lies in the systemic, historic undervaluation of women's unpaid care and domestic work. Evidence derived from the National Time Use Survey 2024 reveals a stark gender disparity in time allocation across India. Indian women spend an average of 305 minutes per day on unpaid domestic services and an additional 137 to 140 minutes on unpaid caregiving. In sharp contrast, men contribute a mere 86 to 88 minutes to domestic work and 74 to 75 minutes to caregiving.

This invisible labor acts as the foundational infrastructure that sustains the formal economy. Macroeconomic estimates suggest that if monetized at standard minimum wage rates, women's unpaid domestic and care work would account for approximately 15% to 17% of India's Gross Domestic Product (GDP), translating to a staggering ₹22.7 lakh crore. The International Labour Organization (ILO) further corroborates this, noting that 748 million people globally—708 million of whom are women—remain outside the formal labor force strictly due to uncompensated care responsibilities.

In an economy where the female workforce participation is historically constrained by this disproportionate burden of reproductive labor, unconditional cash transfers function as a quasi-recognition of the "Purple Economy". The MMLBY's monthly stipend of ₹1,500, while significantly below the actual replacement cost of market-based care services, acts as a sovereign acknowledgment of the economic value generated by housewives. Legal and academic interpretations increasingly view such direct transfers not as gratuitous "freebies," but as a structural compensatory mechanism that restores dignity and autonomy to women who are otherwise forced into total financial dependency upon male breadwinners.

3. Comparative Policy Context

The trajectory of the MMLBY mirrors the lifecycle of its ideological predecessor, the 'Mukhyamantri Ladli Behna Yojana' in the neighboring state of Madhya Pradesh. Both schemes were deployed as highly effective tools of political mobilization leading up to crucial state assembly elections, tapping into the expanding demographic and electoral power of the female electorate. Both states utilized remarkably similar targeting mechanisms (income thresholds, age brackets) and subsequently faced identical post-election fiscal realities, underscoring a vital broader national trend: while unconditional cash transfers to women are politically lucrative and socio-economically beneficial in the short term, their immense fiscal scale makes them highly vulnerable to aggressive administrative rationalization.

Objective of the Study

The primary objectives of this analytical assessment are formulated as follows:

1. To assess the reach of Mukhyamantri Mazi Ladki Bahin Yojana among women in Maharashtra.
2. To analyze beneficiaries' perceptions of the scheme's effectiveness.
3. To evaluate the scheme's contribution to women's empowerment and socio-economic development.

Hypotheses of the Study

The core hypotheses driving the empirical evaluation of the scheme are:

- **H_0 (Null Hypothesis):** There is no significant positive impact of the "Chief Minister Majhi Ladki Baheen" scheme on the socio-economic conditions of women beneficiaries.
- **H_1 (Alternative Hypothesis):** There is a significant positive impact of the "Chief Minister Majhi Ladki Baheen" scheme on the socio-economic conditions of women beneficiaries.

Research Methodology

This analytical assessment synthesizes data from multiple empirical studies, employing a mixed-methods (quantitative and qualitative) approach. Primary macro-level data is drawn from a purposive quota sample of 500 women across five distinct regions of Maharashtra (Vidarbha, Khandesh and Northern Maharashtra, Marathwada, Western Maharashtra, and Konkan), utilizing structured questionnaires and focus group discussions. Micro-level qualitative insights are derived from a localized case study of 30 tribal women in the Khed and Maval talukas of Pune district, utilizing simple random sampling and direct interview methods. Furthermore, to evaluate the macroeconomic multiplier effect, the study incorporates findings from a structured survey of 150 local business owners in Ahmednagar, Pune, and Nashik districts, which were analyzed using chi-square and one-sample proportion tests.

Findings and Analysis

Implementation Dynamics: Bureaucratic Friction and the Digital Divide

The efficacy of any large-scale social protection program is inextricably linked to the efficiency, transparency, and accessibility of its delivery mechanisms. The implementation of the Ladki Bahin Yojana has been characterized by massive initial demand, followed rapidly by severe administrative bottlenecks, digital exclusion, and a rigorous, sometimes flawed, rationalization process.

The Burden of the 'Time Tax'

Empirical field research in the tribal belts of Khed and Maval talukas exposes the severe administrative friction marginalized women faced when attempting to access the scheme. The application process demanded an extensive array of documentation, including income certificates, domicile proofs, Aadhaar linkages, and crucially, self-declarations executed on legal stamp paper. The sudden, state-wide surge in demand for stamp papers led to an acute artificial scarcity. As a result, 83% of the 30 tribal women surveyed encountered formidable hurdles during the application phase. The pursuit of a ₹1,500 monthly benefit imposed a

severe "Time Tax" and direct financial burden on these women, who frequently paid illicit premiums to agents and Setu Suvidha Kendras. The out-of-pocket expenditure merely to register ranged from ₹200 to ₹500, significantly eroding the net present value of the initial installments. Furthermore, the digitalization of the application process exacerbated existing socio-economic inequalities. Older women, particularly those over the age of 50, were structurally disadvantaged, relying heavily on overburdened and sometimes exploitative local bureaucratic nodes.

E-KYC Rationalization and Algorithmic Exclusion

As the immense fiscal burden became apparent, the government initiated a stringent Aadhaar-based e-KYC verification drive in late 2025 and early 2026. Approximately 86 lakh women were dropped from the scheme's roster, bringing the total number of valid recipients down to 1.57 crore by January 2026. A primary culprit for this mass exclusion was a poorly phrased, double-negative question embedded in the e-KYC portal: "No one in your family works for the government, right?". Millions of eligible rural women misunderstood the complex syntax and answered "Yes," leading to immediate disqualification.

Microeconomic Impact: Consumption Smoothing, Local Livelihoods, and Labor Markets

Economic theory dictates that the marginal propensity to consume is highest among lower-income brackets; thus, cash infusions in destitute households are immediately absorbed by subsistence needs.

Prioritization of Expenditures

A comprehensive macro-level analysis involving a purposive quota sample of 500 women provides a granular breakdown of fund utilization:

Expenditure Category	Percentage of Beneficiaries Prioritizing Funds	Economic Implication
Family Health & Nutrition	53%	Immediate human capital investment; protection against catastrophic medical costs.
Children's Education	45%	Long-term intergenerational mobility investment.
General Household Needs	25% - 28%	Pure consumption smoothing; buffering against localized food inflation.
Housing Improvement	17%	Micro-investments in physical living conditions.
Savings & Financial Security	10%	Creation of emergency financial buffers.
Personal Skill Development	8%	Direct investment in individual labor market competitiveness.

The transfer effectively prevents households from falling below the extreme poverty line but leaves very little surplus for actual capital formation. Only 18% of surveyed women reported any form of entrepreneurial advancement.

The Multiplier Effect on Local Economies and Labor Shifts

While individual capital formation may be slow, the aggregate infusion of capital into rural markets has generated a distinct macroeconomic multiplier effect. A study of 150 local business owners concluded that a significant majority of rural enterprises observed a measurable increase in customer spending correlating with the implementation of the MMLBY.

However, an unintended consequence emerged within the rural agricultural sector. The continuous provision of state-sponsored liquidity has raised the "reservation wage" of female agricultural laborers. With basic subsistence guaranteed, many women are increasingly opting out of grueling agricultural tasks, precipitating a localized shortage of agricultural labor and driving up operational costs for landowners.

Socio-Cultural Impacts and the Enhancement of Women's Agency

The direct routing of funds to women's bank accounts has demonstrably shifted intra-household power dynamics. According to the macro-level study, an impressive 63% of respondents reported a tangible increase in their autonomy and decision-making power within the family, with 28% characterizing this improvement as highly significant. Furthermore, 30% of the beneficiaries experienced a substantial boost in self-esteem and confidence. This financial autonomy reduces daily marital friction over money and mitigates risks of intimate partner violence linked to financial stress.

Additionally, 58% of respondents noted increased participation in community and social activities. However, 35% of women reported no change in gender-based discrimination within their communities, indicating that cash transfers alone cannot alter deeply embedded cultural biases without supplementary structural reforms.

Regional Disparities: The Geography of Welfare Penetration

The study highlights stark regional asymmetries in the scheme's penetration:

Geographic Region	Beneficiary Penetration Rate	Beneficiary Satisfaction Index	Structural and Infrastructural Context
Western Maharashtra	70%	75% (Highest)	Robust banking infrastructure, high digital literacy.

Geographic Region	Beneficiary Penetration Rate	Beneficiary Satisfaction Index	Structural and Infrastructural Context
Vidarbha	65%	70%	High agrarian distress necessitates urgent state support.
Konkan	63%	Moderate	Geographically challenging terrain.
Khandesh / North Maha.	60%	Moderate	Mixed demographics with significant tribal populations.
Marathwada	55%	Lowest	Drought-prone, severe deficit in digital infrastructure.

This illustrates the "Inverse Care Law," where regions historically plagued by chronic poverty (e.g., Marathwada) recorded the absolute lowest beneficiary penetration due to a lack of foundational internet and banking infrastructure.

Macroeconomic and Fiscal Implications: The Sustainability of Unconditional Welfare

The implementation of mass unconditional cash transfers places an enormous structural strain on the state's exchequer. When announced in the 2024-25 budget, the state provisioned ₹36,000 crore. However, unprecedented enrollment rapidly escalated the projected annual liability to an estimated ₹43,700 crore, forcing supplementary demands.

By the 2026-27 State Budget, facing a projected total public debt of ₹9.3 lakh crore, the administration presented a highly consolidated budget. The government slashed the MMLBY's allocation for 2026-27 by a massive 31%, bringing it down to ₹26,500 crore. Pre-election promises to increase the monthly stipend from ₹1,500 to ₹2,100 were indefinitely shelved. Critics argue that diverting tens of thousands of crores toward revenue expenditure risks "crowding out" essential

capital expenditure on infrastructure and health, potentially fostering a "dependency culture."

Synergies with Skill Development and Future Policy Paradigms

Recognizing that a ₹1,500 monthly stipend cannot single-handedly eradicate poverty, the Government of Maharashtra has integrated the Ladki Bahin demographic into the 'Lakhpati Didi' framework. The government aims to transition 25 lakh basic cash recipients into self-sustaining micro-entrepreneurs earning over ₹1 lakh annually. Furthermore, a highly progressive 'Single Women Policy' was announced in the 2026-27 budget to map the specific livelihood and social security challenges faced by widows, divorcees, and unmarried older women.

Conclusions and Recommendations

The 'Mukhyamantri Mazi Ladki Bahin Yojana' represents a profound intervention in the socio-economic fabric of Maharashtra. Based on the empirical findings, the study rejects the null hypothesis and concludes that the scheme has a significant positive impact on the socio-economic conditions and intra-household bargaining power of women beneficiaries. On a microeconomic level, it acts as a critical buffer against poverty and serves as a tangible recognition of invisible, unpaid care work. However, macroeconomically, the scheme exhibits significant fiscal vulnerabilities and was marred by exclusionary digital friction during implementation.

To ensure the scheme transcends a temporary consumption subsidy and evolves into a vehicle for permanent empowerment, the following strategic policy recommendations are proposed:

1. **Administrative Simplification:** Abandon reliance on linguistically confusing digital forms and physical stamp papers. Verification should rely on simplified, localized self-certification facilitated by Gram Panchayats.

2. **Inflation-Indexed Disbursals:** Legally link the ₹1,500 stipend to the Consumer Price Index (CPI) to maintain real purchasing power and prevent its devaluation.
3. **Mandatory Synergies with Microfinance:** Structurally link disbursals with the Maharashtra State Skill Development Society (MSSDS) and provide preferential access to low-interest microcredit via Self-Help Groups (SHGs).
4. **Targeted Regional Interventions:** Deploy specialized, mobile banking units in historically marginalized regions like Marathwada to counteract the "Inverse Care Law."
5. **Balancing Capital Expenditure:** Rigorously ring-fence critical capital expenditure in agriculture and infrastructure to ensure welfare transfers do not substitute long-term industrial growth.

References

1. Ambler, K., & De Brauw, A. (2017). The Impacts of Cash Transfers on Women's Empowerment: Learning from Pakistan's BISP Program (Social Protection and Labor Discussion Paper No. 1702). World Bank.
2. Dasgupta, P. (2013). Essays on intra-household bargaining power of women in India. VTechWorks.
3. García, J. L. (2025). Guaranteed Employment in Rural India: Intra-Household Labor and Resource Allocation Consequences (NBER Working Paper No. 33494). National Bureau of Economic Research.
4. Government of India. (2026). Expenditure Budget 2026-2027: Gender Budget Statement. Ministry of Finance.
5. Government of Maharashtra. (2026). Economic Survey of Maharashtra 2025-26. Directorate of Economics and Statistics, Planning Department.
6. Kumar, S. (2024). Cash Transfers as an Instrument for Poverty Alleviation and Women's Empowerment in India. Observer Research Foundation (ORF) Issue Briefs.

7. Peters, C., et al. (2019). What works to enhance women's agency: Cross-cutting lessons from experimental and quasi-experimental studies. The Abdul Latif Jameel Poverty Action Lab (J-PAL).
8. PRS Legislative Research. (2025). Maharashtra Budget Analysis 2025-26. PRS India.
9. Sahoo, S., Sarkar, K. K., & Kumar, A. (2024). Valuation of Unpaid Household Activities in India. Economic and Political Weekly, 59(39).
10. Sharma, A., & Gupta, R. (2024). What determines women empowerment in India? A capability-based approach. Cogent Social Sciences (Taylor & Francis).

राज्य प्रशासन और नीति निर्माण में पुलिस की भूमिका एवं चुनौतियां

रंजना बागड़े
राजनीति विज्ञान एवं लोकप्रशासन अध्ययनशाला उज्जैन (म .प्र.)

शोध सारांश:
शोध-पत्र राज्य प्रशासन एवं लोक नीति निर्माण की प्रक्रिया में पुलिस की भूमिका का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। परंपरागत रूप से पुलिस को केवल कानून-व्यवस्था बनाए रखने वाली संस्था के रूप में देखा जाता रहा है, किंतु आधुनिक लोकतांत्रिक राज्य में पुलिस नीति-निर्माण, क्रियान्वयन, सामाजिक स्थिरता और सुशासन की एक महत्वपूर्ण इकाई है। यह अध्ययन भारतीय संदर्भ में राज्य पुलिस की प्रशासनिक, विधिक तथा नीतिगत भूमिका का समालोचनात्मक मूल्यांकन करता है। इस प्रकार, राज्य प्रशासन और नीति-निर्माण की प्रक्रिया में पुलिस एक केंद्रीय संस्था के रूप में उभरती है। उसकी कार्यकुशलता, निष्पक्षता और उत्तरदायित्व राज्य शासन की गुणवत्ता को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। अतः प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य राज्य प्रशासन एवं लोक नीति निर्माण में पुलिस की भूमिका का विश्लेषण करना है, जिससे यह स्पष्ट हो सके कि आधुनिक लोकतांत्रिक राज्य में पुलिस का महत्व कितना व्यापक और बहुआयामी है।

प्रस्तावना:
भारत एक संघीय लोकतांत्रिक गणराज्य है, जहाँ "पुलिस" राज्य सूची, सातवीं अनुसूची का विषय है। अतः प्रत्येक राज्य में पुलिस प्रशासन राज्य सरकार के अधीन कार्य करता है। भारत संघात्मक लोकतांत्रिक राज्य है, जिसकी प्रशासनिक संरचना केंद्र और राज्यों के मध्य शक्तियों के विभाजन पर आधारित है। भारतीय संविधान की सातवीं अनुसूची के अंतर्गत "पुलिस" राज्य सूची का विषय है, अतः राज्य प्रशासन में पुलिस की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण और निर्णायक है। राज्य की शांति, कानून-व्यवस्था, आंतरिक सुरक्षा तथा नागरिक अधिकारों की रक्षा का दायित्व मुख्यतः राज्य पुलिस पर ही निहित है। राज्य प्रशासन की प्रभावशीलता काफी हद तक पुलिस व्यवस्था पर निर्भर करती है।

राज्य प्रशासन का मूल उद्देश्य सुशासन, सामाजिक न्याय और विकास को सुनिश्चित करना है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति बिना एक प्रभावी, उत्तरदायी और पेशेवर पुलिस व्यवस्था के संभव नहीं है। पुलिस न केवल अपराध नियंत्रण और विधि-व्यवस्था बनाए रखने का कार्य करती है, बल्कि यह लोक नीति (Public Policy) के निर्माण और क्रियान्वयन में भी महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान करती है।

मैक्स वेबर के अनुसार राज्य वैध बल (Legitimate Use of Force) का एकमात्र स्रोत होता है। इस दृष्टि से पुलिस राज्य की संप्रभु शक्ति का व्यावहारिक प्रतीक है। वहीं Thomas R. Dye की परिभाषा के अनुसार लोक नीति वह है जिसे सरकार करने या न करने का निर्णय लेती है। इस प्रक्रिया में पुलिस एक सलाहकार, क्रियान्वयनकर्ता और मूल्यांकनकर्ता—तीनों रूपों में सक्रिय रहती है।

वर्तमान समय में राज्य प्रशासन की चुनौतियाँ :

जैसे आतंकवाद, साइबर अपराध, सांप्रदायिक तनाव, महिला एवं बाल अपराध, और शहरीकरण से उत्पन्न जटिलताएँ—पुलिस की भूमिका को और अधिक व्यापक एवं बहुआयामी बना देती हैं। विशेषकर राज्यों में कमिश्नर प्रणाली का विस्तार, सामुदायिक पुलिसिंग, ई-गवर्नेंस तथा अपराध डेटा विश्लेषण जैसी व्यवस्थाएँ पुलिस को नीति-निर्माण की प्रक्रिया से सीधे जोड़ती हैं।

सैद्धांतिक आधार :

मैक्स वेबर का नौकरशाही सिद्धांत Max Weber के अनुसार राज्य वैध बल (Legitimate Force) का एकमात्र स्रोत है। पुलिस इस वैध बल का प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व करती है।

सुशासन (Good Governance) सुशासन के तत्व — पारदर्शिता, जवाबदेही, विधि का शासन (Rule of Law) — पुलिस की भूमिका से गहराई से जुड़े हैं।

सार्वजनिक नीति (Public Policy) सिद्धांत Thomas R. Dye के अनुसार "Public policy." पुलिस नीति-निर्माण में सलाहकार एवं क्रियान्वयन एजेंसी दोनों रूपों में कार्य करती है।

- राज्य प्रशासन में पुलिस की भूमिका
- कानून-व्यवस्था बनाए रखना ,अपराध नियंत्रण , दंगा एवं भीड़ प्रबंधन, सामाजिक शांति की स्थापना
- अपराध अन्वेषण एवं न्यायिक सहयोग, FIR पंजीकरण ,साक्ष्य संकलन ,अभियोजन में सहयोग
- आंतरिक सुरक्षा, आतंकवाद निरोध,नक्सलवाद नियंत्रण, साइबर अपराध रोकथाम
- सामुदायिक पुलिसिंग,जनता के साथ विश्वास निर्माण, महिला सुरक्षा अभियान, यातायात प्रबंधन
- नीति निर्माण में पुलिस की भूमिका

- परामर्शदात्री भूमिका राज्य सरकार को कानून-व्यवस्था, अपराध प्रवृत्तियों और सुरक्षा खतरों पर रिपोर्ट प्रदान करना।
- नीति क्रियान्वयन राज्य की सामाजिक एवं आर्थिक योजनाओं का जमीनी स्तर पर कार्यान्वयन। चुनावों के दौरान सुरक्षा व्यवस्था (निर्देशन: Election Commission of India)
- डेटा और विश्लेषण अपराध सांख्यिकी के आधार पर नई नीतियाँ बनाना। अपराध मानचित्रण (Crime Mapping)
- विशेष कानूनों का क्रियान्वयन ,दंड प्रक्रिया संहिता (CrPC), भारतीय दंड संहिता (IPC), राज्य विशेष अधिनियम
- मध्य प्रदेश
- ने हाल के वर्षों में कमिश्नर प्रणाली लागू कर शहरी प्रशासन में पुलिस की भूमिका को और सशक्त किया है। कानून-व्यवस्था में त्वरित निर्णय मजिस्ट्रेटी शक्तियों का समन्वय बेहतर शहरी शासन
- चुनौतियाँ राजनीतिक हस्तक्षेप संसाधनों की कमी मानवाधिकार संबंधी प्रश्न पुलिस सुधारों का अपूर्ण क्रियान्वयन
- पुलिस सुधार एवं सुझाव पुलिस को राजनीतिक दबाव से मुक्त करना आधुनिक तकनीकी संसाधन उपलब्ध कराना सामुदायिक पुलिसिंग को बढ़ावा प्रशिक्षण एवं संवेदनशीलता कार्यक्रम सुप्रीम कोर्ट के पुलिस सुधार निर्देशों का पालन (प्रकाश सिंह केस, 2006)

निष्कर्ष:

राज्य प्रशासन एवं नीति निर्माण में पुलिस की भूमिका केवल "कानून लागू करने" तक सीमित नहीं है, बल्कि यह नीति-निर्माण, सामाजिक स्थिरता, और लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा में एक केंद्रीय संस्था है। प्रभावी, जवाबदेह और पेशेवर पुलिस व्यवस्था राज्य शासन की सफलता का आधार है। अतः यह शोध-पत्र राज्य प्रशासन और नीति निर्माण में पुलिस की भूमिका का सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसमें पुलिस की प्रशासनिक संरचना, नीति-निर्माण में उसकी परामर्शदात्री एवं क्रियान्वयन भूमिका, समकालीन चुनौतियाँ तथा सुधार संबंधी सुझावों का समावेश किया गया है।

इस प्रकार, प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि आधुनिक लोकतांत्रिक राज्य में पुलिस केवल कानून लागू करने वाली संस्था नहीं, बल्कि शासन-प्रणाली की एक केंद्रीय और नीतिगत इकाई है, जो राज्य प्रशासन की प्रभावशीलता और लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा में महत्वपूर्ण योगदान देती है।

संदर्भ सूची:

1. Basu, D.D. – Introduction to the Constitution of India
2. Fadia, B.L. – Indian Government and Politics
3. Bureau of Police Research and Development की रिपोर्ट्स
4. Ministry of Home Affairs वार्षिक रिपोर्ट
5. प्रकाश सिंह बनाम भारत संघ (2006) – सर्वोच्च न्यायालय निर्णय

भंडारा जिल्ह्यातील बेरोजगारीची कारणे परिणाम व उपाय एक चिकित्सक अध्ययन

महेंद्र अशोक गभने
पीएच-डी संशोधक, आठवले समाज कार्य महाविद्यालय, भंडारा

सारांश :
बेरोजगारी भारतातील सामाजिक व आर्थिक व्यवस्थेला प्रभावित करत असून भारतात प्रमुख समस्या बनली आहे. बेरोजगारी निर्माण होण्यास अनेक घटक कारणीभूत असून कारणांवर सविस्तर चर्चा व अध्ययन झाल्यास बेरोजगारी थांबवण्यासाठी वेगवेगळ्या प्रकारच्या उपाय योजना आखता येतील. या अध्ययनातून प्रामुख्याने भंडारा जिल्ह्यातील बेरोजगारीची कारणे, जनमानसावर त्याचा पडणारा परिणाम आणि बेरोजगारी थांबवण्यासाठीच्या उपाय योजना या विषयात चिकित्सक अध्ययन करण्यात आले आहे.

भारत विकसनशील राष्ट्र असून १९४७ पर्यंत विकसित भारत निर्माण या संकल्पनेला घेऊन भारत सरकार वेगवेगळ्या प्रकारच्या उपाय योजना आखत असून बेरोजगारी हा विकसित भारता समोरचा मोठा अडसर असल्याचे दिसून येते म्हणूनच याचे अध्ययन करणे आवश्यक आहे.

मुख्य शब्द : बेरोजगारी, विकसित भारत, बेरोजगारीचे कारण, बेरोजगारीचे परिणाम, भारतातील बेरोजगारीची स्थिती

प्रस्तावना :
जेव्हा काम करण्याची इच्छा असताना सुद्धा रोजगार प्राप्त होत नाही अशा स्थितीला बेरोजगारी म्हणतात. जगातील इतर देशांच्या तुलनेत भारताची लोकसंख्या अधिक आहे तसेच भारत सर्वाधिक युवा वर्ग असलेला देश आहे त्यामुळे जगातील अन्य देशांच्या तुलनेत बेरोजगारीचे प्रमाण भारतात अत्याधिक असल्याचे दिसून येते. बेरोजगारीचा प्रभाव हा कुटुंबाच्या, राज्याच्या व पर्यायाने देशाच्या अर्थव्यवस्थेला प्रभावी करतो त्यामुळे बेरोजगारी संपवण्यासाठी शासन वेगवेगळ्या प्रकारच्या योजना राबवतो.

प्रसिद्ध समाजशास्त्रीय लेखक सी.बी. मामोरिया म्हणतात की, "बेरोजगारी ही काम करण्यासाठी सक्षम आणि इच्छुक असलेल्या माणसाची 'काम नसलेली' अवस्था आहे, म्हणजेच ती अनैच्छिक आणि ऐच्छिक निष्क्रियतेची स्थिती आहे"

बेरोजगारी फक्त व्यक्तीच्या आर्थिक स्थितीवर प्रभाव पाडत नसून मानसिक स्थितीला देखील प्रभावित करते. बेरोजगार व्यक्ती नेहमी तणावाच्या व निराशेच्या स्थितीत जगतो. बरेचदा आत्महत्येसारखे टोकाचे पाउल उचलताना दिसतात.

प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था प्रामुख्याने ग्रामीण विकासावर आधारित होती. घरा-घरात लघु उद्योग असल्याने बेरोजगारी नावाचा प्रकार दिसून येत नव्हता शिवाय वर्णव्यवस्था व्यवसायावर आधारित असल्याने कामाची विभागणी योग्य प्रकारे करण्यात आली होती त्यामुळे प्रत्येक व्यक्तीच्या हाताला रोजगार होते. मुघल काळातील जुलमी व्यवस्था, मोठ्या प्रमाणात लोकांकडून शेतसारा घेतला जायचा त्यामुळे भारताची संपन्न अर्थव्यवस्था डबघाईला येऊ लागली. ब्रिटीश काळात अधिकचं स्थिती बदलली. इंग्रजांनी भारतीयांना कारकून बनवण्याचे कार्य केले. शेतकऱ्याला ठराविक पिके पिकवण्याची जबरदस्ती यामुळे भारतीय अर्थव्यवस्था इंग्रजांच्या हाताखाली गेली आणि बेरोजगारी अधिकचं वाढत गेली.

श्रम शक्ती सर्वेक्षण अहवालानुसार भारतातील रोजगार संरचनेत महत्त्वपूर्ण बदल होत असल्याचे दिसून येत आहे. यातील प्राप्त आकडेवारीनुसार भारतात स्वयंरोजगाराचे प्रमाण 52.2 टक्क्यांवरून 58.4 टक्क्यांपर्यंत वाढले असून, नैमित्तिक कामगारांचे प्रमाण 24.9 टक्क्यांवरून 19.8 टक्क्यांपर्यंत घटले आहे. ही स्थिती सरकारी योजना व उपक्रमांद्वारे प्रोत्साहित उद्योजकतेमुळे स्वावलंबी आणि स्वतंत्र उपजीविकेकडे होणाऱ्या बदलांचे परिणाम आहे.

परंतु या आकडेवारीतून वेतन स्थिर राहिल्याचे निदर्शनास येत नाही. PLFS च्या अंदाजानुसार, नैमित्तिक कामगारांचे (सार्वजनिक कामे वगळता) सरासरी दैनिक वेतन जुलै–सप्टेंबर 2017 मधील 294 रुपयांवरून एप्रिल–जून 2024 मध्ये 433 रुपयांपर्यंत वाढले आहे. त्याचप्रमाणे, नियमित पगारदार कर्मचाऱ्यांचे सरासरी मासिक उत्पन्न 16,538 रुपयांवरून 21,103 रुपयांपर्यंत वाढले आहे.

ही वाढ केवळ उत्पन्नातील वाढ दर्शवत नाही, तर रोजगारातील स्थैर्य आणि गुणवत्तेत झालेली सुधारणा देखील अधोरेखित करते. कृषी क्षेत्रातील अलीकडील रोजगारवाढ ग्रामीण भागातील सबलीकरण आणि धोरणात्मक हस्तक्षेपांचे परिणाम दर्शवते. कृषी-स्टार्टअप्ससाठी उपलब्ध करून दिलेला 122.5 कोटी रुपयांचा निधी या क्षेत्रातील नवोपक्रम आणि शाश्वत विकासाला चालना देतो.

सरकारच्या बहुआयामी उपक्रमांमध्ये 'स्किल इंडिया', 'डिजिटल इंडिया' आणि राष्ट्रीय शिक्षण धोरण 2020 यांचा समावेश असून, यामुळे पदवीधरांच्या रोजगारक्षमतेत 2013 मधील 33.95 टक्क्यांवरून 2024 मध्ये 54.81 टक्क्यांपर्यंत लक्षणीय वाढ झाली आहे (इंडिया स्किल्स रिपोर्टनुसार).[1]

तसेच, 99,446 कोटी रुपयांच्या रोजगार संलग्न प्रोत्साहन (ELI) योजनेचे उद्दिष्ट विशेषतः उत्पादन क्षेत्रात सुमारे 3.5 कोटी रोजगार निर्माण करणे हे आहे. सरकारने विक्रमी भांडवली खर्चासोबतच मनरेगा (MGNREGS), PMEGP, DDU-GKY, PMMY, DAY-NRLM आणि DAY-NULM यांसारख्या विविध योजनांद्वारे प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रोजगारनिर्मितीस चालना दिली आहे.

याशिवाय, स्टार्टअप्स, जागतिक क्षमता केंद्रे (GCC), डिजिटल सेवा आणि गिग इकॉनॉमी यांसारख्या उदयोन्मुख क्षेत्रांमुळे रोजगाराच्या संधींमध्ये विविधता वाढत असून, तरुणांसाठी नवीन आणि बहुआयामी रोजगाराच्या संधी निर्माण होत आहेत. शिक्षण आणि रोजगार यांतील दरी कमी करण्यासाठी राबविण्यात येणारे लक्षित उपक्रम भारताच्या लोकसंख्याशास्त्रीय लाभाचा प्रभावी उपयोग करण्यास सहाय्यभूत ठरत आहेत.

बेरोजगारीचे प्रकार :

भारतातील बेरोजगारी मुख्यत्वे सरंचनात्मक आहे त्यामुळे वेगवेगळ्या प्रकारात ती दिसून येते;

प्रच्छन्न बेरोजगारी :

अशा प्रकारची बेरोजगारी प्रामुख्याने ग्रामीण व कृषी वर अवलंबून असलेल्या रोजगाराच्या ठिकाणी दिसून येते. एकाच कामात आवश्यकतेपेक्षा जास्त लोक सहभागी असल्यामुळे ही बेरोजगारी निर्माण होते.

हंगामी बेरोजगारी :

ही बेरोजगारी प्रामुख्याने कृषी आधारित रोजगारामुळे निर्माण होते. कारण कृषी व्यवस्था हवामानावर आधारित असल्यामुळे पावसाळ्यात मोठ्या प्रमाणात रोजगार उपलब्ध होते परंतु उन्हाळ्याच्या दिवसात मात्र कुठलेही रोजगार उपलब्ध होत नाही.

खुली बेरोजगारी :

भारतात सर्वाधिक प्रमाण खुल्या बेरोजगारीचे असून श्रमिक कार्य करण्यासाठी तयार असतो तशा प्रकारचे त्याच्या जवळ कौशल्य सुद्धा असते पण रोजगार मिळत नाही. ही बेरोजगारी प्रामुख्याने गावातून स्थलांतरित झालेल्या युवकांमध्ये दिसून येते.

[1] https://www.pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=2147614&reg=3&lang=2

शिक्षित बेरोजगारी :

स्वातंत्र्यानंतर भारतात मोठ्या प्रमाणात शैक्षणिक विकास झाल्याने बरेचं युवा शिक्षित झाले पण ठराविक रोजगार असल्याने सर्वच सुशिक्षिताना रोजगार प्राप्त होऊ शकत नाही.

बेरोजगारीची कारणे :

भारतात बेरोजगारीची स्थिती चिंताजनक असून भारतीय अर्थव्यवस्थेवर व प्रामुख्याने युवकांच्या मानसिक स्थितीवर याचे नकारात्मक परिणाम पडलेले दिसून येतात. बेरोजगारी कमी करायची असल्यास त्याची कारणे लक्षात घेणे आवश्यक आहे जेणेकरून त्या संबंधी योग्य त्या उपाय-योजना आखता येतील. बेरोजगारीची प्रमुख कारणे पुढीलप्रमाणे आहेत;

लोकसंख्या वाढ :

भारत जगातील सर्वाधिक लोकसंख्या असलेले राष्ट्र आहे. स्वातंत्र्यानंतर भारतातील लोकसंख्येत मोठ्या प्रमाणात वृद्धी होत गेली त्यामुळे लोकसंखेच्या तुलनेत रोजगाराची उपलब्धता कमी असल्याने बेरोजगारीत वाढ होत जाते.

प्रत्येक दिवशी भारतातील लाखो युवा नोकरीच्या शोधात निघतात. बऱ्याचदा अपयश सुद्धा येते.

शिक्षण पद्धतीतील त्रुटी :

शिक्षण व्यवस्था व अभ्यासक्रम कौशल्याधीष्टीत व रोजगाराभिमुख असणे आवश्यक आहे परंतु बरेच वर्ष भारतीय शिक्षण व्यवस्था प्रामुख्याने थेरी वर आधारित असल्याने. कौशल्याने अपूर्ण युवकांना बेरोजगारीचा सामना करावा लागतो.

कृषी क्षेत्रावर अवलंबन :

ग्रामीण भारतातील रोजगार प्रामुख्याने कृषी क्षेत्रावर अवलंबून असल्याने. हंगामी काम संपल्यावर मजूर बेरोजगार होतात.

गुंतवणूकीकरिता कमकुवत आर्थिक व्यवस्था :

बरेच युवा उद्योग सुरु करण्यास इच्छुक असतात पण उद्योगात लागणारी गुंतवणूक त्या करिता अडसर ठरते.

लघु व कुटीर उद्योगांचे पतन :

प्राचीन भारतात व ब्रिटीश पूर्व भारतात घरोघरी लघु उद्योग होते परंतु औद्योगिकरण झाल्याने लघु उद्योग बंद झाले.

बेरोजगारीचे परिणाम :

बेरोजगारी प्रामुख्याने आर्थिक व्यवस्थेसाठी बाधक असून यातून अनेक प्रकारच्या आर्थिक व सामाजिक समस्या निर्माण होतात.

गुन्हेगारीत वाढ :

बेरोजगारी ही केवळ आर्थिक समस्या नसून सामाजिक असंतुलन निर्माण करणारा एक महत्त्वाचा घटक आहे. जेव्हा व्यक्तीला नियमित उत्पन्नाचे साधन उपलब्ध होत नाही, तेव्हा त्याच्यावर आर्थिक ताण वाढतो. या तणावातून काही व्यक्ती गैरमार्गाचा अवलंब करून चोरी, लूटमार, फसवणूक, मादक पदार्थांची विक्री यांसारख्या गुन्हेगारी कृत्यांकडे वळतात. विशेषतः तरुणांमध्ये बेरोजगारीचे प्रमाण जास्त असल्यास गुन्हेगारी प्रवृत्ती वाढण्याची शक्यता अधिक असते. शिक्षण पूर्ण केल्यानंतरही नोकरी मिळत नसल्यामुळे निराशा, असंतोष आणि हतबलता निर्माण होते. या मानसिक अवस्थेमुळे काही युवक समाजविघातक कृत्यांकडे आकर्षित होतात.

बेरोजगारीमुळे सामाजिक विषमता देखील तीव्र होते. काही लोकांकडे संपत्ती आणि संधींची उपलब्धता असताना, इतरांना मूलभूत गरजांसाठीही संघर्ष करावा लागतो. ही दरी वाढल्याने असंतोष निर्माण होतो आणि तो गुन्हेगारीत परिवर्तित होऊ शकतो. याशिवाय, बेरोजगारीमुळे कुटुंबातील ताणतणाव वाढतात, ज्यामुळे घरगुती हिंसा, व्यसनाधीनता आणि इतर सामाजिक समस्या वाढतात. या सर्व घटकांचा एकत्रित परिणाम म्हणजे समाजातील गुन्हेगारी दर वाढणे.

बेरोजगारी ही गरिबी आणि कर्जबाजारीपणाची एक प्रमुख कारणीभूत समस्या आहे. जेव्हा व्यक्तीकडे स्थिर उत्पन्नाचे साधन नसते, तेव्हा त्याच्या दैनंदिन गरजा पूर्ण करणेही कठीण होते. अन्न, निवारा, आरोग्य आणि शिक्षण यांसारख्या मूलभूत गरजांसाठी संघर्ष करावा लागतो, ज्यामुळे गरिबी वाढीस लागते.

उत्पन्नाच्या अभावामुळे व्यक्ती किंवा कुटुंबाला खर्च भागवण्यासाठी कर्ज घ्यावे लागते. सुरुवातीला लहान प्रमाणात घेतलेले कर्ज हळूहळू वाढत जाते, कारण परतफेड करण्यासाठी पुरेसे उत्पन्न उपलब्ध नसते. परिणामी, व्यक्ती कर्जाच्या दुष्टचक्रात अडकते.

विशेषतः ग्रामीण भागात आणि असंघटित क्षेत्रात काम करणाऱ्या लोकांवर याचा अधिक परिणाम होतो. अनियमित रोजगार, कमी मजुरी आणि सामाजिक सुरक्षेचा अभाव यामुळे त्यांना वारंवार कर्ज घ्यावे लागते. काही वेळा सावकारांकडून घेतलेल्या कर्जावर जास्त व्याजदर आकारले जातात, ज्यामुळे आर्थिक स्थिती अधिकच बिकट होते.

गरीबी आणि कर्ज :

बेरोजगारी ही गरिबी आणि कर्जबाजारीपणाची एक प्रमुख कारणीभूत समस्या आहे. जेव्हा व्यक्तीकडे स्थिर उत्पन्नाचे साधन नसते, तेव्हा त्याच्या दैनंदिन गरजा पूर्ण करणेही कठीण होते. अन्न, निवारा, आरोग्य आणि शिक्षण यांसारख्या मूलभूत गरजांसाठी संघर्ष करावा लागतो, ज्यामुळे गरिबी वाढीस लागते.

उत्पन्नाच्या अभावामुळे व्यक्ती किंवा कुटुंबाला खर्च भागवण्यासाठी कर्ज घ्यावे लागते. सुरुवातीला लहान प्रमाणात घेतलेले कर्ज हळूहळू वाढत जाते, कारण परतफेड करण्यासाठी पुरेसे उत्पन्न उपलब्ध नसते. परिणामी, व्यक्ती कर्जाच्या दुष्टचक्रात अडकते. विशेषतः ग्रामीण भागात आणि असंघटित क्षेत्रात काम करणाऱ्या लोकांवर याचा अधिक परिणाम होतो. अनियमित रोजगार, कमी मजुरी आणि सामाजिक सुरक्षेचा अभाव यामुळे त्यांना वारंवार कर्ज घ्यावे लागते. काही वेळा सावकारांकडून घेतलेल्या कर्जावर जास्त व्याजदर आकारले जातात, ज्यामुळे आर्थिक स्थिती अधिकच बिकट होते.

सरकारी तिजोरीवर ताण :

बेरोजगारीचा परिणाम केवळ व्यक्ती किंवा कुटुंबापुरता मर्यादित राहत नाही, तर तो थेट सरकारच्या आर्थिक व्यवस्थेवरही होतो. जेव्हा मोठ्या प्रमाणावर लोक बेरोजगार असतात, तेव्हा त्यांच्या उत्पन्नात घट होते आणि परिणामी सरकारला मिळणारे कर उत्पन्न (Income Tax, GST इ.) कमी होते. यामुळे महसुलात घट होऊन सरकारी तिजोरीवर ताण निर्माण होतो.

याचवेळी, बेरोजगार नागरिकांना आधार देण्यासाठी सरकारला विविध कल्याणकारी योजना राबवाव्या लागतात. उदाहरणार्थ, रोजगार हमी योजना, अन्न सुरक्षा योजना, अनुदाने आणि थेट लाभ हस्तांतरण यांसाठी मोठ्या प्रमाणात निधी खर्च करावा लागतो. त्यामुळे सरकारी खर्च वाढतो आणि महसूल कमी होतो—या दुहेरी परिणामामुळे वित्तीय तुटीचा दबाव वाढतो.

बेरोजगारी कमी करण्यासाठी उपाय योजना :

कौशल्य विकासाच्या माध्यमातून युवकांना उद्योगांच्या गरजेनुसार प्रशिक्षण दिले जाऊ शकते. तांत्रिक, व्यावसायिक आणि डिजिटल कौशल्ये आत्मसात केल्यास रोजगाराच्या संधी वाढतात. उदाहरणार्थ, संगणक कौशल्ये, डेटा विश्लेषण, मेकॅनिकल दुरुस्ती, इलेक्ट्रिकल कामे, तसेच सेवा क्षेत्रातील कौशल्ये यांना आज मोठी मागणी आहे. यामुळे युवक स्वयंरोजगार किंवा नोकरी दोन्ही पर्याय निवडू शकतात.

शिक्षण व्यवस्थेत सुधारणा करणे देखील तितकेच आवश्यक आहे. पारंपरिक सैद्धांतिक शिक्षणाऐवजी प्रात्यक्षिक आणि कौशल्याधारित शिक्षणाला अधिक महत्त्व देणे गरजेचे आहे. उद्योग-शिक्षण समन्वय

मजबूत केल्यास विद्यार्थ्यांना प्रत्यक्ष कामाचा अनुभव (internship, apprenticeship) मिळू शकतो, ज्यामुळे त्यांची रोजगारक्षमता वाढते.

पायाभूत सुविधांचा (Infrastructure) विकास हा बेरोजगारी कमी करण्यासाठी अत्यंत प्रभावी आणि दीर्घकालीन उपाय मानला जातो. रस्ते, पूल, रेल्वे, बंदरे, वीज, पाणीपुरवठा, दळणवळण आणि डिजिटल नेटवर्क यांसारख्या सुविधांमध्ये गुंतवणूक केल्यास मोठ्या प्रमाणावर थेट आणि अप्रत्यक्ष रोजगारनिर्मिती होते.पायाभूत प्रकल्पांच्या उभारणीदरम्यान बांधकाम क्षेत्रात मोठ्या प्रमाणावर कामगारांची गरज भासते, ज्यामुळे अल्पकालीन रोजगार निर्माण होतो. याशिवाय, या सुविधा पूर्ण झाल्यानंतर उद्योग, व्यापार आणि सेवा क्षेत्राला चालना मिळते, ज्यामुळे दीर्घकालीन रोजगाराच्या संधी वाढतात.

बेरोजगारी कमी करण्यासाठी ग्रामीण आणि कृषी विकास हा अत्यंत प्रभावी आणि सर्वसमावेशक उपाय मानला जातो. भारतातील मोठा लोकसंख्या वर्ग ग्रामीण भागात राहतो आणि शेतीवर अवलंबून असल्यामुळे या क्षेत्राचा विकास केल्यास मोठ्या प्रमाणावर रोजगारनिर्मिती शक्य होते. कृषी क्षेत्राचा विकास केल्यास थेट रोजगाराच्या संधी वाढतात. सुधारित बियाणे, आधुनिक शेती तंत्रज्ञान, सिंचन सुविधा आणि यंत्रीकरण यांचा वापर केल्यास उत्पादनक्षमता वाढते आणि शेतकऱ्यांचे उत्पन्न सुधारते. तसेच, पीक विविधीकरण, सेंद्रिय शेती आणि बागायती शेती यामुळे वर्षभर रोजगार उपलब्ध होऊ शकतो. याशिवाय, शेतीपूरक उद्योग जसे की दुग्धव्यवसाय, कुक्कुटपालन, मत्स्यव्यवसाय, मधमाशी पालन आणि लघुउद्योग यांना प्रोत्साहन दिल्यास ग्रामीण भागात अतिरिक्त रोजगारनिर्मिती होते. यामुळे शेतकऱ्यांना शेतीव्यतिरिक्त उत्पन्नाचे स्रोत मिळतात आणि बेरोजगारी कमी होते.

बेरोजगारी कमी करण्यासाठी देशात गुंतवणूक (Investment) वाढविणे हा एक प्रभावी आणि दीर्घकालीन उपाय आहे. जेव्हा देशात देशांतर्गत व परकीय गुंतवणूक वाढते, तेव्हा नवीन उद्योग, व्यवसाय आणि सेवा क्षेत्र विकसित होतात, ज्यामुळे मोठ्या प्रमाणावर रोजगारनिर्मिती होते.

डीजिटल साक्षरतेमुळे व्यक्तींना संगणक, इंटरनेट, मोबाईल ॲप्स आणि विविध डिजिटल साधनांचा प्रभावी वापर करता येतो. यामुळे ई-कॉमर्स, ऑनलाइन सेवा, डिजिटल मार्केटिंग, डेटा एंट्री, फ्रीलान्सिंग, कंटेंट क्रिएशन यांसारख्या क्षेत्रांत रोजगाराच्या संधी वाढतात. विशेषतः ग्रामीण आणि दुर्गम भागातील युवकांसाठी डिजिटल प्लॅटफॉर्म रोजगाराचे नवीन दालन उघडतात.

बेरोजगारी ही समस्या अनेकदा वाढत्या लोकसंख्येशी संबंधित असते. लोकसंख्या वेगाने वाढल्यास उपलब्ध संसाधने, रोजगाराच्या संधी आणि पायाभूत सुविधा यांच्यावर ताण येतो. त्यामुळे लोकसंख्या नियंत्रणाचे प्रभावी उपाय अवलंबल्यास बेरोजगारी कमी करण्यास मदत होऊ शकते. लोकसंख्या

नियंत्रणासाठी सर्वात महत्त्वाचा उपाय म्हणजे जनजागृती. कुटुंब नियोजनाचे महत्त्व, लहान कुटुंबाचे फायदे आणि आरोग्यदायी जीवनशैली याबद्दल समाजात जागरूकता निर्माण करणे आवश्यक आहे. विशेषतः ग्रामीण आणि कमी साक्षरतेच्या भागात याबाबत प्रभावी प्रचार करणे गरजेचे आहे.

विषयाची निवड :

या विषयाची निवड करतांना भारतातील बेरोजगारीचा वाढता आलेख, त्याची करणे व देशाच्या स्थितीवर होणारा परिणाम लक्षात घेऊन निवड करण्यात आली. वैश्विकरण होत असतांना भारताची आर्थिक स्थिती बदलत असली तरी मनुष्यबळाचा देशाच्या विकासात पाहिजे त्या प्रमाणात उपयोग होतांना दिसत नाही त्यामुळे या सर्व विषयांची कारणीमांसा करणे आवश्यक आहे. बेरोजगारी मध्ये कमी यावी या करिता त्या विषयीच्या उपाययोजनांच्या अभ्यासाची आवश्यकता देखील दिसून येते.

साहित्य परीक्षण :

प्रस्तुत शोध पत्र लेखनाकरिता विविध प्रकारचे पुस्तक, शोधग्रंथ व ऑनलाईन पद्धतीचा वापर करण्यात आला. तसेच बेरोजगारी संदर्भातील आकडेवारी तपासण्यासाठी शासनाच्या वेबसाईटची मदत घेण्यात आली तसेच विभिन्न शासकीय अहवाल, पंचवार्षिक योजना संदर्भातील माहिती देखील अभ्यासन्यात आली.

मुलभूत शोध प्रश्न :

1. भंडारा जिल्ह्यात बेरोजगारी निर्माण कोणते घटक कारणीभूत आहेत ?
2. भंडारा जिल्ह्यात व्याप्त बेरोजगारीचे समाज जीवनावर कोण-कोणते परिणाम पडलेले दिसून येतात ?
3. भंडारा जिल्ह्यातील बेरोजगारी थांबवण्यासाठी कोण-कोणत्या उपाय योजनांची आवश्यकता ?

मुलभूत शोध उद्देश :

1. भंडारा जिल्ह्यातील बेरोजगारीसाठी कारणीभूत घटकांचे अभ्यास करणे.
2. भंडारा जिल्ह्यातील व्याप्त बेरोजगारीचे समाज जीवनावर पडणाऱ्या परिणामाचे अध्ययन करणे.
3. भंडारा जिल्ह्यातील बेरोजगारी थांबवण्यासाठी आवश्यक उपाय योजनांचे अभ्यास करणे.

अध्ययनाचे भौगोलिक क्षेत्र :

प्रस्तुत शोध पत्रात भौगोलिक क्षेत्र म्हणून भंडारा जिल्ह्याची निवड करण्यात आली आहे.

संशोधन पद्धती :

प्रस्तुत संशोधनपत्रात भंडारा जिल्ह्यातील बेरोजगारीचे कारणे, परिणाम व त्या संबंधातील उपाय योजनांचे अध्ययन केले आहे. या संशोधनात वर्णनात्मक संशोधन आराखड्याचा उपयोग मूल्यांकनात्मक दृष्टिकोनातून वास्तव परिस्थितीची तपासणी करण्यासाठी करण्यात आला आहे.

तसेच, या संशोधन कार्यात मिश्र (गुणात्मक आणि मात्रात्मक) संशोधन पद्धतीचा वापर करण्यात आला आहे. अभ्यास करताना संरचित मुलाखत अनुसूचीचा उपयोग करून बेरोजगारीची वर्तमान स्थिती त्याची कारणे व त्यात कमी येण्यासाठी उपाय योजना तपासण्याचा प्रयत्न करण्यात आला आहे.

तथ्य संकलन पद्धती :

प्रस्तुत शोध पत्रात भंडारा जिल्ह्यातील बेरोजगारीची स्थिती तपासण्यासाठी प्राथमिक स्त्रोतांचा वापर करण्यात आला ज्यात सर्वेक्षण पद्धतीचा उपयोग करण्यात आला.

द्वितीयक स्त्रोतांच्या माध्यमातून माहिती मिळवण्यासाठी पुस्तके, लिंक व शोध पत्रांचा उपयोग करण्यात आला.

अध्ययनाचे विश्व :

प्रस्तुत शोध पत्रात भंडारा जिल्ह्यातील वय वर्ष 20 ते 30 वयोगटातील युवा वर्गाची अध्ययनाचे विश्व म्हणून निवड करण्यात आली आहे .

नमुना निवड :

प्रस्तुत शोध पत्रात संशोधनाचे विश्व लक्षात घेता असंभाव्यता नमुना निवड पद्धतीचा उपयोग करण्यात आला आहे.

सांख्यिकीय विश्लेषण :

भंडारा जिल्ह्यातील बेरोजगारीची कारणे, परिणाम व उपाय -योजना तपासण्यासाठी संरचित मुलाखत अनुसूची तयार करण्यात आली होती. या प्रश्नावलीत एकूण 11 प्रश्नांचा समावेश असून हे प्रश्न जिल्ह्यातील बेरोजगारीची कारणे, परिणाम व उपाय योजना दर्शवितात. उत्तरदाते म्हणून जिल्ह्यातील 80 युवकांनी (वय वर्ष : 20 ते 30) या संबंधित संख्यात्मक माहिती दिली असून तक्ता क्र.1मध्ये समाविष्ट आहे.

तक्ता क्र.1 भंडारा जिल्ह्यातील बेरोजगारीची कारणे, परिणाम व उपाय-योजना

अ.क्र	वक्तव्य	अजिबात नाही	अंशत:	मध्यम	पूर्णपणे	एकूण
1	कौशल्य आधारित शिक्षणाची व्यवस्था नसल्याने जिल्ह्यात बेरोजगारी वाढलेली दिसून येते का ?	12	3	39	26	80
		15.0	3.8	48.8	32.5	100
2	जिल्ह्यात मोठ्या उद्योगांची कमी असल्यामुळे बेरोजगारी दिसून येते का ?	7	9	20	44	80
		8.8	11.3	25.0	55.0	100
3	जिल्ह्यातील लघु व कुटीर उद्योगांत आलेली कमी बेरोजगारीसाठी कारणीभूत आहे का ?	9	17	33	21	80
		11.3	21.3	41.3	26.3	100
4	जिल्ह्यातील लोकप्रतिनिधींचा उदासीनपणा बेरोजगारीसाठी कारणीभूत असल्याचे दिसून येते का?	13	15	9	43	80
		16.3	18.8	11.3	53.8	100
5	गाव किंवा जिल्हा सोडून इतरत्र नोकरी करणार नाही, ही भावना युवकांमध्ये दिसून येते का ?	8	30	28	14	80
		10.0	37.5	35.0	17.5	100
6	डिजिटल साक्षरतेचा अभाव बेरोजगारीस कारणीभूत असल्याचे दिसून येते का ?	12	24	32	12	80
		15.0	30.0	40.0	15.0	100
7	कृषीवर आधारित रोजगार असल्यामुळे हंगामी बेरोजगारीचा सामना करावा लागतो का ?	9	6	41	24	80
		11.3	7.5	51.3	30.0	100
8	जिल्ह्यात रोजगाराची कमी असल्यामुळे मोठ्या शहराकडे स्थलांतरण होतांना दिसत आहे का ?	1	15	36	28	80
		1.3	18.8	45.0	35.0	100

9	बेरोजगारीमुळे गुन्हेगारीत वाढ झाल्याचे दिसून येते का ?	8	17	33	22	80
		10.0	21.3	41.3	27.5	100
10	कौशल्याधारित महाविद्यालय व औद्योगिक कंपन्या स्थापन केल्यास जिल्ह्यातील बेरोजगारी कमी होईल असे आपणास वाटते का ?	5	19	27	29	80
		6.3	23.8	33.8	36.3	100

- तक्ता क्र.1 मधील प्राप्त आकडेवारीनुसार सर्वाधिक 48.8 टक्के उत्तरदात्यांचे मानणे आहे की, कौशल्य आधारित शिक्षणाची व्यवस्था नसल्याने जिल्ह्यात बेरोजगारी वाढली असून याचे प्रमाण मध्यम आहे तर सर्वात कमी 3.8 टक्के उत्तरदात्यांचे मानणे आहे की यामुळे अंशत: बेरोजगारी वाढली दिसून येते.
- सर्वाधिक 55.0 टक्के उत्तरदात्यांचे मानणे आहे की, जिल्ह्यात मोठ्या उद्योगांची कमी असल्यामुळे पूर्णपणे बेरोजगारी वाढल्याचे दिसून येते तर सर्वात कमी 8.8 टक्के उत्तरदात्यांचे मानणे आहे की, याचे प्रमाण अंशत: आहे.
- सर्वाधिक 41.3 टक्के उत्तरदात्यांचे मानणे आहे की, जिल्ह्यातील लघु व कुटीर उद्योगांत आलेली कमी बेरोजगारीसाठी मध्यम प्रमाणात कारणीभूत आहे तर सर्वात कमी 11.3 टक्के उत्तरदात्यांचे मानणे आहे की, या कारणामुळे अजिबात बेरोजगारी वाढली नाही.
- सर्वाधिक 53.8 टक्के उत्तरदात्यांचे मानणे आहे की, जिल्ह्यातील लोकप्रतिनिधींचा उदासीनपणा बेरोजगारीसाठी पूर्णपणे कारणीभूत असल्याचे दिसून येते तर सर्वात कमी 11.3 टक्के उत्तरदात्यांचे मानणे आहे की, या कारणामुळे बेरोजगारीचे प्रमाण मध्यम आहे .
- सर्वाधिक 37.5 टक्के उत्तरदात्यांचे मानणे आहे की, गाव किंवा जिल्हा सोडून इतरत्र नोकरी करणार नाही, ही भावना अंशत: युवकांमध्ये दिसून येते तर सर्वात कमी 10.0 टक्के उत्तरदात्यांचे मानणे आहे की, अजिबात ही भावना दिसून येत नाही.
- सर्वाधिक 40.0 टक्के उत्तरदात्यांचे मानणे आहे की, डिजिटल साक्षरतेचा अभाव मध्यम प्रमाणात बेरोजगारीस कारणीभूत असल्याचे दिसून येते तर सर्वात कमी 12.5 टक्के उत्तरदात्यांचे मानणे आहे की, अजिबात कारणीभूत दिसून येत नाही.

- सर्वाधिक 51.3 टक्के उत्तरदात्यांचे मानणे आहे की, कृषीवर आधारित रोजगार असल्यामुळे मध्यम प्रमाणात हंगामी बेरोजगारीचा सामना करावा लागतो तर सर्वात कमी 7.5 टक्के उत्तरदात्यांचे मानणे आहे की, अंशत: सामना करावा लागतो.
- सर्वाधिक 45.0 टक्के उत्तरदात्यांचे मानणे आहे की, जिल्ह्यात रोजगाराची कमी असल्यामुळे मोठ्या शहराकडे स्थलांतरण होतांना दिसत आहे हे कारण मध्यम असून सर्वात कमी 1.3 टक्के उत्तरदात्यांचे मानणे आहे स्थलांतरनासाठी हे कारण अजिबात लागू होत नाही.
- सर्वाधिक 41.3 टक्के उत्तरदात्यांचे मानणे आहे की, बेरोजगारीमुळे गुन्हेगारीत वाढ झाल्याचे दिसून येते हे कारण मध्यम प्रमाणात लागू होत असून सर्वात कमी 10.0 टक्के उत्तरदात्यांचे मानणे आहे की बेरोजगारीमुळे अजिबात गुन्हेगारी वाढली नाही .
- सर्वाधिक 36.3 टक्के उत्तरदात्यांचे मानणे आहे की, कौशल्याधारित महाविद्यालय व औद्योगिक कंपन्या स्थापन केल्यास जिल्ह्यातील बेरोजगारी पूर्णपणे कमी होईल तर सर्वात कमी 6.3 टक्के उत्तरदात्यांचे मानणे आहे की बेरोजगारीमुळे अजिबात कमी होणार नाही.

निष्कर्ष :

या संशोधनाच्या माध्यमातून भंडारा जिल्ह्यातील बेरोजगारीची कारणे, परिणाम व बेरोजगारी कमी करण्यासाठीच्या उपाय योजना या विषयात चिकित्सक अध्ययन करण्यात आले असून संशोधनातून पुढील प्रकारचे निष्कर्ष समोर आले आहेत;

जिल्ह्यात कौशल्य आधारित शिक्षणाची व्यवस्था नसल्याने जिल्ह्यात मोठ्या प्रमाणात बेरोजगारी वाढलेली दिसून येते तर जिल्ह्यातील मोठ्या उद्योगांची कमी पूर्णपणे बेरोजगारी वाढण्यासाठी कारणीभूत आहे. जिल्ह्यातील लघु व कुटीर उद्योग बंद पडल्याने बेरोजगारी वाढल्याचे दिसून येते तसेच जिल्ह्यातील लोकप्रतिनिधींचा उदासीनपणा बेरोजगारी वाढण्यास कारणीभूत असल्याचे या अध्ययनातून निदर्शनास आले. गाव किंवा जिल्हा सोडून इतरत्र कुठेही रोजगारासाठी जाणार नाही ही भावना देखील बेरोजगारीस चालना देत असून डिजिटल साक्षरतेचा अभाव देखील बेरोजगारी वाढण्यात कारणीभूत असल्याचे दिसून येते. जिल्ह्यातील रोजगार कृषीवर आधारित असल्यामुळे हंगामी बेरोजगारी असल्याचे देखील या अध्ययनातून लक्षात येते. जिल्ह्यात रोजगार उपलब्ध नसल्यामुळे मोठ्या प्रमाणात शहरांकडे स्थलांतरणाचे प्रमाण देखील दिसून येते. जिल्ह्यातील बेरोजगारी गुन्हेगारी वृत्ती वाढण्यास कारणीभूत असल्याचे देखील अध्ययनातून निष्कर्षास येत असून कौशल्याधारित महाविद्यालय व औद्योगिक कंपन्या स्थापन केल्यास जिल्ह्यातील बेरोजगारीत कमी येईल असे या अध्ययनातून निष्कर्ष प्राप्त झाले आहे.

संदर्भ ग्रंथसूची

1. गुप्ता.अ.(2022). बेरोजगारी का संकट और उपाय.लोकायत प्रकाशन.
2. मगन.र. (2021). बेरोजगारी. अस्तित्व प्रकाशन.
3. https://www.rncollegehajipur.in/rn/uploads/products/Unemployment%20by%20Dr.%20Priyanka%20Singh.pdf
4. https://www.etashasociety.org/causes-of-unemployment-in-india/
5. https://www.investopedia.com/terms/u/unemployment.asp
6. https://digitalcommons.du.edu/irbe/vol4/iss2/53/

बायोगॅस वापराची वर्तमान स्थिती, समस्या व ग्रामीण विकासात याचे उपयोग विशेष संदर्भ: भंडारा जिल्हा

शैलेश साऊसाखरे
पीएच-डी संशोधक, आठवले समाज कार्य महाविद्यालय, भंडारा

सारांश:

बायोगॅस उर्जेचे महत्वपूर्ण माध्यम असून ग्रामीण भागातील शेतकरी मुख्यत्वे मोठ्या प्रमाणात याचा उपयोग करतात असे असले तरी बायोगॅस वापरात अनेक प्रकारच्या समस्या व आव्हाने दिसून येतात. त्या समस्यांवर तोडगा काढला असता प्रदूषण विरहित उर्जेचे महत्वपूर्ण माध्यम बायोगॅस ठरेल. अलीकडे ग्रामीण विकासाची संकल्पना तांत्रिक युगात बदलत चालली असून शहरांचा प्रभाव ग्रामीण जीवनशैलीवर पडत असल्याचे दिसून येते अशा स्थितीत ग्रामीण स्वावलंबी प्रयोग म्हणून बायोगॅस उपयोगी ठरते त्याचा उपयोग या अध्ययनाच्या माध्यमातून समोर येईल.

ग्रामीण विकासासाठी शासन विभिन्न प्रकारच्या योजना राबवत असून त्याच्या अंमलबजावणीत येणाऱ्या समस्या बायोगॅस योजनेला सुद्धा लागू होतात. शेतकरी पूरक उर्जा व्यवस्था म्हणून बायोगॅस चा अभ्यास करणे आवश्यक आहे.

मुख्य शब्द : बायोगॅस, ग्रामीण विकास, बायोगॅस वापरात येणाऱ्या समस्या

प्रस्तावना :

बायोगॅस चे वापर ग्रामीण भागात इंधनासाठी केल्या जात असून हे एक प्रकारचे उर्जा स्त्रोत आहे. जैविक कचऱ्याच्या वापरातून तयार होणारे हे अक्षय तंत्रज्ञान आहे. प्रामुख्याने ग्रामीण भागात पशुधन मोठ्या प्रमाणात असल्यामुळे शहरी भागाच्या तुलनेत ग्रामीण भागात बायोगॅसचा अधिक वापर केला जातो. भारत सरकारच्या नवीन व नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय (MNRE) यांनी दिनांक 2 नोव्हेंबर 2022 रोजी राष्ट्रीय जैव ऊर्जा कार्यक्रम अधिसूचित केला आहे. हा कार्यक्रम वित्तीय वर्ष 2021-22 ते 2025-26 या कालावधीत राबविण्यात येत आहे. या कार्यक्रमाचा मुख्य उद्देश देशातील नवीकरणीय ऊर्जा स्रोतांचा वापर वाढवणे आणि पर्यावरणपूरक ऊर्जा निर्मितीला चालना देणे हा आहे .ग्रामीण व शहरी

भागात बायोगॅस संयंत्रांची उभारणी वाढवणे, सेंद्रिय कचऱ्याचे ऊर्जेमध्ये रूपांतर करणे, स्वच्छ, शाश्वत व पर्यावरणपूरक ऊर्जा उपलब्ध करून देणे, ऊर्जा स्वावलंबन वाढवणे

शेतकरी व ग्रामीण अर्थव्यवस्थेला आर्थिक फायदा मिळवून देणे हा या कार्यक्रमाचा मुख्य उद्देश आहे. भारत सरकारच्या नवीन व नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय अंतर्गत बायोगॅस कार्यक्रमामध्ये संयंत्राच्या क्षमतेनुसार खालील प्रकारचे आर्थिक सहाय्य दिले जाते.[2]

(अ) विशेष श्रेणी (डोंगराळ/ईशान्य राज्ये, द्वीप, SC/ST)

क्षमता (m^3/दिवस)	CFA (₹)
1 m^3	17,000
2–4 m^3	22,000
6 m^3	29,250
8–10 m^3	34,500
15 m^3	63,250
20–25 m^3	70,400

या श्रेणीत समाविष्ट राज्ये: अरुणाचल प्रदेश, आसाम, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, लडाख, मणिपूर, मेघालय, मिझोराम, नागालँड, सिक्कीम, त्रिपुरा, उत्तराखंड इत्यादी.

(ब) इतर सर्व राज्ये व श्रेणी

क्षमता (m^3/दिवस)	CFA (₹)
1 m^3	9,800
2–4 m^3	14,350
6 m^3	22,750
8–10 m^3	23,000
15 m^3	37,950
20–25 m^3	52,800

[2] https://biogas.mnre.gov.in/about-the-programmes

क) अतिरिक्त निश्चित अनुदान

खालील परिस्थितींमध्ये प्रत्येक संयंत्रासाठी अतिरिक्त **₹1,600** अनुदान दिले जाते

- बायोगॅस संयंत्र शौचालयाशी जोडले असल्यास
- MNRE मान्यताप्राप्त बायोगॅस स्लरी फिल्टर युनिटशी जोडले असल्यास

काही मोठ्या क्षमतेच्या संयंत्रांसाठी (20–25 m^3) काही बाबतीत "NA" लागू असू शकते.

ड) टर्नकी जॉब शुल्क

संयंत्र उभारणीसाठी (बांधकाम + देखरेख + सुरूवात + 5 वर्षे देखभाल) खालीलप्रमाणे शुल्क दिले जाते

- 1 ते 10 m^3 संयंत्र: ₹3,000 प्रति संयंत्र
- 15 ते 25 m^3 संयंत्र: ₹5,000 प्रति संयंत्र

हे शुल्क फक्त खालील प्रकारांसाठी लागू आहे—

- ऑन-साइट बांधकाम असलेले संयंत्र
  - दीनबंधू मॉडेल (Fixed Dome)
  - KVIC मॉडेल (Floating Gas Holder)

पूर्वनिर्मित (Prefabricated) संयंत्रांसाठी हे लागू नाही.

ई) प्रोत्साहन

- ₹10,000 अतिरिक्त प्रोत्साहन दिले जाते
- अट: बायोगॅस आधारित जनरेटर सेट / वॉटर पंपिंग सिस्टम (BPS) वापरले पाहिजे, शेतीसाठी वीज निर्मिती आणि पाणी पंपिंगसाठी वापर

बायोगॅस वापरासमोरील प्रमुख आव्हाने :

पर्यावरणीय दृष्ट्या लाभकारी असले तरी बायोगॅस वापरात मोठ्या प्रमाणात आव्हाने दिसून येतात त्यामुळे ग्रामीण भागात देखील याच्या वापराचे प्रमाण अतिशय कमी आहे.

अत्याधिक खर्चिक :

बायोगॅस संयंत्र उभारण्यासाठी लागणारा प्रारंभिक खर्च हा अतिशय जास्त आहे. वेळो-वेळी संयंत्राची देखभाल आणि जैविक पदार्थाची प्रक्रिया त्रासदायक आहे. त्यामुळे ग्रामीण भागात सुद्धा इंधन म्हणून नैसर्गिक गैस चा उपयोग केला जातो. सरकारी अनुदान प्राप्त होत असल्यामुळे बरेच शेतकरी बायोगॅस वापरासाठी समोर येत आहेत पण अनुदानाची प्रक्रिया अधिक क्लिष्ट असल्याने त्या प्रमाणात देखील कमी आलेली दिसून येते.

बायोगॅस साठी लागणारा जैविक कच्च्या मालाची कमतरता :

बायोगॅस तयार होण्यासाठी मोठ्या प्रमाणात शेणाची आवश्यकता लागते हा पुरवठा नियमित करावा लागतो. त्यामुळे ज्या शेतकऱ्याकडे मोठ्या प्रमाणात जनावरे आहेत त्यांच्यासाठी हे शक्य आहे परंतु ज्यांच्याकडे जनावरे कमी आहेत अशांसाठी हे आव्हानात्मक आहे.

पाण्याची अत्याधिक आवश्यकता :

जैविक कचरा नियमित ओला राहण्यासाठी मोठ्या प्रमाणात पाण्याची आवश्यकता लागते अशा परिस्थितीत शुष्क व ज्या प्रदेशात पाण्याची कमतरता आहे अशा ठिकाणी बायोगॅस चालविणे आव्हानात्मक आहे.

सामाजिक मानसिकता :

बायोगॅस संदर्भात अजूनही समाजात जागरुकता निर्माण झाली नसून शौचालयाला जोडलेल्या बायोगॅस विषयी लोकांमध्ये सामाजिक संकोच दिसून येतो.

देखभाल संबंधी समस्या :

बायोगॅसची नियमित साफसफाई व फीडिंग आवश्यक आहे. तसेच वेळोवेळी होणारे तांत्रिक बिघाड आव्हानात्मक वाटते.

ग्रामीण विकासात बायोगॅसचे महत्व :

ग्रामीण भागात बायोगॅस चा वापर नवीकरणीय उर्जा निर्माणाचे महत्वपूर्ण माध्यम असून प्रदूषण विरहीत उर्जा निर्मितीचे महत्वपूर्ण माध्यम आहे.

इंधन म्हणून लाकडासाठी पर्यायी वापर :

ग्रामीण व आदिवासी भागात मोठ्या प्रमाणात लाकडाचा वापर केला जातो. त्यामुळे वृक्षतोड आणि जळाऊ लाकडातून उत्सर्जित होणाऱ्या वायूमुळे प्रदूषण याला पर्याय म्हणून बायोगॅस उपयोगी ठरते.

कच्चा मालाची सहज उपलब्धता :

ग्रामीण अर्थव्यवस्था मुख्यत्वे कृषी आणि पशुपालनावर आधारित आहे त्यामुळे बायोगॅस साठी लागणारा कच्चा माल सहज उपलब्ध होतो.

उच्च दराच्या सेंद्रिय खताची निर्मिती :

बायोगॅस साठी वापरण्यात येणारे शेणखत अधिक कुजते ज्यामुळे खतावर अधिक प्रक्रिया होऊन उच्च दर्जाचे सेंद्रिय खतनिर्मिती होते. बरेच शेतकरी गांढूळ खतनिर्मितीसाठी याचा वापर करतात. या खतामुळे रासायनिक खतामध्ये कमी येऊन जमिनीचा पोत सुधारतो.

विजेसाठी उपयोग :

ग्रामीण भागात बायोगॅस पासून वीजनिर्मिती देखील होते. अतिदुर्गम भागात वीजेची सुविधा निर्माण होऊन प्रकाशासाठी अत्यंत उपयोगी ठरत आहे.

विषयाची निवड :

विषयाची निवड करताना बायोगॅस वापराची वर्तमान स्थिती, समस्या व ग्रामीण विकासात याचे उपयोग याचे सविस्तर अध्ययन केले आहे. उर्जेचे विभिन्न प्रकारचे स्त्रोत असून बायोगॅस अक्षय उर्जेचे प्रमुख व महत्वपूर्ण स्त्रोत आहे. प्रामुख्याने ग्रामीण भागात अधिक उपयोगी असल्यामुळे शासन याच्या वापराकरिता विभिन्न प्रकारच्या योजना व अनुदान देते ज्यामुळे अलीकडे मोठ्या प्रमाणात ग्रामीण भागात याचा उपयोग केला जातो.

बायोगॅस उभारणीची प्रक्रिया आणि चालवण्याची पद्धत यामध्ये बऱ्याच प्रकारचे आव्हान दिसून येते त्यामुळे या विषयावर अभ्यास करणे आवश्यक आहे.

साहित्य परीक्षण :

प्रस्तुत शोध पत्र लेखनाकरिता विविध प्रकारचे पुस्तक, शोधग्रंथ व ऑनलाईन पद्धतीचा वापर करण्यात आला.

सेंगर.स. *बायोगॅस*. गोडवा कृषी प्रकाशन.

प्रस्तुत पुस्तकात लेखकाने बायोगॅस वापराचे उपयोग, सरकारी अनुदान, तोटे, संयंत्राची उभारणी या विषयी सविस्तर लेखन केले असून. बायोगॅस प्रकल्प उभारणाऱ्या शेतकऱ्यासाठी ही पुस्तक मार्गदर्शन करते.

देवधर.प्र. *बायोगॅस-जैविक इंधन*.व्यास क्रिएशन्स.

लेखक ग्रामीण विकासासाठी सामाजिक संस्था चालवत असून प्रामुख्याने ग्रामीण विकासासाठी कार्य करतात. प्रस्तुत पुस्तकात त्यांनी बायोगॅस वापरासंबंधीचे उपयोग उदाहरणासाहित मांडले आहेत.

घनवाटी.ह. (2018). *बायोगॅस*. स्प्रिंगर प्रकाशन.

विविध प्रकारच्या कचऱ्यापासून बायोगॅस निर्मितीबाबत हे पुस्तक एक सर्वसमावेशक संदर्भ मार्गदर्शक म्हणून कार्य करते. यात ॲनअरोबिक डायजेशन तंत्रज्ञानाच्या विविध पैलूंचा समावेश आहे—मूलभूत घटकांपासून, म्हणजे सूक्ष्मजैविक बाबीं पासून ते बायोगॅस उत्पादन प्रणाली नियंत्रित करणाऱ्या प्रमुख घटकांपर्यंत. तसेच, या प्रणालींच्या कार्यपद्धतीची मुख्य तत्त्वे, विश्लेषण, प्रक्रिया नियंत्रण आणि अडचणींचे निराकरण यांचाही सखोल आढावा घेतला आहे.

मुलभूत शोध प्रश्न :

1. भंडारा जिल्ह्यातील बायोगॅस वापराची वर्तमान स्थिती कशी आहे ?
2. बायोगॅस वापरतांना बायोगॅस धारकांना कोण-कोणत्या अडचणींचा सामना करावा लागतो.
3. बायोगॅसचे ग्रामीण विकासात योगदान आहे का ?

मुलभूत शोध उद्देश :

1. भंडारा जिल्ह्यातील बायोगॅस वापराच्या वर्तमान स्थितीचे अध्ययन करणे.
2. बायोगॅस वापरतांना बायोगॅस धारकांना येणाऱ्या अडचणींचे अध्ययन करणे.
3. बायोगॅसचे ग्रामीण विकासात असलेले योगदान तपासणे.

अध्ययनाचे भौगोलिक क्षेत्र :

प्रस्तुत शोध पत्रात भौगोलिक क्षेत्र म्हणून भंडारा जिल्ह्याची निवड करण्यात आली आहे.

संशोधन पद्धती :

प्रस्तुत संशोधनपत्रात भंडारा जिल्ह्यातील वापराच्या स्थितीचे अध्ययन केले आहे. या संशोधनात वर्णनात्मक संशोधन आराखड्याचा उपयोग मूल्यांकनात्मक दृष्टिकोनातून वास्तव परिस्थितीची तपासणी करण्यासाठी करण्यात आला आहे.

तसेच, या संशोधन कार्यात मिश्र (गुणात्मक आणि मात्रात्मक) संशोधन पद्धतीचा वापर करण्यात आला आहे. अभ्यास करताना संरचित मुलाखत अनुसूचीचा उपयोग करून बायोगॅस वापराची वर्तमान स्थिती त्यात येणाऱ्या अडचणी आणि ग्रामीण विकासात याचे योगदान तपासण्याचा प्रयत्न करण्यात आला आहे.

तथ्य संकलन पद्धती :

प्रस्तुत शोध पत्रात बायोगॅस ची स्थिती तपासण्यासाठी प्राथमिक स्त्रोतांचा वापर करण्यात आला ज्यात सर्वेक्षण पद्धतीचा उपयोग करण्यात आला.

द्वितीयक स्त्रोतांच्या माध्यमातून माहिती मिळवण्यासाठी पुस्तके, लिंक व शोध पत्रांचा उपयोग करण्यात आला.

अध्ययनाचे विश्व :

प्रस्तुत शोध पत्रात भंडारा जिल्ह्यातील बायोगॅस धारक विश्व असून 80 बायोगॅस धारकांची अध्ययनाचे विश्व म्हणून निवड करण्यात आली आहे .

नमुना निवड :

प्रस्तुत शोध पत्रात संशोधनाचे विश्व लक्षात घेता असंभाव्यता नमुना निवड पद्धतीचा उपयोग करण्यात आला आहे.

सांख्यिकीय विश्लेषण :

भंडारा जिल्ह्यातील बायोगॅस ची वर्तमान स्थिती, आव्हाने व ग्रामीण विकासात याचे योगदान तपासण्यासाठी

संरचित मुलाखत अनुसूची तयार करण्यात आली होती. या प्रश्नावलीत एकूण 7 प्रश्नांचा समावेश असून हे प्रश्न

बायोगॅसची वर्तमान स्थिती दर्शवितात. उत्तरदाते म्हणून जिल्ह्यातील 80 बायोगॅस धारकांनी या संबंधित संख्यात्मक माहिती दिली असून तक्ता क्र.1 मध्ये समाविष्ट आहे

तक्ता क्र.1 :भंडारा जिल्ह्यातील बायोगॅस ची वर्तमान स्थिती, आव्हाने व ग्रामीण विकासात याचे योगदान

अ.क्र	वक्तव्य		अजिबात नाही	अंशत:	मध्यम	पूर्णपणे	एकूण
1	बायोगॅस उभारणीचा प्रारंभिक खर्च अधिक असल्याने शेतकरी वापराकडे दुर्लक्ष करतात असे आपणास वाटते का ?	**वारंवारता**	48	11	13	8	80
		टक्केवारी	60.0	13.8	16.3	10.0	100
2	जैविक कच्च्या मालाच्या (शेण) कमतरतेमुळे बायोगॅस नियमित चालवणे आव्हानात्मक आहे का ?	**वारंवारता**	17	20	33	10	80
		टक्केवारी	21.3	25.0	41.3	12.5	100

ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

3	बायोगॅस उभारणीसाठी मिळणारी अनुदान राशी कमी आहे असे आपणास वाटते का?	**वारंवारता**	32	20	21	7	80
		टक्केवारी	40.0	25.0	26.3	8.8	100
4	शौचालयाला बायोगॅस जोडल्याने सामाजिक संकोच निर्माण होतो का ?	**वारंवारता**	24	11	23	22	80
		टक्केवारी	30.0	13.8	28.8	27.5	100
5	ग्रामीण भागात इंधणासाठी लाकडाच्या जागी बायोगॅस पर्यायी ठरत आहे का ?	**वारंवारता**	6	10	10	54	80
		टक्केवारी	7.5	12.5	12.5	67.5	100
6	अत्याधिक जागेच्या वापरामुळे लोक बायोगॅसकडे पाठ फिरवत आहेत का ?	**वारंवारता**	22	15	37	6	80
		टक्केवारी	27.5	18.8	46.3	7.5	100
7	बायोगॅस ची नियमित देखभाल डोकेदुखी ठरते का?	**वारंवारता**	44	18	16	2	80
		टक्केवारी	55.0	22.5	20.0	2.5	100

तक्ता क्र.1 मध्ये प्राप्त माहिती अनुसार सर्वाधिक 60.0 टक्के उत्तरदात्यांचे मानणे आहे की, बायोगॅस उभारणीचा प्रारंभिक खर्च अधिक असल्याने अजिबात शेतकरी याच्या वापराकडे दुर्लक्ष करत नाही तर सर्वात कमी 10.0 टक्के उत्तरदात्यांचे मानणे आहे की पूर्णपणे दुर्लक्ष करतात.

सर्वाधिक 41.3 उत्तरदात्यांचे मानणे आहे की जैविक कच्च्या मालाच्या (शेण) कमतरतेमुळे बायोगॅस नियमित चालवणे आव्हानात्मक आहे.याचे प्रकार मध्यम आहे तर सर्वात कमी 12.5 टक्के लोकांचे मानणे आहे की पूर्णपणे आव्हानात्मक आहे.

तक्ता क्र.1 मधील तिसऱ्या प्रश्नाविषयी 40.0 टक्के उत्तरदात्यांचे मानणे आहे की, बायोगॅस उभारणीसाठी मिळणारी अनुदान राशी अजिबात कमी नाही तर सर्वात कमी 8.8 टक्के उत्तरदात्यांचे मानणे आहे की, पूर्णपणे कमी आहे.

सर्वाधिक 30.0 टक्के उत्तरदात्यांचे मानणे आहे की शौचालयाला बायोगॅस जोडल्याने अजिबात सामाजिक संकोच निर्माण होत नाही तर सर्वात कमी 13.8 टक्के उत्तरदात्यांचे मानणे आहे की अंशत: संकोच निर्माण होतो.

सर्वाधिक 67.5 टक्के उत्तरदात्यांचे मानणे आहे की, ग्रामीण भागात इंधणासाठी लाकडाच्या जागी बायोगॅस पूर्णपणे पर्यायी ठरत आहे. तर सर्वात कमी 12.5 टक्के उत्तरदात्यांचे मानणे आहे की, असे प्रमाण अंशत: व मध्यम आहे.

सहाव्या प्रश्नाविषयी प्राप्त आकडेवारीतून लक्षात येते की, 46.3 टक्के उत्तरदात्यांचे मानणे आहे की, अत्याधिक जागेच्या वापरामुळे लोक बायोगॅस पाठ फिरवत आहेत याचे प्रमाण मध्यम आहे तर सर्वात कमी 7.5 टक्के उत्तरदात्यांचे मानणे आहे की पूर्णपणे पाठ फिरवत आहेत.

सर्वाधिक 55.0 टक्के उत्तरदात्यांचे मानणे आहे की, बायोगॅस ची नियमित देखभाल अजिबात डोकेदुखी ठरत नाही तर सर्वात कमी 2.5 टक्के उत्तरदात्यांचे मानणे आहे की पूर्णपणे डोकेदुखी ठरत आहे.

निष्कर्ष :

भंडारा जिल्ह्यातील बायोगॅस ची वर्तमान स्थिती, आव्हाने व ग्रामीण विकासात याचे योगदान या विषयी केलेल्या अध्ययनातून पुढील निष्कर्ष समोर आले;

बायोगॅस उभारणीचा प्रारंभिक खर्च अधिक जरी असला तरी शेतकरी याच्या वापराकडे दुर्लक्ष करत नाही तर जैविक कच्च्या मालाच्या (शेण) कमतरतेमुळे बायोगॅस नियमित चालवणे पूर्णपणे आव्हानात्मक नसले तरी ही महत्वाची समस्या दिसून येते. सरकार द्वारा बायोगॅस उभारणीसाठी मिळणारी अनुदान राशी समाधानकारक असली तरी त्याच्यात वाढ होणे आवश्यक असल्याचे अध्ययनातून निष्कर्षास आले. शौचालयाला बायोगॅस जोडल्याने सामाजिक संकोच निर्माण होतो परंतु याचे प्रमाण कमी असल्याचे निदर्शनास आले. बायोगॅस धारकांचे मानणे आहे की ग्रामीण भागात इंधणासाठी लाकडाच्या जागी मोठ्या प्रमाणात बायोगॅस पर्यायी ठरत आहे. अत्याधिक जागेच्या वापरामुळे लोक बायोगॅस पाठ फिरवत आहेत असे देखील अध्ययनातून निदर्शनास आले. बायोगॅस ची नियमित देखभाल डोकेदुखी जरी ठरत असली तरी याचे प्रमाण खूप कमी आहे असे अध्ययनातून समोर आले.

संदर्भ ग्रंथसूची :

1. सेंगर.स. बायोगॅस. गोडवा कृषी प्रकाशन.
2. देवधर.प्र. बायोगॅस-जैविक इंधन.व्यास क्रिएशन्स.
3. घनवाटी.ह. (2018). बायोगॅस. स्प्रिंगर प्रकाशन.
4. https://biogas.mnre.gov.in/about-the-programmes
5. http://puneresearch.com/media/data/issues/600be9e927d3f.pdf
6. https://agrowon.esakal.com/agro-special/biogas-plants-offer-sustainable-energy-model-for-rural-areas-sai29

शिक्षणात ए -आय (कृत्रिम बुद्धिमत्ता) च्या वाढत्या वापरामुळे शिक्षकांच्या अध्यापन पद्धती वर पडणारा प्रभावाचे विश्लेषणात्मक अध्ययन

भागवत भांगे
शोधार्थी, शिक्षाशास्त्र विभाग, रा.तु.म नागपूर विद्यापीठ नागपूर

सारांश :
वर्तमान युग तंत्रज्ञानाचे युग असून अनेक प्रकारचे बदल वेगवेगळ्या क्षेत्रात होतांना दिसून येत आहेत. ए-आय चा वापर मानवी जीवनाचे अविभाज्य अंग बनत चालला असून शिक्षण क्षेत्रावर याचा मोठ्या प्रमाणात प्रभाव पडलेला दिसून येत आहे. अध्यापन पद्धतीत अमुलाग्र बदल होतांना दिसत आहेत. विद्यार्थ्यांच्या मानसिक स्थितीवर व प्राध्यापकांच्या अध्यापन कौशल्यावर यामुळे सकारात्मक व नकारात्मक प्रभाव पडतांना दिसून येत असून प्रस्तुत अध्ययनाच्या माध्यमातून ए-आय चा अतिवापर आणि अध्यापन पद्धतीत झालेले बदल याविषयी विश्लेषणात्मक अध्ययन करण्यात आले आहे. विद्यार्थ्यांचा शैक्षणिक विकास या संदर्भातील विविध घटकांवर प्रकाश टाकण्यात आला आहे.

मुख्य शब्द : ए-आय (कृत्रिम बुद्धिमत्ता), अध्यापन पद्धत, शैक्षणिक विकास, शिक्षक-विद्यार्थी आंतरक्रिया, विद्यार्थ्यांची मानसिक स्थिती

प्रस्तावना :
वर्तमान काळाला "कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence – AI)" चे युग म्हटले जाते, आणि ते योग्यही आहे, कारण आजच्या काळात एआय तंत्रज्ञानाचा प्रभाव जीवनाच्या जवळजवळ प्रत्येक क्षेत्रात स्पष्टपणे दिसून येतो. विज्ञान, शिक्षण, आरोग्य, उद्योग, शेती, व्यापार, संप्रेषण आणि प्रशासन अशा विविध क्षेत्रांमध्ये एआयचा वापर झपाट्याने वाढत आहे. ही तंत्रज्ञान प्रणाली केवळ कामे सुलभ आणि जलद करत नाही, तर त्यामध्ये अचूकता (accuracy) आणि स्वायत्तता (automation) देखील वाढवते.

एआयचा मुख्य उद्देश संगणक आणि यंत्रांना मानवी बुद्धिमत्तेसारखी विचार करण्याची, शिकण्याची, तर्क करण्याची आणि निर्णय घेण्याची क्षमता प्रदान करणे हा आहे. मशीन लर्निंग (Machine Learning), डीप लर्निंग (Deep Learning) आणि नैसर्गिक भाषा प्रक्रिया (Natural Language Processing) यांसारख्या प्रगत तंत्रज्ञानांच्या साहाय्याने एआयने जटिल समस्यांचे निराकरण करणे शक्य केले आहे. उदाहरणार्थ, आरोग्य क्षेत्रात एआयच्या मदतीने रोगांचे लवकर आणि अचूक निदान केले जात आहे, तर शिक्षण क्षेत्रात वैयक्तिक शिकण्याच्या (personalized learning) पद्धती विकसित होत आहेत. उद्योग क्षेत्रात उत्पादनक्षमता वाढवणे आणि खर्च कमी करणे यासाठीही एआय अत्यंत उपयुक्त ठरत आहे.

विशेषतः संगणक विज्ञान (Computer Science) या क्षेत्रावर एआयचा मोठा प्रभाव पडला आहे. सॉफ्टवेअर विकास, डेटा विश्लेषण, सायबर सुरक्षा आणि रोबोटिक्स या क्षेत्रांमध्ये एआयमुळे नवीन संधी निर्माण झाल्या आहेत. आज एआय प्रणाली मानवी बुद्धिमत्तेच्या विविध पैलूंना—जसे की तर्कशक्ती (reasoning), समस्या सोडवणे (problem solving) आणि निर्णयक्षमता (decision making)—आंशिक स्वरूपात कार्यान्वित करू शकतात.

तथापि, प्रत्येक तंत्रज्ञानाप्रमाणे एआयचेही दोन पैलू आहेत—सकारात्मक आणि नकारात्मक. एआयचा योग्य वापर समाजाच्या प्रगतीस आणि मानव जीवनाच्या गुणवत्तेत वाढ करण्यास मदत करतो, परंतु त्याचा दुरुपयोग गंभीर समस्यांना कारणीभूत ठरू शकतो. उदाहरणार्थ, बनावट बातम्या (fake news) पसरवणे, सायबर गुन्ह्यांमध्ये (cyber crimes) वाढ, वैयक्तिक गोपनीयतेचा भंग (privacy issues) आणि स्वयंचलित शस्त्रनिर्मिती (autonomous weapons) या एआयच्या दुरुपयोगाच्या उदाहरणांमध्ये गणले जातात. याशिवाय, अतिस्वयंचलनामुळे रोजगाराच्या संधी कमी होण्याची भीतीही व्यक्त केली जाते.

या सर्व गोष्टींचा विचार करता, एआयच्या वापरात नैतिकता (ethics) आणि जबाबदारी (responsibility) यांना विशेष महत्त्व देणे आवश्यक आहे. सरकार, संशोधक आणि समाज यांनी एकत्र येऊन योग्य धोरणे आणि नियम तयार करणे गरजेचे आहे, ज्यामुळे एआयचा वापर मानवकल्याणासाठी होईल आणि त्याच्या दुरुपयोगावर नियंत्रण ठेवता येईल.

शिक्षण क्षेत्रात ए-आय ((Artificial Intelligence) च्या वाढत्या प्रभावाची कारणे :

सर्व प्रकारच्या क्षेत्रात ए-आय लोकप्रिय होत चालले असून माणसांची जागा ए-आय घेणार का ? असा प्रश्न समाजाला पडला आहे असे असले तरी कार्याची सुलभता, स्पष्टता व बौद्धिक कष्ट कमी करण्यासाठी ए-आय अधिक उपयोगी ठरत आहे. काही ठळक कारणे पुढीलप्रमाणे आहेत;

बौद्धिक सटीकता :

ए-आय (Artificial Intelligence - AI) च्या माध्यमातून प्राप्त होणारे ज्ञान हे पारंपरिक माहिती स्रोतांच्या तुलनेत अधिक सटीक, स्पष्ट आणि मुद्देसूद स्वरूपाचे आढळते. AI प्रणाली मोठ्या प्रमाणातील डेटाचे जलद व कार्यक्षम विश्लेषण करून आवश्यक माहिती संक्षिप्त आणि व्यवस्थित पद्धतीने सादर करतात. यामुळे विद्यार्थ्यांना अल्प वेळेत अधिक प्रमाणात आणि गुणवत्तापूर्ण माहिती मिळण्यास मदत होते.

तसेच, AI द्वारे दिली जाणारी माहिती ही विविध विश्वसनीय स्रोतांवर आधारित असल्यामुळे तिची विश्वासार्हता आणि अचूकता अधिक असते. विशेषतः सांख्यिकीय आकडेवारी, ट्रेंड विश्लेषण, आणि तुलनात्मक माहिती यांचा समावेश असल्यामुळे ज्ञान अधिक सखोल आणि अभ्यासपूर्ण बनते. यामुळे संशोधनामध्ये वस्तुनिष्ठता राखण्यास मदत होते.

AI चा वापर केल्यामुळे ज्ञानातील मानवी त्रुटी कमी होतात, तसेच जटिल संकल्पना सोप्या भाषेत समजावून सांगण्याची क्षमता वाढते. त्यामुळे विद्यार्थी आणि शैक्षणिक क्षेत्रातील इतर घटकांना निर्णय घेण्याची प्रक्रिया अधिक अचूक आणि प्रभावी बनवता येते.

याशिवाय, AI प्रणाली सतत अद्ययावत माहिती पुरवतात, ज्यामुळे शिक्षणात नवीन घडामोडी आणि आधुनिक दृष्टिकोन समाविष्ट करणे शक्य होते. परिणामी, ज्ञान निर्मितीची गुणवत्ता सुधारते आणि शिक्षण अधिक परिणामकारक ठरते.

भाषांतर :

भारत विविध भाषिक देश आहे. भारताची राष्ट्रीय भाषा हिंदी असली तरी वेगवेगळ्या राज्यांमध्ये स्थानिक भाषेत शिक्षणाची व्यवस्था आहे शिवाय वैश्विक भाषा म्हणून इंग्रजी भाषेला महत्व आहे म्हणूनचं भाषांतरातून शिक्षण पद्धती ज्ञानात वृद्धी घालते. ए -आय मुळे भाषांतर प्रक्रिया अधिक सुलभ झाली असून विद्यार्थ्यांसाठी ज्ञानाची दालने खुली झाली आहेत.

सर्व प्रकारच्या माहितीचे स्त्रोत :

ए-आय च्या माध्यमातून सर्व प्रकारची माहिती चुटकी सरशी उपलब्ध होते. त्यामुळे विद्यार्थ्यांना हे ज्ञानाचे महासागर वाटू लागले आहे. एरवी ज्ञानार्जनासाठी वेगवेगळ्या प्रकारच्या पुस्तकांचा संदर्भ, शिक्षक किंवा तज्ञांचे मार्गदर्शन घ्यावे लागे ए-आय नी आता मार्गदर्शकाची जागा घेतली आहे.

शिक्षकांसाठी मार्गदर्शक :

ए-आय शिक्षकांना शैक्षणिक साहित्य तयार करणे तसेच वेगवेगळ्या प्रकारची नवीन माहिती उपलब्ध करून देते त्यामुळे शिक्षकांमध्ये सुद्धा हे लोकप्रिय होत आहे.

आभासी शिक्षण :

ए-आय मुळे आभासी शिक्षण प्रणालीमध्ये लक्षणीय वाढ झालेली दिसून येते. विशेषतः ऑनलाईन शिक्षणाच्या क्षेत्रात AI ने शिक्षण प्रक्रियेला अधिक गतिमान, सुलभ आणि वैयक्तिक बनवले आहे. विविध डिजिटल प्लॅटफॉर्म्स, ई-लर्निंग साधने आणि स्मार्ट तंत्रज्ञानाच्या सहाय्याने विद्यार्थ्यांना कोणत्याही वेळेत आणि कोणत्याही ठिकाणाहून शिक्षण घेणे शक्य झाले आहे.

ए-आय चे अध्यापन प्रणाली वर पडणारे प्रभाव

ए-आय ची शिक्षण क्षेत्रात वाढती लोकप्रियता शिक्षण व्यवस्थेत मुलभूत बदल घडवून आणत आहे.

सकारात्मक प्रभाव

1. विद्यार्थी केंद्रित अध्ययन पद्धती
2. वैयक्तिकीकृत शिक्षण
3. स्वयं मूल्यमापन
4. विद्यार्थ्यांना त्वरित अभिप्रायाची अपेक्षा
5. शिक्षकांवरील कामाचा ताण कमी होतो.
6. शिक्षणातील कठीण संकल्पना सोप्या पद्धतीने समजावून सांगता येतात.
7. विद्यार्थ्यांच्या शैक्षणिक स्थितीचे विश्लेषण.
8. ऑनलाईन शिक्षणाला चालना मिळते.
9. डिजिटल साधनांचा अधिक वापर वाढतो.

नकारात्मक प्रभाव

1. ज्ञान सहज उपलब्ध झाल्याने विद्यार्थ्यांमधील जिज्ञासा वृत्ती कमी होते.
2. शिक्षकांपेक्षा तंत्रज्ञानावर अधिक विश्वास.
3. गरीब व होतकरू विद्यार्थ्यांना खर्चिक
4. दुर्गम भागात नेटवर्क ची समस्या

शिक्षकांसाठी आव्हाने :

1. नवीन तंत्रज्ञान प्रणालीशी सुसंगत अध्ययन क्षमता विकसित करणे.
2. डिजिटल साक्षरतेची आवश्यकता.
3. ए-आय साधनांच्या वापरासाठी प्रशिक्षणाची आवश्यकता.
4. पारंपारिक अध्यापन पद्धतीत बदल करणे.
5. अध्यापनातून मानवी विश्वास कमी होण्याची भीती.

6. सतत अपडेट राहणे.
7. तांत्रिक अडचणी
8. वेळेचे व्यवस्थापन

विषयाची निवड :

विषयाची निवड करताना वर्तमान स्थितीत ए-आय चा वाढता प्रभाव व त्याचा शिक्षण क्षेत्रात होत असलेला अत्याधिक वापर लक्षात घेतला असून त्याचे सकारात्मक व नकारात्मक परिणाम अध्यापन पद्धतीवर पडताना दिसून येत आहेत.

विषयाची निवड करताना प्रामुख्याने अध्यापन पद्धतीत होणारे बदल त्याचा शिक्षकांवर होणारा परिणाम केंद्रस्थानी ठेवण्यात आला आहे.

साहित्य परीक्षण :

प्रस्तुत शोध पत्र लेखनाकरिता विविध प्रकारचे पुस्तक, शोधग्रंथ व ऑनलाईन पद्धतीचा वापर करण्यात आला.

तांबे.स.(2022). *कृत्रिम बुद्धिमत्ता: तंत्र, मंत्र आणि अनुप्रयोग.*

या पुस्तकात लेखकाने कृत्रिम बुद्धिमत्तेमुळे विज्ञान, तंत्रज्ञान, उद्योग, व्यवसाय, अर्थकारण, राजकारण इत्यादींचेच नव्हे, तर युद्धाचे सुद्धा नियम बदलत आहेत याचे सविस्तर वर्णन केले आहे . कृत्रिम बुद्धिमत्ता क्षेत्राबद्दल मूलभूत स्वरूपाचे आणि सर्वसमावेशक ही वैशिष्ट्ये यांचा या पुस्तकात सहभाग आहे.

वाळवलकर.ग.(2025). *आर्टिफिशियल इंटेलिजेन्स.* माय मिरर पब्लिशिंग हाउस प्रायवेट लिमिटेड.

या पुस्तकात ए-आय चे फायदे व तोटे नमूद केले असून लेखकांनी बदलत्या काळात विविध क्षेत्रातील ए-आय च्या भूमिकेचे वर्णन केले आहे.

शुक्ला.सं. (2025). *कृत्रिम बुद्धिमत्ता*.एआयएसईसिटी पब्लिकेशन.

ही पुस्तक संतोष कुमार शुक्ला यांनी लिहिलेली असून कृत्रिम बुद्धिमत्तेच्या गुंतागुंती समजून घेण्यासाठी एक सविस्तर मार्गदर्शक म्हणून कार्य करते. यात AI चे मूलभूत तत्त्व, त्याचे विविध उपयोग आणि आजच्या समाजात त्याचे वाढते महत्त्व स्पष्ट केले आहे.

मुलभूत शोध प्रश्न :

1. ए – आय च्या वापरामुळे विद्यार्थी तंत्रज्ञान केंद्रित होत आहे का ?
2. ए -आय मुळे पारंपारिक अध्यापन पद्धतीत बदल होत आहे का ?

3. ए-आय मुळे अध्यापन पद्धतीत आव्हान निर्माण झाले आहे का ?

मुलभूत शोध उद्देश :

1. ए - आय च्या वापरामुळे विद्यार्थ्यांमधील वाढत्या तंत्रज्ञानाविषयीचे अध्ययन करणे.
2. ए-आय मुळे पारंपारिक अध्यापन पद्धतीत झालेल्या बदलाचे अध्ययन करणे.
3. ए-आय मुळे अध्यापन पद्धतीत निर्माण झालेल्या आव्हानांचे अध्ययन करणे.

अध्ययनाचे भौगोलिक क्षेत्र :

प्रस्तुत शोध पत्रात भौगोलिक क्षेत्र म्हणून नागपूर शहर निवडले आहे.

संशोधन पद्धती :

प्रस्तुत संशोधनपत्रात नागपूर शहरातील माध्यमिक व उच्च माध्यमिक शिक्षकांचे ए-आय बद्दलचे मत अभ्यासले आहे. या संशोधनात वर्णनात्मक संशोधन आराखड्याचा उपयोग मूल्यांकनात्मक दृष्टिकोनातून वास्तव परिस्थितीची तपासणी करण्यासाठी करण्यात आला आहे.

तसेच, या संशोधन कार्यात मिश्र (गुणात्मक आणि मात्रात्मक) संशोधन पद्धतीचा वापर करण्यात आला आहे. अभ्यास करताना संरचित मुलाखत अनुसूचीचा उपयोग करून सर्वेक्षण पद्धतीच्या माध्यमातून ए-आय चे अध्यापन पद्धतीवर झालेले परिणाम तपासण्याचा प्रयत्न करण्यात आला आहे.

तथ्य संकलन पद्धती :

प्रस्तुत शोध पत्रात ए-आय चा अध्यापन पद्धतीवर होणारा परिणाम तपासण्यासाठी प्राथमिक स्त्रोतांचा वापर करण्यात आला ज्यात सर्वेक्षण पद्धतीचा उपयोग करण्यात आला.

द्वितीयक स्त्रोतांच्या माध्यमातून माहिती मिळवण्यासाठी पुस्तके, लिंक व शोध पत्रांचा उपयोग करण्यात आला.

अध्ययनाचे विश्व :

प्रस्तुत शोध पत्रात नागपूर शहरातील विभिन्न महाविद्यालयातील माध्यमिक व उच्च माध्यमिक शिक्षक अध्ययनाचे विश्व असून 80 शिक्षक उत्तरदाता म्हणून निवडण्यात आले.

नमुना निवड :

प्रस्तुत शोध पत्रात संशोधनाचे विश्व लक्षात घेता असंभाव्यता नमुना निवड पद्धतीचा उपयोग करण्यात आला आहे.

सांख्यिकीय विश्लेषण :

तक्ता क्र.1 नवीन तंत्रज्ञान प्रणालीशी सुसंगत अध्ययन क्षमता विकसित करणे आपल्याला आव्हानात्मक वाटते का ?

वक्तव्य	वारंवारता	टक्केवारी
अजिबात नाही	5	6.3
अंशत:	45	56.3
मध्यम	21	26.3
पूर्णपणे	9	11.3
एकूण	80	100

तक्ता क्र.1 मधील प्राप्त आकडेवारीनुसार सर्वाधिक 56.3 टक्के शिक्षकांचे मानणे आहे की नवीन तंत्रज्ञान प्रणालीशी सुसंगत अध्ययन क्षमता विकसित करणे **अंशत:** आव्हानात्मक वाटते. सर्वात कमी 6.3 टक्के शिक्षकांचे मानणे आहे की **अजिबात** आव्हानात्मक वाटत नाही.

तक्ता क्र.2 ए-आय साधनांच्या वापरासाठी प्रशिक्षणाची आवश्यकता वाटते का ?

वक्तव्य	वारंवारता	टक्केवारी
अजिबात नाही	0	0
महिन्यातून एकदा	19	23.8
वर्षातून दोन वेळा	55	68.8
वर्षातून एकदा	6	7.5
एकूण	80	100

तक्ता क्र.2 मधील प्राप्त आकडेवारीनुसार सर्वाधिक 68.8 टक्के शिक्षकांचे मानणे आहे की ए-आय साधनांच्या वापरासाठी **वर्षातून दोन वेळा** प्रशिक्षणाची आवश्यकता आहे. सर्वात कमी 7.5 टक्के शिक्षकांचे मानणे आहे की **वर्षातून एकदा** प्रशिक्षण घेण्यात यावे.

तक्ता क्र.3 ए-आय मुळे विद्यार्थ्यांध्ये शिक्षकांविषयीची विश्वासार्हता कमी होत आहे का ?

वक्तव्य	वारंवारता	टक्केवारी
अजिबात नाही	13	16.3
अंशत:	55	68.8
मध्यम	12	15.0
पूर्णपणे	0	0
एकूण	80	100

तक्ता क्र.3 मधील प्राप्त आकडेवारीनुसार सर्वाधिक 68.8 टक्के शिक्षकांचे मानणे आहे की ए-आय मुळे विद्यार्थ्यांध्ये शिक्षकांविषयीची विश्वासार्हता **अंशत:**कमी होत आहे. सर्वात कमी 15.0 टक्के शिक्षकांचे मानणे आहे की याचे प्रमाण **मध्यम** आहे.

तक्ता क्र.4 ए-आय मुळे अध्यापन पद्धती सुलभ झाली आहे का ?

वक्तव्य	वारंवारता	टक्केवारी
अजिबात नाही	1	1.3
अंशत:	23	28.8
मध्यम	54	67.5
पूर्णपणे	2	2.5
एकूण	80	100

तक्ता क्र.4 मधील प्राप्त आकडेवारीनुसार सर्वाधिक 67.5 टक्के शिक्षकांचे मानणे आहे ए-आय मुळे अध्यापन पद्धती सुलभ होण्याचे प्रमाण **मध्यम** आहे सर्वात कमी 1.3 टक्के शिक्षकांचे मानणे आहे की अजिबात सुलभ झाली नाही.

तक्ता क्र.5 ज्ञान सहज उपलब्ध झाल्याने विद्यार्थ्यांमधील जिज्ञासा वृत्ती कमी होत आहे का ?

वक्तव्य	वारंवारता	टक्केवारी
अजिबात नाही	1	1.3
अंशत:	7	8.8
मध्यम	30	37.5
पूर्णपणे	42	52.5
एकूण	80	100

तक्ता क्र.5 मधील प्राप्त आकडेवारीनुसार सर्वाधिक 52.5 टक्के शिक्षकांचे मानणे आहे की, ए-आय मुळे ज्ञान सहज उपलब्ध झाल्याने विद्यार्थ्यांमधील जिज्ञासा वृत्ती **पूर्णपणे** कमी झाली आहे. सर्वात कमी 1.3 टक्के लोकांचे मानणे आहे की **अजिबात कमी** झाली नाही

तक्ता क्र.6 ए-आय मुळे पारंपारिक अध्यापन प्रणालीत बदल होत आहे का ?

वक्तव्य	वारंवारता	टक्केवारी
अजिबात नाही	1	1.3
अंशत:	3	3.8
मध्यम	57	71.3
पूर्णपणे	19	23.8
एकूण	80	100

तक्ता क्र.6 मधील प्राप्त आकडेवारीनुसार सर्वाधिक 71.3 टक्के शिक्षकांचे मानणे आहे की ए-आय मुळे पारंपारिक अध्यापन प्रणालीत **मध्यम** प्रमाणात बदल होत नाही. सर्वात कमी 1.3 टक्के लोकांचे मानणे आहे की **अजिबात बदल** होत नाही आहे.

तक्ता क्र.7

वक्तव्य	वारंवारता	टक्केवारी
अजिबात नाही	1	1.3
अंशत:	12	15.0
मध्यम	66	82.5
पूर्णपणे	1	1.3
एकूण	80	100

तक्ता क्र.7 मधील प्राप्त आकडेवारीनुसार सर्वाधिक 82.5 टक्के शिक्षकांचे मानणे आहे की ए-आय मुळे विद्यार्थ्यांना शिक्षकांकडून त्वरित अभिप्रायाची अपेक्षा **मध्यम** प्रमाणात दिसून येते. सर्वात कमी 1.3 टक्के लोकांचे मानणे आहे की **अजिबात** दिसून येत नाही. असे ही 1.3 टक्के असे ही शिक्षक आहे ज्यांचे मानणे आहे की **पूर्णपणे** अपेक्षा दिसून येते.

निष्कर्ष :

प्रस्तुत अध्ययनातून प्राप्त आकडेवारी व तथ्यानुसार निष्कर्ष प्राप्त होते की, नवीन तंत्रज्ञान प्रणालीशी सुसंगत अध्ययन क्षमता विकसित करणे शिक्षकांसाठी आव्हानात्मक नाही. वर्षातून दोन वेळा तांत्रिक प्रशिक्षणाची सोय केल्यास ए-आय वापरणे सोपे होईल. ए-आय मुळे विद्यार्थ्यामधील विश्वासार्हता पाहिजे त्या प्रमाणात कमी होतांना दिसून येत नाही. ए-आय मुळे अध्यापन पद्धतीत सुलभता येत असून अजूनही पूर्णपणे सुलभता आली नाही असे शिक्षकांचे मानणे आहे. ए-आय च्या अधिक वापरामुळे विद्यार्थ्यामधील जिज्ञासा वृत्ती कमी होत चालली असून हा चिंतेचा विषय आहे. पारंपारिक अध्यापन पद्धतीची जागा कौश्ल्याधीष्टीत शिक्षण पद्धती घेत आहे. त्यामुळे पारंपारिक शिक्षण पद्धतीत बदल होतांना दिसून येत आहे. ए-आय मुळे विद्यार्थ्यांना शिक्षकांकडून त्वरित अभिप्रायाची अपेक्षा वाढत चालली असून येणाऱ्या काळात याचे प्रमाण अधिक वाढेल.

एकंदरीत प्रस्तुत अध्ययनातून ए-आय च्या वापरामुळे अध्यापन पद्धतीत अनेक प्रकारचे बदल होतांना दिसून येत आहेत.

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. तांबे.स.(2022). कृत्रिम बुद्धिमत्ता: तंत्र, मंत्र आणि अनुप्रयोग.
2. वाळवलकर.ग.(2025). आर्टिफिशियल इंटेलिजेन्स. माय मिरर पब्लिशिंग हाउस प्रायवेट लिमिटेड.

3. शुक्ला.सं. (2025). कृत्रिम बुद्धिमत्ता.एआयएसईसिटी पब्लिकेशन.
4. https://www.ibm.com/think/topics/artificial-intelligence
5. https://www.drishtiias.com/hindi/loksabha-rajyasabha-discussions/artificial-intelligence-9
6. https://www.visionias.in/blog-hindi/subject-strategy-hindi/artificial-intelligence-ai-and-ethical-dilemmas

ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

अनुसूचित जनजाति में धनगर आरक्षण के मांग की ऐतिहासिक पृष्टभूमि, वर्तमान स्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन

किशोर विश्वासराव पाटील

सारांश

भारत में आरक्षण व्यवस्था का उद्देश्य सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों का सशक्तिकरण करना है। समय-समय पर बदलती सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार इस व्यवस्था में सुधार की आवश्यकता महसूस होती रही है। महाराष्ट्र में धनगर समाज के आरक्षण से जुड़ा मुद्दा इसी संदर्भ में महत्वपूर्ण है। धनगर समुदाय, जो मुख्यतः पशुपालन पर निर्भर है, अपनी आर्थिक और शैक्षणिक पिछड़ेपन के कारण अनुसूचित जनजाति (ST) श्रेणी में शामिल होने की मांग करता रहा है।

इस शोध में धनगर और "धनगड " नामक जनजाति के बीच समानता एवं भिन्नता, संवैधानिक प्रावधानों, तथा आरक्षण प्रक्रिया की जटिलताओं का विश्लेषण किया गया है। साथ ही, अन्य अनुसूचित जनजाति समुदायों के विरोध, राजनीतिक हस्तक्षेप, तथा प्रशासनिक अड़चनों को भी अध्ययन में शामिल किया गया है।

अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि धनगर आरक्षण का मुद्दा केवल आर्थिक आधार पर नहीं, बल्कि ऐतिहासिक, सामाजिक और कानूनी पहलुओं से भी गहराई से जुड़ा हुआ है। अतः इस समस्या के समाधान हेतु संतुलित नीति, प्रमाण-आधारित निर्णय और सभी संबंधित पक्षों के बीच समन्वय आवश्यक है।

बीज शब्द : धनगर आरक्षण, विदर्भ, धनगर आरक्षण, अनुसूचित जनजाति

प्रस्तावना :

महाराष्ट्र राज्य में धनगर समुदाय को अनुसूचित जनजाति (ST) श्रेणी के अंतर्गत आरक्षण देने की मांग एक अत्यंत संवेदनशील तथा सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण मुद्दा बनकर उभरी है। परंपरागत रूप से धनगर समुदाय ने घुमंतू एवं पशुपालक जीवनशैली अपनाई है, जिसमें मुख्यतः भेड़

और बकरियों का पालन शामिल है। इस प्रवासी जीवनशैली के कारण ऐतिहासिक रूप से उन्हें शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं, स्थायी रोजगार और समग्र सामाजिक-आर्थिक विकास जैसी बुनियादी सुविधाओं तक पर्याप्त पहुँच नहीं मिल सकी, जिसके परिणामस्वरूप उनका दीर्घकालीन हाशियाकरण हुआ है।

भारतीय संविधान सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के उत्थान हेतु सकारात्मक भेदभाव (affirmative action) के रूप में आरक्षण का प्रावधान करता है। अनुसूचित जनजाति (ST) श्रेणी में शामिल किए जाने से धनगर समुदाय को शिक्षा, सरकारी रोजगार तथा राजनीतिक प्रतिनिधित्व के क्षेत्र में अधिक अवसर प्राप्त हो सकते हैं। वर्तमान में महाराष्ट्र में धनगर समुदाय को अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) के अंतर्गत वर्गीकृत किया गया है। तथापि, उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति अनुसूचित जनजातियों के समान होने के कारण, यह समुदाय कई दशकों से ST श्रेणी में शामिल किए जाने की मांग करता रहा है। इस मांग की जड़ें ऐतिहासिक, सामाजिक और प्रशासनिक कारकों में निहित हैं। अनेक विद्वानों के अनुसार, ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के दौरान "धनगर" और "धनगड़" शब्दों के बीच उत्पन्न विसंगति के कारण प्रशासनिक भ्रम पैदा हुआ। परिणामस्वरूप, कुछ राज्यों में धनगर के समान समुदायों को ST श्रेणी में शामिल किया गया, जबकि महाराष्ट्र में उन्हें इससे वंचित रखा गया। इस असंगति के कारण धनगर समुदाय में अन्याय की भावना उत्पन्न हुई है, क्योंकि समान सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों वाले समुदायों को विभिन्न राज्यों में अलग-अलग संवैधानिक लाभ प्राप्त हो रहे हैं।

समय के साथ इस आरक्षण आंदोलन को व्यापक राजनीतिक समर्थन भी प्राप्त हुआ है। धनगर समुदाय ने अपने अधिकारों की मांग को लेकर विभिन्न आंदोलनों, रैलियों और सरकारी स्तर पर प्रस्तुतियों के माध्यम से अपनी आवाज उठाई है। हालांकि, इस मांग का विरोध मौजूदा अनुसूचित जनजाति समुदायों द्वारा भी किया गया है, क्योंकि उन्हें आशंका है कि धनगरों के शामिल होने से उनके आरक्षण के लाभों में कमी आ सकती है। इस प्रकार, यह स्थिति एक जटिल नीति-निर्माण चुनौती प्रस्तुत करती है, जिसमें राज्य को सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को बनाए रखते हुए विभिन्न हितों के बीच संतुलन स्थापित करना आवश्यक है।

धनगर समुदाय की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का गहन विश्लेषण करने पर उनकी निरंतर पिछड़ापन स्पष्ट रूप से सामने आता है। इस समुदाय का एक बड़ा हिस्सा आज भी गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहा है। कम साक्षरता दर, उच्च शिक्षा में सीमित भागीदारी तथा औपचारिक रोजगार क्षेत्रों में न्यून प्रतिनिधित्व इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं। इसके अतिरिक्त, उनकी घुमंतू जीवनशैली बच्चों की शिक्षा में निरंतरता को बाधित करती है, जिससे दीर्घकालीन सामाजिक गतिशीलता और आर्थिक प्रगति प्रभावित होती है।

भौगोलिक दृष्टि से भी धनगर समुदाय मुख्यतः ग्रामीण, दूरस्थ एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में निवास करता है, जहाँ विद्यालय, स्वास्थ्य केंद्र, स्वच्छ पेयजल और परिवहन जैसी आधारभूत सुविधाओं का अभाव है। परिणामस्वरूप, उनका समग्र विकास सीमित रह जाता है। यदि उन्हें ST श्रेणी में शामिल किया जाता है, तो वे जनजातीय समुदायों के लिए उपलब्ध विशेष योजनाओं—जैसे छात्रवृत्तियाँ, आश्रम विद्यालय, तथा वित्तीय सहायता कार्यक्रम—का लाभ उठा सकेंगे।

अतः, धनगर समुदाय को अनुसूचित जनजाति का दर्जा देने का प्रश्न केवल आरक्षण तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक न्याय, ऐतिहासिक असमानताओं के सुधार तथा समान विकास से जुड़ा एक व्यापक मुद्दा है। इस विषय पर संतुलित, तथ्य-आधारित और संवैधानिक दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है, जिससे सभी संबंधित पक्षों के हितों को ध्यान में रखते हुए न्यायसंगत एवं दीर्घकालीन समाधान सुनिश्चित किया जा सके।

आरक्षण के मांग की ऐतिहासिक पृष्टभूमि :

महाराष्ट्र में धनगर आरक्षण का इतिहास सामाजिक न्याय, राजनीतिक घटनाक्रमों तथा प्रशासनिक निर्णयों की जटिल प्रक्रिया के माध्यम से विकसित हुआ है। इस इतिहास को समझने के लिए औपनिवेशिक काल से लेकर आधुनिक समय के आंदोलनों तक की यात्रा का अध्ययन करना आवश्यक है।

शाब्दिक अपभ्रंश :

ब्रिटिश काल में भारतीय समाज का वर्गीकरण विभिन्न जातियों और जनजातियों में किया गया। इस प्रक्रिया के दौरान अनेक बार नाम, उच्चारण तथा स्थानीय भिन्नताओं के कारण भ्रम की स्थिति उत्पन्न हुई। "धनगर" और "धनगड़" शब्दों के बीच का अंतर इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण माना जाता है। कुछ अभिलेखों में "धनगड़" नाम से समुदाय को अनुसूचित जनजाति में शामिल किया गया, जबकि "धनगर" समुदाय इससे अलग रह गया। इससे आगे चलकर आरक्षण के संदर्भ में एक गंभीर प्रशासनिक और ऐतिहासिक समस्या उत्पन्न हुई।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात :

स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान के अंतर्गत अनुसूचित जाति (SC) और अनुसूचित जनजाति (ST) की सूची निर्धारित की गई। वर्ष 1950 के राष्ट्रपति आदेश (Presidential Order) के माध्यम से विभिन्न राज्यों की जनजातियों को ST श्रेणी में शामिल किया गया। महाराष्ट्र में धनगर समुदाय को इस सूची में शामिल नहीं किया गया, बल्कि उन्हें अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) के अंतर्गत रखा गया। इस निर्णय के कारण धनगर समुदाय ST वर्ग को प्राप्त विशेष सुविधाओं और योजनाओं से वंचित रह गया।

आरक्षण से सम्बंधित आयोगों का गठन :

1960 में महाराष्ट्र राज्य के गठन के पश्चात धनगर समुदाय की आरक्षण संबंधी मांग अधिक स्पष्ट रूप से सामने आने लगी। समाज के नेताओं, संगठनों और कार्यकर्ताओं ने सरकार को बार-बार ज्ञापन देकर ST श्रेणी में शामिल करने की मांग की। 1970 और 1980 के दशक में यह मांग एक व्यापक सामाजिक आंदोलन का रूप ले चुकी थी। विभिन्न मोर्चों, आंदोलनों और जनजागरण कार्यक्रमों के माध्यम से यह मुद्दा राज्य की राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने लगा।

1990 के दशक में मंडल आयोग की सिफारिशों के लागू होने के बाद OBC आरक्षण को मजबूती मिली, लेकिन धनगर समुदाय की ST श्रेणी में शामिल होने की मांग बनी रही। इसी दौरान "धनगड़" और "धनगर" नामों से संबंधित ऐतिहासिक भ्रम पर पुनः चर्चा प्रारंभ हुई। कई विद्वानों एवं समितियों ने इस विषय पर अध्ययन कर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, किंतु ठोस निर्णय लेने में विलंब होता रहा।

वर्ष 2000 के बाद की स्थिति, राजनितिक दलों का हस्तक्षेप :

2000 के बाद धनगर आरक्षण का मुद्दा और अधिक तीव्र हो गया। विभिन्न राजनीतिक दलों ने चुनावों के दौरान धनगर समुदाय को ST का दर्जा देने का आश्वासन दिया। इस कारण यह मुद्दा केवल सामाजिक न रहकर एक महत्वपूर्ण राजनीतिक एजेंडा बन गया। 2014 के बाद इस विषय पर विशेष ध्यान दिया गया तथा सरकार द्वारा कई अध्ययन समितियों का गठन किया गया। फिर भी, केंद्र सरकार की मंजूरी के बिना ST सूची में संशोधन संभव नहीं होने के कारण यह मामला अब भी लंबित है।

इसी दौरान, वर्तमान अनुसूचित जनजाति समुदायों द्वारा इस मांग का विरोध भी किया गया। उनका मानना है कि यदि धनगर समुदाय को ST में शामिल किया गया, तो उनके आरक्षण के हिस्से में कमी आ सकती है। इस कारण यह मुद्दा और अधिक संवेदनशील बन गया है तथा सामाजिक तनाव उत्पन्न होने की संभावना भी व्यक्त की जाती है।

हाल के वर्षों में धनगर समुदाय ने अपने अधिकारों के लिए आंदोलन, उपवास, महामोर्चे तथा अन्य लोकतांत्रिक माध्यमों के द्वारा अपनी मांग को और अधिक प्रबल रूप से प्रस्तुत किया है। यद्यपि सरकार द्वारा समय-समय पर आश्वासन दिए गए हैं, फिर भी अंतिम निर्णय अभी तक नहीं लिया गया है। इसके लिए केंद्र और राज्य सरकारों के बीच समन्वय तथा संवैधानिक और कानूनी प्रक्रियाओं का पालन आवश्यक है।

इस प्रकार, महाराष्ट्र में धनगर आरक्षण का इतिहास केवल एक समुदाय की मांग तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक न्याय, ऐतिहासिक असंगतियों, प्रशासनिक चुनौतियों तथा राजनीतिक इच्छाशक्ति

का संयुक्त परिणाम है। इस समस्या के समाधान के लिए गहन अध्ययन, वस्तुनिष्ठ आंकड़ों तथा सभी संबंधित पक्षों के हितों के संतुलन पर आधारित दृष्टिकोण अपनाना अत्यंत आवश्यक है।

साहित्य पुनरावलोकन :

प्रस्तुत शोध पत्र के लिए विभिन्न प्रकार के पुस्तक, शोध पत्रिका तथा इंटरनेट का उपयोग किया गया।

बघेल.जे.पी. (2005). *महाराष्ट्राचे अस्तित्वहीन धनगर: आरक्षण विमर्श.* कल्पवृक्ष पब्लिशिंग हाउस. मुम्बई

डॉ. जे. पी. बघेल द्वारा लिखित इस पुस्तक में महाराष्ट्र में धनगर समुदाय के कानूनी, ऐतिहासिक तथा सामाजिक-राजनीतिक हाशियाकरण का गहन अध्ययन प्रस्तुत करती है। इस पुस्तक में यह तर्क दिया गया है कि "धनगड़" नामक समुदाय, जिसे 1956 से आधिकारिक अभिलेखों में अनुसूचित जनजाति (ST) के रूप में सूचीबद्ध किया गया है, वास्तव में महाराष्ट्र में अस्तित्वहीन है। इसके विपरीत, वास्तविक समुदाय—धनगर—सामाजिक एवं आर्थिक रूप से पिछड़ा तथा ऐतिहासिक रूप से जनजातीय स्वरूप का होने के बावजूद ST दर्जे से वंचित रखा गया है। पुस्तक में यह विस्तार से बताया गया है कि किस प्रकार विभिन्न सरकारों, राजनीतिक नेताओं तथा स्वयं समुदाय के कुछ आंतरिक नेतृत्व ने इस त्रुटि को सुधारने में विफलता दिखाई है या जानबूझकर इसे टालते रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप धनगर समुदाय को व्यापक अन्याय का सामना करना पड़ा है।

बिडगर.अ. *महाराष्ट्रातील धनगर समाजाचा अभ्यास.* सनय प्रकाशन. पुणे

महाराष्ट्र में धनगर समाज का अध्ययन इस शोधग्रंथ के माध्यम से करते समय उसमें अनेक विशिष्ट विशेषताएँ स्पष्ट रूप से सामने आती हैं। जैसे-जैसे हम इस ग्रंथ के पृष्ठों को आगे बढ़ाते जाते हैं, वैसे-वैसे इसके शोध का दायरा व्यापक रूप से विस्तार करता हुआ दिखाई देता है, जो इस शोधग्रंथ की प्रमुख विशेषता है। समग्र रूप से, इस ग्रंथ के माध्यम से धनगर समाज के आंतरिक एवं बाह्य पक्षों को विश्वविद्यालयीय शोध की पद्धति एवं अनुशासन के अनुरूप प्रस्तुत किया गया है।

शोध प्रश्न :

1. क्या महाराष्ट्र के धनगर समाज की अनुसूचित जनजाति वर्ग में आरक्षण की मांग को ऐतिहासिक पृष्टभूमि है ?
2. धनगर आरक्षण को लेकर वर्तमान स्थिति क्या है ?
3. धनगर समाज को अनुसूचित जनजाति वर्ग में सम्मिलित करने में कौनसी चुनौतिया आ रही है ?

शोध उद्देश्य :

1. महाराष्ट्र के धनगर समाज की अनुसूचित जनजाति वर्ग में आरक्षण के मांग की ऐतिहासिक पृष्टभूमि का अध्ययन करना।
2. धनगर आरक्षण की वर्तमान स्थिति को जांचना।
3. धनगर समाज को अनुसूचित जनजाति वर्ग में सम्मिलित करने में आ रही चुनौतियों का अध्ययन करना।

अध्ययन का भौगोलिक क्षेत्र :

प्रस्तुत शोध पत्र में अध्ययन के भौगोलिक क्षेत्र के रूप में महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र को चयनित किया गया है।

शोध प्ररचना:

प्रस्तुत शोध पत्र में विदर्भ क्षेत्र के 11 जिलो में सर्वेक्षण के माध्यम से धनगर आरक्षण का अध्ययन किया गया है। संदर्भित शोध में वर्णनात्मक शोध प्रारूप का प्रयोग मूल्यांकनात्मक अध्ययन दृष्टी से अध्ययन विश्व के यथार्थ की जाँच परख करने के लिए किया गया है। तथा इस शोध कार्य में मिश्रित (गुणात्मक एवं मात्रात्मक) शोध प्रविधि का प्रयोग किया गया है। अध्ययन करते समय संरचित साक्षात्कार अनुसूची का उपयोग कर धनगर आरक्षण की स्थिति को जांचने की कोशिश की गई है।

अध्ययन की इकाई :

प्रस्तुत शोध पत्र में उल्लेखित भौगोलिक क्षेत्र के धनगर आरक्षण से सम्बंधित स्थिति का अध्ययन किया गया है।

अध्ययन का समग्र :

प्रस्तुत शोध पत्र में विदर्भ के 11 जिलों से धनगर वर्ग (जाती) से आनेवाले 100 उत्तरदाता अध्ययन के समग्र बने है।

इकाई चयन :

प्रस्तुत शोध पत्र में अनुसंधान के समग्र को समझते हुए गैर -संभाव्यता प्रतिदर्श चयन पद्धति का उपयोग किया गया है।

डेटा विश्लेषण :

प्रस्तुत शोध पत्र में अनुसूचित जनजाति में धनगर आरक्षण के मांग की ऐतिहासिक पृष्टभूमि, वर्तमान स्थिति का सर्वेक्षण के माध्यम से संकलन किया गया जिसमे 08 प्रश्न सम्मिलित किए गए यह प्रश्न

धनगर आरक्षण से सम्बंधित स्थिति को दर्शाते है; उससे सम्बंधित डेटा सारणी क्र.1.12 में दिया गया है।

सारणी क्र.1.12 धनगर आरक्षण से संबंधित स्थिति

अ.क्र.	वक्तव्य	बिल्कुल नहीं	अंशत:	मध्यम	पूर्णत:	कुल
1	विदर्भ क्षेत्र में स्थानीय स्वराज्य संस्थाओं के चुनावों और आम (सार्वत्रिक) चुनावों में धनगर समाज की महत्वपूर्ण और बढ़ती हुई सक्रिय भागीदारी देखने को मिलती है क्या ?	8	13	22	57	100
		8.0	13.0	22.0	57.0	100
2.	विदर्भ क्षेत्र में धनगर समाज को अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) तथा घुमंतू जाति–जनजाति (VJNT-C) प्रवर्ग के अंतर्गत प्राप्त आरक्षण पर्याप्त है क्या ?	43	16	14	27	100
		43.0	16.0	14.0	27.0	100
3	धनगर समाज के आरक्षण की मांग का क्या विभिन्न राजनीतिक दल केवल चुनावी मुद्दे के रूप में उपयोग करते हैं?	8	1	9	82	100
		8.0	1.0	9.0	82.0	100
4		55	22	10	13	100

ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

	क्या धनगर समाज को अनुसूचित जनजाति (ST) श्रेणी में शामिल करने के लिए सरकार और विभिन्न राजनीतिक दलों की भूमिका सकारात्मक दिखाई देती है?	55.0	22.0	10.0	13.0	100
5	क्या 'र' और 'ड' (धनगर / धनगड़) के शब्दात्मक अपभ्रंश के कारण धनगर समाज को केंद्र सूची में अनुसूचित जनजाति (ST) श्रेणी में शामिल करने में कोई प्रशासनिक या कानूनी बाधा उत्पन्न हो रही है?	14	15	15	56	100
		14.0	15.0	15.0	56.0	100
6	क्या धनगर समाज को अनुसूचित जनजाति (ST) श्रेणी में शामिल किए जाने पर आदिवासी समुदाय को यह आशंका है कि उन्हें मिलने वाले कुल लाभों का विभाजन हो जाएगा?	9	4	24	63	100
		9.0	4.0	24.0	63.0	100
7	क्या धनगर समाज को अनुसूचित जनजाति (ST) श्रेणी में शामिल करने की मांग की कोई पृष्ठभूमि है?	7	13	20	60	100
		7.0	13.0	20.0	60.0	100
8	क्या धनगर समाज को अनुसूचित जनजाति (ST)	37	21	24	18	100

	श्रेणी में शामिल करने के प्रति सरकार की उदासीन भूमिका के कारण उनका सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास बाधित हो रहा है?	37.0	21.0	24.0	18.0	100

- ऊपर्युक्त सारणी के प्रथम पहलू में सर्वाधिक 57.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है की विदर्भ क्षेत्र में स्थानीय स्वराज्य संस्थाओं के चुनावों और आम (सार्वत्रिक) चुनावों में धनगर समाज की महत्वपूर्ण और बढ़ती हुई सक्रिय भागीदारी देखने को मिलती है वही 8.0 प्रतिशत उत्तरदाताओ का मानना है की बिल्कुल भी सक्रीय भागीदारी देखने को नहीं मिलती।
- द्वितीय पहलू में सर्वाधिक 43.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है की विदर्भ क्षेत्र में धनगर समाज को अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) तथा घुमंतू जाति–जनजाति (VJNT-C) प्रवर्ग के अंतर्गत प्राप्त आरक्षण पर्याप्त है वही 14.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है की इसका प्रमाण मध्यम है।
- तीसरे पहलू में सर्वाधिक 82.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है की धनगर समाज के आरक्षण की मांग का विभिन्न राजनीतिक दल पूर्णत: केवल चुनावी मुद्दे के रूप में उपयोग करते हैं वही 1.0 प्रतिशत उत्तरदाताओ का मानना है की इसका प्रमाण अंशत: है।
- चौथे पहलू में सर्वाधिक 55.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है की धनगर समाज को अनुसूचित जनजाति (ST) श्रेणी में शामिल करने के लिए सरकार और विभिन्न राजनीतिक दलों की भूमिका बिल्कुल भी सकारात्मक दिखाई नहीं देती है वही 10.0 प्रतिशत उत्तरदाताओ का मानना है की इसका प्रमाण मध्यम है।
- पाचवे पहलू में सर्वाधिक 56.0 प्रतिशत उत्तरदाताओ का मानना है 'र' और 'ड' (धनगर / धनगड़) के शब्दात्मक अपभ्रंश के कारण धनगर समाज को केंद्र सूची में अनुसूचित जनजाति (ST) श्रेणी में शामिल करने में कोई प्रशासनिक या कानूनी पूर्णत: बाधा उत्पन्न हो रही है वही 15.0 प्रतिशत उत्तरदाताओ का मानना है की यह प्रमाण अंशत: है।
- छटे पहलू में सर्वाधिक 63.0 प्रतिशत उत्तरदाताओ का मानना है की धनगर समाज को अनुसूचित जनजाति (ST) श्रेणी में शामिल किए जाने पर आदिवासी समुदाय को पूर्णत: आशंका है कि उन्हें मिलने वाले कुल लाभों का विभाजन हो जाएगा वही 4.0 प्रतिशत उत्तरदाताओ का मानना है की इसका प्रमाण अंशत: है।

- सातवे पहलू में सर्वाधिक 36.0 प्रतिशत उत्तरदाताओ का मानना है की धनगर समाज को अनुसूचित जनजाति (ST) श्रेणी में शामिल करने की मांग की पूर्णत: पृष्ठभूमि है वही 7.0 प्रतिशत उत्तरदाताओ का मानना है की बिल्कुल भी पृष्टभूमि नहीं है।
- आठवे पहलू में सर्वाधिक 37.0 प्रतिशत उत्तरदाताओ का मानना है की धनगर समाज को अनुसूचित जनजाति (ST) श्रेणी में शामिल करने के प्रति सरकार की उदासीन भूमिका के कारण उनका सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास बिल्कुल भी बाधित नहीं हो रहा है वही 18.0 प्रतिशत उत्तरदाताओ का मानना है की इसका प्रमाण पूर्णत: है।

निष्कर्ष :

प्रस्तुत शोध के द्वारा अनुसूचित जनजाति में धनगर आरक्षण के मांग की ऐतिहासिक पृष्टभूमि, वर्तमान स्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत शोध के आधार पर यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि महाराष्ट्र विशेषतः विदर्भ क्षेत्र में धनगर समाज का आरक्षण संबंधी प्रश्न अत्यंत जटिल, संवेदनशील एवं बहुआयामी स्वरूप का है। अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि धनगर समाज राजनीतिक दृष्टि से सक्रिय है तथा स्थानीय स्वराज्य संस्थाओं और सामान्य चुनावों में उनकी सहभागिता उल्लेखनीय रूप से बढ़ रही है। यह उनकी बढ़ती हुई राजनीतिक जागरूकता और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में भागीदारी को दर्शाता है।

इसके बावजूद, वर्तमान में OBC तथा VJNT-C प्रवर्ग के अंतर्गत प्राप्त आरक्षण को अधिकांश उत्तरदाता अपर्याप्त मानते हैं, जिससे यह संकेत मिलता है कि धनगर समाज की सामाजिक-आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति वर्तमान व्यवस्था के माध्यम से पूर्णतः नहीं हो पा रही है। यही कारण है कि अनुसूचित जनजाति (ST) प्रवर्ग में शामिल होने की मांग को व्यापक समर्थन प्राप्त हो रहा है।

अध्ययन का एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह भी है कि धनगर आरक्षण का मुद्दा बड़े पैमाने पर राजनीतिक दलों द्वारा चुनावी मुद्दे के रूप में उपयोग किया जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि यह विषय केवल सामाजिक न्याय तक सीमित न रहकर राजनीतिक हितों से भी जुड़ गया है। साथ ही, सरकार और विभिन्न राजनीतिक दलों की भूमिका को लेकर उत्तरदाताओं में असंतोष परिलक्षित होता है, क्योंकि उनकी भूमिका को अपेक्षित रूप से सकारात्मक नहीं माना गया है।

"धनगर" और "धनगड़" के शब्दात्मक अंतर को भी एक महत्वपूर्ण प्रशासनिक एवं कानूनी बाधा के रूप में देखा गया है, जो इस मांग के समाधान में विलंब का कारण बन रहा है। इसके अतिरिक्त, अनुसूचित जनजाति समुदायों में यह आशंका भी विद्यमान है कि यदि धनगर समाज को ST में शामिल किया गया, तो उनके मौजूदा लाभों का विभाजन हो सकता है, जिससे सामाजिक संतुलन प्रभावित होने की संभावना है।

अध्ययन यह भी दर्शाता है कि धनगर समाज की ST में समावेश की मांग का ऐतिहासिक एवं सामाजिक आधार मौजूद है। इसके बावजूद, सरकारी उदासीनता को लेकर यह धारणा प्रबल है कि इसके कारण धनगर समाज का सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विकास बाधित हो रहा है।

अतः समग्र रूप से यह कहा जा सकता है कि धनगर आरक्षण का प्रश्न केवल एक आरक्षण संबंधी मांग नहीं है, बल्कि यह सामाजिक न्याय, ऐतिहासिक विसंगतियों के सुधार, प्रशासनिक स्पष्टता तथा राजनीतिक इच्छाशक्ति से जुड़ा हुआ एक व्यापक मुद्दा है। इसके समाधान के लिए संतुलित, तथ्याधारित तथा संवेदनशील दृष्टिकोण अपनाते हुए सभी संबंधित पक्षों के हितों को ध्यान में रखना अत्यंत आवश्यक है, ताकि दीर्घकालीन एवं न्यायसंगत समाधान सुनिश्चित किया जा सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. बघेल.जे.पी. (2005). महाराष्ट्राचे अस्तित्वहीन धनगर: आरक्षण विमर्श. कल्पवृक्ष पब्लिशिंग हाउस. मुम्बई
2. बिडगर.अ. महाराष्ट्रातील धनगर समाजाचा अभ्यास. सनय प्रकाशन. पुणे
3. https://www.academia.edu/

ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

विकसित भारत 2047 की परिकल्पना में शिक्षा तथा कौशल विकास का महत्व

सौरभ चंद्र सानू
हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय श्रीनगर गढ़वाल,

सारांश:
भारत को वर्ष 2047 तक एक सशक्त, आत्मनिर्भर, समृद्ध और आधुनिक विकसित राष्ट्र बनाने का लक्ष्य रखा गया है। विकसित भारत 2047 की जब हम पर कल्पना करते हैं ऐसे में शिक्षा तथा कौशल विकास की महत्वता और भी अधिक बढ़ जाती है। भारत पूरे विश्व का सर्वाधिक युवाओं वाला देश है किसी भी राष्ट्र का भविष्य युवा ही निर्धारित करते हैं कि वह कैसे होगा, इसीलिए इन्हें गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के साथ-साथ व्यवहारिक कौशल विकास आधारित शिक्षा उपलब्ध करवाया जाना बेहद जरूरी है। वर्ष 2020 में लागू राष्ट्रीय शिक्षा नीति के तहत कौशल विकास तथा व्यावसायिक शिक्षा पर जोर देने का कार्य किया जा रहा है।

वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की साक्षरता दर 74.04 % थी इस साक्षरता दर को बढ़ाने की आवश्यकता है जिसके लिए सरकार अपने स्तर से कार्य कर रही है परंतु धरातल स्तर पर अभी भी सरकारी स्कूलों की हालत कमजोर बनी हुई है तथा शिक्षकों की कमी स्पष्ट तौर पर देखी गई है जिसमें सरकार को ध्यान देने की आवश्यकता है। शिक्षा की गुणवत्ता को मजबूत करने से तथा इस पर ध्यान देने से भारत का विकास संभव है इसके साथ-साथ भारत में बढ़ती बेरोजगारी की समस्या का भी समाधान हो पाएगा जिसके लिए जरूरी है कि भारत में कौशल विकास पर काम करना होगा।

यह शोध पत्र द्वितीय स्रोतों पर आधारित है जिसमें मुख्यतः शोध पत्रिकाओं, विभिन्न सरकारी रिपोर्टों के आधार पर विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि विकसित भारत 2047 की परिकल्पना के लक्ष्य को पूर्ण करने के लिए शिक्षा तथा कौशल विकास के क्षेत्र में अधिक मजबूती के साथ धरातल स्तर पर कार्य करना बेहद महत्वपूर्ण हो जाता है, भारत को शिक्षा तथा कौशल विकास के क्षेत्र में जीडीपी प्रतिशत में वृद्धि करने की आवश्यकता है। इसके माध्यम से ही वैश्विक स्तर पर भारत एक महाशक्ति के रूप में उभर सकता हैं।

मुख्य शब्द :- विकसित भारत 2047, शिक्षा, कौशल विकास तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020.

परिचय।

भारत ने वर्ष 2047 तक एक विकसित राष्ट्र बनने का लक्ष्य निर्धारित किया है जिसके माध्यम से वह अपनी आजादी के 100 वर्ष पूर्ण होने तक सशक्त, आत्मनिर्भर, समृद्ध एवं आधुनिक विकसित राष्ट्र बनना चाहता है। विकसित भारत की परिकल्पना का क्षेत्र सिर्फ आर्थिक विकास आधार ना रखते हुए सर्वांगीण विकास जिसके माध्यम से सामाजिक न्याय, तकनीकी प्रगति, पर्यावरणीय संतुलन, समावेशी विकास, और मानव कल्याण हो सके रखा गया है। इसके लिए भारत को लगभग 30 ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था में परिवर्तित करने की परिकल्पना की गई है ताकि प्रत्येक नागरिकों को बेहतर स्वास्थ्य,शिक्षा और रोजगार के अवसर मिल सके।

किसी भी राष्ट्र के विकास में युवाओं का योगदान सबसे महत्वपूर्ण होता है जो कि उस राष्ट्र का भविष्य निर्धारित करता है। भारत में दुनिया की सबसे बड़ी युवा आबादी है, जिसमें लगभग 65% लोग 35 साल से कम उम्र के हैं। ऐसे स्थिति में यदि भारत देश में युवाओं को सही मार्गदर्शन मिले जिसके लिए बेहद जरूरी है कि एक अच्छी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के साथ-साथ व्यवहारिक कौशल विकास आधारित ज्ञान दिया जाना चाहिए तो हम विकसित भारत 2047 की परिकल्पना का लक्ष्य आसानी से पूरा कर सकते हैं।

वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की साक्षरता दर 74.04 % थी इस साक्षरता दर को बढ़ाने की आवश्यकता है जिसके लिए सरकार अपने स्तर से कार्य कर रही है परंतु धरातल स्तर पर अभी भी सरकारी स्कूलों की हालत कमजोर बनी हुई है तथा शिक्षकों की कमी स्पष्ट तौर पर देखी गई है जिसमें सरकार को ध्यान देने की आवश्यकता है। शिक्षा की गुणवत्ता को मजबूत करने से तथा इस पर ध्यान देने से भारत का विकास संभव है इसके साथ-साथ भारत में बढ़ती बेरोजगारी की समस्या का भी समाधान हो पाएगा जिसके लिए जरूरी है कि भारत में कौशल विकास पर काम करना होगा।

वर्ष 2020 में लागू राष्ट्रीय शिक्षा नीति के तहत कौशल विकास तथा व्यावसायिक शिक्षा पर जोर देने का कार्य भारत में किया जा रहा है। इस नीति का मुख्य उद्देश्य शिक्षा प्रणाली को अधिक व्यावहारिक, समावेशी, लचीला और आधुनिक बनाना है, ताकि विद्यार्थी बदलते समय और रोजगार की आवश्यकताओं के अनुरूप तैयार हो सकें।

शिक्षा और कौशल विकास से संबंधित सरकारी पहल

भारत सरकार ने शिक्षा और कौशल विकास को बढ़ावा देने के लिए कई महत्वपूर्ण योजनाएँ प्रारंभ की हैं—

1. नई शिक्षा नीति 2020 (NEP 2020) – शिक्षा प्रणाली को अधिक लचीला और कौशल आधारित बनाना।
2. स्किल इंडिया मिशन (2015) – युवाओं को विभिन्न क्षेत्रों में प्रशिक्षण प्रदान करना।
3. प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (PMKVY) – युवाओं को रोजगारोन्मुख प्रशिक्षण देना।
4. डिजिटल इंडिया अभियान – डिजिटल शिक्षा और तकनीकी कौशल को बढ़ावा देना।
5. स्टार्टअप इंडिया – युवाओं में उद्यमिता और नवाचार को प्रोत्साहित करना।

किसी भी देश को विकसित तब माना जाता है जब वहाँ के लोगों का जीवन स्तर अच्छा हो, शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाएँ सभी के लिए उपलब्ध हों, रोजगार के पर्याप्त अवसर हों और आर्थिक व्यवस्था मजबूत हो। विकसित भारत की परिकल्पना भी इन्हीं आधारों पर आधारित है। विकसित भारत की कल्पना में शिक्षा और कौशल विकास की भूमिका भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। किसी भी देश की प्रगति उसके मानव संसाधन पर निर्भर करती है। यदि देश के नागरिक शिक्षित और कुशल होंगे, तो वे नई तकनीकों को अपनाने और विभिन्न क्षेत्रों में नवाचार करने में सक्षम होंगे। इसलिए वर्तमान समय में शिक्षा को अधिक गुणवत्तापूर्ण और रोजगारोन्मुख बनाने पर जोर दिया जा रहा है, ताकि युवा पीढ़ी देश के विकास में सक्रिय योगदान दे सके। डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम के अनुसार एक शिक्षक विद्यार्थियों को प्रबुद्ध और जागरूक मानव बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उनका मानना था कि शिक्षक को विद्यार्थियों में जिज्ञासा, नवाचार, रचनात्मकता, उद्यमिता और नैतिक नेतृत्व जैसे गुणों को विकसित करने के लिए प्रेरित करना चाहिए। इसके साथ ही उनके भीतर मजबूत नैतिक मूल्यों का विकास करना भी आवश्यक है। इन दोनों गुणों के माध्यम से ही शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य पूरा होता है और एक जिम्मेदार तथा संवेदनशील नागरिक का निर्माण संभव हो पाता है।

विकसित भारत 2047 की परिकल्पना।

विकसित भारत 2047 की परिकल्पना का उद्देश्य यह है कि वर्ष 2047 तक भारत को एक ऐसा देश बनाया जाए जो आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक और तकनीकी रूप से पूरी तरह विकसित हो। जब किसी देश के नागरिकों को अच्छी शिक्षा, बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएँ, पर्याप्त रोजगार के अवसर और सुरक्षित वातावरण मिलता है, तभी वह देश सही अर्थों में विकसित माना जाता है। इसलिए विकसित भारत 2047 की सोच में यह प्रयास किया जा रहा है कि विकास का लाभ समाज के हर वर्ग तक पहुँचे और कोई भी व्यक्ति पीछे न रह जाए। भारत आज दुनिया के सबसे युवा देशों में से एक है। देश की बड़ी आबादी युवाओं की है, जो भारत की सबसे बड़ी शक्ति मानी जाती है। यदि युवाओं को सही दिशा, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और आवश्यक कौशल प्रदान किए जाएँ, तो वे देश के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। इसलिए शिक्षा और कौशल विकास को विकसित भारत की परिकल्पना में विशेष महत्व दिया गया है

शिक्षा का महत्व

शिक्षा वह साधन है जिसके माध्यम से व्यक्ति ज्ञान प्राप्त करता है और अपने जीवन को बेहतर बनाने की दिशा में आगे बढ़ता है। शिक्षा व्यक्ति को सही और गलत के बीच अंतर करना सिखाती है तथा उसे एक जागरूक और जिम्मेदार नागरिक बनने में सहायता करती है। शिक्षा का उद्देश्य केवल जानकारी देना नहीं होता, बल्कि व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और नैतिक विकास को भी सुनिश्चित करना होता है। जब कोई व्यक्ति शिक्षित होता है तो वह समाज के प्रति अधिक संवेदनशील और जिम्मेदार बनता है। इसी कारण शिक्षा को समाज और राष्ट्र के विकास का आधार माना जाता है।

डॉ. अब्दुल कलाम का मानना था कि शिक्षा व्यक्ति के जीवन में नई संभावनाओं के द्वार खोलती है। उनके अनुसार शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो युवाओं में रचनात्मकता, नवाचार और नेतृत्व की भावना विकसित करे। वे मानते थे कि शिक्षित और कुशल युवा ही राष्ट्र को विकसित बना सकते हैं।

स्वामी विवेकानंद के अनुसार शिक्षा का अर्थ केवल पुस्तकों का ज्ञान प्राप्त करना नहीं है। उन्होंने कहा कि शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से मनुष्य के भीतर छिपी हुई शक्तियों और क्षमताओं का विकास होता है। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के चरित्र, आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता का निर्माण करना होना चाहिए।

शिक्षा मानव संसाधन के विकास का प्रमुख साधन है। इसके माध्यम से व्यक्ति को ज्ञान, तकनीकी दक्षता और व्यावहारिक कौशल प्राप्त होते हैं। जब कोई व्यक्ति शिक्षित होता है, तो वह अपने कार्य को अधिक कुशलता और समझदारी के साथ कर सकता है। इससे न केवल उसकी व्यक्तिगत प्रगति होती है, बल्कि समाज और देश की आर्थिक प्रगति में भी योगदान मिलता है। इसी कारण शिक्षा को मानव संसाधन विकास का आधार माना जाता है। मानव संसाधन किसी भी देश की सबसे महत्वपूर्ण पूँजी मानी जाती है। किसी राष्ट्र की प्रगति केवल उसके प्राकृतिक संसाधनों या आर्थिक साधनों पर निर्भर नहीं करती, बल्कि उसके नागरिकों की क्षमता, ज्ञान और कौशल पर भी निर्भर करती है। इसलिए मानव संसाधन के विकास में शिक्षा की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति अपनी बौद्धिक क्षमता, कौशल और व्यक्तित्व का विकास करता है, जिससे वह समाज और राष्ट्र के विकास में सक्रिय योगदान देने में सक्षम बनता है। नेल्सन मंडेला ने शिक्षा को "दुनिया को बदलने के लिए सबसे शक्तिशाली हथियार" माना है, जो व्यक्तिगत विकास और सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख आधार है। उनका मानना था कि शिक्षित नागरिक ही किसी देश को सही मायने में विकसित कर सकते हैं।

कौशल विकास का महत्व

जब हम कौशल विकास की बात करते हैं तो सब से पहले हमे कौशल को समझने की आवश्यकता है जब कोई व्यक्ति किसी काम को अभ्यास, ज्ञान और अनुभव के आधार पर अच्छी तरह करने की योग्यता प्राप्त कर लेता है, तो उसे कौशल कहा जाता है। किसी भी व्यक्ति द्वारा समय के साथ किसी कार्य को लगातार करने के बाद उस कार्य में महारत हासिल हो जाना ही कौशल है। कौशल केवल सैद्धांतिक ज्ञान तक सीमित नहीं होता, बल्कि इसमें व्यावहारिक अनुभव और कार्य करने की क्षमता भी शामिल होती है।

कौशल का विकास शिक्षा, प्रशिक्षण और अभ्यास के माध्यम से होता है। जब भी कोई व्यक्ति किसी क्षेत्र में लगातार अभ्यास करता है और नई-नई बातें सीखता है, तो उसकी कार्य करने की क्षमता बेहतर हो जाती है। इसी प्रक्रिया को कौशल विकास कहा जाता है। भारत में नई शिक्षा नीति 2020 के तहत कौशल विकास तथा व्यावसायिक शिक्षा पर अधिक जोर दिया गया है। क्योंकि वर्तमान समय के अनुरूप अब सिर्फ शैक्षणिक डिग्री प्राप्त होने से रोजगार प्राप्त करना आसान नहीं है इसके साथ-साथ कौशल का होना भी बेहद जरूरी है। अतः कौशल विकास आधारित ज्ञान का मिलना युवाओ के लिए बेहद महत्वपूर्ण हो जाता है।

विश्व बैंक की कई रिपोर्टों में यह बताया गया है कि किसी भी देश की आर्थिक प्रगति में कौशल विकास की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। रिपोर्ट के अनुसार यदि युवाओं को सही प्रकार का तकनीकी और व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जाए, तो रोजगार के अवसर बढ़ते हैं और देश की उत्पादकता में भी वृद्धि होती है। ILO के अध्ययन में बताया गया है कि कौशल विकास श्रम बाजार की आवश्यकताओं को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

प्रमुख चुनौतियां

विकसित भारत 2047 की परिकल्पना को साकार करने के लिए शिक्षा और कौशल विकास से जुड़ी कई सारी चुनौतियां धरातल स्तर पर अभी भी मौजूद है जिनका हम सभी को मिलकर समाधान करने की आवश्यकता है।

1. **शिक्षा की गुणवत्ता में असमानता :-** भारत देश विषमताओं वाला देश है देश के विभिन्न क्षेत्रों में शिक्षा की गुणवत्ता एक समान देखने को नहीं मिलती है ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र के बीच एक बहुत बड़ा अंतर स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है ग्रामीण क्षेत्र की तुलना में शहरी क्षेत्र में शिक्षा के अवसर तथा संसाधन अधिक मौजूद है जबकि भारत जैसे राष्ट्र में अधिकांश भाग ग्रामीण क्षेत्र में आता है।

2. **शिक्षकों की कमी :-** वर्तमान समय में भारत में मौजूद विद्यालय में शिक्षकों की कमी है भारत की शिक्षा प्रणाली में शिक्षकों की कमी एक गंभीर समस्या बनी हुई है, जिसका प्रभाव शिक्षा की गुणवत्ता और छात्रों के सीखने के स्तर पर पड़ता है। कई ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षक-छात्र अनुपात अधिक है और कुछ स्कूलों में केवल एक ही शिक्षक पूरे विद्यालय को संभाल रहे है। विशेषकर प्राथमिक शिक्षा में देखा जाए तो संसदीय समिति की रिपोर्ट के अनुसार देश में लगभग 10 लाख शिक्षकों की अतिरिक्त आवश्यकता है।
3. **कौशल प्रशिक्षण के प्रति जागरूकता की कमी:-** वर्तमान समय में भारत देश में अभी भी व्यावसायिक शिक्षा और कौशल प्रशिक्षण को उतना महत्व नहीं दिया जाता जितना कि पारंपरिक शिक्षा को दिया जाता है जिस वजह से युवा कौशल प्रशिक्षण तथा व्यावसायिक शिक्षा पर ज्यादा ध्यान नहीं देते है।
4. **औपचारिक कौशल प्रशिक्षण की कमी :-** भारत के Economic Survey के अनुसार देश के युवाओं में औपचारिक कौशल प्रशिक्षण बहुत कम है। रिपोर्ट बताती है कि केवल लगभग 4.4% युवाओं को ही औपचारिक कौशल प्रशिक्षण प्राप्त हुआ है, जबकि बड़ी संख्या में युवा बिना किसी प्रमाणित प्रशिक्षण के काम कर रहे हैं।
5. **तकनीकी संसाधनों की कमी :-** भारत में कई शिक्षण संस्थानों में अभी भी आधुनिक तकनीकी सुविधाओं की कमी मौजूद है इसके साथ-साथ प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी भी स्पष्ट तौर पर देखी जा सकती है जिस कारण छात्रों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त नहीं हो पाती।

सुझाव:

1. शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार की आवश्यकता। :- देश में मौजूद सभी व्यक्तियों को अच्छी तथा गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए सरकार का फर्ज होना चाहिए कि आधुनिक तकनीक,शिक्षण पद्धतियों और प्रशिक्षित शिक्षकों के माध्यम से शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ावा देने का काम करे।
2. शिक्षा के क्षेत्र में भारत की जीडीपी प्रतिशत बढ़ाने की आवश्यकता :- भारत सरकार द्वारा नई शिक्षा नीति 2020 लागू की गई है जो कि भारत की शिक्षा प्रणाली को आधुनिक, समावेशी और कौशल आधारित बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है परंतु वर्तमान मे सरकारी विद्यालय की हालतों में सुधार करने की आवश्यकता है तथा उन्हें औरत अत्यधिक मजबूत करने की जरूरत है तभी हम NEP 2020 को साकार कर सकते है उसके लिए सरकार को शिक्षा के क्षेत्र में जीडीपी के हिस्से को बढ़ाने की आवश्यकता है ताकि शिक्षा के क्षेत्र में पहले से अधिक तीव्र गति से कार्य हो सके।

3. ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा और कौशल प्रशिक्षण का विस्तार करने की :- ग्रामीण तथा दूरस्थ क्षेत्र मेंशिक्षा तथा कौशल प्रशिक्षण की सुविधा को बढ़ाने की जरूरत है ताकि इन छात्रों में रहने वाले युवाओं को भी समान अवसर प्राप्त हो सके तथा वे भी इसका लाभ ले पाए व भारत के विकास में अपना योगदान दे सके।
4. शिक्षकों के प्रशिक्षण हेतू कार्य :- सरकार को समय समय पर शिक्षकों के प्रशिक्षण हेतू कार्य करने की जरूरत है ताकि उनकी विकास क्षमता और नई शिक्षण तकनीक के उपयोग मे सहायता मिल सके।
5. गैर सरकारी संगठनों के साथ मिलकर शिक्षा तथा कौशल विकास के क्षेत्र में कार्य करने की आवश्यकता :- विकसित भारत की परिकल्पना मे शिक्षा तथा कौशल विकास के क्षेत्र सरकार अकेले पूर्ण रूप से काम नहीं कर सकती ऐसे में जरूरी है कि सरकार गैर सरकारी संगठनों के साथ मिलकर क्षेत्र में कार्य करे तथा कार्य की मॉनिटरइंग खुद करें ताकि किसी प्रकार की लापवाही ना हो सके।

निष्कर्ष:

विकसित भारत 2047 की परिकल्पना मे शिक्षा तथा कौशल विकास का महत्व बेहद महत्वपूर्ण है बिना इसके विकसित भारत 2047 की परिकल्पना कर पाना संभव नही। भारत में शिक्षा तथा कौशल विकास अथक प्रयास किये जा रहे हैं परंतु अभी भी धरातल स्तर पर कई सारी समस्या बनी हुई है भारत को शिक्षा तथा कौशल विकास के क्षेत्र में जीडीपी प्रतिशत में वृद्धि करने की आवश्यकता है ताकि शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार हो सके तथा कौशल विकास मे युवाओं का हस्तक्षेप पहले की तुलना में अधिक बढ़ पाए। इसके माध्यम से ही वैश्विक स्तर पर भारत एक महाशक्ति के रूप में उभर सकता है तथा वर्ष 2047 तक निर्धारित विकसित भारत के लक्ष्य को पूर्ण कर सकता है।

संदर्भ:

1. भारत सरकार। (2011)। भारत की जनगणना 2011: प्रारंभिक जनसंख्या आंकड़े। रजिस्ट्रार जनरल एवं जनगणना आयुक्त, भारत।
2. भारत सरकार। (2020)। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020। शिक्षा मंत्रालय।
3. विश्व बैंक। (2019)। विश्व विकास रिपोर्ट 2019: कार्य की बदलती प्रकृति। विश्व बैंक।
4. अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन। (2017)। निम्न एवं मध्यम आय वाले देशों में कौशल एवं रोजगार असंगति। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन।
5. नीति आयोग। (2022)। विकसित भारत 2047 के लिए दृष्टि दस्तावेज।

6. Nelson Mandela। (2003)। एक बेहतर भविष्य की ओर मार्गदर्शन (Mindset Network के शुभारंभ अवसर पर दिया गया भाषण, जोहान्सबर्ग)।
7. प्रेस सूचना ब्यूरो। (तिथि उपलब्ध नहीं)। भारत में युवाओं से संबंधित तथ्य पत्रक। प्राप्त स्रोत: https://www.pib.gov.in/FactsheetDetails.aspx?Id=149107&reg=3&lang=2
8. A. P. J. Abdul Kalam। (2011)। टर्निंग पॉइंट्स: चुनौतियों के माध्यम से एक यात्रा। हार्पर कॉलिन्स पब्लिशर्स।
9. संसदीय स्थायी समिति (शिक्षा)। (2024)। रिपोर्ट।
10. यूनेस्को। भारत में शिक्षक आवश्यकताओं पर रिपोर्ट।
11. सिंह, वी. (2025)। विकसित भारत @2047 के लक्ष्य प्राप्ति में एक प्रगतिशील एवं समावेशी शिक्षा प्रणाली की अनिवार्यता। अभिगम, (34)।
12. रामकृष्ण, वी., सुजाता, एन., एवं गोपालकृष्ण, एम। (2024)। विकसित भारत @2047: एक दृष्टिकोण।

ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

हिंदी सिनेमा: एलजीबीटी समुदाय का प्रतिनिधित्व और मानवाधिकार

गया सी एस
शोधार्थी, हिंदी विभाग
श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कालडी।

सिनेमा और समाज के बीच एक अटूट संबंध है। समाज के बिना सिनेमा का कोई अस्तित्व नहीं है। सिनेमा समाज से जुड़ा हुआ है। सिनेमा दरअसल एक नई सच्चाई है। सिनेमा के संबंध में विनोद दास का कहना है – 'सिनेमा एक कला और अन्य कलाओं की तरह यह भी हमारे समय और समाज की बुनियादी तथा तत्कालीन चिंताओं-जिज्ञासाओं को अपनी सृजनशीलता का एक अनिवार्य अंश बनाता रहा है।'

भारतीय सिनेमा के परिप्रेक्ष्य में हिंदी सिनेमा का एक प्रमुख स्थान है; जहाँ एक ओर यह मनोरंजन का साधन है, वहीं दूसरी ओर यह सामाजिक संरचनाओं, रीति-रिवाजों और स्वीकार्यताओं को भी दर्शाता है। इसके अलावा, बदलती सोच और विचारों के अनुरूप यह अपनी कहानियों में विविध लैंगिक पहचानों और विषयों को शामिल करने के लिए सक्रिय रूप से प्रयास कर रहा है। लंबे समय तक LGBT समुदाय से जुड़े विषयों और व्यक्तियों को अक्सर मज़ाक का पात्र बनाकर ही प्रस्तुत किया जाता था। हालाँकि, अब हिंदी सिनेमा ने LGBT समुदाय को एक विशिष्ट पहचान और एक अनोखी छवि प्रदान की है।

मानवाधिकारों के नज़रिए से देखें तो LGBT समुदाय सदियों से अन्याय और अत्याचार का शिकार रहा है। उनकी लैंगिक पहचान और यौन रुझान के आधार पर उन्हें उन कई बुनियादी अधिकारों से वंचित रखा गया है, जो बिना किसी भेदभाव के सभी को समान रूप से मिलने चाहिए—जैसे समानता, स्वतंत्रता और गरिमा। इस संदर्भ में सिनेमा एक शक्तिशाली माध्यम के रूप में उभरता है, जो अपनी कहानियों में इन मुद्दों को केंद्र में रखकर महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह समाज और आम जनता के बीच जागरूकता फैलाने का काम करता है और साथ ही मानवाधिकारों के प्रति एक संवेदनशील और उदार दृष्टिकोण को बढ़ावा देता है।

वर्तमान समय में हिन्दी सिनेमा में स्पष्ट परिवर्तन देखा जा रहा है। अब कई सिनेमा में LGBT समुदाय का चित्रण किया जा रहा है। इसके अंतर्गत 'लेस्बियन, गे, बायसेक्सुअल, ट्रांसजेंडर' जैसे अन्य लोग भी शामिल हैं। एल.जी.बी.टी समुदाय को लेकर समाज में लंबे समय से बहुत गलत अवधारणाएँ हैं, जिसके कारण बहुत से लोगों का जीवन नरक बना हुआ है। किन्तु अब हिन्दी सिनेमा उन्हें मुख्यधारा में स्थान देने का प्रयास कर रहा है।

भारतीय संस्कृति भी विषमलैंगिकता को अधिक महत्व देती है। कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य और पशु-पक्षियों में सामान्य रूप से देखे जाने वाले यौन संबंधों को 'विषमलैंगिकता' कहा जाता है। लोगों की नज़र में केवल स्त्री-पुरुष के बीच होने वाला प्यार ही पवित्र है। लेकिन सच्चाई यह है कि एक स्त्री और दूसरी स्त्री तथा एक पुरुष और दूसरे पुरुष के बीच भी वैसा ही प्यार हो सकता है, जैसा एक स्त्री और पुरुष के बीच होता है। यह कोई हँसी-मज़ाक की बात नहीं है। इस प्रकार की यौन रुचि रखने वालों को समलैंगिक कहा जाता है। ये मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं—एक 'लेस्बियन' और दूसरा 'गे'। आज समलैंगिकता कानूनी अपराध नहीं है। लंबे संघर्ष के बाद सुप्रीम कोर्ट ने IPC 377 से समलैंगिकता को हटा दिया है। परंतु लड़ाई अब भी बहुत लंबी है। इस लंबे सफ़र में सिनेमा का योगदान अविश्वसनीय है।

सिनेमा के क्षेत्र में 'फायर' (1996) 'दीपा मेहता' द्वारा निर्देशित एक महत्वपूर्ण सिनेमा है। स्त्री समलैंगिक संबंधों को दर्शाने वाला एक प्रमुख सिनेमा है फायर। फायर वास्तव में सीता (नंदिता दास) और राधा (शबाना आज़मी) नामक दो स्त्रियों के जीवन पर आधारित कहानी है, जिनकी शादी एक ही घर के दो भाइयों से हुई है। सीता के पति को उसमें कोई दिलचस्पी नहीं है। राधा के पति ने तो संन्यास ले लिया होता है। ऐसे में सीता और राधा एक-दूसरे के अकेलेपन का सहारा बन जाती हैं। वे दोनों दोस्त बन जाती हैं और धीरे-धीरे उनकी दोस्ती प्यार में बदल जाती है। इस सिनेमा को लेकर काफी विवाद पैदा हुआ था। इस सिनेमा पर भारतीय संस्कृति को दूषित करने का आरोप भी लगा था। फिर भी इस सिनेमा ने अंतरराष्ट्रीय स्तर पर खूब नाम कमाया और कई पुरस्कार भी जीते।

इस श्रेणी के अंतर्गत आने वाला एक और खास सिनेमा है 'शुभ मंगल ज़्यादा सावधान'। जिसका निर्देशन 2020 में 'हितेश केवल्या' द्वारा किया गया है। यह सिनेमा पुरुष समलैंगिक संबंधों के विषय को प्रमुखता से प्रस्तुत करता है।

इस सिनेमा की कहानी दो प्रमुख पात्रों अमन और कार्तिक के इर्द-गिर्द केंद्रित है, जो एक-दूसरे से प्रेम करते हैं। कार्तिक एक आत्मनिर्भर और खुले विचारों वाला समलैंगिक व्यक्ति है, जबकि अमन एक पारंपरिक परिवेश में पला-बढ़ा साधारण युवक है। दोनों के स्वभाव और पारिवारिक पृष्ठभूमि में भिन्नता होने के बावजूद उनके बीच गहरा भावनात्मक संबंध स्थापित होता है। अमन का परिवार

पारंपरिक और रूढ़िवादी सोच से प्रभावित है, जिसके कारण वे उनके संबंध को सहज रूप से स्वीकार नहीं कर पाते। उनके दृष्टिकोण में केवल स्त्री और पुरुष के बीच का संबंध ही सामाजिक रूप से मान्य और उचित माना जाता है। सिनेमा में यह प्रभावी ढंग से दिखाया गया है कि किस प्रकार अमन और कार्तिक अपने प्रेम को बनाए रखने के लिए सामाजिक दबावों और पारिवारिक विरोध का सामना करते हैं। साथ ही, यह भी दर्शाया गया है कि न्यायिक निर्णयों और बदलते सामाजिक दृष्टिकोण के प्रभाव से अंततः परिवार के विचारों में परिवर्तन आता है और वे इस संबंध को स्वीकार करने लगते हैं।

असल में, ये दोनों सिनेमा न सिर्फ़ समलैंगिक लोगों के बीच के प्रेम को दिखाती हैं, बल्कि यह भी बताती हैं कि प्यार करने का अधिकार हर इंसान का एक बुनियादी मानवाधिकार है, चाहे उसकी लिंग पहचान या यौन अभिविन्यास कुछ भी हो। हर एक इंसान को बराबरी, इज़्ज़त और सम्मान के साथ अपनी ज़िंदगी को अपनी मर्ज़ी या इच्छा के अनुसार जीने का अधिकार है। इस तरह, ये दोनों सिनेमा समलैंगिक लोगों के लिए एक उम्मीद की किरण दिखाते हैं।

एल.जी.बी.टी समुदाय के अंतर्गत आने वाले तीसरा वर्ग है 'उभयलिंगी'। उभयलिंगी को अंग्रेजी में 'Bisexual' कहा जाता है। स्त्री और पुरुष दोनों के प्रति समान रुचि रखने वाले व्यक्ति को 'उभयलिंगी' कहा जाता है। इन्हें भी समाज की मुख्यधारा की ओर ले आने में सिनेमा ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

'शोनाली बोस' के निर्देशन में 2015 में 'मार्गरीटा विद ए स्ट्रॉ' नामक एक सिनेमा का निर्माण हुआ। इसमें उन्होंने सेरेब्रल पाल्सी से पीड़ित लैला (कल्कि कोचलिन) के जीवन को दर्शाया गया है। इसके अलावा, उभयलिंगी प्रेम को भी चित्रित किया गया है। यह पूरी सिनेमा लैला पर केंद्रित है। सिनेमा में उसके जीवन-संघर्ष को दिखाया गया है। साथ ही, उसे अपनी सेक्सुअलिटी का भी एहसास होता है। जब लैला कॉलेज में पढ़ती है, उस समय वह अपनी शारीरिक ज़रूरतों को पूरा करने के लिए कभी स्वयं या कभी किसी लड़के के साथ होने की कोशिश करती है। बाद में, लैला अपनी उच्च शिक्षा के लिए न्यूयॉर्क विश्वविद्यालय में जाती है। वहाँ उसकी टाइपिंग में सहायता के लिए 'जेरेड' नामक एक युवक को रखा जाता है। धीरे-धीरे, जेरेड के प्रति उसके मन में एक प्रकार का आकर्षण उत्पन्न होता है। इसी बीच, उसकी मुलाक़ात एक सक्रियतावादी लड़की 'ख़ानुम' से होती है। ख़ानुम एक अंधी लड़की है। वे दोनों एक-दूसरे से प्यार करने लगती हैं। लेकिन फ़िल्म में एक संदर्भ में लैला को यह एहसास होता है कि वह 'उभयलिंगी' है, क्योंकि ख़ानुम के साथ रहते हुए भी जेरेड के प्रति उसे आकर्षण का अनुभव होता है। वास्तव में, इस फ़िल्म को लेस्बियन और उभयलिंगी—दोनों श्रेणियों में रखा जा सकता है। प्रस्तुत फ़िल्म भी उभयलिंगी वर्ग के प्रति समाज के नज़रिए में एक प्रकार का बदलाव लाने में सक्षम है।

'ट्रांसजेंडर' भी एल.जी.बी.टी समुदाय के अंतर्गत आने वाला एक ओर समुदाय है। स्त्री और पुरुष को सृष्टि का आधार मानने वाला यह समाज इसे स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होता है कि इन दोनों के अलावा इस संसार में एक अन्य वर्ग भी है, जिन्हें संसार वालों ने दोयम दर्जे का इंसान मानकर उनके साथ अमानवीय व्यवहार कर रहा है। जिन्हें 'ट्रांसजेंडर' कहा जाता है। वास्तव में ट्रांसजेंडर मुद्दों पर कई साहित्यिक रचनाएं उपलब्ध हैं। लेकिन इन सबके अलावा आजकल सिनेमा ने भी इस विषय को केंद्र में रखकर फ़िल्में बनानी शुरू कर दी हैं।

'चंडीगढ़ करे आशिकी' नामक सिनेमा इस जॉनर में आने वाला एक सिनेमा है। यह सिनेमा मनु (आयुष्मान खुराना) और मानवी (वाणी कपूर) के प्यार की कहानी है। मनु ने एक जिम खोल रखा है और मानवी वहाँ ज़ुम्बा ट्रेनर के रूप में आती है। मनु और मानवी एक-दूसरे से बहुत प्यार करने लगते हैं। मनु उससे शादी भी करना चाहता है। लेकिन अचानक मानवी अपनी ज़िंदगी की सबसे बड़ी सच्चाई उसके सामने रखती है कि वह एक ट्रांसवुमन है, यानी एक ट्रांसजेंडर। यह सुनने के बाद मनु टूट जाता है और उसके अंदर एक प्रकार की घृणा उत्पन्न होती है कि उसने एक लड़के से प्यार किया है। लेकिन मानवी बार-बार उसे समझाने की कोशिश करती है कि वह अब एक पुरुष नहीं, बल्कि एक महिला है। फिर भी मनु इस सच्चाई को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होता। उसके अंदर अब भी उसके प्रति वही प्यार है, लेकिन वह इस सच्चाई को स्वीकार नहीं कर पा रहा है। इसलिए मनु इस विषय के बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त करना शुरू कर देता है, जैसे—ट्रांसजेंडर कौन होते हैं? पूरी दुनिया में ये लोग क्या कर रहे हैं? उनका जीवन कैसा है? आदि। इसके बाद वह एक ट्रांसजेंडर से बात करता है। उनकी बातचीत से उसे पता चलता है कि प्यार तो प्यार होता है और उसमें कोई बाधा नहीं होनी चाहिए। प्यार शुद्ध और सच्चा होना चाहिए। इसलिए मानवी खुलकर सच बताती है कि वह एक ट्रांसवुमन है, क्योंकि वह इस रिश्ते में ईमानदार रहना चाहती है।

यहाँ निर्देशक यह व्यक्त करना चाहता है कि किसी व्यक्ति की जेंडर और सेक्सुअलिटी का निर्धारण उसकी शारीरिक बनावट से नहीं, बल्कि उसके भीतर की पहचान से होता है। अंत में मनु इस सच्चाई को स्वीकार कर लेता है और उसके साथ एक खुशहाल जीवन जीने के लिए तैयार हो जाता है।

असल में, सभी ट्रांसजेंडर्स को संविधान द्वारा दिए गए सभी मानवाधिकारों के साथ समाज में सम्मान और बिना किसी डर के जीने का अधिकार है। वे भी बाकी लोगों की तरह खुशहाल ज़िंदगी जी सकते हैं।

निष्कर्ष

हिंदी सिनेमा के बदलते परिदृश्य में, आजकल LGBT समुदाय लगातार एक अभिन्न और स्थायी उपस्थिति के रूप में उभरकर सामने आया है। हालाँकि, अपने शुरुआती दिनों में सिनेमा अक्सर इस समुदाय को हास्य, भय या विकृति के नज़रिए से चित्रित करता था। इस तरह के चित्रण के परिणामस्वरूप, उन्हें समाज के भीतर विभिन्न प्रकार के अन्याय, शोषण और उत्पीड़न का सामना करना पड़ा; इसके अलावा, उनके बारे में नकारात्मक धारणाएँ भी गहरी जड़ें जमा गईं।

हालाँकि, बदलते सामाजिक दृष्टिकोण, विज्ञान और प्रौद्योगिकी में हुई प्रगति, और शिक्षा के प्रसार ने इस स्थिति में महत्वपूर्ण बदलाव लाए हैं। समकालीन हिंदी सिनेमा अब LGBT समुदाय को अधिक मानवीयता, यथार्थ और संवेदनशीलता के साथ चित्रित करता है। यह उनके जीवन के संघर्षों, पहचान की तलाश, सामाजिक स्वीकृति की खोज और आत्म-सम्मान की चाह को एक अनोखे और विशिष्ट अंदाज़ में प्रस्तुत करता है।

मानवाधिकारों के परिप्रेक्ष्य में, यह आवश्यक है कि हर व्यक्ति को बिना किसी भेदभाव के बराबर अधिकार, स्वतंत्रता और सम्मान मिलना चाहिए। किसी के साथ भी लिंग पहचान या यौन अभिविन्यास के आधार पर भेदभाव नहीं होना चाहिए।

इस संदर्भ में, मुख्यधारा के सिनेमा ने अपनी सीमाओं के भीतर रहते हुए भी इस दिशा में काफी हद तक महत्वपूर्ण योगदान दिया है। आजकल कई हिंदी फ़िल्मों ने परिवार, समाज और प्यार के नज़रिए से क्वीर समुदाय के लोगों की भावनाओं, चुनौतियों और अधिकारों को चित्रित किया है। इसके अलावा, सिनेमा ने यह एहसास भी दिलाया है कि बराबरी सिर्फ़ अधिकारों तक सीमित नहीं है; यह अधिकारों से आगे बढ़कर इंसानों की मानवीयता पर ज़ोर देती है।

इस प्रकार, हिंदी सिनेमा और क्वीर समुदाय की कहानियों का मेल समाज में मानवाधिकार की भावना को मज़बूत करता है और हमें याद दिलाता है कि हर इंसान, चाहे उसका यौन अभिविन्यास या पहचान कुछ भी हो, इस समाज में इज्ज़त, गरिमा और बराबर मौकों का हक़दार है। यह न केवल समाज को संवेदनशील बनाता है, बल्कि मानवाधिकारों के प्रति लोगों का नज़रिया भी मज़बूत करता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. जयप्रकाश चौकसे, सिनेमा और सितारों का मायाजाल, प्रभाव प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015.
2. डॉ. टी. शशिधरन, सिनेमा के चार अध्याय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014.
3. सं. डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह, रवि कुमार गोंड०, भारतीय साहित्य एवं समाज में तृतीय लिंगी विमर्श, अमन प्रकाशन, कानपुर, 2016.

4. आलोक पांडेय, समाज में सिनेमा ('मीडिया विमर्श', सिनेमा विशेषांक 1, दिसंबर, 2012), पृ. 02
5. विनोद भारद्वाज, सिनेमा कल, आज, कल, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006.
6. दिनेश श्रीनेत, पश्चिम और सिनेमा वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012.

मेलघाट परिक्षेत्र में कुपोषण: एक पुनरावलोकन

नीता उघड़े
शोधार्थी, वर्धा समाज कार्य संस्थान,
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

सारांश

मेलघाट लगभग 314 छोटे गांवों का पहाड़ी और वन क्षेत्र है और महाराष्ट्र राज्य में सबसे अविकसित क्षेत्रों में से एक के रूप में जाना जाता है। संसदीय और विधानसभा निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन आदेश, 2008 के आदेश के अनुसार, क्रमांक 41 मेलघाट विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र धरनी तहसील, चिखलदरा तहसील और अचलपुर तहसील (भाग), राजस्व मंडल-परतवाड़ा से बना है । कुपोषण आमतौर पर जीवित रहने के लिए आवश्यक 2400 से 2500 कैलोरी न मिलने के कारण होता है। विद्वानों के अनुसार भारत जैसे देश में एक वयस्क के लिए प्रतिदिन 2737 कैलोरी की आवश्यकता होती है। यदि किसी व्यक्ति की दैनिक भोजन की आवश्यकता इस मात्रा में पूरी नहीं होती है, तो वह धीरे-धीरे कुपोषण का शिकार हो जाता है।

उद्देश्य एवं शोध प्रविधि : प्रस्तुत आलेख पीएचडी शोध का हिस्सा है। इसमें शोधार्थी द्वारा किए गए साहित्य पूनरावलोकन के आधार पर मेलघाट की कुपोषण के समस्या की स्थिति कैसी है? को समझने के उद्देश्य से किया गया है। शोध आलेख पूरी तरह से द्वितीयक स्त्रोत पर आधारित है। शोध आलेख हेतु वर्ष 2013 से 2023 तक के गूगल स्कॉलर पर उपलब्ध शोध आलेखों का चुनाव सुविधाजनक पद्धति से किया गया है।

साहित्य समीक्षा से यह ज्ञात होता है कि मेलघाट क्षेत्र के कोरकू लोग स्वास्थ्य और स्वास्थ्य देखभाल से वंचित होने के मामले में एक विशिष्ट उदाहरण हैं। क्षेत्र में पिछड़ेपन और गरीबी की लगातार समस्या स्वास्थ्य की स्थिति पर प्रतिबिंबित होती है। कुपोषण की समस्या का समाधान को लेकर बहुत कम जानकारी उपलब्ध है तथा समाज कार्य हस्तक्षेप संबंधी सूचनाओं का भी अभाव देखा गया है।

मुख्य शब्द : मेलघाट , कुपोषण, कोरकू, साहित्य समीक्षा

प्रस्तावना:

स्वास्थ्य संवर्धन के लिए पर्याप्त भोजन उपलब्ध न हो तो कुपोषण होता है। इस प्रकार, कुपोषण किसी भी उम्र में हो सकता है। लेकिन यह मुख्य रूप से बच्चों में पाया जाता है। कुपोषण का प्रसार 6 माह से 3 वर्ष के आयु वर्ग में सबसे अधिक है। कुपोषण अपर्याप्त आहार, शरीर के पोषण के लिए संतुलित आहार का खंडित होना, या संतुलित आहार से संबंधित विकार, शरीर के लिए आवश्यक भोजन की कमी, अपाच्य भोजन का सेवन या आहार में हानिकारक भोजन का समावेश है। शरीर के लिए आवश्यक कैलोरी (ऊर्जा) का उत्पादन न होने से शरीर और स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। परिणामस्वरूप, शारीरिक प्रदर्शन कम हो जाता है। ऐसा व्यक्ति 'कुपोषित' व्यक्ति होता है। कुपोषण आमतौर पर जीवित रहने के लिए आवश्यक 2400 से 2500 कैलोरी न मिलने के कारण होता है। विद्वानों के अनुसार भारत जैसे देश में एक वयस्क के लिए प्रतिदिन 2737 कैलोरी की आवश्यकता होती है। यदि किसी व्यक्ति की दैनिक भोजन की आवश्यकता इस मात्रा में पूरी नहीं होती है, तो वह धीरे-धीरे कुपोषण का शिकार हो जाता है।

मेलघाट लगभग 314 छोटे गांवों का पहाड़ी और वन क्षेत्र है और महाराष्ट्र राज्य में सबसे अविकसित क्षेत्रों में से एक के रूप में जाना जाता है। संसदीय और विधानसभा निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन आदेश, 2008 के आदेश के अनुसार, क्रमांक 41 मेलघाट विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र धरनी तहसील, चिखलदरा तहसील और अचलपुर तहसील (भाग), राजस्व मंडल-परतवाड़ा से बना है । 2011 की जनगणना के अनुसार 300,000 से अधिक लोगों का निवास वाला यह क्षेत्र मुख्य रूप से कोरकू जनजातियों का घर है, जिनकी आबादी 75% से अधिक है। यहां की आबादी शांत, कानून का पालन करने वाली, ईमानदार और मेहनती है और पारंपरिक रूप से मेलघाट के जंगलों में श्रम कार्य से निकटता से जुड़ी हुई है। जबकि कृषि एक प्रमुख व्यवसाय रहा है, पहाड़ी और उबड़-खाबड़ इलाके के कारण उपज कम है। इसलिए, श्रम गतिविधियाँ प्राथमिक व्यवसाय का समर्थन करती हैं। वनों की कमी, कानूनों के प्रतिबंध और पर्याप्त वैकल्पिक स्रोतों की कमी के कारण वन और वन्यजीवों पर आधारित भोजन और औषधियों के पारंपरिक स्रोतों के विघटन से पोषण और औषधि की एक संक्रमणकालीन कमी पैदा हो गई जो आसानी से वनों से प्राप्त होती थी। अल्पपोषण इस अवधि की एक घटना प्रतीत होती है क्योंकि यह किसी भी पिछले दस्तावेज़ में लिखा या रिपोर्ट नहीं किया गया है। मेलघाट एक विशाल वन क्षेत्र है जो अपने बाघों के लिए जाना जाता है और संयोग से पिछले दो से तीन दशकों में उच्च पोषण, शिशु और मातृ मृत्यु दर के लिए भी जाना जाता है।

मेलघाट में 2022-23 में कुपोषण के कारण हर दूसरे दिन औसतन एक बच्चे की मौत हुई है। इस संदर्भ में महाराष्ट्र राज्य के स्वास्थ्य मंत्री तानाजी सावंत ने विधान परिषद में बताया कि पिछले वित्तीय वर्ष के

दौरान मेलघाट में 175 बच्चों की मौत हुई है. जबकि कुपोषण से होने वाली मौतों की दुखद घटनाओं ने मेलघाट को वर्षों से परेशान किया है, बावजूद इसके इस क्षेत्र में आक्रामक सरकारी हस्तक्षेप का प्रभाव पड़ रहा है और 2018-19 की तुलना में बाल मृत्यु दर में लगभग 50% की कमी आई है। उस अवधि के दौरान, 309 बाल मृत्यु के मामले दर्ज किए गए थे। वर्ष 2022-23 अप्रैल-जनवरी के उपलब्ध डेटा से पता चलता है कि 77 मौतें एक महीने से कम उम्र के बच्चों की थीं। इसी अवधि में 1 महीने से 1 वर्ष की आयु के बीच बाल मृत्यु के मामले 42 दर्ज किए गए हैं, जबकि 1-6 वर्ष की आयु समूह के लिए, दर्ज की गई मौतों की संख्या 38 है। बावजूद इसके इस परिक्षेत्र में सरकारी कार्यक्रमों के अंतर्गत इस समस्या के निबटान के लिए गंभीर कार्य हो रहा है।

उद्देश्य एवं शोध प्रविधि : प्रस्तुत आलेख पीएचडी शोध का हिस्सा है। इसमें क्षोदधारथी द्वारा किए गए साहित्य पूनरावलोकन के आधार पर मेलघाट की कुपोषण के समस्या की स्थिति कैसी है? को समझने के उद्देश्य से किया गया है। शोध आलेख पूरी तरह से द्वितीयक स्त्रोत पर आधारित है। शोध आलेख हेतु वर्ष 2013 से 2023 तक के गूगल स्कॉलर पर उपलब्ध शोध आलेखों का चुनाव सुविधाजनक पद्धति से किया गया है।

साहित्य पुनरावलोकन

Datta, S. S., & Mail, I. D. (2013) मेलघाट 312 छोटे गांवों का पहाड़ी वन क्षेत्र है, जिसे महाराष्ट्र के सबसे अविकसित क्षेत्रों में से एक के रूप में जाना जाता है। मेलघाट में रोजगार शोषणकारी, गुलाम बनाने वाला और लैंगिक भेदभावपूर्ण है। 92-97 में मेलघाट में अनुमानित 5,000 आदिवासी बच्चे कुपोषण से मर गये। शोध का उद्देश्य मेलघाट में बाल मृत्यु दर की स्थिति का पता लगाना और किसी भी कम रिपोर्टिंग की जांच करना, और गुणात्मक रूप से बाल स्वास्थ्य के निर्धारकों का पता लगाना। अध्ययन मेलघाट क्षेत्र के पांच पीएचसी क्षेत्रों अर्थात् सदरवाड़ी, बैरागढ़, दुलघाट रेलवे, टेम्बुरसोंडा और हटरू में आयोजित किया गया था। महत्वपूर्ण आँकड़ों पर डेटा अप्रैल-जुलाई 2008 और वर्ष 2007 की इसी अवधि के लिए एकत्र किया गया था। इस अवधि के दौरान होने वाली सभी बच्चों की मृत्यु की लाइन लिस्टिंग किसी भी कम रिपोर्टिंग का पता लगाने के लिए की गई थी। ऐसी मौतों के लिए जिम्मेदार अंतर्निहित कारकों का पता लगाने के लिए एक पीएचसी गांव में सामाजिक शव परीक्षा सहित मौतों की मौखिक और सामाजिक शव परीक्षा की गई थी। डेटा का विश्लेषण एटलस का उपयोग करके किया गया। सामाजिक-सांस्कृतिक-आर्थिक कारकों का मैट्रिक्स बनाने के लिए टीआई 5.5 और एंथ्रोपैक 4.98।

अध्ययन के परिणाम दर्शाते हैं कि अध्ययन क्षेत्र से 6 साल से कम उम्र के कुल 73 मौतें और 911 जीवित जन्मों की सूचना मिली। इस प्रकार इस अवधि के लिए क्षेत्र में 6 वर्ष से कम उम्र के बच्चों की

मृत्यु दर 80.1 है, जबकि पिछले वर्ष की इसी अवधि में यह 66.9 थी। इसलिए, महत्वपूर्ण आंकड़ों के अनुसार, मेलघाट में 6 साल से कम उम्र की मृत्यु दर देश के अन्य हिस्सों की तुलना में अधिक नहीं थी, अगर अंडर रिपोर्टिंग न हो। इसके अलावा, नवजात शिशुओं की मृत्यु 6 वर्ष से कम आयु की मृत्यु दर का केवल 39.7% थी। बच्चों के पालन-पोषण की अनुचित प्रथाएं, गर्भवती महिलाओं द्वारा खराब आहार का सेवन, कम उम्र में विवाह, बच्चों में कम अंतर, स्वास्थ्य शिक्षा और जागरूकता की कमी, पर्याप्त आय और क्रय शक्ति बाल स्वास्थ्य की अनिश्चित स्थिति के कारण हैं। निष्कर्ष: सरकार के प्रति जागरूकता बढ़ रही है। नरेगा और जननी सुरक्षा योजना जैसी नीतियों के साथ-साथ सार्वजनिक बुनियादी ढांचे को लोकप्रिय बनाने और गरीबी-अशिक्षा-सूचना की कमी के चक्र पर जोर देने से घाट क्षेत्र में विकास में तेजी आएगी।

Talapalliwar, M. R., & Garg, B. S. (2014). The Indian Journal of Pediatrics. 81, 1151-1157. 0-6 वर्ष के आदिवासी बच्चों में कुपोषण की भयावहता और महामारी संबंधी निर्धारकों का पता लगाने के उद्देश्य से यह अध्ययन किया गया। शोध में मध्य भारत के मेलघाट के गांवों में एक समुदाय आधारित क्रॉस सेक्शनल अध्ययन किया गया था। 0-6 वर्ष आयु वर्ग के 540 बच्चों की जानकारी एकत्र की गई। नए विकसित WHO विकास मानकों का उपयोग कुपोषण (कम वजन, बौनापन और बर्बादी) के पारंपरिक सूचकांकों और एंथ्रोपोमेट्रिक विफलता (CIAF) के समग्र सूचकांक की गणना के लिए किया गया था। कुपोषण के सहसंबंधों का पता लगाने के लिए यूनीवेरिएट और मल्टीपल लॉजिस्टिक रिग्रेशन विश्लेषण का उपयोग किया गया। शोध के परिणाम दर्शाते हैं कि इन आदिवासी बच्चों में कम वजन, बौनेपन और कमज़ोरी के मामले में कुपोषण की व्यापकता क्रमशः 60.9%, 66.4% और 18.8% थी। एंथ्रोपोमेट्रिक विफलता के समग्र सूचकांक (सीआईएएफ) के संदर्भ में कुपोषण 76.3% था। इस अध्ययन से सामने आने वाले कुपोषण के महत्वपूर्ण सहसंबंध थे बच्चे की उम्र, पहली गर्भावस्था के समय माँ की उम्र 20 वर्ष से कम, कोलोस्ट्रम न खिलाने की प्रथा, कैलोरी की कमी वाला आहार, एनीमिया और दस्त और तीव्र श्वसन संबंधी बीमारियाँ। निष्कर्षत: यह कहा गया कि आदिवासी बच्चों में कुपोषण की व्यापकता अधिक थी। बच्चों में एनीमिया और अन्य रुग्णताओं के शीघ्र निदान और त्वरित उपचार के लिए ग्रामीण स्तर पर स्वास्थ्य देखभाल वितरण को मजबूत किया जाना चाहिए। इस समुदाय में बच्चे पैदा करने की उम्र में देरी करने और स्तनपान प्रथाओं में सुधार करने के लिए रणनीतियों की आवश्यकता है।

Birdi, T. J., Joshi, S., Kotian, S., & Shah, S. (2014). भारत के महाराष्ट्र के अमरावती जिले में स्थित मेलघाट एक आदिवासी क्षेत्र है जहाँ कुपोषण के सबसे अधिक मामले हैं। यह पेपर मेलघाट के धरनी ब्लॉक में कुपोषण के संभावित कारणों पर केंद्रित है। मात्रात्मक सर्वेक्षण में समुदाय में

कुपोषण, किचन गार्डन (केजी) प्रथाओं, सार्वजनिक वितरण प्रणाली, भोजन प्रावधान, आंगनवाड़ी सेवाओं और स्वच्छता/स्वच्छता के मौजूदा बोझ को दर्ज किया गया। इसके अतिरिक्त पोषण, सांस्कृतिक मान्यताओं, खर्च करने की आदतों और कुपोषण में योगदान देने वाले अन्य कारकों पर समुदाय के परिप्रेक्ष्य को समझने के लिए एक गुणात्मक अध्ययन किया गया। कुपोषण सभी आयु समूहों में अत्यधिक प्रचलित पाया गया, जिसमें 1-5 वर्ष की आयु के 54% बच्चे और 20 वर्ष की आयु के 43% वयस्क गंभीर से मध्यम कम वजन के थे। बच्चों में कुपोषण का एक प्रमुख कारण दोषपूर्ण बाल देखभाल प्रथाएँ थीं। खाद्य प्रावधान के आंकड़ों से पता चला है कि जहां समुदाय की कैलोरी की जरूरतें अनाज और दालों की खपत से काफी हद तक पूरी हो जाती हैं, वहीं हरी पत्तेदार सब्जियों (जीएलवी) की न्यूनतम खपत से समुदाय में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी हो सकती है। केजी, जो जीएलवी प्रदान करते हैं, मुख्य रूप से मानसून (98%) में खेती की जाती थी जो गर्मियों में घटकर केवल 4% रह गई। कुपोषित बच्चों पर लक्षित होने के बावजूद सरकारी योजनाओं का लाभ अक्सर पूरे परिवार को मिलता था और इस तरह यह कम हो जाता था। मुख्य निष्कर्ष यह था कि पोषण संबंधी हस्तक्षेपों को पूरे परिवार को संबोधित करने के लिए डिज़ाइन किया जाना चाहिए और उचित पोषण शिक्षा पर जोर दिया जाना चाहिए, जिसके बिना भोजन वितरित करने या आय बढ़ाने पर न्यूनतम प्रभाव पड़ेगा।

Sanjay, S. (2014). यह लेख भारत के मेलघाट, महाराष्ट्र में कोरकू जनजाति के बीच कुपोषण के लक्षणों, कारणों और दुष्प्रभावों के साथ-साथ संबंधित मृत्यु दर की समीक्षा करता है। कुपोषित बच्चों की माताओं की आर्थिक स्थिति, शादी की उम्र और अन्य बीमारियों तथा इन बच्चों के टीकाकरण और चिकित्सा उपचार की स्थिति की जांच की जाती है। इस आबादी में कुपोषण को दूर करने के लिए सिफारिशें दी गई हैं।

Choudhary, H. R., & P, A. A. E. (2020). यह लेख भारत के मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र राज्य में पाई जाने वाली सबसे वंचित आदिवासी आबादी में से एक, कोरकू जनजाति के परेशान करने वाले सामाजिक-आर्थिक और विकासात्मक मुद्दों का दस्तावेजीकरण करने का एक प्रयास है। यह लेख 1 वर्ष की अवधि के लिए महाराष्ट्र के मेलघाट क्षेत्र के 10 गांवों में किए गए व्यापक नृवंशविज्ञान क्षेत्र कार्य का एक उत्पाद है। समुदाय के जीवन, जीवनशैली और सामाजिक-आर्थिक और विकासात्मक सूचकांकों पर बारीकी से जांच की गई। फ़ील्डवर्क के प्रतिबिंब हतोत्साहित करने वाले रुझानों को रेखांकित करते हैं और समुदाय के सर्वव्यापी सामाजिक और विकास संबंधी मुद्दों को दर्शाते हैं। बुनियादी सुविधाओं, आजीविका, स्वास्थ्य, शिक्षा और राजनीतिक मामलों की स्थिति के साथ कोरकस के सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन में प्रमुख बदलावों का विवरण दिया गया है। इसके अलावा, बच्चों और

महिलाओं से संबंधित मुद्दों पर जोर दिया जाता है। अध्ययन के साक्ष्य समुदाय के लिए विकासात्मक रणनीतियों पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता पर जोर देते हैं।

Das, M. (2010). कोरकू मध्य भारत के आदिवासी लोग हैं जो महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश राज्यों में केंद्रित हैं। पिछले कुछ दशकों के शोध अध्ययनों से पता चला है कि कोरकू गंभीर कुपोषण के दुःख से जूझ रहे हैं। 1992 से 1997 के बीच महाराष्ट्र के मेलाघाट में इस समुदाय के अनुमानित 5000 आदिवासी बच्चों की कुपोषण से मृत्यु हो गई। आज भी इन क्षेत्रों में स्थिति गंभीर है। यह अध्ययन मध्य प्रदेश के बैतूल जिले में कोरकू जनजातियों के स्वास्थ्य और पोषण स्थिति पर असर डालने वाली सभी प्रासंगिक जानकारी एकत्र करने का एक प्रयास है। परिणामों से पता चला कि नर और मादा कोरकू में पोषक तत्वों की भारी कमी है, जो मुख्य रूप से दालों, दूध और दूध उत्पादों, हरी पत्तेदार सब्जियां, फल, वसा और तेल, और चीनी और गुड़ के कम सेवन के कारण है। अध्ययन से पता चलता है कि इसकी आवश्यकता है पोषण संबंधी स्थिति में सुधार लाने के लिए कोरकू जनजातियों की खान-पान की आदतों में बदलाव लाना।

Mohod, P. R. (2013). समाज के अधिशेष का आकलन बच्चे और महिला की स्थिति से किया जा सकता है। बालक को राष्ट्र का स्तंभ माना जाता है। मेलघाट क्षेत्र की जंगली पहाड़ियों में कुपोषण एक पर्यायवाची शब्द है, जहां ज्यादातर कोरकू आदिवासी रहते हैं। 2005 के आधिकारिक आंकड़ों के अनुसार, चिखलधारा और धरनी तालुकों वाले क्षेत्र में हर साल 0 से 6 वर्ष की आयु के 400-500 बच्चे मर जाते हैं। मेलघाट टाइगर रिजर्व मध्य भारत में अमरावती जिले में स्थित है। यह चिकलधारा से 25 किमी दूर दक्षिण सतपुड़ा रेंज में एक पहाड़ी रिसॉर्ट है जिसे गविलगढ़ हिल्स के नाम से भी जाना जाता है। यह मुंबई से 760 किमी उत्तर पूर्व और नागपुर से 225 किमी पश्चिम में है। इस अभ्यारण्य में 80 बाघ हैं जो 1,674 वर्ग किमी विशाल क्षेत्र में फैले हुए हैं। वे अधिकतर रिज़र्व के अंदरूनी हिस्सों में रहते हैं जहां तक पहुंचना मुश्किल है। मेलघाट टाइगर रिज़र्व की स्थापना 1967 में वन्यजीव अभयारण्य के रूप में की गई थी और 1974 में इसे टाइगर रिज़र्व घोषित किया गया था। इसके ऊबड़-खाबड़ इलाके और चट्टानी घाटियाँ शिकारियों से प्राकृतिक सुरक्षा प्रदान करती हैं। तापी नदी रिजर्व की उत्तरी सीमा है। यहां बंदरों और अन्य जीवों के अलावा बाघ, स्लॉथ भालू और उड़ने वाली गिलहरियां भी देखी जा सकती हैं। यह रिज़र्व 2,000 गौर का घर है जो भारत में दूसरा सबसे बड़ा है। मेलघाट प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर है। मेलघाट के रूप में महाराष्ट्र क्षेत्र सबसे समृद्ध और प्रकृति के उपहारों में से एक है। सांस्कृतिक विरासत और प्रकृति की सुंदरता निस्संदेह आगंतुकों का ध्यान आकर्षित करती है, लेकिन साथ ही दुनिया के मानचित्र पर प्रसिद्ध राष्ट्र की स्थिति को देखकर दुख भी महसूस होता है, जहां कुपोषण जैसी सामाजिक बुराइयों पर जीवन और सम्मान का अधिकार मुश्किल से ही हावी है। यह भयानक था जब सितंबर 2011

में, एक जनहित याचिका के जवाब में, राज्य ने बॉम्बे हाई कोर्ट को बताया कि मेलघाट में 14,500 बच्चे कुपोषित हैं और पिछले 4 महीनों में 266 बच्चों की मौत हो गई है। दिलचस्प बात यह है कि मेलघाट में 320 गांव हैं, लेकिन चौंकाने वाली बात यह है कि एक आरटीआई से पता चला है कि इस क्षेत्र में 370 एनजीओ पंजीकृत हैं। कुपोषण से लड़ने के घोषित उद्देश्य के साथ भारी धनराशि, बड़े दानदाता आते हैं। बुनियादी मानव अधिकार का उल्लंघन आसानी से किसी की आंखों से देखा जा सकता है और इसलिए समाज का ध्यान आकर्षित होता है। प्रस्तुत शोध पत्र उन बाघों के भोजन के अधिकार के पहलू पर विचार करने के लिए तैयार किया गया है जो वास्तविक बाघ के साथ रहते हैं लेकिन भुखमरी से पीड़ित हैं।

Chandrakar, M., & Pachlore, G. (2023). सिकल सेल रोग पूरे विश्व में व्यापक रूप से पाया जाता है। सिकल सेल रोग लगभग 12 भारतीय राज्यों और एक केंद्र शासित प्रदेश में पाया गया है और इसकी व्यापकता दर मध्य भारत में सबसे अधिक पाई गई है। महाराष्ट्र के कुछ जिलों सहित कई राज्यों में सिकल सेल रोग के लिए आबादी की स्क्रीनिंग कई शोधकर्ताओं द्वारा की गई है। मेलघाट क्षेत्र महाराष्ट्र में है जहां बहुसंख्यक आबादी आदिवासियों की है. चूँकि इस क्षेत्र के गाँव बहुत अंदरूनी हैं और सड़कों से सीधे जुड़े नहीं हैं, इस क्षेत्र से वस्तुतः कोई अध्ययन नोट नहीं किया गया है। वर्तमान अध्ययन में, लगभग 392 व्यक्ति जो स्क्रीनिंग के इच्छुक थे, उन्हें सिकल सेल परीक्षण के लिए चुना गया था। 392 व्यक्तियों में से लगभग 271 मरीजों के रक्त की जांच में सिकलिंग टेस्ट पॉजिटिव पाया गया। इन व्यक्तियों के रक्त को सिकल सेल रोग के लिए आगे की पुष्टिकरण परीक्षणों के अधीन किया गया था। हीमोग्लोबिन वैद्युतकणसंचलन के अधीन 271 रक्त नमूनों में से कुल 135 व्यक्तियों को सकारात्मक बताया गया। 77 व्यक्तियों ने 'एएस' प्रकार का हीमोग्लोबिन बैंड पैटर्न दिखाया। ये व्यक्ति सिकल सेल जीन के प्रबल वाहक हैं। इलेक्ट्रोफोरेसिस के बाद 58 रक्त नमूनों में एसएस बैंड पैटर्न प्रदर्शित पाया गया। बताया गया कि ये लोग सिकल सेल रोग से पीड़ित थे। इस क्षेत्र में अध्ययन की गई जनसंख्या में सिकल सेल रोग की व्यापकता 34.43% (135/392) पाई गई। जिनमें से 42.96% (58/135) एचबीएसएस (सिकल सेल एनीमिया) थे और 57.04% (77/135) एचबीएएस (सिकल सेल वाहक) पाए गए। इस मेलघाट क्षेत्र में, केवल दो नैदानिक विशेषताएँ हावी पाई गईं। लगातार स्प्लेनोमेगाली की व्यापकता 85% और पीलिया की व्यापकता 48% देखी गई है। उपरोक्त निष्कर्ष की पुष्टि वर्तमान अध्ययन में भी की गई जिसमें पुरुष: महिला अनुपात (75.86%): (24.13%) पाया गया। प्रस्तुत अध्ययन में इस क्षेत्र पर प्रभुत्व रखने वाले जनजातीय समुदायों का अध्ययन किया गया। सिकल सेल रोग की व्यापकता इस प्रकार देखी गई: कोरकू में 8.62%, गोंड में 3.44%, बलाई में 39.65%, गवलन में 20.68%, निहाल में 3.79%, रूठवा में 5.17%, पारधी में 1.72% और गवली में 6.8%।

Mahure, P., Gurjar, Y., & Sawkar, J. (2017). अंतर्गर्भाशयी और प्रसवोत्तर देखभाल की कमी के कारण, आहार संबंधी प्रथाओं से शैशव काल में कई रुग्णताएं हो सकती हैं। समुदाय में शिशु देखभाल चिकित्सा और आर्थिक कारणों के अलावा विशिष्ट क्षेत्र में प्रचलित सांस्कृतिक प्रथाओं से प्रभावित होती है? इस प्रश्न का उत्तर खोजने के संदर्भ में प्रस्तुत शोध किया गया है। इस अध्ययन का उद्देश्य 3 वर्ष से कम उम्र के बच्चों वाली आदिवासी माताओं के बीच प्रचलित भोजन प्रथाओं को समझना और इन प्रथाओं के पीछे के कारणों का पता लगाना था। यह समुदाय-आधारित क्रॉस-अनुभागीय वर्णनात्मक अध्ययन अमरावती जिले के उत्तरी आदिवासी क्षेत्र में किया गया था। अध्ययन के लिए कुल 312 माताओं को यादृच्छिक रूप से चुना गया। संरचित साक्षात्कार का उपयोग करके उन माताओं के आमने-सामने साक्षात्कार के माध्यम से डेटा एकत्र किया गया जिनके पास 3 वर्ष से कम उम्र का बच्चा था। अध्ययन के परिणाम में यह पाया गया कि लगभग 35% माताओं ने जन्म के 1 घंटे के बाद बच्चे को कोलोस्ट्रम दिया। जबकि 39% माताएं पारिवारिक परंपरा या बड़ों की सलाह के कारण बच्चे को कोलोस्ट्रम नहीं खिलाती पाई गईं और 68% ने कोलोस्ट्रम खिलाने से इनकार कर दिया क्योंकि उन्हें लगा कि यह साफ नहीं है। 90% माताओं ने 6 से 8 महीने की उम्र के बीच बच्चे को पूरक आहार देना शुरू कर दिया, जबकि 59% बच्चे अध्ययन से ठीक पहले 6 महीने के दौरान बीमारी से पीड़ित थे। निष्कर्ष: भारत के जनजातीय क्षेत्र में शिशुओं के पोषण और स्वास्थ्य की स्थिति में सुधार के लिए अनुचित आहार प्रथाओं को ठीक करने की आवश्यकता है।

Deore, A. U., & Zade, S. B. (2014). प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य न केवल सिकल सेल रोग (एससीडी) की वर्तमान प्रसार दर को प्रकट करना था, बल्कि मध्य भारत की कोरकू आबादी में इसके उच्च प्रसार और उनके स्वास्थ्य पर इसके प्रभाव का सबसे संभावित कारण भी बताना था। अध्ययन के दौरान, विभिन्न आयु समूहों (0-60 वर्ष) से संबंधित कुल 865 विषयों को उनमें सिकल सेल जीनोटाइप की घटनाओं का अनुमान लगाने के लिए यादृच्छिक रूप से नमूना लिया गया था। सभी (n=865) व्यक्तियों से रक्त के नमूने एकत्र किए गए और सकारात्मक नमूनों को उनके पैटर्न की पुष्टि के लिए पीएच 8.6 पर सेलूलोज़ एसीटेट एचबी इलेक्ट्रोफोरेसिस के अधीन किया गया। तैयार प्रश्नावली और पिछली चिकित्सा रिपोर्टों का उपयोग सिकल सेल रोग की नैदानिक प्रस्तुतियों के निदान के लिए एक उपकरण के रूप में किया गया था। अध्ययन के परिणाम दर्शाते हैं कि कोरकू लोगों में सिकल सेल विशेषता की व्यापकता 5.3% (46/865) पाई गई, जिनमें से 4.4% विषमयुग्मजी जीन एएस (वाहक) के साथ जबकि 0.9% समयुग्मजी अप्रभावी जीन एसएस (रोग) के साथ पाए गए। सिकल सेल रोग जीन की आवृत्ति पुरुषों और कम आयु वर्ग में अधिक बताई गई है, विशेषकर 0-25 वर्ष के आयु वर्ग के लोगों में। समयुग्मजी व्यक्तियों में से 87.8% को दर्द संकट या रक्त आधान का कोई इतिहास नहीं था। विषमयुग्मजी

रोगियों में सबसे अधिक देखी जाने वाली नैदानिक विशेषताएं शरीर में दर्द, जोड़ों में दर्द, बुखार, पेट में दर्द, पीलापन और सीने में दर्द और रुक-रुक कर होने वाले पीलिया की सीमित शिकायतें थीं। पित्त पथरी की कोई शिकायत सामने नहीं आई। डेटा विशेषकर बच्चों में मृत्यु दर की उच्च दर को भी दर्शाता है। अत: शोध इस निष्कर्ष पर पहुंचता हैं कि उच्च स्तर की रक्तसंबंधी भावना और सिकल सेल विकार के बारे में ज्ञान की कमी कोरकू आदिवासियों के बीच उच्च सिकल सेल रोग जीन आवृत्ति का प्रमुख कारण है। इसकी व्यापकता की दर को कम करने के लिए विवाह पूर्व जांच और आनुवंशिक परामर्श को उपकरण के रूप में माना जाना चाहिए।

निष्कर्ष

साहित्य समीक्षा से यह ज्ञात होता है कि मेलघाट क्षेत्र के कोरकू लोग स्वास्थ्य और स्वास्थ्य देखभाल से वंचित होने के मामले में एक विशिष्ट उदाहरण हैं। क्षेत्र में पिछड़ेपन और गरीबी की लगातार समस्या स्वास्थ्य की स्थिति पर प्रतिबिंबित होती है। यह क्षेत्र स्वास्थ्य समस्याओं और विभिन्न बीमारियों के प्रसार के लिए कुख्यात है। इस क्षेत्र के आदिवासियों, विशेषकर कोरकु के बीच पाई जाने वाली महत्वपूर्ण समस्या कुपोषण की है। चयनित अधिकतर अध्ययन महिला एवं बालकों के कुपोषण पर केन्द्रित है। लगभग सभी अध्ययन कोरकू जनजाति की कुपोषण के साथ अन्य स्वास्थ्य समस्याओं को दर्शाती है। यहाँ पर यह बात महत्वपूर्ण है कि कोई भी अध्ययन कोरकू जनजाति के बेहतर स्वास्थ्य अभ्यास पर बात नहीं करता है तथा न ही उनके लिए किए जा रहे प्रयासों की आलोचनाओं के अलावा सफलता को बहुत कम कर के आँका गया है, ऐसा प्रतीत होता है। कुपोषण की समस्या का समाधान को लेकर बहुत कम जानकारी उपलब्ध है तथा समाज कार्य हस्तक्षेप संबंधी सूचनाओं का भी अभाव देखा गया है।

संदर्भ

1. Datta, S. S., & Mail, I. D. (2013). A study to explore the determinants of child health in Melghat, Maharashtra. Health, 1(2), 36-41.
2. Talapalliwar, M. R., & Garg, B. S. (2014). Nutritional status and its correlates among tribal children of Melghat, Central India. The Indian Journal of Pediatrics, 81, 1151-1157.
3. Birdi, T. J., Joshi, S., Kotian, S., & Shah, S. (2014). Possible causes of malnutrition in Melghat, a tribal region of Maharashtra, India. Global journal of health science, 6(5), 164.
4. Sanjay, S. (2014). Malnutrition is problem of Korku tribe with reference to Melghat in Maharashtra. Golden Research Thoughts, 3(9).

5. Choudhary, H. R., & P, A. A. E. (2020). The Korku tribe of Melghat region in India and their current state: an ethnographic study. The Oriental Anthropologist, 20(1), 97-112.
6. Das, M. (2010). Study of nutritional status of Korku tribes in Betul district of Madhya Pradesh. Studies of Tribes and Tribals, 8(1), 31-36.
7. Mohod, P. R. (2013). Bliss of Right to Food or Grief of Malnutrition–A Study of Melghat Region in Maharashtra. Available at SSRN 2317835.
8. Chandrakar, M., & Pachlore, G. (2023). Status Of Sickle Cell Anemia Among Tribal Population Of Melghat Region, Maharashtra, India. Journal of Experimental Zoology India, 26(1).
9. Mahure, P., Gurjar, Y., & Sawkar, J. (2017). Feeding practices among tribal mothers of malnutrition prevalent region of Amravati District in India. Indian Journal of Child Health, 523-526.
10. Deore, A. U., & Zade, S. B. (2014). Distribution of sickle cell gene in Korku tribe of central India. National Journal of Community Medicine, 5(03), 270-272.

ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

महिला सशक्तिकरण के माध्यम से सतत ग्रामीण विकासः चुनौतियाँ, अवसर एवं नीतिगत परिप्रेक्ष्य

डॉ. छोटे लाल

सारांश

महिलाएँ सतत ग्रामीण विकास की प्रक्रिया का अभिन्न एवं अनिवार्य अंग हैं।सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विकास में महिलाओं की सक्रिय भूमिका को भारतीय समाज में व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है। ग्रामीण विकास की परिकल्पना तब तक पूर्ण नहीं मानी जा सकती, जब तक महिलाओं को शिक्षा, संसाधनों, नवीनतम तकनीक तथा मूलभूत सुविधाओं तक समान और सुलभ पहुँच प्रदान न की जाए। महिला सशक्तिकरण के बिना सतत ग्रामीण विकास की कल्पना करना मात्र एक आदर्शवादी विचार ही प्रतीत होता है। ग्रामीण भारत की महिलाओं के समक्ष अनेक सामाजिक–सांस्कृतिक, आर्थिक एवं संरचनात्मक चुनौतियाँ विद्यमान हैं, जिन्हें समझने और दूर करने के लिए एक बहुआयामी एवं लिंग–संवेदनशील दृष्टिकोण की आवश्यकता है। जल, ईंधन एवं स्वच्छता जैसी बुनियादी सुविधाओं की कमी ग्रामीण महिलाओं की प्रमुख और गंभीर समस्याओं में से एक है। उपलब्ध आँकड़े दर्शाते हैं कि भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में केवल लगभग 36 प्रतिशत आबादी को ही सुरक्षित पेयजल एवं स्वच्छता सुविधाएँ उपलब्ध हैं। इसका प्रत्यक्ष और असमान प्रभाव उन 86 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों पर पड़ता है, जहाँ जल संग्रहण की जिम्मेदारी मुख्यतः महिलाओं और किशोरियों पर होती है। पानी और स्वच्छता से जुड़ी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूर–दराज़ और असुरक्षित मार्गों से होकर आवागमन करने के दौरान महिलाओं और लड़कियों को शारीरिक श्रम, समय की हानि के साथ–साथ यौन उत्पीड़न एवं हिंसा जैसे गंभीर सामाजिक जोखिमों का भी सामना करना पड़ता है। यह स्थिति न केवल महिलाओं के स्वास्थ्य, सुरक्षा और गरिमा को प्रभावित करती है, बल्कि उनके शिक्षा, आजीविका और सामाजिक सहभागिता के अवसरों को भी सीमित करती है। अतः स्पष्ट है कि महिला सशक्तिकरण को केंद्र में रखकर जल, स्वच्छता एवं आधारभूत सुविधाओं से संबंधित नीतियों का प्रभावी क्रियान्वयन ही सतत ग्रामीण विकास को वास्तविक रूप प्रदान कर सकता है।

मुख्य शब्द : महिला सशक्तिकरण, सतत ग्रामीण विकास, चुनौतियाँ, अवसर, नीतिगत परिप्रेक्ष्य, ग्रामीण भारत

परिचयः

भारत में सतत ग्रामीण विकास की प्रक्रिया सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय कारकों के जटिल अंतर्संबंधों से प्रभावित होती है, जिनमें महिला सशक्तिकरण एक केंद्रीय तत्व के रूप में उभरकर सामने आता है। ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी केंद्रों की ओर पुरुषों का प्रवासन रोजगार एवं

आजीविका के अवसरों की खोज में निरंतर बढ़ रहा है, जिसके परिणामस्वरूप ग्रामीण परिवारों की सामाजिक संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन आए हैं। इस प्रवासन के कारण ग्रामीण समुदायों में महिलाओं पर पारंपरिक घरेलू दायित्वों के साथ–साथ कृषि, प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन तथा परिवार की आर्थिक सुरक्षा से जुड़ी जिम्मेदारियाँ भी बढ़ गई हैं। तथापि, गहराई से व्याप्त पितृसत्तात्मक सामाजिक मानदंडों के कारण महिलाएँ अब भी निर्णय–निर्माण की प्रक्रियाओं में सीमित भागीदारी रखती हैं।

ग्रामीण भारत में महिलाएँ भोजन, जल और ईंधन जैसी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति में प्रमुख भूमिका निभाती हैं। जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न आपदाएँ जैसे सूखा, बाढ़ एवं अनियमित वर्षा इन जिम्मेदारियों को और अधिक जटिल बना देती हैं। उपलब्ध शोध साहित्य यह संकेत देता है कि ऐसी परिस्थितियों में महिलाओं और किशोरियों का कार्यभार असमान रूप से बढ़ जाता है, जिससे वे शिक्षा, कौशल विकास एवं सामाजिक सहभागिता जैसे विकासात्मक अवसरों से वंचित हो जाती हैं। उदाहरणार्थ, वनों की कटाई और प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण के कारण ईंधन संग्रहण हेतु महिलाओं को अधिक समय और श्रम व्यय करना पड़ता है, जिसका प्रतिकूल प्रभाव उनके स्वास्थ्य और उत्पादकता पर पड़ता है।

इसके अतिरिक्त, अनुसंधान यह भी दर्शाता है कि ग्रामीण महिलाओं के पास चरम मौसमी घटनाओं के प्रति अनुकूलन, जोखिम न्यूनीकरण और पूर्व–तैयारी के लिए सीमित संसाधन उपलब्ध हैं। निर्धन ग्रामीण महिलाएँ धान की खेती, मछली पकड़ने तथा अन्य कृषि–आधारित आजीविकाओं में सक्रिय रूप से संलग्न हैं, जो बदलते जलवायु पैटर्न के प्रति अत्यधिक संवेदनशील हैं। परिणाम स्वरूप, आजीविका के नुकसान की संभावना बढ़ जाती है और उनकी सामाजिक–आर्थिक भेद्यता और अधिक गहरी हो जाती है। इस परिप्रेक्ष्य में यह अध्ययन यह प्रतिपादित करता है कि महिला सशक्तिकरण को जलवायु–संवेदनशील एवं लिंग–संवेदनशील नीतिगत ढाँचे के साथ एकीकृत किए बिना सतत ग्रामीण विकास के लक्ष्यों की प्राप्ति संभव नहीं है।

अध्ययन का औचित्यः

भारत की लगभग 65 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है, जहाँ सामाजिक–आर्थिक विकास में महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसके बावजूद, जनगणना 2011 के अनुसार ग्रामीण महिला साक्षरता दर लगभग 58.8 प्रतिशत है, जो ग्रामीण पुरुषों (78.6 प्रतिशत) की तुलना में काफी कम है। यह शैक्षिक असमानता महिला सशक्तिकरण और सतत ग्रामीण विकास दोनों के लिए एक प्रमुख चुनौती बनी हुई है। आर्थिक स्तर पर NSS के आँकड़े दर्शाते हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की कार्यबल भागीदारी सीमित है और अधिकांश महिलाएँ कृषि एवं असंगठित क्षेत्र में कम आय एवं सामाजिक सुरक्षा के अभाव में कार्यरत हैं। वहीं NFHS के अनुसार ग्रामीण परिवारों में लगभग 80–85 प्रतिशत मामलों में पानी संग्रहण की जिम्मेदारी महिलाओं और किशोरियों पर होती है, जिससे उनके शिक्षा, कौशल विकास एवं आजीविका के अवसर प्रभावित होते हैं।

जलवायु परिवर्तन से जुड़ी आपदाओं –जैसे सूखा, बाढ़ और अनियमित वर्षा का असमान प्रभाव ग्रामीण महिलाओं पर पड़ता है, क्योंकि उनके पास अनुकूलन एवं जोखिम प्रबंधन के सीमित संसाधन होते हैं। इन परिस्थितियों में महिला सशक्तिकरण की उपेक्षा सतत ग्रामीण विकास की

प्रक्रिया को बाधित करती है। अतः यह अध्ययन महिला सशक्तिकरण और सतत ग्रामीण विकास के अंतर्संबंधों का आँकड़ा–आधारित एवं नीतिगत विश्लेषण प्रस्तुत करने के लिए आवश्यक और प्रासंगिक है।

उद्देश्य :

प्रस्तुत अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. ग्रामीण भारत में महिला सशक्तिकरण की वर्तमान स्थिति का विश्लेषण करना।
2. सतत ग्रामीण विकास में महिलाओं की भूमिका और योगदान को स्पष्ट करना।
3. महिला सशक्तिकरण से संबंधित प्रमुख सामाजिक, आर्थिक और पर्यावरणीय चुनौतियों की पहचान करना।
4. उपलब्ध अवसरों और सरकारी नीतियों का समीक्षात्मक अध्ययन करना।
5. महिला सशक्तिकरण को सुदृढ़ करने हेतु नीतिगत एवं व्यवहारिक सुझाव प्रस्तुत करना।

महिला सशक्तिकरण की अवधारणा (Concept of Women Empowerment):

महिला सशक्तिकरण एक ऐसी गतिशील और बहुआयामी प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा संस्थागत स्तर पर समान अधिकार, अवसर और संसाधनों पर वास्तविक नियंत्रण प्राप्त होता है। इस अवधारणा का केंद्र महिलाओं की स्वतंत्र निर्णय–क्षमता, आत्मनिर्भरता, नेतृत्व क्षमता और सामाजिक सहभागिता को सुदृढ़ करना है, ताकि वे अपने जीवन और समुदाय से जुड़े विकासात्मक निर्णयों में सक्रिय भूमिका निभा सकें।वैश्विक विकास विमर्श में महिला सशक्तिकरण को सतत विकास का प्रमुख आधार माना गया है। संयुक्त राष्ट्र (UN) के अनुसार विश्व की लगभग 43 प्रतिशत कृषि श्रम शक्ति महिलाएँ हैं, किंतु भूमि और उत्पादक संसाधनों पर उनका स्वामित्व अत्यंत सीमित है। इसी प्रकार, विश्व बैंक के आकलन के अनुसार यदि महिलाओं को पुरुषों के समान आर्थिक अवसर प्रदान किए जाएँ, तो किसी भी देश की उत्पादक क्षमता में उल्लेखनीय वृद्धि संभव है। ये तथ्य इस बात को रेखांकित करते हैं कि महिला सशक्तिकरण केवल सामाजिक समानता का विषय नहीं, बल्कि आर्थिक और विकासात्मक अनिवार्यता भी है।

राजनीतिक सशक्तिकरण के संदर्भ में भारत में पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के लिए 33 से 50 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था ने यह सिद्ध किया है कि जब महिलाओं को निर्णय–निर्माण में भागीदारी मिलती है, तो स्थानीय शासन अधिक उत्तरदायी और समावेशी बनता है। यह अनुभव महिला सशक्तिकरण की उस अवधारणा को बल देता है, जिसमें महिलाओं को विकास की निष्क्रिय लाभार्थी के बजाय विकास की सहभागी और नेतृत्वकर्ता के रूप में देखा जाता है।इस प्रकार, महिला सशक्तिकरण की अवधारणा यह स्थापित करती है कि महिलाओं की समान भागीदारी के बिना न तो सामाजिक न्याय संभव है और न ही सतत एवं समावेशी विकास। अतः महिला सशक्तिकरण को विकास नीतियों और कार्यक्रमों के केंद्र में रखना आधुनिक विकास चिंतन की एक अनिवार्य आवश्यकता है।

सतत ग्रामीण विकास में महिलाओं की भूमिकाः

सतत ग्रामीण विकास आर्थिक प्रगति के साथ सामाजिक समावेशन, पर्यावरणीय संरक्षण और संस्थागत सुदृढ़ता पर आधारित है। इस प्रक्रिया में महिलाएँ ग्रामीण समाज की केंद्रीय संवाहक हैं। कृषि, प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन, आजीविका संवर्धन, स्वास्थ्य–पोषण, शिक्षा और सामुदायिक नेतृत्व में उनकी सक्रिय भागीदारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था की स्थिरता और खाद्य सुरक्षा को सुदृढ़ करती है। ग्रामीण भारत में कृषि एवं संबद्ध गतिविधियों में महिलाओं की भागीदारी लगभग 40–45 प्रतिशत है, जो सतत आजीविका के लिए महत्वपूर्ण मानी जाती है।

आर्थिक सशक्तिकरण के क्षेत्र में राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन के अंतर्गत गठित स्वयं सहायता समूहों (SHGs) ने महिलाओं को वित्तीय समावेशन, सूक्ष्म उद्यमिता और सामूहिक निर्णय–निर्माण के अवसर प्रदान किए हैं। करोड़ों ग्रामीण महिलाओं की SHG नेटवर्क से सहभागिता ने आय–वृद्धि, बचत–ऋण तक पहुँच और सामाजिक नेतृत्व को मजबूत किया है, जिससे ग्रामीण विकास अधिक समावेशी और टिकाऊ बना है।

पर्यावरणीय आयाम में जल, वन और भूमि संसाधनों के संरक्षण में महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण है। जल संग्रहण, ईंधन प्रबंधन और स्थानीय अनुकूलन उपायों में उनकी भागीदारी जलवायु–लचीले ग्रामीण विकास को बढ़ावा देती है। स्वास्थ्य–पोषण के क्षेत्र में भी महिलाएँ परिवार और समुदाय के निर्णयों की प्रमुख निर्धारक हैं, जिससे मानव विकास संकेतकों में सुधार होता है। साथ ही, पंचायती राज संस्थाओं में 33–50 प्रतिशत आरक्षण ने स्थानीय शासन में महिलाओं की भागीदारी को सुदृढ़ किया है।

SDGs के संदर्भ में, महिलाओं की भूमिका विशेष रूप से SDG–1 (गरीबी उन्मूलन), SDG–2 (भूखमुक्ति), SDG–3 (स्वास्थ्य), SDG–5 (लैंगिक समानता), SDG–6 (स्वच्छ, जल), SDG–8 (सम्मानजनक आजीविका), SDG–13 (जलवायु परिवर्तन पर कार्यवाही) और SDG–16 (समावेशी संस्थान) की प्राप्ति से सीधे जुड़ी हुई है।

महिला सशक्तिकरण से जुड़ी चुनौतियाँ

1. सामाजिक असमानताः

ग्रामीण भारत में महिला सशक्तिकरण के मार्ग में सामाजिक असमानता एक गंभीर बाधा है। पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना के कारण महिलाओं को पुरुषों की तुलना में कम महत्व दिया जाता है। आज भी बड़ी संख्या में ग्रामीण महिलाएँ निरक्षर हैं, लिंग–आधारित भेदभाव व्यापक है तथा कन्या भ्रूण हत्या, बाल विवाह और दहेज प्रथा जैसी कुरीतियाँ अनेक क्षेत्रों में विद्यमान हैं। आज भी पुत्रों को आर्थिक सहारा और वंश–विस्तार का माध्यम माना जाता है, जबकि पुत्रियों को प्रायः आर्थिक बोझ समझा जाता है। यह मानसिकता महिलाओं की शिक्षा, स्वास्थ्य और निर्णय–निर्माण में भागीदारी को सीमित करती है।

2. हाशिए पर रहने वाली महिलाएँ और सामाजिक भेदभावः

अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अल्पसंख्यक, शहरी गरीब, अकेली एवं विस्थापित महिलाएँ बहुस्तरीय भेदभाव का सामना करती हैं। दलित महिलाएँ जाति, वर्ग और लिंग के त्रि–आयामी उत्पीड़न से पीड़ित हैं, जबकि अल्पसंख्यक महिलाओं को पारिवारिक और सामाजिक

असुरक्षाओं का सामना करना पड़ता है। आदिवासी महिलाओं की सामाजिक स्थिति कुछ मामलों में बेहतर होने के बावजूद विस्थापन, विकास परियोजनाओं और आजीविका के नुकसान का उन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। इन वर्गों की महिलाओं को पोषण, स्वच्छ जल, स्वास्थ्य सेवाएँ और स्वच्छता जैसी बुनियादी सुविधाओं की विशेष आवश्यकता है।

3. शिक्षा से जुड़ी चुनौतियाँ:

ग्रामीण क्षेत्रों में महिला निरक्षरता सशक्तिकरण की एक प्रमुख बाधा है। विद्यालयों में नामांकन बढ़ने के बावजूद लड़कियों का विद्यालय में टिके रहना एक चुनौती बना हुआ है। घरेलू जिम्मेदारियाँ, छोटे भाई–बहनों की देखभाल, विद्यालयों में आधारभूत सुविधाओं का अभाव और महिला शिक्षकों की कमी इसके प्रमुख कारण हैं। क्रेच सुविधा, मध्याह्न भोजन, निःशुल्क पुस्तकें–वर्दी, पृथक शौचालय और बालिका–अनुकूल विद्यालय वातावरण लड़कियों की शिक्षा को सुदृढ़ कर सकते हैं।

4. महिलाएँ और स्वास्थ्य सेवा:

ग्रामीण महिलाओं को गर्भावस्था और मातृत्व के दौरान पर्याप्त पोषण एवं स्वास्थ्य देखभाल नहीं मिल पाती। कुपोषण और एनीमिया व्यापक समस्याएँ हैं, जिनका प्रतिकूल प्रभाव मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य पर पड़ता है। स्तनपान, प्रसव–पूर्व एवं प्रसवोत्तर देखभाल की कमी से महिलाओं और बच्चों की स्वास्थ्य स्थिति कमजोर बनी रहती है। स्वास्थ्य, पोषण और प्रजनन सेवाओं तक समान पहुँच महिला सशक्तिकरण की अनिवार्य शर्त है।

5. अवसर और संभावनाएँ:

इन चुनौतियों के बावजूद महिला सशक्तिकरण के लिए अनेक अवसर उपलब्ध हैं। जल, ऊर्जा और प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाकर न केवल उनकी स्थिति सुधारी जा सकती है, बल्कि जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन और शमन में भी सकारात्मक योगदान संभव है। शोध संस्थानों, गैर–सरकारी संगठनों और निजी क्षेत्र के सहयोग से महिला–केंद्रित विकास मॉडल प्रभावी हो सकते हैं।

6. लिंग–संवेदनशील योजना एवं बजट:

लिंग–संवेदनशील योजना और बजट यह सुनिश्चित करता है कि विकास संसाधनों का वितरण पुरुषों और महिलाओं दोनों की आवश्यकताओं के अनुरूप हो। जब महिलाएँ ग्राम, ब्लॉक और जिला स्तर पर योजना एवं बजट प्रक्रिया में भाग लेती हैं, तो जल, स्वास्थ्य, शिक्षा और कृषि जैसे क्षेत्रों में अधिक न्यायसंगत निर्णय संभव होते हैं। सामुदायिक सहभागिता और पारदर्शिता इस प्रक्रिया को सुदृढ़ करती है।

7. स्वयं सहायता समूह (SHGs):

स्वयं सहायता समूह महिलाओं के आर्थिक और सामाजिक सशक्तिकरण का प्रभावी माध्यम हैं। इनके माध्यम से महिलाओं को वित्तीय साक्षरता, सूक्ष्म उद्यमिता, बाजार तक पहुँच और सामूहिक सौदेबाजी की शक्ति प्राप्त होती है। बढ़ी हुई आय से महिलाओं को परिवार और समुदाय में सम्मान मिलता है, जिससे सशक्तिकरण का चक्र और मजबूत होता है।

8. महिला संगठन और राजनीतिक भागीदारी:

महिला संघों और पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी से स्थानीय शासन अधिक समावेशी बनता है। कार्यस्थल पर महिला–अनुकूल परिस्थितियाँ, स्वास्थ्य–पोषण में सुधार और शिक्षा का विस्तार महिलाओं की सार्वजनिक भूमिका को सुदृढ़ करता है। महिलाएँ घरेलू श्रम की वास्तविक कठिनाइयों को बेहतर समझती हैं, इसलिए नीति निर्माण और समाधान प्रक्रिया में उनकी भागीदारी अनिवार्य है।

9. सतत ग्रामीण ऊर्जा और महिलाओं की भूमिका:

ग्रामीण भारत में ऊर्जा की कमी महिलाओं के जीवन को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। स्वच्छ और नवीकरणीय ऊर्जाकृजैसे सौर ऊर्जा और जैव–ईंधन महिलाओं के लिए आजीविका और नेतृत्व के नए अवसर उत्पन्न कर सकती है। ग्राम ऊर्जा समितियों में महिलाओं की भागीदारी, सौर पैनल स्थापना एवं रखरखाव का प्रशिक्षण और जैव–ईंधन आधारित गतिविधियाँ महिला सशक्तिकरण तथा पर्यावरणीय स्थिरता दोनों को बढ़ावा देती हैं।

अवसर एवं संभावनाएँ:

महिला सशक्तिकरण के क्षेत्र में उपलब्ध अवसर और संभावनाएँ सतत ग्रामीण विकास को गति प्रदान करने की महत्वपूर्ण क्षमता रखते हैं। शिक्षा और कौशल विकास के विस्तार से महिलाओं की कार्यक्षमता, रोजगार योग्यता और नेतृत्व क्षमता में वृद्धि संभव है। डिजिटल साक्षरता, उद्यमिता प्रशिक्षण और तकनीकी नवाचार महिलाओं को पारंपरिक आजीविकाओं से आगे बढ़कर आय–विविधीकरण के नए अवसर प्रदान कर सकते हैं।

आर्थिक क्षेत्र में स्वयं सहायता समूह, सहकारी संस्थाएँ और महिला–केंद्रित आजीविका कार्यक्रम महिलाओं को वित्तीय समावेशन, सूक्ष्म उद्यमिता और बाज़ार तक पहुँच उपलब्ध कराते हैं। इससे न केवल महिलाओं की आय में वृद्धि होती है, बल्कि उनकी निर्णय–निर्माण क्षमता और सामाजिक स्थिति भी सुदृढ़ होती है।

पर्यावरणीय दृष्टि से जल, वन और ऊर्जा प्रबंधन में महिलाओं की भागीदारी जलवायु–लचीले ग्रामीण विकास को प्रोत्साहित करती है। नवीकरणीय ऊर्जा, जैव–ईंधन और प्राकृतिक संसाधन संरक्षण से जुड़ी पहलों में महिलाओं की भूमिका पर्यावरणीय स्थिरता और आजीविका सृजन दोनों को सशक्त बनाती है।

संस्थागत एवं राजनीतिक स्तर पर पंचायती राज संस्थाओं, महिला संगठनों और सामुदायिक मंचों में महिलाओं की सहभागिता से स्थानीय शासन अधिक समावेशी और उत्तरदायी बनता है। लिंग–संवेदनशील योजना और बजट, बहु–क्षेत्रीय सहयोग तथा सरकारी गैर–सरकारी भागीदारी के माध्यम से महिला सशक्तिकरण को दीर्घकालिक और टिकाऊ रूप दिया जा सकता है।

नीतिगत परिप्रेक्ष्य

भारत में महिला सशक्तिकरण को सुदृढ़ करने हेतु नीतिगत हस्तक्षेपों का दायरा हाल के वर्षों में उल्लेखनीय रूप से विस्तृत हुआ है, विशेषकर वित्तीय समावेशन, स्वच्छ ऊर्जा, स्वच्छता और लैंगिक उत्तरदायी बजटिंग के क्षेत्रों में। इन नीतियों का उद्देश्य महिलाओं की दैनिक जीवन स्थितियों में सुधार के साथ–साथ उन्हें विकास प्रक्रिया की सक्रिय सहभागी बनाना है।

वित्तीय समावेशन के क्षेत्र में प्रधानमंत्री जन–धन योजना के अंतर्गत खोले गए कुल बैंक खातों में से लगभग 56–57 प्रतिशत खाते महिलाओं के नाम पर हैं। इससे महिलाओं की औपचारिक बैंकिंग सेवाओं, प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT) और बचत की आदतों में वृद्धि हुई है। यह नीति महिलाओं की आर्थिक पहचान और निर्णय–क्षमता को संस्थागत आधार प्रदान करती है।

स्वच्छ ऊर्जा के संदर्भ में प्रधानमंत्री उज्ज्वला योजना के अंतर्गत 9 करोड़ से अधिक एलपीजी कनेक्शन महिलाओं के नाम पर प्रदान किए गए हैं। इस हस्तक्षेप से ग्रामीण महिलाओं का समय और श्रम बचा है, घरेलू वायु प्रदूषण में कमी आई है तथा स्वास्थ्य जोखिम घटे हैं जो महिला सशक्तिकरण के सामाजिक और स्वास्थ्य आयाम को मजबूत करता है।

स्वच्छता और गरिमा से जुड़ी नीतियों में स्वच्छ भारत मिशन के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में करोड़ों घरेलू शौचालयों का निर्माण हुआ है। इससे महिलाओं की सुरक्षा, स्वास्थ्य और सम्मान में सुधार हुआ है तथा खुले में शौच से जुड़ी असमानताओं में कमी आई है। यह नीति महिलाओं के जीवन–स्तर में प्रत्यक्ष सुधार का उदाहरण प्रस्तुत करती है।

लैंगिक उत्तरदायी बजटिंग के क्षेत्र में भारत ने उल्लेखनीय प्रगति की है। केंद्रीय बजट में Gender Budget Statement के अंतर्गत कुल बजटीय व्यय का लगभग 5 प्रतिशत से अधिक हिस्सा महिलाओं और बालिकाओं को प्रत्यक्ष या परोक्ष लाभ पहुँचाने वाले कार्यक्रमों के लिए आवंटित किया जाता है। यह नीतिगत प्रवृत्ति विकास संसाधनों के वितरण में लैंगिक दृष्टिकोण को संस्थागत रूप प्रदान करती है।

इसके अतिरिक्त, ग्रामीण विद्युतीकरण और नवीकरणीय ऊर्जा नीतियों जैसे सौर ऊर्जा आधारित घरेलू प्रणालियाँ ने महिलाओं की उत्पादक गतिविधियों, घरेलू सुरक्षा और सूचना तक पहुँच को बढ़ाया है। ऊर्जा–सुलभता ने महिलाओं के लिए शिक्षा, घरेलू उद्यम और सामुदायिक सहभागिता के नए अवसर खोले हैं।

समेकित रूप से, ये नवीन नीतिगत आँकड़े यह दर्शाते हैं कि महिला सशक्तिकरण अब केवल सामाजिक न्याय का विषय नहीं रह गया है, बल्कि वित्तीय, ऊर्जा, स्वच्छता और बजटीय निर्णयों का अभिन्न अंग बन चुका है। अतः सतत ग्रामीण विकास के लिए आवश्यक है कि भविष्य की नीतियाँ लैंगिक उत्तरदायी, डेटा–आधारित और महिलाओं की वास्तविक आवश्यकताओं पर केंद्रित हों, जिससे महिलाएँ विकास की लाभार्थी ही नहीं, बल्कि उसकी सक्रिय सहभागी और निर्णयकर्ता बन सकें।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन यह स्पष्ट रूप से प्रतिपादित करता है कि महिला सशक्तिकरण और सतत ग्रामीण विकास के बीच गहरा, पारस्परिक एवं पूरक संबंध विद्यमान है। ग्रामीण भारत में महिलाएँ कृषि एवं संबद्ध गतिविधियों, आजीविका संवर्धन, प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन, स्वास्थ्य–पोषण, शिक्षा तथा स्थानीय शासन की आधारशिला हैं। इसके बावजूद सामाजिक असमानता, पितृसत्तात्मक संरचना, शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं की कमी, आर्थिक निर्भरता तथा संसाधनों और निर्णय–निर्माण तक सीमित पहुँच जैसी बाधाएँ उनके पूर्ण सशक्तिकरण को अवरुद्ध करती रही हैं।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि जहाँ महिलाओं को शिक्षा, वित्तीय समावेशन, तकनीकी संसाधनों, स्वच्छ ऊर्जा, स्वच्छता तथा संस्थागत भागीदारी के अवसर उपलब्ध कराए गए हैं, वहाँ ग्रामीण विकास अधिक समावेशी, लचीला और दीर्घकालिक सिद्ध हुआ है। महिला–केंद्रित आजीविका पहलें, सामुदायिक संगठन, स्थानीय शासन में भागीदारी और लिंग–संवेदनशील नीतियाँ न केवल महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक स्थिति में सुधार लाती हैं, बल्कि पूरे ग्रामीण समाज की विकास क्षमता को भी सुदृढ़ करती हैं।

नीतिगत विश्लेषण यह संकेत देता है कि महिला सशक्तिकरण को केवल कल्याणकारी हस्तक्षेप के रूप में देखने से अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं किए जा सकते। इसे विकास की रणनीतिक अनिवार्यता के रूप में स्वीकार करना आवश्यक है। सतत ग्रामीण विकास के लक्ष्य तभी साकार हो सकते हैं जब नीतियाँ स्थानीय आवश्यकताओं पर आधारित हों, बहु–क्षेत्रीय समन्वय को बढ़ावा दें और महिलाओं को विकास की निष्क्रिय लाभार्थी के बजाय सक्रिय सहभागी, नेतृत्वकर्ता एवं निर्णयकर्ता के रूप में स्थापित होगा।

सन्दर्भ सूची

1. Government of India. (2011). *Census of India 2011: Primary census abstract*. Office of the Registrar General & Census Commissioner, India.
2. Government of India. (2020). *National Education Policy 2020*. Ministry of Human Resource Development.
3. Government of India. (2021). *National Family Health Survey (NFHS-5) 2019–21*. Ministry of Health and Family Welfare.
4. Government of India. (2022). *Gender budget statement*. Ministry of Finance.
5. Government of India. (2023). *Rural development statistics*. Ministry of Rural Development.
6. Kabeer, N. (1999). Resources, agency, achievements: Reflections on the measurement of women's empowerment. *Development and Change*, 30(3), 435–464. https://doi.org/10.1111/1467-7660.00125
7. Sen, A. (1999). *Development as freedom*. Oxford University Press.
8. Sharma, S., & Gupta, S. (2018). Women empowerment and sustainable rural development in India. *Indian Journal of Social Development*, 18(2), 245–258.

9. Singh, R., & Srivastava, R. (2020). Role of self-help groups in women empowerment: A study of rural India. *Journal of Rural Development*, 39(3), 456–472.
10. United Nations. (2015). *Transforming our world: The 2030 agenda for sustainable development*. United Nations.
11. United Nations Development Programme. (2020). *Gender equality and women's empowerment*. UNDP.
12. World Bank. (2012). *World development report 2012: Gender equality and development*. World Bank.
13. World Bank. (2020). *Women, business and the law 2020*. World Bank Publications.
14. Agarwal, B. (2010). *Gender and green governance: The political economy of women's presence within and beyond community forestry*. Oxford University Press.
15. Desai, S., & Andrist, L. (2010). Gender scripts and age at marriage in India. *Demography*, 47(3), 667–687. https://doi.org/10.1353/dem.0.0118
16. Kumar, A., & Singh, P. (2019). Climate change and women in rural India. *International Journal of Rural Studies*, 26(1), 1–10.

स्त्री देह यौनिकता और सामाजिक नैतिकता : एक समाज शास्त्रीय अध्ययन

गोपीका पी.
शोधार्थी, हिंदी विभाग
श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कालडी, केरल

सारांश

इस शोध-पत्र में स्त्री देह और उसकी यौनिकता पर समाज द्वारा स्थापित नियंत्रण, मान्यताओं और नैतिक मूल्यों का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री देह को किस प्रकार नैतिकता, मर्यादा और सम्मान के साथ जोड़कर नियंत्रित किया गया है तथा उसकी यौनिकता को सीमित और विनियमित किया गया है। स्त्री की देह को केवल जैविक इकाई न मानकर सामाजिक और सांस्कृतिक संरचना के रूप में देखा जाता है, जिस पर पुरुष-प्रधान व्यवस्था का वर्चस्व बना रहता है। स्त्री की 'पवित्रता' को उसके शरीर से जोड़कर उसे नियंत्रित करने की प्रक्रिया लंबे समय से चलती आ रही है। इस संदर्भ में स्त्री को अपनी यौनिकता के कारण कई विरोधाभासों का सामना करना पड़ता है, जहाँ उसे एक ओर आकर्षक और 'आदर्श' दिखने का दबाव होता है, वहीं दूसरी ओर उसकी स्वतंत्रता को सीमित किया जाता है। समाज में स्त्री की यौनिक स्वतंत्रता को अक्सर नकारात्मक दृष्टि से देखा जाता है, जबकि पुरुषों के लिए अलग मानदंड बनाए जाते हैं। धर्म, परंपरा और सामाजिक संस्थाओं ने मिलकर स्त्री को द्वितीयक स्थिति में स्थापित किया है, जिससे उसकी अस्मिता और स्वायत्तता प्रभावित होती है। प्राचीन ग्रंथों से लेकर आधुनिक समाज तक स्त्री के शरीर का वस्तुकरण और नियंत्रण विभिन्न रूपों में विद्यमान है। नारीवादी दृष्टिकोण के माध्यम से इस शोध में स्त्री देह की स्वायत्तता, अधिकार और स्वतंत्रता के प्रश्नों को भी उठाया गया है। गर्भपात, गर्भनिरोध और यौनिक अधिकारों जैसे मुद्दों को स्त्री की स्वतंत्र पहचान से जोड़कर देखा गया है। साथ ही, यह भी स्पष्ट किया गया है कि राज्य, धर्म और समाज के बीच स्त्री शरीर एक संघर्ष का केंद्र बना हुआ है।

मुख्य शब्द: यौनिकता,सामाजिक नैतिकता, पितृसत्ता, देह का वस्तुकरण, सामाजिक नियंत्रण, नारीवाद, सांस्कृतिक मान्यताए

स्त्री देह को समाज ने अपने नियमों और मान्यताओं के अनुसार परिभाषित किया है। स्त्री देह एक प्रकार से पितृसत्ता में अधिक शोषित की जा रही है। स्त्री की पवित्रता को उसके शरीर से जोड़ने का प्रयास किया गया है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री की देह को नैतिकता, मर्यादा और सम्मान के साथ जोड़कर देखा गया है; इससे सदियों से स्त्री देह पर नियंत्रण स्थापित किया गया है। यह एक प्रकार से व्यक्तिगत न होकर सामाजिक नियंत्रण का विषय भी बन जाता है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में स्त्री देह को पवित्र मानने की प्रक्रिया के साथ-साथ उसे अपवित्र बनाने की कोशिश भी की जाती है। स्त्री के शरीर और यौनिकता को हमेशा नियंत्रित किया गया है। "पितृसत्तात्मक समाज-व्यवस्था पर आधारित पुरुषप्रधान संस्थाओं और आर्थिक सामाजिक जगत में उनके वर्चस्व के कारण स्त्री अधीनस्थ स्थिति में रहने को बाध्य है। सत्ता की भाषा और संस्कृति के पुरुषप्रधान होने से पुरुष के यौन अनुभवों को ही प्रधान माना गया है। ऐसी सत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री का अपनी यौनिकता के प्रति वस्तुपरक दृष्टिकोण होना स्वाभाविक है। चूँकि संस्कृति उसे एक 'चीज' मानती है अतः वह खुद भी अपनी देह को वस्तु में ही आँकती है, उसे सजाती-सँवारती है। यहाँ तक कि बचपन से वृद्धावस्था तक वह दूसरों की नजर से ही स्वयं को तोलने की इतनी आदी हो जाती है कि देह ही उसके कर्तव्य की इतिश्री हो जाती है"| [3]

अपनी यौनिकता के कारण स्त्री को बड़े विरोधाभास का सामना करना पड़ता है| इसके सम्बन्ध में प्रभा खेतान का कथन है " अपनी यौनिकता के कारण स्त्री को कितना बड़ा विरोधाभास झेलना पड़ता है, यह चिंतनीय है। उसे नाजुक और कमनीय दिखना है और संघर्ष भी करना है। क्या दोनों बातें उसके लिए संभव हैं? मगर क्या यह सच नहीं कि जो देह से कमजोर होगा, वह हिंसा का शिकार ज्यादा होगा। हालाँकि आज स्त्री अपनी मांसपेशियों की ताकत आजमाना सीख रही है। चालीस की उम्र में भी स्त्री तन्वी रूप में रहना चाहती है। यदि उसकी कमर तीस इंच की है, यदि बेटी के कपड़े उसको अटते हैं तो क्या कहने? इसे बनाए रखने के लिए इतना तगड़ा अनुशासन कि एक टुकड़ा मिठाई तक नहीं खाती ! उनकी देह भरी हुई औरत की देह न लगे, बल्कि कुँआरी लड़की की देह लगे, चेहरे पर अनुभव और परिपक्वता की लकीरें न हों, बल्कि भोलापन और मासूमियत हो। औरत अपने-आपको कमसिन दिखाती

[3] खेतान प्रभा, 2022, उपनिवेश में स्त्री, मुक्ति- कामना की दस वार्ताएँ, राजकमल प्रकाशन, (पृ.141)

रहे। और उससे ऐसी माँग कौन कर रहा है? इतरलिंगी यौनिकता से अनुकूलित मानस जो स्त्री की देह और उसकी यौनिकता को आतंकित करता रहता है, जो चाहता है कि स्त्री ताउम्र ह्रस्वीकरण की प्रक्रिया में बनी रहे-कम खाए, कम स्थान घेरे, भोगवाद में पूरी तरह रत रहे। देह से भी तो हैसियत का पता चलता है"[4]। यह एक प्रकार से स्त्री के ऊपर आधिपत्य स्थापित करना है। अतीतकाल में स्त्री पर अधिपत्य अलग प्रकार से किया जाता था। कालांतर में उस आधिपत्य का ज़ोर कम होता आया है, लेकिन समाज की निगरानी आज भी बनी हुई है। यदि एक स्त्री अपनी यौनिकता का समर्थन करती है, तो एक प्रकार से उसकी स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है। समाज के नज़रिए में यदि स्त्री को यौनिक स्वतंत्रता दी जाए, तो उसे हाथ से निकली हुई औरत समझा जाता है। स्त्री को अपने शरीर पर अधिकार से वंचित किया जाता है।

किसी भी लिंग के लिए यौनिकता पर बात करना एक प्रकार से उसके चरित्र पर बुरा प्रभाव डालने वाला माना जाता है। विशेष रूप से यदि स्त्री हो, तो उसकी यौनिक स्वतंत्रता को उसे वेश्या तक बना देने के रूप में देखा जाता है। यह एक दोहरा मापदंड है कि पुरुष के लिए इस प्रकार की धारणा नहीं बनाई जाती। इस प्रकार चरित्र का हनन करना स्त्री को सीमित दायरों में बाँधने का प्रयास है।"स्त्री की यौनिकता को नियंत्रित करने और उसे पुरुष की वंश-शुद्धि के अनुरूप संतानोत्पत्ति के एक साधन के रूप में सीमित करने के प्रयास ही पातिव्रत्य और एक-पत्नीव्रत जैसी व्यवस्थाएँ थीं। वैदिक हिंदू धर्म ने स्त्रीत्व को संस्थागत रूप प्रदान किया। संगठित धर्म के रूप में चातुर्वर्ण्य व्यवस्था को स्वरूप देने वाली मनुस्मृति, ब्राह्मणवादी परंपरा के रूप में हिंदू धर्म को परिवर्तित करने वाली, पुरुष-प्रधान और स्त्री-विरोधी थी। ज्ञान पर एकाधिकार केवल सवर्ण पुरुषों तक सीमित रहा, जिससे स्त्री की अस्मिता और कर्तृत्व को केवल पुनरुत्पादन तथा गृह-कार्य और पति-सेवा तक ही सीमित कर दिया गया। अर्थशास्त्र और इतिहास-पुराणों ने भी पुरुष-प्रधानता को सुदृढ़ किया। स्त्री को वैदिक अनुष्ठान करने के अधिकार से वंचित, विद्वानों की सभाओं के लिए अयोग्य तथा पुरुष को प्रलोभित करने वाली के रूप में चित्रित किया गया"[5]।

समाज में ऐसे मूल्य और संस्थाएँ विद्यमान हैं, जो स्त्री के अस्तित्व को स्वीकार करने के बजाय उसे द्वितीय श्रेणी के नागरिक के रूप में स्थापित करती हैं। इससे स्त्री की आत्मचेतना और सामाजिक

[4] खेतान प्रभा, 2022, उपनिवेश में स्त्री, मुक्ति- कामना की दस वार्ताएँ, राजकमल प्रकाशन, (पृ.143)
[5] जोस जिस, स्त्रीवादा सौदार्यशास्त्रम प्रयोगवुम प्रतिनिधिनावुम, ,विज्ञानमुद्रणम् प्रेस, (पृ 51)

स्थिति दोनों ही कमजोर पड़ती हैं। इस प्रक्रिया में धर्म, दर्शन और साहित्य की भूमिका भी एकसमान दिखाई देती है।

भारतीय प्राचीन ग्रंथों—जैसे वेद और उपनिषद—में स्त्री के कर्म-अधिकार का उल्लेख मिलता है, लेकिन उसके लिए केवल सीमित क्षेत्रों को ही निर्धारित किया गया है। इन ग्रंथों में पातिव्रत्य और पति-सेवा को स्त्री के प्रमुख गुणों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वैदिक काल में कन्यत्व को केवल शारीरिक न मानकर सामाजिक और राजनीतिक मूल्य के रूप में भी देखा गया।

वर्ण-व्यवस्था के अंतर्गत स्त्रियों को जो स्थान मिला, उसके प्रति असहमति या विरोध प्रकट करने की संभावनाएँ उनके लिए लगभग नहीं थीं। उनसे मौन आज्ञाकारिता और अधीनता की ही अपेक्षा की जाती थी। समाज के अनुसार 'अच्छी स्त्री' वही होती है, जो अपनी यौनिकता को दबाकर रखती है और समाज द्वारा निर्धारित नैतिक सीमाओं का पालन करती है। इसके विरुद्ध स्त्रियों को पौराणिक काल से संघर्ष करना पड़ा है। पौराणिक काल में स्त्री सौंदर्य का वर्णन किया गया है, जो एक प्रकार से उसके शरीर पर नियंत्रण स्थापित करने की प्रक्रिया है। सौंदर्य की वस्तुएँ अन्य लोगों के आनंद के लिए मानी जाती हैं; इसी प्रकार स्त्री को उसके देह के सौंदर्य तक सीमित कर दिया गया। शालीन, सुंदर स्त्री को अक्सर 'अच्छी स्त्री' के रूप में हमारे मन में स्थापित किया गया है, जबकि काले रंग या सौंदर्य रहित स्त्री पात्र को लोगों के मन में 'बुरी स्त्री' के रूप में देखा जाता है। यह दृष्टिकोण सदियों से हमारे भीतर रूढ़ रूप में बना हुआ है।"फूको के अनुसार अनुशासित देह समर्पित देह है, आधारहीन है। और यह समर्पण केवल पुरुष के प्रति ही नहीं, बल्कि विशिष्ट संस्थागत नियमों द्वारा स्त्री की देह को यौन संतुष्टि के लिए 'उत्पादन' एवं 'काम' लायक बनाया जाता है। यह एक प्रकार का सहेजकर रखा गया पूरा लेख है, जिसे निर्मित करने के लिए शारीरिक बल का प्रयोग नहीं किया जाता बल्कि स्त्री के ऊपर पुरुष सत्ता की एक तरह की निगरानी है, जिसे हम मनोप्टीकाम की अवधारणा से समझ सकते हैं"[6]।

आधुनिक समय में देखा जाए तो नारी के देह का वस्तुकरण किया जा रहा है। इस संस्कृति के खिलाफ नारीवादियों का हमेशा विरोध देखा जा सकता है।"नारीवादियों ने महिलाओं के शरीर को एक ऐसे केंद्र बिंदु के रूप में स्थापित किया है, जिसके इर्द-गिर्द कई आंदोलनों का संचालन हुआ है। महिला शरीर की स्वायत्तता के अधिकार को गर्भपात, गर्भनिरोध और प्रसव विधियों के संदर्भ में प्रस्तुत किया

[6] खेतान प्रभा, 2022, उपनिवेश में स्त्री, मुक्ति- कामना की दस वार्ताएँ, राजकमल प्रकाशन, (पृ.142)

गया है। महिला शरीर के बारे में ज्ञान का अधिकार, उसके स्वास्थ्य का अधिकार, तथा उसके स्वतंत्र आनंद के अधिकार पर भी नारीवादियों ने विभिन्न संदर्भों में ज़ोर दिया है। इन 'अधिकारों' को प्राप्त करने या स्थापित करने के प्रयासों में अक्सर चर्च और राज्य—दोनों के प्रत्यक्ष विरोध का सामना करना पड़ा है। प्रारंभिक महिला मुक्ति आंदोलन का नारा 'व्यक्तिगत ही राजनीतिक है' उस समय एक अतिरिक्त और अप्रिय अर्थ ग्रहण कर गया, जब वे कार्य, जिन्हें महिलाएँ व्यक्तिगत चयन मानती थीं, राज्य द्वारा निषिद्ध या दंडनीय बना दिए गए। यह स्थिति महिला के शरीर और राज्य के बीच संबंध के प्रश्न को उठाती है। महिला शरीर पर इस सामाजिक और राजनीतिक ध्यान के बावजूद, मैं यह तर्क दूँगा/दूँगी कि नारीवादियों ने शरीर के संबंध में एक सुसंगत सिद्धांत बहुत कम प्रस्तुत किया है। विशेष रूप से, महिलाओं के शरीर और राज्य के बीच संबंध—अर्थात् स्त्री शरीर और राजनीतिक संरचना के बीच संबंध—के वैचारिक पक्ष पर बहुत कम आलोचनात्मक कार्य हुआ है। ऐसे सिद्धांत के अभाव में, शरीर के बारे में जो सांस्कृतिक रूप से प्रचलित धारणाएँ हैं, उन्हीं के आधार पर, अनजाने में, कई नारीवादी कार्य करते हैं"[7]|

भारत की अनेक संस्कृतियों में आज भी यौनिकता को एक वर्जित विषय माना जाता है। इसमें स्त्री देह का अधिक प्रयोग किया गया है। स्त्री की देह का उपभोग की वस्तु बनना एवं उसका शोषण भी इसी धार्मिक मापदंड का परिणाम है। स्त्रियों में विवाह संस्था के प्रति विरोध भी इसी के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ है। धार्मिक क्षेत्र में स्त्री की देह को मान्यता नहीं मिली है। इसके संबंध में रोहिणी अग्रवाल का कथन है: "भारतीय ही नहीं, समूचा वैश्विक इतिहास पौराणिक ग्रंथों-मिथकों-संस्कृतियों के जरिए बताता रहा है कि पुरुष तंत्र का अर्थ है स्त्री की स्वायत्तता और अस्मिता पर पुरुष की नृशंसता, शारीरिक सबलता और षड्यंत्रकारी मानसिकता की विजय का महानुष्ठान। परिवार, विवाह, न्याय, धर्म जैसी संस्थाएं इसके बाद की सामाजिक संरचनाएं हैं जो तत्परता से पुरुष के निजी हितों की रक्षा और संवर्धन के कार्य में जुट कर उसी अनुपात में स्त्री को हीन और कुलटा साबित करती रहती हैं। चूंकि किसी भी व्यक्ति के मनोबल को तोड़ने के लिए उसकी देह को ही हथियार बनाया जाता है, अतः पुरुष तंत्र ने स्त्री के मातृत्व को उसकी दुर्बलता, योनि को कलंक और यौन उन्मुक्तता को नैतिक वर्जना बनाकर इस रूप में प्रस्तुत किया कि तमाम प्रतिरोध भूल आदर्श नारी के रूप में वह स्वयमेव इन आरोपित मानदंडों की कसौटी बन

[7] Gatens moira,Imaginary Bodiès, Ethics, Power and Corporeality, Simultaneously published in the USA and Canada by Routledge, (page no49)

बैठी"[8]।जब स्त्रीत्व और स्त्री के शरीर को पुरुष की जरूरतों और इच्छाओं के अनुसार परिभाषित किया जाता है, तब धीरे-धीरे स्त्री की समाज में स्थिति कमजोर होने लगती है। वात्स्यायन के कामसूत्र में भी स्त्रियों को पुरुष की यौन आवश्यकताओं से जोड़कर देखा गया और उन्हें अलग-अलग वर्गों में बाँटा गया। इससे स्त्रियों की निर्भरता और बढ़ी। यहाँ तक कि कुलीन और पतिव्रता स्त्रियों को भी अपने शरीर से जुड़े निर्णय लेने की स्वतंत्रता नहीं दी गई। उनके आनंद और इच्छाओं को महत्व नहीं दिया गया। इसी तरह, अन्य ग्रंथों में भी स्त्री के शरीर को पुरुष के उपयोग की वस्तु के रूप में देखा गया और उसकी यौनिकता को पुरुष के नजरिए से समझा गया।

भारत में यौनिकता जैसे विषयों पर खुली चर्चा राष्ट्रीय आंदोलन के समय अधिक शुरू हुई। महात्मा गांधी ने यौन संयम को बहुत महत्वपूर्ण माना। उनका विश्वास था कि इससे व्यक्ति अपनी ऊर्जा को समाज और देश के कामों में बेहतर तरीके से लगा सकता है। स्वामी विवेकानंद के विचार भी कुछ हद तक ऐसे ही थे। गांधीजी ने स्त्रियों के लिए एक आदर्श रूप सोचा, जिसमें वे अपनी इच्छाओं को दबाकर परिवार और राष्ट्र के लिए समर्पित रहें। इस सोच में स्त्री की अपनी जरूरतों और उसकी यौनिकता को ज्यादा महत्व नहीं दिया गया | लेकिन धर्म हमेशा स्त्री देह को वस्तु ही मना है | "केवल हिंदू धर्म ही नहीं, बल्कि सभी धर्म स्त्रीत्व को सीमित और बंद ढाँचों में बाँधते हैं। वे धार्मिक नियमों और परंपराओं के माध्यम से स्त्री की यौनिक अधीनता को स्थापित और मजबूत करने का प्रयास करते रहे हैं और आज भी करते हैं"[9]।

निष्कर्ष :

स्त्री देह और यौनिकता पर स्थापित सामाजिक नियंत्रण को समाप्त करने के लिए आवश्यक है कि समाज में समानता, न्याय और संवेदनशीलता के मूल्यों को विकसित किया जाए। स्त्री को अपने शरीर, इच्छाओं और पहचान के संबंध में स्वतंत्र निर्णय लेने का अधिकार दिया जाना चाहिए। यही एक संतुलित, समतामूलक और प्रगतिशील समाज की दिशा में महत्वपूर्ण कदम होगा। समाज में पुरुष-प्रधान व्यवस्था ने नियमों और परंपराओं के माध्यम से स्त्री की यौनिकता को नियंत्रित किया और उसे खुलकर व्यक्त होने से रोका। इस कारण स्त्रियों को अपनी पहचान और विचार स्वतंत्र रूप से व्यक्त करने के अवसर कम मिलते हैं। इस स्थिति को बदलने के लिए जरूरी है कि स्त्री और पुरुष के संबंधों में समानता और न्याय स्थापित किया जाय।

[8] अग्रवाल रोहिणी, स्त्री लेखन का स्वप्न और संकल्प, राजकलम प्रकाशन, (पृ. 307)
[9] जोस जिस, स्त्रीवादा सौदार्यशास्त्रम प्रयोगवुम प्रतिनिधिनावुम, ,विज्ञानमुद्रणम् प्रेस, (पृ53

भारत के आदिवासी जीवन: पहचान, संस्कृति और संघर्ष का बहुआयामी अध्ययन

श्रीलक्ष्मी के.एस.
शोधार्थी, हिंदी विभाग
श्री शंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय,
कालडी एर्नाकुलम, केरल

प्रस्तावना

भारत की सांस्कृतिक विविधताओं में आदिवासी समाज एक महत्वपूर्ण जीवनधारा है, जो प्रकृति, संस्कृति, परंपरा और सामूहिक जीवन का अद्वितीय संयोजन प्रस्तुत करता है। भारत की प्राचीन आर्थिक और सांस्कृतिक धरोहर आज भी आदिवासी समाज में सुरक्षित है। आदिवासी समाज न केवल भारत की सांस्कृतिक विविधता को समृद्ध करता है, बल्कि पर्यावरण संरक्षण और संतुलित जीवन का संदेश भी देता है। अंततः कहा जा सकता है कि आदिवासी समाज अन्य समाजों से भिन्न है, और यह भिन्नता उनकी भाषा, संस्कृति, परंपराओं और मान्यताओं के कारण है। प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन उनकी विशेषता है। किंतु बढ़ते बाहरी हस्तक्षेप, औद्योगिकीकरण और वैश्वीकरण के प्रभाव ने उनके जीवन के संतुलन को प्रभावित किया है।

आज आदिवासी समाज अपनी प्राकृतिक जीवनशैली और सांस्कृतिक पहचान को बचाने के लिए संघर्षरत है। उनका संघर्ष केवल जंगल और प्रकृति की रक्षा तक सीमित नहीं है, बल्कि अपनी भाषा, साहित्य, संस्कृति और परंपराओं के संरक्षण के लिए भी है। इस प्रकार, आदिवासी समाज का समग्र अध्ययन केवल उनके जीवन को समझने तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि उनके संरक्षण और समावेशी विकास के उपायों पर भी गंभीर विचार किया जाना चाहिए, जिससे सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक विरासत और पर्यावरण संरक्षण की दिशा में सकारात्मक योगदान संभव हो सके।

बीज शब्द: आदवासी संस्कृति, संघर्ष, पहचान, भाषा, अस्मिता, वैश्वीकरण, प्राकृतिक प्रदूषण|

भारत में 'आदिवासी' शब्द एक विशिष्ट समाज के लिए प्रयोग किया जाता है, जिनका इतिहास उतना ही पुराना है जितना आर्यों के आगमन से पूर्व भारत का इतिहास है। 'आदिवासी' शब्द 'आदि' और 'वासी' से मिलकर बना है, जिसका अर्थ 'मूल निवासी' या 'आदिनिवासी'। यह शब्द उन लोगों के लिए प्रयुक्त किया जाता है जो भारत के मूल निवासी हैं। 'आदिवासी' शब्द अंग्रेज़ी के 'Aboriginal' के समतुल्य माना जाता है। प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में आदिवासियों के लिए 'वनवासी' और 'आत्विका' शब्दों का प्रयोग किया गया है। महात्मा गाँधी ने इनके लिए 'गिरिजन' शब्द का प्रयोग किया था। भारतीय संविधान में आदिवासियों को 'अनुसूचित जनजाति' की संज्ञा दी गई है, तथा वर्ष 1950 में उन्हें इस रूप में मान्यता प्रदान की गई। भारत सरकार के पत्र सूचना कार्यालय के अनुसार, "भारत की कुल जनसंख्या का लगभग 8.6% (लगभग 10.45 करोड़) जनजातीय नागरिक हैं।"[10]

ये लोग भारत के पहाड़ी एवं घने जंगलों में निवास करते हैं। प्रत्येक आदिवासी समूह की अपनी भाषा, संस्कृति एवं रीति-रिवाज़ होते हैं। प्रत्येक आदिवासी समाज अपने आप में स्वतंत्र, उन्मुक्त एवं प्रकृति के निकट जीवन जीना पसंद करता है। सामान्यतः आदिवासियों के लिए 'आदिवासी' शब्द ही प्रचलित है, किंतु मध्य और पूर्व आदिवासियों की तुलना में पूर्वोत्तर क्षेत्रों के कुछ जनजातीय समुदाय स्वयं को 'ट्राइबल्स' कहलाना अधिक पसंद करते हैं। भारत के आदिवासियों के बीच अनेक भिन्नताएँ पाई जाती हैं, इसलिए सभी आदिवासियों को एक ही सिद्धांत के अंतर्गत रखना कठिन है। "पूर्वोत्तर के नागा-मोजो, खासी या अरुणाचल की न्यीशी, गालोंड और आदी जनजातियों के लोग अपने लिए आदिवासी नाम को पसन्द नहीं करते, इस नाम से नफरत करते हैं जबकि झारखंड, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश या राजस्थान के आदिवासी इसी नाम को अपने लिए गौरवपूर्ण मानते हैं। पूर्वोत्तर के समुदाय खुद को ट्राइबल कहते हैं। उनकी नजर में आदिवासी का मतलब काले रंगवाले, दीन-हीन, गरीब और गुलाम लोग है| वे खुद को ट्राइबल कहते हुए गौरव का अनुभव करते हैं क्योंकि उनकी नजर में ट्राइबल का मतलब है स्वतंत्र, आजाद कौम, जो अपने इलाके का शासन खुद करते हैं|"[11]

भारत के मूल निवासी होते हुए भी मुख्यधारा का समाज उन्हें हीन दृष्टि से देखता है। 'जंगली' और 'वनवासी' जैसे शब्दों का प्रयोग करके उन्हें असभ्य सिद्ध करने का प्रयास किया जाता है।मुख्यधारा समाज से दूर रहने के कारण वे आधुनिक विकास की दृष्टि से भले ही पिछड़े प्रतीत होते हों, किंतु भारतीय

[10]press Information Bureau. (2024, July 25). Empowering tribal communities. Government of India. https://pib.gov.in.

[11] तलवार वी. भा, 2025, उत्पीड़कों के विमर्श, राजकमल प्रकाशन, (पृ. 30 -31)

संस्कृति और परंपराओं का मूल बीज आज भी इन्हीं आदिवासी समाजों में सुरक्षित है। इसलिए भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रखने वाले समाज के रूप में इन्हें उचित प्रतिष्ठा मिलनी चाहिए।

भारत के इतिहास में इन मूल निवासियों को प्रायः पराजित वर्ग के रूप में प्रस्तुत किया गया है, किंतु इतिहास के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि आदिवासी समाज अपने आप में स्वतंत्र, निडर और सशक्त व्यक्तित्व वाला रहा है, जो भारत की मूल संस्कृति का वाहक है।सांस्कृतिक ह्रास के इस समय में भी वे अपनी संस्कृति को बनाए रखने का प्रयास कर रहे हैं। "आर्य-अनार्य संघर्ष में कुछ अनार्यो अर्थात् भारत के मूलनिवासियों ने आर्यों से कभी पराजय स्वीकार नहीं की। उन्होंने आर्यों को अधिक शक्तिशाली पाकर आर्यों की गुलामी से बचने के लिए और अपनी संस्कृति को सुरक्षित रखने के लिए वनों और पर्वतों की शरण ले ली। ऐसी अनार्य जातियों को आज अनुसूचित जनजाति अर्थात् एस.टी. कहा जाता है| इस आदिवाली समाज ने ही इस देश की मूल संस्कृति को आज तक संरक्षित करके रखा है|"[12]

आदिवासी समाज पूर्णतः जंगलों पर निर्भर है। जंगल के अभाव में आदिवासी केवल नाम मात्र रह जाएँगे, क्योंकि उनकी संपूर्ण संस्कृति जंगल पर आधारित है। भारतीय संस्कृति का मूल बीज आदिवासियों में निहित माना जाता है। प्रत्येक आदिवासी समाज की अपनी भाषा, संस्कृति और मान्यताएँ होती हैं। यही विशिष्टता उन्हें अन्य समाजों से अलग बनाती है, किंतु वर्तमान समय में यह पहचान धीरे-धीरे मिटती हुई दिखाई दे रही है।वैश्वीकरण, बाजारीकरण, औद्योगिकीकरण और विकास योजनाएँ आदिवासी पहचान को लगातार प्रभावित कर रही हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों और विकास परियोजनाओं के कारण उनकी पैतृक संपत्ति नष्ट हो रही है। आदिवासी जीवन पूर्ण रूप से जंगलों पर निर्भर करता है। जंगल के संसाधनों का संग्रह, खेती, पशुपालन और वनोपजों की बिक्री के माध्यम से वे अपनी आजीविका चलाते हैं।जंगलों में बाहरी लोगों का हस्तक्षेप उनकी नैसर्गिक जीवनशैली पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। इसका सीधा असर उनकी अर्थव्यवस्था पर पड़ता है। "प्रकृति के साथ आदिवासियों के घनिष्ठ सम्बन्ध, उसके प्रति उनकी जीवन-दृष्टि और धर्मदृष्टि का मूल कारण सारा समय उनका प्रकृति के बीच रहना और अपने जीवन-यापन के लिए उस पर, खासकर जंगलों पर, निर्भर करना है। किसी दार्शनिक कारण से नहीं बल्कि आर्थिक कारणों से वे जंगलों की रक्षा करते हैं क्योंकि जंगल उनकी अर्थव्यवस्था का अभिन्न अंग है।"[13]

वैश्वीकरण का आदिवासी जीवन पर सीधा प्रभाव पड़ रहा है। विकास के नाम पर उदारीकरण, निजीकरण, बाजारवाद और उपभोक्तावाद ने आदिवासी जीवन के हर क्षेत्र में हस्तक्षेप करना प्रारंभ कर दिया है| विकास की शुरुवात आदिवासी भूमि से शुरू होता है | इसके परिणामस्वरूप आदिवासियों को अपनी

[12] कठेरिया कमल किशोर, 2015, भारतीय संस्कृति का पुनर्लेखन अस्मिताओं का संघर्ष, वाणी प्रकाशन, (पृ.100)
[13] पाण्डेय म, 2022, हाशिए का समाज एवं आदिवासी साहित्य, चिंतन प्रकाशन, (पृ. 19)

भूमि से वंचित होना पड़ा, उनकी आजीविका नष्ट हुई और वे बेघर होकर जीविका के लिए शहरों की ओर पलायन करने को विवश हुए। इस प्रकार आदिवासी समाज हशिए पर धकेल दिया गया| "उस मानवता जो प्राचीन काल से जल, जंगल, ज़मीन की रक्षा करते हुए अपनी जीवन-शैली में आदिम सरोकारों व संस्कारों के साथ जीवन जी रही है, वह नष्ट कर किया जा रहा है। विकास के नाम पर जिस औद्योगीकरण, सेज, बाँध परियोजनाओ, राजमार्गों के निर्माण की बात की जाती है, उसकी शुरुआत आदिवासियों की जमीन के अधिग्रहण के साथ होती है जो उनकी आजीविका का स्रोत है। यहीं से प्रारंभ हो जाता है समाज के एक हिस्से का भरपूर विकास और देश की बुनियाद आदिवासी समाज को हाशिए पर धकेलने का प्रयास।"[14]

भारत की विकास योजनाएँ प्रायः मुख्यधारा तक सीमित रही हैं। आदिवासियों के लिए विकास का अर्थ विस्थापन और पलायन। आदिवासी जीवन पूर्ण रूप से प्रकृति पर निर्भर है और प्रकृति तथा आदिवासी एक-दूसरे के पूरक हैं। जन्म से मृत्यु तक उनके जीवन की संपूर्ण प्रक्रिया—त्योहार, पर्व, भोजन और आजीविका—प्रकृति पर आधारित होती है। आदिवासी अर्थव्यवस्था का मूल जंगल है, किंतु वर्तमान में हो रहा प्राकृतिक दोहन उनके जीवन को गंभीर रूप से प्रभावित कर रहा है। जंगलों की कटाई, कारखानों से निकलने वाली विषैली धुआँ और जल, प्लास्टिक का कचरा तथा खनन से उत्पन्न मलबा आदिवासी जीवन के लिए हानिकारक सिद्ध हो रहे हैं।खनन के पश्चात गड्ढों को बिना भरे छोड़ देने से उनमें पानी भर जाता है, जिससे बीमारियाँ फैलती हैं। कारखानों से निकलने वाला विषैला जल जब जलस्रोतों में मिल जाने पर पानी प्रदूषित हो जाता है| इस प्रकार आदिवासियों का स्वच्छ एवं स्वच्छंद प्राकृतिक जीवन धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा है। लक्ष्मण प्रसाद सिन्हा ने झारखंड का उदाहरण देकर कहते है कि "कभी बाहर राज्य की ग्रीष्मकालीन राजधानी कहा जानेवाला वर्तमान झारखण्ड क्षेत्र समतल मैदानों की तरह तपता नजर आ रहा है, तापमान बढ़ रहा है। औद्योगिक कचरों से यहाँ की सभी नदियाँ इतना प्रदूषित हो गया है कि इनका पानी पीने लायक नहीं रह गया है। चन्द्रपुरा जैसे कोयला क्षेत्रों में हवा का प्रदूषण इस हद तक बढ़ा हुआ है कि उन क्षेत्रों में काम करनेवाले 50 प्रतिशत से अधिक लोग श्वास रोगों से पीडित हैं। कहीं कहीं (जादू गोडा के यूरेनियम खान एवं अन्यत्र) विकास और खतरनाक खनिजों की अनियन्त्रित खुदाई का असर विकलांग शुरु के रूप में दिखायी देने लगा है। यह असंतुलन जितना ही बढ़ रहा है, उतना ही यहाँ के आदमी का पलायन भी और प्रकृति पोषक मानवीय संवेदना के घटने के अनुपात में ही उसके विनाश की प्रक्रिया भी घनिभूत होती जा रही है।"[15]

14 बेरली, के. पी. (2018), आदिवासी साहित्य: विविध संदर्भ, शंकराचार्य यूनिवर्सिटी प्रेस, (पृ. 33)

15 सिन्हा, लक्ष्मण प्रसाद, (2010), भारतीय आदिवासी, जयभारती प्रकाशन, (पृ.30)

हमारा राष्ट्र प्रगति की ओर अग्रसर है, किंतु इस प्रगति का आदिवासी जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है, इस ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता। जंगलों के विनाश से प्राप्त होने वाली प्रगति आदिवासी समाज के लिए स्वीकार्य नहीं है, क्योंकि

जंगल के बिना उनका अस्तित्व संकट में पड़ जाता है। वर्तमान विकास योजनाएँ आदिवासी समाज के लिए संकट का कारण बन रही हैं।विकास और आदिवासियों के बीच संतुलन का अभाव है। उदाहरणस्वरूप, पिछले कई वर्षों से झारखंड जैसे राज्यों में विभिन्न विकास परियोजनाएँ लागू की गई हैं, किंतु इनका लाभ आदिवासी जनता को पर्याप्त रूप से प्राप्त नहीं हुआ है। इन परियोजनाओं के सकारात्मक प्रभावों की अपेक्षा नकारात्मक प्रभाव अधिक देखने को मिलते हैं। इन विकास योजनाओं के कारण आदिवासियों को अपनी पैतृक भूमि से बेदखल होना पड़ा है। यद्यपि सरकार भूमि अधिग्रहण के समय उचित मुआवज़े और पुनर्वास का आश्वासन देती है, किंतु यह प्रायः कागज़ों तक ही सीमित रह जाता है। झारखंड के अनेक आदिवासी समाजों को विस्थापित कर खदानें, बाँध और सड़कें बनाई गई हैं, जो इसके स्पष्ट उदाहरण हैं।"विकास के नाम पर बने डैम और दूसरी परियोजनाओं में झारखंडियों की जमीन ली गयी, लेकिन आज, वर्षों गुजर जाने के बाद भी उन्हें उनकी जमीन का उचित दाम नहीं दिया गया, उन्हें रोजगार नहीं दिया था, उन्हें फिर से दूसरी जगह बसाने की बात तो दूर रही। इसलिए जो भी झारखंडियों को यह विश्वास दिलाता है कि सरकार उन्हें उनकी जमीन का उचित मुआवजा देगी और उन्हें फिर से बसाएगी वह झारखंडी जनता को बरगलाता है, धोखा देता है, वह सरकार का दलाल है।"[16]

वर्तमान समय में पूँजीपतियों के साथ-साथ सत्ता भी शोषक वर्ग का रूप लेती प्रतीत होती है। सरकार द्वारा लागू की गई नीतियाँ प्रायः व्यवहार में प्रभावी नहीं हो पातीं और कागज़ों तक ही सीमित रह जाती हैं। नेहरू द्वारा एल्विन के विचारों के आधार पर बनाई गई नीतियाँ भी सामंतों और पूँजीपतियों के दबाव में असफल सिद्ध हुईं। सरकारी नीतियाँ आज पूँजीपतियों के लिए आदिवासी क्षेत्रों में प्रवेश का माध्यम बनती जा रही हैं। सरकार और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के दबाव के कारण उन्हें अपनी भूमि छोड़कर विस्थापित होना पड़ा है। अपनी भूमि की रक्षा के लिए आदिवासी समाज लंबे समय से संघर्ष करता आ रहा है। 1855-56 के संथाल विद्रोह तथा 1900 ई में बिरसा मुंडा के नेतृत्व में हुए आंदोलनों को उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है। इन संघर्षों के परिणामस्वरूप बनाए गए नियम और कानून भी आज अधिकांशतः कागज़ों तक सीमित रह गए हैं। आदिवासी भूमि के अधिग्रहण के पीछे पूँजीपतियों के साथ-साथ सत्ता की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। "उद्योग खोलने केलिए, खदान खोलने के लिए, कामर्शियल फार्मिंग करने के लिए, सारी दुनिया में जमीनें खरीदी जा रही हैं और ये राष्ट्रीय सरकारें ही हैं, जो कमजोर आदिवासियों और गरीब किसानों की जमीनें इन कम्पनियों को दिलाती हैं। पूँजीपति इन जमीनों को सीधे

[16] तलवार वी. भा, 2019, झारखंड के आदिवासियों के बीच एक एक्टिविस्ट का नोट्स, वाणी प्रकाशन, (पृ. 129)

तौर पर नहीं खरीदते। वे राज्य पर दबाव डालते हैं क्योंकि वह आदिवासियों और किसानों से जमीन अधिग्रहण कर सस्ते दर पर इन कम्पनियों को दे सकता है। पूँजीवादी कम्पनियाँ राज्य की सरकारों पर दवाब डालती हैं कि अपनी भूमि अधिग्रहण की नीति को और उदार बनाओ। ऐसे कानून बदलो या खतम करो जो जमीन अधिग्रहण करने में रुकावट बनते हैं।"[17]

आदिवासी समाज अपने आप में विशिष्ट है| इस विशेषता का कारण उनकी भाषा संस्कार और मान्यताएँ हैं| लेकिन आजकल की बदलती परिस्थितियाँ, अपने पैतृक संपत्ति से विस्थापन, पलायन आदि कई समस्याओं से इनकी संस्कृति संकट से हैं| इनकी भाषा लुप्त हो रही है, संस्कृति घटती जा रही है| भाषओं की दृष्टि से देखा जाए तो आदिवासी भाषाएँ उनकी विशिष्ट संस्कृति का वाहक है| प्रत्येक समाजों के लिए अपनी खुद की भाषा होती है| आदिवासी की विलुप्ति का मतलब इन भाषओं का लुप्त होना है| "दो सौ भाषाएँ पिछले पचहत्तर वर्षों में खतम हो चुकी हैं। उनका अस्तित्त्व मिट चुका है। बाकी बची भाषाओं में 2500 भाषाएँ संकटग्रस्त हैं। उनका अस्तित्व मिटने की ओर जा रहा है। इन 2500 भाषाओं में से 196 भाषाएँ भारत की हैं और इन 196 भाषाओं में 62 भाषाएँ 1950 के बाद से अभी तक यानी हिन्दुस्तान में जब से लोकतंत्र आया है, मिटने की कगार पर पहुँच चुकी हैं, और 9 भाषाएँ खतम हो चुकी हैं। जो 9 भाषाएँ खतम हुई हैं, सब-की-सब भाषाएँ आदिवासी भाषाएँ हैं"[18] भाषा और संस्कृति का खत्म होने का अर्थ है आदिवासी समाज का खत्म होना इस दृष्टि से देखा जाए तो भारत की आदिवासी समाज आज विलुप्त के कगार पर पहुँच गई है।

निष्कर्ष

भारत के इतिहास और परंपरा में आदिवासियों का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रकृति के निकट रहकर वृक्षों, नदियों, पहाड़ों और पशु-पक्षियों को अपने सखा के रूप में मानने वाले आदिवासी समाज सरल और संतुलित जीवन व्यतीत करते रहे हैं। उनकी भाषा, संस्कृति, परंपराएँ और मान्यताएँ उन्हें अन्य समाजों से विशिष्ट बनाती हैं।

आदिवासी समाज सदियों से अपने अधिकारों से वंचित रहा है। वर्तमान में उनकी भाषा, संस्कृति और पहचान संकट में है। उनकी भाषा लुप्त हो रही है और संस्कृति क्षीण होती जा रही है|भाषा और संस्कृति का समाप्त होना आदिवासी समाज के अस्तित्व के समाप्त होने के समान है। इस दृष्टि से देखा जाए तो भारत का आदिवासी समाज विलुप्ति के कगार पर पहुँचता दिखाई दे रहा है| यह उनकी केवल अलग पहचान ही नहीं है, बल्कि भारत की सांस्कृतिक विविधता को समृद्ध करने वाला एक महत्वपूर्ण तत्व भी है।

[17] तलवार वी. भा, 2025, उत्पीड़कों के विमर्श, राजकमल प्रकाशन, (पृ. 69)

[18] तलवार वी. भा, 2025, उत्पीड़कों के विमर्श, राजकमल प्रकाशन, (पृ. 66)

वैश्वीकरण, उदारीकरण और विकास परियोजनाओं ने आज आदिवासी अस्मिता को संकट में डाल दिया है। अपने जल, जंगल और जमीन की रक्षा के लिए उनका संघर्ष पहले की अपेक्षा अधिक तीव्र हो गया है। जंगलों में कारखानों की स्थापना, सड़कों और बाँधों का निर्माण तथा खनिज संपदाओं के दोहन ने उनके जीवन के संतुलन को बिगाड़ दिया है| इन परिस्थितियों के कारण वे अपनी भूमि से विस्थापित होकर पलायन करने के लिए विवश हो रहे हैं। अपनी विशिष्ट भाषा, संस्कृति और परंपराओं की रक्षा के लिए वे निरंतर संघर्षरत हैं।

आज आदिवासी अस्मिता लुप्त होती हुई प्रतीत हो रही है। विकास नीतियाँ, जो उनके हित में बनाई गई थीं, लेकिन वह आज उनके जीवन में बाधा[i] उत्पन्न कर रही हैं। अतः यह आवश्यक है कि सरकार समावेशी नीतियाँ बनाए, जिससे आदिवासी समाज की भाषा, संस्कृति और जीवनशैली को कोई क्षति न पहुँचे और उन्हें सम्मानपूर्वक जीवन जीने का अवसर प्राप्त हो। आदिवासी समाज के ज्ञान और जीवनशैली को मुख्यधारा में उचित स्थान दिया जाना चाहिए, ताकि एक संतुलित और न्यायपूर्ण समाज की स्थापना हो सके, जहाँ उन्हें समान सम्मान और अधिकार प्राप्त हों।

ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

नारी शक्ति : बदलाव की ओर कदम

रानी कुमारी
शोधार्थी, इतिहास विभाग
बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर

सारांश :

भारत अपने इतिहास और संस्कृति की वजह से पूरे विश्व में एक विशेष स्थान रखता है। हमारा यह देश सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक, सैन्य शक्ति आदि में विश्व के बेहतरीन देशों में शामिल हैं। वैसे तो आजादी के बाद देश की इन स्थितियों में सुधार की पहल हुई लेकिन हालिया समय में इस क्षेत्रों में पहल तेज हुई है। इसके लिए समाज के मानव संसाधन को लगातार बेहतर, मजबूत व सशक्त किया जा रहा है और समाज की आधी आबादी स्त्रियों की है, इस बाबत उनके लिए विशेष प्रयास किए जा रहे हैं। डॉ० अंबेडकर ने कहा था कि यदि किसी समाज की प्रगति के बारे में सही-सही जानना है तो उस समाज की स्त्रियों की स्थिति के बारे में जानो। कोई समाज कितना मजबूत हो सकता है, इसका अंदाजा इस बात से इसलिए लगाया जा सकता है क्योंकि स्त्रियां किसी भी समाज की आधी आबादी हैं। बिना इन्हें साथ लिए कोई भी समाज अपनी संपूर्णता में बेहतर नहीं कर सकता है। समाज की आदिम संरचना से सत्ता की लालसा ने शोषण को जन्म दिया है। स्त्रियों को दोयम दर्जे के रूप में देखने की कवायद इसी कड़ी का एक महत्वपूर्ण पहलू है।

मुख्य शब्द : इतिहास, स्त्री, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक,मानव संसाधन।

परिचर्चा

आधुनिक भारत में स्त्रियों का प्रश्न उन्नीसवीं सदी के मध्यवर्गीय सामाजिक सुधार आंदोलनों के एक हिस्से के रूप में उदित हुआ। उन्हें प्रायः मध्यवर्गीय सुधार आंदोलन की संज्ञा इसलिए दी जाती थी कि इन सुधारकों में से बहुत से लोग नए उभरते हुए पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त भारतीय मध्य वर्ग से थे। वे अक्सर आधुनिक पश्चिम के उदारवादी लोकतांत्रिक आदर्शों और अपने स्वयं के अतीत की लोकतांत्रिक परंपराओं से प्रेरणा प्राप्त करते हुए इन सुधारों के लिये प्रेरित हुए थे। इन सुधारक नेताओं में कुछ प्रमुख थे

जैसे – बंगाल में राजा राममोहन राय ने सती प्रथा विरोधी अभियान का नेतृत्व किया; ज्योतिबा फुले ने जातीय और लैंगिक अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाई, बॉम्बे प्रेसिडेंसी में वहॉं के अग्रणी सुधारक रानाडे ने विधवाओं के पुनर्विवाह के लिये आंदोलन चलाया, इसी प्रकार सर सैयद अहमद खान ने इस्लाम में सामाजिक सुधारों के आंदोलन का नेतृत्व किया, दयानंद सरस्वती ने महिलाओं को शिक्षा देने के विचार का समर्थन किया। इनके अतिरिक्त कई महिलाओं ने भी स्वतंत्रता के पूर्व पुरुष प्रधान समाज द्वारा अपनाए गए दोहरे मापदंडों का सशक्त विरोध किया। इनमें से कुछ महिलाओं यथा ताराबाई शिंदे ने अपनी कृति स्त्री-पुरुष तुलना, बेगम रोकेया सखावत हुसैन ने अपनी रचना सुल्तानाज ड्रीम के माध्यम से स्त्री विषयक मुद्दों को दुनिया के समक्ष रखा।

भारत में विभिन्न संस्कृतियों का संगम है। स्त्री हर संस्कृति के केंद्र में होकर भी केन्द्र से दूर है। सिमोन द बोउवार का कथन है, "स्त्री पैदा नहीं होती, बनाई जाती है।" समाज अपनी आवश्यकता के अनुसार स्त्री को ढालता आया है। उसके सोचने से लेकर उसके जीवन जीने के ढंग को पुरूष अभी तक नियंत्रित करता आया है और आज भी करने की कोशिश करता रहता है। पितृसत्तात्मक समाज ने वह सब अपने अनुसार तय किया है। जब-जब सशक्तिकरण का सवाल उठता है तब-तब समाज ही कठघरे में खड़ा होता है। समाज में लगातार बदलावों के लिए संघर्ष चलता रहता है।

भारत में महिलाओं की स्थिति का इतिहास : हिंदू धर्म में श्रद्धा के रूप में जानी जाने वाली सभी चीजों को स्त्री कहकर संबोधित किया गया है। स्त्री को शक्ति का रूप भी माना गया है। महिलाओं का भारतीय संस्कृति में अद्वितीय स्थान है और उन्हें शक्ति के प्रतीकात्मक रूप में चित्रित किया गया है। गौतम बुद्ध ने समाज में महिलाओं को सर्वोपरि स्थान दिया है। उसी प्रकार, महात्मा गांधी ने भी स्वतंत्रता आंदोलन में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका को रेखांकित किया। वैदिक काल में महिलाओं को जीवन के सभी क्षेत्रों में पुरूषों के साथ बराबरी का दर्जा प्राप्त था, लेकिन मध्यकालीन युग में महिलाओं की स्थिति में गिरावट आने लगी। जिसमें महिलाओं को कई बड़े बदलावों का सामना करना पड़ा। भारत में सती प्रथा,बाल विवाह, विधवा पुनर्विवाह पर रोक, पर्दा प्रथा, राजस्थान के राजपूतों में महिलाओं की जौहर प्रथा, हिंदू क्षत्रिय शासकों की बहु विवाह प्रथा, मंदिरों में महिलाओं के यौन शोषण की देवदासी प्रथा, इत्यादि। उन्नीसवीं सदी के आरंभ से ही महिलाओं की समस्याओं ने समाज सुधारकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। महिलाएं प्राचीन काल से ही अपनी अद्भुत शक्ति, प्रतिभा, चातुर्य, स्नेहशीलता, धैर्य, समझ और सौंदर्य के कारण पुरुष से आगे रही है। लेकिन मध्यकालीन महिलाओं के पतन की गाथा के बाद महिलाओं को विभिन्न प्रकार के संघर्षों से जूझना पड़ा। भारत में महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए पुरूषों द्वारा शुरूआत की गई।

भारत में नारीवाद के इतिहास को हम तीन महत्वपूर्ण तरंगों/लहरों में विभाजित कर सकते हैं।

- पहली लहर 1850 से 1915 तक
- दूसरी लहर 1915 से 1947 तक
- तीसरी लहर 1947 से आज तक

भारतीय सामाजिक संरचना, उपनिवेशवाद और उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष के कारण भारत का नारीवादी आंदोलन पश्चिम से भिन्न है। भारत का नारीवादी आंदोलन 19वीं शताब्दी के सामाजिक सुधार आंदोलन और राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़ा हुआ है। भारत में पहला नारीवादी आंदोलन समाज में विद्यमान अंधविश्वासों रूढ़ परंपराओं जैसे – सती प्रथा, बाल विवाह, देवदासी प्रथा आदि को समाप्त करने के उद्देश्य पर केंद्रित था। राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, स्वामी विवेकानंद, ज्योतिबा फुले, फातिमा शेख, ताराबाई शिंदे, स्वामी दयानंद सरस्वती, पंडिता रमाबाई, सर सैय्यद अहमद खान आदि विचारकों और समाज सुधारकों ने महिलाओं से जुड़े हुए प्रश्नों को प्रमुखता दी तथा विभिन्न संगठनों और कानूनी सुधार के माध्यम से स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह और स्त्री अधिकार की दिशा में समर्पित प्रयास किया।

दूसरा चरण महिलाओं की सक्रिय भागीदारी से जुड़ा हुआ है। इस दौर में महिलाएं स्वतंत्रता आंदोलन से लेकर श्रमिक आंदोलन में भी शामिल होने लगी। इस चरण में भारतीय महिला संघ (1917) जैसे विभिन्न संगठनों की स्थापना हुई और शारदा एक्ट (1929) जैसे कानूनी सुधार हुए। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान महात्मा गांधी और डॉ० अंबेडकर के महिला उत्थान की दिशा में किए गए प्रयास विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। जहां महात्मा गांधी ने सती प्रथा, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा, छुआछूत व विधवाओं के शोषण का मुखर विरोध किया वहीं डॉ० अंबेडकर ने कानूनी सुधार (प्रसूति अवकाश, मताधिकार) व संवैधानिक प्रावधानों (समानता का अधिकार और लैंगिक विभेद का अंत) के माध्यम से महिलाओं के सशक्तिकरण की दिशा में व्यावहारिक प्रयास किया। इस दौर में प्रमुख नारीवादियों में कामिनी राय, सरला देवी चौधरानी, दुर्गाबाई देशमुख की भूमिका उल्लेखनीय रही है।

भारत में नारीवादी आंदोलन का तीसरा चरण आजादी के बाद सार्वजनिक और निजी जीवन में समानता से जुड़ा हुआ है।यह प्रमुख रूप से सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक समानता, शिक्षा तक पहुंच, संपत्ति में अधिकार तथा लैंगिक विभेद के अंत से जुड़ा हुआ है।

यदि हम वर्तमान में भारतीय नारीवादी विचारकों और आंदोलनकारियों की बात करें तो मेघना पंत, वृंदा करात, मधु किश्वर, मेधा पाटकर, गीता सहगल, वंदना शिवा, निवेदिता मेनन, नीरा देसाई, रूथ वनिता का नाम प्रमुख रूप से सामने आता है।

स्वतंत्रता के पश्चात् प्रमुख महिला आंदोलन :-

सेवा' (SEWA: Self Employed Women's Association) : महिलाओं द्वारा कार्यरत एक ट्रेड यूनियन के रूप में 1972 में उभरी। इसका इतिहास टेक्स्टाइल लेबर एसोसिएशन जो 1920 में सबसे बड़ी यूनियन अनुसूया साराभाई द्वारा शुरू की गई थी, उससे संबंधित थी। इस आंदोलन के द्वारा परिवार में दोकाम करने वाली घरेलू महिलाओं की मदद की जा सकी। सेवा घर में काम करने वाली महिलाओं को विभिन्न क्षेत्रों में प्रशिक्षण जैसे – सिलाई, कढ़ाई, कटाई, प्रेस, रचना, टंकण आशुलिपि इत्यादि देती है। यह एक पंजीकृत ट्रेड यूनियन है। यह एक महिला स्वरोजगार श्रमिकों का एक संगठन है। सेवा के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार है – पूर्ण रोजगार – मजदूरों को काम की सुरक्षा, आय सुरक्षा, खाध सुरक्षा और सामाजिक सुरक्षा, महिला आत्मनिर्भरता। गांधीवादी सोच और सामाजिक बदलाव, सेवा के गरीब स्वरोजगार सदस्यों के लिए मार्गदर्शक बल है। सेवा महिलाओं के नेतृत्व, उनके आत्मविश्वास, नीति निर्माण और प्रतिनिधित्व और उनके अस्तित्व की एक पहचान है।

1974 में गुजरात में नव निर्माण आंदोलन की शुरुआत हुई। यह एक सामाजिक और राजनीतिक आंदोलन था। यह आंदोलन असंतुष्ट छात्रों और मध्यम वर्गीय लोगों द्वारा बढ़ते दाम, कालाबाजारी और भ्रष्टाचार के खिलाफ चलाया गया आंदोलन था। अहमदाबाद में युवक और युवतियों ने नव निर्माण युवक समीति का भी गठन किया था। इसमें हजारों मध्यम वर्गीय महिलाओं ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1975 को अंतरराष्ट्रीय महिला वर्ष घोषित किया।

1972-1973 में विकसित चिपको आंदोलन एक पर्यावरणीय आंदोलन था जिसका उद्देश्य वृक्षों के संरक्षण से था। चिपको आंदोलन अक्सर ठेकेदारों की कुल्हाड़ियों से उत्तराखंड की वन पारिस्थितिकी के बचाने के लिए महिला आंदोलन के रूप में उभरकर सामने आया। अहिंसा की गांधीवादी विचारधारा से प्रेरित यह आंदोलन पेड़ों को बचाने के लिए उनसे चिपक जाने की बात कहता था। इस आंदोलन के अग्रदूतों में सी.पी. भट्ट, सुंदरलाल बहुगुणा और गौरा देवी के नाम उल्लेखनीय हैं। इस आंदोलन में महिलाओं ने सक्रिय भूमिका निभाई क्योंकि वह इससे सबसे ज्यादा प्रभावित थीं। ग्रामीण महिलाओं के लिए अपने पर्यावरण को बचाना, अपनी आजीविका को बचाने जैसा था। प्राथमिक भोजन, ईंधन, पानी, मरुस्थलीकरण इत्यादि महिलाओं के विशेष हित में शामिल थे।

इसी प्रकार नर्मदा बचाओ आंदोलन भी 1985 में महिलाओं द्वारा चलाया गया आंदोलन था। यह आंदोलन मेधा पाटेकर ने भारत में गुजरात की नर्मदा नदी के किनारे सरदार सरोवर बांध के विरुद्ध जनजातीय लोगों, आदिवासियों, किसानों, पर्यावरणवेत्ताओं और मानव अधिकार के सक्रिय कार्यकर्ताओं की सहायता से चलाया था। नर्मदा नदी के पानी को मध्य प्रदेश, गुजरात और महाराष्ट्र में उपयोग में लाने के लिए राज्य सरकार द्वारा बांध बनाने की योजना को मंजूरी दे दी गई थी। अक्टूबर

1969 में भारत सरकार द्वारा नर्मदा जल विवाद न्यायाधिकरण की स्थापना की गई ताकि जल विवाद का निर्णय किया जा सके। दिसंबर 1979 को सरदार सरोवर बांध की ऊंचाई बढ़ाने के साथ-साथ 30 बड़े, 135 मध्यम और 3000 छोटे बांधों के निर्माण की अनुमति मिल गई थी। यह आंदोलन आदिवासियों के विस्थापन, किसानों की उपजाऊ भूमि के छीने जाने, दलित श्रमिकों और महिलाओं-बच्चों के अधिकारों के संरक्षण में चलाया गया था। इसमें बड़ी संख्या में आदिवासी महिलाओं, दलित महिलाओं ने अपने भूमि के अधिकार के लिए संघर्ष किया था।

महिला एवं बाल विकास मंत्रालय :

महिला एवं बाल विकास की स्थापना 1985 में महिलाओं एवं बच्चों के समग्र विकास के लिए अपेक्षित प्रोत्साहन प्रदान करने हेतु मानव संसाधन विकास मंत्रालय के एक भाग के रूप में की गई थी। इस विभाग को 30 जनवरी 2006 से मंत्रालय के रूप में शुरू किया गया। इस मंत्रालय का प्रमुख उद्देश्य महिलाओं और बच्चों का समग्र विकास करना है। नोडल मंत्रालय होने के नाते इसका मुख्य कार्य योजनाएं, नीतियां, कार्यक्रम और अधिनियम बनाना तथा विधानों में संशोधन करना है। महिला एवं बाल विकास मंत्रालय सरकारी तथा गैर-सरकारी दोनों संगठनों का मार्गदर्शन करता है। इनके कार्यक्रम मुख्यतः कल्याण, सहायता सेवाएं, रोजगार, आय के सृजन के साधन, जागरूकता अभियान, जेंडर संवेदनशीलता इन सभी मुद्दों पर कार्यरत हैं। इस मंत्रालय में 6 स्वायत्त संगठन सम्मिलित हैं –

1. राष्ट्रीय जन सहयोग एवं बाल विकास संस्थान,
2. राष्ट्रीय महिला आयोग,
3. राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग,
4. केंद्रीय दत्तक संसाधन एंजेसी,
5. केंद्रीय समाज कल्याण बोर्ड और
6. राष्ट्रीय महिला कोष।

महिला सशक्तिकरण के राष्ट्रीय मिशन के तहत महिलाओं के लिए राज्य संसाधन केंद्रों का निर्माण 30 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में किया गया है। इनका मुख्य उद्देश्य महिला सशक्तिकरण के लिए नीति और कार्यों की योजनाएं बनाना, धनराशि का प्रबंध करना, संरचनात्मक बाधाओं को दूर करना, ढांचागत सुविधाओं का सृजन करना, शौचालय जैसी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति सुनिश्चित करना इत्यादि है। इसकी अन्य वर्तमान योजनाओं में सबला और अहिंसा मैसेंजर बहुत उपयोगी योजनाएं हैं।

राष्ट्रीय महिला आयोग (National Commission for Women) :-

राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन 1992 में भारत सरकार महिला आयोग अधिनियम,1990 (1990 की एक्ट संख्या 20) के अंतर्गत एक सांविधानिक निकाय के रूप में की गई थी। आयोग का मुख्य उद्देश्य महिलाओं के लिए संवैधानिक और कानूनी सुरक्षा उपायों की सिफारिश करना, उनकी शिकायतों के निवारण हेतु सुविधा प्रदान करना, महिलाओं के नीतिगत मामलों पर सरकार को सलाह देना और मुख्य रूप से महिलाओं के खिलाफ हिंसा की समस्या को रोकना इत्यादि हैं। इन सभी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए राष्ट्रीय महिला आयोग ने अपनी विभिन्न नीतियों के द्वारा महिलाओं के कानूनी अधिकारों के बारे में जागरूकता फैलाने के लिए विभिन्न कार्यक्रम शुरू किए हैं। कानूनी सेवाओं के माध्यम से महिलाओं की शिकायतों के निवारण में उनकी मदद, करना, देश के विभिन्न भागों में पारिवारिक महिला लोक अदालतों का आयोजन कर महिलाओं को तुरंत न्याय उपलब्ध कराना संवैधानिक कानूनों में समयानुसार फेर-बदल करना, महिला सशक्तिकरण के लिए प्रचार गतिविधियों का आयोजन करना, संविधान और अन्य कानूनों के तहत महिलाओं के लिए उपबंधित रक्षा उपायों से संबंधित सभी मामलों की जांच करना, विभिन्न घटनाओं के अंतर्गत महिलाओं के अस्तित्व की रक्षा करना और घटना अनुसार कार्यवाही स्वरूप नोटिस जारी करना, महिलाओं से संबंधित मामलों का केस अध्ययन करना, भेदभाव और शोषण के विरुद्ध आवाज उठाना, धरने देना और उत्पन्न स्थिति की जांच करना, सभी क्षेत्रों में महिलाओं का उचित प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के तरीके सुझाना, शैक्षिक अनुसंधान कार्य करना, महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक विकास की योजना प्रक्रिया पर सलाह करना, संघ और किसी राज्य में महिलाओं के विकास की प्रगति का मूल्यांकन करना, महिला कैदियों की सुरक्षा, सुधारात्मक कार्यवाही, रिमांड होम, वकील या मुकदमे में शामिल धन या निधि का प्रबंध करना।

निष्कर्षत: भारत के इतिहास में महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। महिलाओं को समय-समय पर अपने घर से बाहर निकल कर समाज में अपने स्थान को बनाने में कई वर्षों तक, कई प्रकार के संघर्षों का सामना करना पड़ा। भारत में महिला आंदोलन विभिन्न परिस्थितियों में, विभिन्न मुद्दों, पड़ावों और चुनौतियों से गुजरा। कभी समस्या सती प्रथा मुद्दों की थी, तो कभी बाल विवाह की, कभी बाल कन्या शिक्षा की समस्या थी तो कभी विधवा पुनर्विवाह। महिलाओं ने कभी स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया तो कभी महिला एसोसिएशनों का भी निर्माण किया। सभी परिस्थितियों में भारतीय महिलाओं ने अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाई। चाहे वे क्षेत्र शिक्षा का हो या लैंगिक समानता का,चाहे स्वतंत्रता संग्राम हो या गांधीवादी राष्ट्रीय आंदोलन। भारतीय महिलाओं ने रैलियों द्वारा, हड़तालों में भाग लेकर, प्रदर्शन करके, सामूहिक एवं व्यक्तिगत स्तर पर हरसंभव कोशिशों से, कठिन-से-कठिन परिस्थितियों का सामना किया है।

महिला आंदोलनों के साथ-साथ सरकार भी महिलाओं के संदर्भ में प्रगतिशीलता के पथ पर आगे ही बढ़ी है, किसी रूढ़िवादिता के मार्ग पर चलकर पीछे नहीं लौटी है। हां, पितृसत्तात्मक प्रभुता को बनाए रखने वाली इकाइयों, यथा परिवार और समाज के स्तर पर यदि सरकारी प्रयासों से कुछ सकारात्मक परिवर्तन हो पाए तो महिलाओं के लिए जेंडर समानता और विकास दोनों के द्वार खुल जाएंगे।

संदर्भ-ग्रंथ: .

1. शर्मा, वीरेंद्र प्रकाश. "भारतीय समाज में नारी", पंचशील प्रकाशन, जयपुर.2017
2. शर्मा प्रज्ञा "महिला विकास और सशक्तिकरण". आविष्कार पब्लिकेशन, जयपुर.2009
3. चौरसिया, भानु प्रताप "भारत में महिलाओं की स्थिति : नीतियों और कार्यक्रम". चुग प्रकाशन.2007
4. कुमार,राधा, "स्त्री संघर्ष का इतिहास"1800-1990, काशी प्रकाशन,नई दिल्ली,2004
5. साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनीलोकनीता, "नारीवादी राजनीति : संघर्ष एवं मुद्दे", हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय,2001
6. दीपाबिष्ट, "नारी सशक्तिकरण के सोपान", अंकित प्रकाशन,नई दिल्ली,2009
7. डॉ० गोपाजोशी, " भारत में स्त्री और असमानता" एक विमर्श, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली,2006

प्रगतिशील लेखक संघ और युगीन चेतना से सरोकार

ऋषिकेश कुमार
शोधार्थी, हिंदी विभाग
सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा, उत्तराखंड

शोध सार :
प्रगतिशील लेखक संघ (1936) भारतीय साहित्यिक इतिहास में एक निर्णायक मोड़ का प्रतिनिधित्व करता है, जिसका उद्भव औपनिवेशिक शोषण, सामाजिक विषमता और वैश्विक स्तर पर उभरती समाजवादी विचारधाराओं की पृष्ठभूमि में हुआ। इसने साहित्य को केवल सौंदर्यबोध का माध्यम न मानकर उसे सामाजिक परिवर्तन के औज़ार के रूप में स्थापित किया। उस समय देश भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के तीव्र चरण से गुजर रहा था, जिसमें आर्थिक शोषण, जातिगत भेदभाव और सांप्रदायिक तनाव जैसी समस्याएँ व्यापक थीं। निस्संदेह, वर्ग-संघर्ष और सामाजिक समानता के विचारों में मार्क्सवादी प्रभाव उपस्थित था, परंतु भारतीय संदर्भ में इसे सीधे आयातित रूप में नहीं अपनाया गया। यहाँ की बहुस्तरीय सामाजिक संरचना—विशेषकर जाति व्यवस्था—ने इसे विशिष्ट रूप दिया। अतः प्रगतिशील लेखक संघ न तो शुद्ध रूप से पश्चिमी विचारधारा की उपज था, न ही केवल वैचारिक आयात; बल्कि यह भारतीय समाज की अंतर्विरोधी परिस्थितियों से उपजा एक सृजनात्मक आंदोलन था, जिसने मार्क्सवादी दृष्टि को भारतीय यथार्थ के अनुरूप ढालकर एक नई साहित्यिक दिशा दी

बीज शब्द: समाजवाद, मार्क्सवाद, स्वतंत्रता, मध्यवर्ग, संस्थागत साहित्य, प्रतिबद्ध, सामाजिक अंतर्विरोध, सामंती मानसिकता, सर्वहारा, साम्प्रदायिक, सरलीकरण ।

प्रस्तावना :
प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना 10 अप्रैल 1936 को लखनऊ में हुई थी। इसकी स्थापना की प्रेरणा वर्ष 1934 में गोर्की के नेतृत्व में स्थापित सोवियत लेखक संघ और 1934 में हेनरी बारबुज के नेतृत्व में आयोजित विश्व लेखक अधिवेशन से मिली। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बात करें तो 1935 में समाजवादी विचारधारा के कुछ भारतीय बुद्धिजीवियों ने लंदन में भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ बनाने का निर्णय लिया, इसको कार्यान्वित करने का दायित्व सज्जाद जहीर और मुल्कराज आनंद को सोपा

गया था। मुल्कराज आनंद अध्यक्ष चुने गए और सज्जाद जहीर सेक्रेटरी। इस बैठक में घोषणा पत्र तैयार किया गया और घोषणा पत्र की प्रतियां हिंदुस्तान के सभी प्रमुख लेखकों और संपादकों के पास भेजी गईं। मुंशी प्रेमचंद इन गतिविधियों को बहुत नजदीक से देख रहे थे और पूरी हमदर्दी दे रहे थे साथ ही साथ हंस के माध्यम से इस लेखक संघ के उद्देश्यों को प्रचारित भी कर रहे थे। उन्होंने जनवरी 1936 के हंस में लंदन में बने प्रगतिशील लेखक संघ की घोषणा पत्र का सारांश प्रकाशित किया। किन्तु इतने भर से प्रगतिशील लेखक संघ की शुरुआत नहीं होती है।यह एक पूर्ण रूपेण आयातित विचार पद्धति नहीं है इसके सृजन में तत्कालीन भारतीय पृष्ठभूमि का भी महत्वपूर्ण अवदान है। इसलिए राम विलास शर्मा कहते हैं कि : "जो लोग साहित्य में युग परिवर्तन करना चाहते हैं, जो लकीर के फकीर नहीं हैं, जो रूढ़िया तोड़कर क्रांतिकारी साहित्य रचना चाहते हैं, उनके लिए साहित्य की परंपरा का ज्ञान सबसे ज्यादा आवश्यक है!"[19] अतः प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना तभी सार्थक हो सकती थी जब वह भारतीय संस्कार से उत्पन्न हो।

विदेशी दासता और सामंती जुए के नीचे छटपटाती भारत की उत्पीड़ित जनता सन् 30 के बाद संघर्ष के जिस दौर से गुजर रही थी, उसमें प्रगतिशील बुद्धिजीवियों का संगठित होना स्वाभाविक था। लेखकों को संगठित करने का प्रयास 'हिंदी साहित्य सम्मेलन' की ओर से भी हो रहा था। उद्देश्य विशेष को लेकर लेखकों का संगठन कोई नई बात नहीं थी, आधुनिक हिंदी साहित्य में देश की परिस्थितियां जब जब संक्रमण के दौर से गुजरी हैं इस तरह के संगठन की बात हुई है; स्वतंत्रता के मूल्यों से बद्ध होकर सन् 57 के क्रांति के बाद भारतेन्दु मंडल की स्थापना हो या बीसवीं शताब्दी के आरंभ में द्विवेदी मंडल की स्थापन हो । इसी तरह 1930 के बाद देश की सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों में कई तरह के बदलाव महसूस किए जा रहे थे जिसका एक स्वाभाविक प्रस्फुटन वर्ष 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ के रुप में हुआ। साहित्यक परिवर्तन की बात करें तो यह भी प्रत्यक्ष / अप्रत्यक्ष रूप से आगामी प्रगतिशील साहित्य के आने की सूचना दे रहा था। हिंदी के व्यक्तिवादी और मध्यवर्गीय साहित्यकार; किसान, मजदूर और स्त्रियों के प्रति गहरा लगाव महसूस कर रहे थे। इसको देखते हुए ही दिनकर ने कहा था कि "पुराने और नए स्कूल के प्रतिनिधियों के बीच का संघर्ष 1928 में मुखर रुप ले चुका था।"[20] उग्र के चॉकलेट के यथार्थवाद को घासलेटी साहित्य कह एक आंदोलन चलाया जाना इसी विभाजन का उदाहरण है। वर्ष 1929 में साहित्य सम्मेलन के पदाधिकारियों के चुनाव में नई पीढ़ी के प्रतिनिधियों की विजय होती है। गणेश शंकर विद्यार्थी अध्यक्ष और रामवृक्ष बेनीपुरी प्रचार मंत्री चुने जाते हैं। इस नवीन सक्रिय युवा भागीदारी का ही परिणाम था कि ब्रिटिश हुकूमत ने सन् 1932 में

[19] शर्मा, रामविलास, परंपरा का मूल्यांकन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ 9
[20] शर्मा, रामविलास, परंपरा का मूल्यांकन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ 9

जागरण और हंस से जमानत वसूल करती है, क्यूंकि इनमे सामाजवाद, जनजागरण, किसानों की मुक्ति स्वाधीनता की बातें की जा रही थीं। राजद्रोह कानून के अंदर 1930-1934 के बीच 348 समाचारपत्रों के प्रकाशन बंद कर दिए गए।[21] इस बात को जागरण में प्रेमचंद लिखते हैं "लेकिन यहां इतना कह देना हम अपना कर्तव्य समझते हैं कि ऐसे वातावरण में जबकि हर एक संपादक के सर पर तलवार लटक रही हो राष्ट्र का सच्चा राजनीतिक विकास नहीं हो सकता।"[22] इसके बाद स्वयं प्रेमचंद एक लेखक संघ की जरुरत महसूस करने लगे। 1934 में प्रेमचन्द ने रामचंद्र टंडन के साथ मिल कर एक लेखक संघ बनाने की योजना बनाई जिसके लिए राम नरेश त्रिपाठी, किशोरीदास दास वाजपेई और प्रेमचंद संयोजक बनाए गए , परन्तु आपसी मनमुटाव से यह संगठन नहीं बन पाया।

इस बीच प्रगतिशील चेतना की साहित्यिक रचना भी तेजी से हो रही थी। यहां स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि प्रगतिशीलता से अभिप्राय रुढ़ियों के विरूद्ध आवाज और पद दलित वर्गों की आवाज़ों को साहित्यक स्वर देने से है।इस संदर्भ में निराला की वह तोड़ती पत्थर, सरोज स्मृति, सम्राट एडवर्ड के प्रति, शक्तिपूजा और प्रसाद का ध्रुवस्वामिनी नाटक, कामायनी और महादेवी के गद्य महत्वपूर्ण हैं। रामचंद्र शुक्ल भले ही मार्क्सवादी साहित्य की व्यंग्यात्मक अवहेलना अपने इतिहास ग्रंथ में करते हैं परन्तु संवेदना के स्तर पर उनका लोकमंगल मार्क्सवादी साहित्य के सर्वहारा सिद्धांत के अनुकूल ही है ।

देश के राजनीतिक वातावरण को देखा जाए तो, वर्ष 1934 में 'हिन्दुस्तानी कम्युनिस्ट पार्टी' को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया। सारी पार्टी को भूमिगत होना पड़ा। इसके अधिकांश कार्यकर्ताओं ने कांग्रेस के भीतर ही 1934 में कांग्रेस समाजवादी पार्टी की स्थापना की और लखनऊ से संघर्ष नामक पत्र निकालने का निर्णय लिया। हालांकि इसका प्रकाशन 1936 से ही शुरु हुआ। दूसरी ओर 1936 के कांग्रेस अधिवेशन का सभापतित्व महात्मा गांधी के हाथ में जाना था किन्तु जवाहरलाल नेहरु पहली बार कांग्रेस के अध्यक्ष बने। जिनका रुझान समाजवादी विचारधारा के प्रति स्पष्ट रुप से था। अतः देश के राजनीतिक और साहित्यिक नेतृत्व का प्रगतिशील रूपांतरण अत्यंत जैविक रूप से हो रहा था; यह कोई यांत्रिक बदलाव नहीं था। जिसको लेकर पट्टाभि सीतारमैया लिखते हैं कि : "हर जगह नौजवानों में समाजवादी विचारधारा हावी हो रही थी। छात्र फेडरेशन और युवकों की लहर जोर पकड़ रही थी।"[23] सत्य अहिंसा की कार्यनीति पर से लोगों का विश्वास उठता जा रहा था जिसका उदाहरण कामायनी और

[21] अवस्थी, रेखा, प्रगतिवाद और समानांतर साहित्य, राजमकल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 22

[22] वही, पृष्ठ 24

[23] वही, पृष्ठ 09

राम की शक्तिपूजा दोनों में हिंसा और अहिंसा के द्वंद्व के रुप में सामयिक स्थितियों का साहित्यिक रुपांतरण के रुप में मिल जाता है।

देश में बलवती होती सांप्रदायिक स्थितियों ने भी प्रगतिशील मंच की आवश्यकता को और तेज किया। एक तरफ हिंदी और उर्दू के विभाजन के कारण देश में भाषा का सांप्रदायिककरण जोरों से हो रहा था, महात्मा गांधी, राजेन्द्र प्रसाद और प्रेमचंद जहां हिन्दुस्तानी के पक्षधर थे वहीं मदन मोहन मालवीय विशुद्ध हिंदी के। इसके साथ ही साथ गोलमेज सम्मेलन के बाद अलग अलग प्रतिनिधित्व के कारण धार्मिक और जातीय विभाजन से देश में हलचल थी। अतः इन स्थितियों में दर्शन और वेदांत के सहारे समस्याओं का हल नहीं ढूंढ़ा जा सकता था, इस बात का पहले-पहले अनुभव दर्शनिक छायावादी कवियों ने ही किया। प्रेमचंद के साहित्यिक और संस्थागत प्रयोग से इस बात को और बल मिला। प्रेमचंद ने हिन्दुस्तानी एकेडमी द्वारा किए जा रहे हिंदी - उर्दू एकता के प्रयासों का अनुमोदन कर रहे थे, जिसके परिणाम स्वरूप अप्रैल 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई।

इसकी स्थापना भी एक सरलीकरण के रुप में हमें बता दिया जाता है जो है नहीं। संघ के बनने की कहानी अत्यंत जटिल है। लंदन के एक रेस्तरां से शुरू हुई कहानी लखनऊ में आकर पूरी होती है। मुल्कराजआंनद और सज्जाद ज़हीर ने भारत में प्रेमचद से संपर्क किया और प्रेमचंद ने उनको अपना समर्थन दिया। प्रेमचंद के साथ फिराक गोरखपुरी, दया नारायण निगम, जोश महिलाबादी और अहमद अली ने संघ के ड्राफ्ट मेनिफेस्टो पर हस्ताक्षर किया, इस प्रकार प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई। शिवदान सिंह चौहान के अनुसार तो इसके ड्राफ्ट मेनिफेस्टो पर निराला और पंत ने भी हस्ताक्षर किया था।[24]

प्रगतिशील लेखक संघ मार्क्सवाद का साहित्यिक संस्करण है। अपने स्थापना के साथ इसने कुछ मूल्य और सिद्धांत निर्धारित किए जिसके आधार पर सोद्देश्य साहित्य की रचना हो सके। इस आलोक में हमे दो बातों को ध्यान रखना चाहिए कि संघ को आधिकारिक उद्देश्य क्या थे ? और प्रेमचंद का अध्यक्षीय भाषण क्या था ? सर्व प्रथम प्रेमचंद के वक्तव्य की चर्चा करते हैं - प्रेमचंद ने कहा कि साहित्य जीवन की आलोचना है। यानी साहित्य का उद्देश्य प्रश्न की संस्कृति खड़ी करना है जिससे मानवीयता को और सुदृढ़ किया जा सके। इसी बात कि दूसरी कड़ी है ' प्रगतिशील नाम ही गलत है, साहित्यकार या कलाकार स्वभावत: प्रगतिशील होता है।' प्रेमचंद का यह कथन निश्चित रूप से साहित्यकार की स्वतंत्रता की रक्षा करता है और उसे किसी संस्था की कठपुतली बनने से रोकता है। तीसरी बात उन्होंने कहा कि ' हमे सुंदरता की कसौटी बदलनी होगी। अभी वह कसोटी अमीरी और विलासिता के ढंग की थी !' चौथी बात साहित्य राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई नहीं, बल्कि

[24] सीतारमैया, पट्टाभि, दि हिस्ट्री ऑफ द इंडियन नेशनल कांग्रेस, खंड 2 , पद्मा प्रकाशन, मुंबई, 1947, पृष्ठ 423

राजनीति के आगे मशाल दिखाते हुए चलने वाली सच्चाई है। प्रेमचंद के वक्तव्य से स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने साहित्य को जागरण के अर्थ में लिया और संस्था का उद्देश्य भी किसी खास विचारधारा के साथ प्रतिबद्धता में ना मान कर लोक के साथ कदमताल करके चलने में स्वीकार किया है।[25]

अब हम प्रगतिशील लेखक संघ के उद्देश्य की चर्चा करते है जिसे 1936 में प्रकाशित किया गया था, वे हैं - 1. भारत के तमाम प्रगतिशील लेखकों की संस्थाएं संगठित करना और साहित्य छापकर अपने उद्देश्यों का प्रचार करना। 2. प्रगतिशील लेखकों और अनुवादकों को प्रोत्साहित करना और प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियों के विरूद्ध संघर्ष करके देशवासियों के स्वाधीनता संग्राम को आगे बढ़ाना। 3. स्वतंत्रता और स्वतंत्र विचार की रक्षा करना।[26]

प्रथम दृष्टया ये विचार अत्यंत प्रभावशाली लगते हैं जिसका प्रभाव तत्कालीन महत्वपूर्ण लेखकों पर हुआ भी, जैसे पीसी जोशी और सज्जाद जाहिर के अनुरोध पर सुमित्रानंदन पंत 1936 में संघ में शामिल हो गए। प्रेमचंद ने तो हंस को संघ के लिए ही समर्पित कर दिया। किन्तु संस्थागत साहित्य कैसा भी हो उसमे रूढ़ियों का आगमन हो ही जाता है जो भारतेन्दु मंडल में भी देखा गया और द्विवेदी मंडल में भी। विचारधारा के प्रति अत्यधिक समर्पण और कलात्मक प्रयोग में शुष्कता के कारण प्रगतिशील साहित्य संघ को अगले पंद्रह वर्षों तक अत्यधिक रचनात्मक सफलता नहीं मिली। जब उन्हें आलोचक के रूप में राम विलास शर्मा और कृतिकार के रूप में केदारनाथ अग्रवाल तथा नागार्जुन मिले तब उसका वास्तविक रचनात्मक प्रस्फुटन होता है। क्योंकि इन दोनों साहित्यकारों ने संघ को भारतीय संस्करण का दर्शन करवाया। इस तत्व पर बल दिया कि यह सिर्फ मार्क्स के सिद्धांतों के सहारे भारतीय संवेदना को नहीं धारण कर सकता है अपितु इसे सरहपा , कबीर , तुलसी , भारतेन्दु और निराला के चिंतन के साथ भी तादात्म्य स्थापित करना होगा।

हालांकि वर्ष 1936 में प्रगतिशील साहित्य की स्थापना साहित्यिक संवेदना में हो रहे अपूर्व बदलाव की सूचना देता है। यह वर्ष 1936 के प्रतिनिधि साहित्यकारों के भांति ही संस्था के रूप में सम्राज्यवादी और सामंतवादी विरोधी साहित्यिक हस्तियों को संस्थागत संबल देता है। भारत के लिए इसे स्वजातीय घोषित करतीं हुई रेखा अवस्थी लिखतीं हैं कि : "प्रगतिशीलता की भावना का उद्भव हिंदुस्तान की अपनी परिस्थितियां, जन आंदोलनों, ब्रिटिश हुकूमत के दमन चक्र के विरुद्ध राष्ट्रीय स्वाधीनता और समाजवादी विचारधारा के तेजी से प्रसार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के हनन के विरुद्ध व्यापक रूप से फैले हुए जनाक्रोश आदि कारणों से हुआ। 1929 के बाद हिंदुस्तान की परिस्थितियों में

[25] अवस्थी, रेखा, प्रगतिवाद और समानांतर साहित्य, राजमकल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 27
[26] वही, पृष्ठ 72

और जनता की आत्मचेतना में क्रांतिकारी परिवर्तन होने लगे थे।"[27] रामवृक्ष बेनीपुरी भी इसे भारतीय परिस्थितियों से उत्पन्न मानते है "छायावाद का जन्म 1921 की राजनीतिक पराजय की पृष्ठभूमि में हुआ था। 1934 में किसानों और मजदूरों का जो व्यापक आंदोलन हुआ, उसके कोलाहलों में प्रगतिवाद का जन्म हुआ।"[28] अतः प्रगतिशील लेखक संघ अपने उद्देश्य में राष्ट्रीय आवश्यकता के अनुकूल ही था, उसकी स्थापना भी युगीन स्थितियों के अनुरूप हुई थी। हाँ संघ के तरीकों से साहित्य को हत होने की संभावना थी । समाजवादी अनुगूँज भारतीय राजनीति में भी दिखाई पड़ रहा था , जैसे जहाँ एक तरफ़ सविनय अवज्ञा आंदोलन विफल रहा वही शोलापुर में एक लाख चालीस हज़ार निवासियों ने जिसमे 40 हज़ार सूती मज़दूर थे , शहर पर कब्ज़ा कर लिया। पुलिस के बदले मज़दूरों ने अपना राज क़ायम किया।[29] इस तरह प्रगतिशील लेखक संघ मज़दूर और किसानों में उत्पन्न व्यवस्था के प्रति रोष और उनकी सक्रिय सहभागिता के मनोवृति का वाहक था।

प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना (1936) हिंदी साहित्य के इतिहास में किसी आकस्मिक वैचारिक हस्तक्षेप के रूप में नहीं, बल्कि साहित्य के भीतर लंबे समय से विकसित हो रहे स्वाभाविक रुझानों की संगठित अभिव्यक्ति के रूप में समझी जानी चाहिए। यह संस्था न तो बाहर से आयातित विचारधारा का परिणाम थी और न ही केवल राजनीतिक आंदोलनों की अनुकृति; बल्कि यह उस ऐतिहासिक स्थिति की उपज थी जहाँ साहित्य, समाज और स्वतंत्रता संघर्ष एक-दूसरे से अलग रह ही नहीं सकते थे। प्रगतिशील लेखक संघ के घोषणा-पत्र में साहित्य को सामाजिक यथार्थ, वर्ग-संघर्ष और मानवीय मुक्ति से जोड़ने की बात कही गई। यह वही दृष्टि थी जो गोदान, कफ़न, युगांत, राम की शक्तिपूजा और कामायनी जैसी कृतियों में पहले से सक्रिय थी। अंतर केवल इतना था कि जो आलोचनात्मक चेतना अब तक व्यक्तिगत रचनात्मक स्तर पर प्रकट हो रही थी, उसे 1936 में एक सामूहिक और संगठित वैचारिक मंच प्राप्त हो गया। इस अर्थ में प्रगतिशील लेखक संघ ने हिंदी साहित्य की अंतर्निहित प्रवृत्तियों को नाम, भाषा और कार्यक्रम दिया। अतः प्रगतिशील लेखक संघ मानो पहले से मौजूद दस्तावेजों पर सरकारी मुहर सा था। यानी जो विचारधारा उपरोक्त साहित्यकारों के कृतियों में विद्यमान था , उन पर समाजवादी विशेषण की मुहर लगाना के अर्थ में ही प्रगतिशील लेखक संघ को लेना चाहिए। उसने उस वक्त नवीन साहित्यिक धारा को बस एक राजनीतिक विचारधारा से जोड़ने का प्रयास किया अन्यथा यह भी उन्ही सामाजिक उद्देश्यों को लेकर आगे बढ़ रहा था जिससे स्वर्णिम साहित्य की सृजना होती है।

[27] वही, पृष्ठ 73

[28] वही, पृष्ठ 36

[29] दत्त, पाम रजनी, आज का भारत, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, वर्ष 2015, पृष्ठ 355

यदि प्रतिबद्धता की अतिशयता को अगर किनारे कर दिया जाए तो प्रगतिशील लेखक संघ ने सामाजिक अंतर्विरोध को साहित्य का केंद्रीय विमर्श बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाया। जिन प्रश्नों से कांग्रेस बच रही थी उन अंतर्विरोध को आगे बढ़ाने में संघ की बड़ी भूमिका रही है। तत्कालीन राजनीति की सहज जटिलता ने आम जन को जिस दुश्चक्र में फँसा रखा था उसका सहज भंडाफोड़ प्रगतिशील लेखक संघ करता है। यहाँ यह भी महत्वपूर्ण है कि प्रगतिशील लेखक संघ का राष्ट्रवाद भावनात्मक या सांस्कृतिक गर्व तक सीमित नहीं था, बल्कि वह अंतरराष्ट्रीय दृष्टि से जुड़ा हुआ था। रूस की समाजवादी क्रांति, यूरोपीय यथार्थवाद और उपनिवेश-विरोधी आंदोलनों का प्रभाव उसके चिंतन में दिखाई देता है। फिर भी, यह प्रभाव भारतीय यथार्थ के साथ गहराई से जुड़ा हुआ था। किसान आंदोलन, मजदूर संघर्ष, स्त्री प्रश्न और दलित चेतना—ये सभी स्वतंत्रता संघर्ष के भीतर उभर रहे वे मुद्दे थे, जिन्हें मुख्यधारा की राजनीति अक्सर हाशिए पर रख देती थी। प्रगतिशील लेखक संघ ने साहित्य के माध्यम से इन्हें केंद्र में लाने का कार्य किया।

इस प्रकार प्रगतिशील लेखक संघ को स्वतंत्रता आंदोलन का वैचारिक अनुचर नहीं, बल्कि उसका आलोचनात्मक सहयात्री कहा जा सकता है। इसने समतामूलक साहित्य के सृजन हेतु ईंधन रूपी संस्थागत सहयोग और वैचारिक दृढ़ता दी। प्रगतिशील लेखन संघ के उत्पत्ति की स्वाभाविकता पर प्रकाश डालते हुए रेखा गुप्ता लिखती हैं कि "प्रगतिशीलता की भावना का उद्भव हिंदुस्तान की अपनी परिस्थितियों , जन आंदोलनों , ब्रिटिश हुकूमतों के दमनचक्र के विरुद्ध राष्ट्रीय स्वाधीनता और समाजवादी विचारधारा के विरुद्ध तेजी से प्रसार , अभिव्यक्ति के स्वतंत्रता के हनन के विरुद्ध व्यापक रूप से फैले हुए जन आक्रोश आदि करणी से हुआ। 1929 के बाद हिन्दुस्तान की परिस्थितियों में और जानता की आत्मघात चेतना में क्रांतिकारी परिवर्तन होने लगे थे।"[30] उपरोक्त विवेचन से हमें युगीन स्थिति की जानकारी मिलती है और यह स्पष्ट हो जाता है कि मार्क्स के सिद्धांतों का साहित्यिक निरूपण होते हुए भी प्रगतिशील लेखक संघ भारत की परिस्थितियों और जरूरतों के अनुसार गठित हुआ था न कि कोई आयातित वस्तु के रुप में। इसने तत्कालीन साहित्य में नवीन ऊर्जा का भी प्रसार किया जिससे वर्षों से शोषित और पीड़ित वर्ग साहित्य के केंद्र में आ जाते हैं।

[30] अवस्थी, रेखा, प्रगतिवाद और समानांतर साहित्य, राजमकल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 36

Challenges and Problems of Construction Workers: A Study in Visakhapatnam

Dr. N. Komali Salomi
Assistant Professor, Department of Social Work, Andhra University

Dr. P. Ravi Ratna Prakasa Rao
Assistant Professor, Department of Sociology, Andhra University

ABSTRACT

Construction Workers are one of the labour force sectors in India who make a development through infrastructure development. The present study analyse the socio-economic and demographic characteristics, working conditions, occupational health concerns, and level of awareness regarding welfare measures among construction workers in Visakhapatnam city. The study is based on a quantitative research approach and follows a descriptive research design. Primary data were collected from a sample of 64 construction workers through a purposive sampling technique, using a structured interview schedule as the main tool of data collection. The study found that majority of the respondents has low level of education. The majority of the workers are engaged in daily wage labour, characterised by low and irregular income patterns. The study also found that a low level of awareness among workers regarding available welfare schemes and social security provisions. In terms of working conditions, the study reveals several inadequacies, including extended working hours, lack of protective and safety equipment, insufficient basic amenities at worksites, and restricted access to healthcare facilities. A considerable number of workers reported experiencing

occupational health issues and workplace-related accidents, reflecting the hazardous nature of their work environment.

Keywords: Construction Workers, Informal Sector, Occupational Health, Working Conditions, Welfare Schemes

Introduction

Construction workers are individuals engaged in various activities related to the construction, repair, maintenance, and demolition of infrastructure such as buildings, roads, bridges, and other physical structures. They form the backbone of the construction industry and contribute significantly to economic development by creating essential infrastructure facilities (Kantharia & Yadav, 2024). The construction workforce typically includes workers performing different roles such as manual labourers, technicians, electricians, masons, carpenters, and other skilled or semi-skilled personnel involved in construction activities (Bajracharya et al., 2023). According to the Building and Other Construction Workers (Regulation of Employment and Conditions of Service) Act, 1996 (BOCW Act), A construction worker is defined as any person engaged in skilled, semi-skilled, or unskilled manual, supervisory, technical, or clerical work in connection with building or construction activities, excluding those in managerial or administrative roles (Poornamathi & Marish Kumaran, 2025) Additionally, construction workers can be categorized into four types: Unskilled workers, Semi-skilled workers, Skilled workers, Highly skilled workers based on their level of training, experience, and expertise (Bharawala, 2023).

The construction industry employs approximately 31 million workers, making it the second-largest employer after agriculture (Bharawala, 2023). Other studies estimate that the workforce is even larger, with nearly 50 million workers engaged in construction activities (Poornamathi & Marish Kumaran, 2025). According to NSSO estimates, about 5 crore (50 million) workers are involved in construction work, accounting for around 10% of India's total workforce (Poornamathi & Marish Kumaran, 2025). Approximately 80–90% of construction workers are

employed in the informal sector, lacking job security and social protection (Poornamathi & Marish Kumaran, 2025). The sector provides employment to more than 49.5 million people and is a major source of livelihood for migrant and economically weaker populations (Roopa, 2015). Nearly 7.5% of the global workforce is part of the Indian construction labour force, indicating its global significance (Bharawala, 2023). A significant proportion of workers are migrants, with studies showing over 60% of construction workers migrate from rural to urban areas in search of employment (Bharawala, 2023). Less than 10% of workers receive formal training, which contributes to safety risks and low productivity (Poornamathi & Marish Kumaran, 2025).

Construction workers in India represent a vast and diverse labour force that plays a critical role in national development. Despite their significant contribution, the majority of workers remain in the informal sector, facing issues such as lack of training, job insecurity, and poor working conditions. The statistics highlight both the scale of employment and the vulnerabilities associated with this sector, emphasizing the need for stronger policy implementation and worker welfare measures.

Review of Literature

Bharawala (2023), in the study titled *"A Study Highlighting Macro Issues of the Construction Workers in Indore (The Cleanest Indian City)"*, conducted in Indore, Madhya Pradesh, aimed to examine the various physical, psychological, and economic problems faced by construction workers. The study employed a quantitative research design using survey methods and personal interviews with around 100 construction workers. The objective was to analyse workers' living conditions, work environment, and socio-economic challenges. The findings revealed that a majority of workers were migrants, lacked proper training, and were not provided with adequate safety equipment such as PPE kits.

Poornamathi N.C. and Marish Kumaran C.M. (2025), in their study *"A Critical Analysis of Problems Faced by Building and Other Construction Workers in India"*, examined the structural and legal challenges faced by construction workers across India. The study primarily adopted a descriptive and analytical approach based on secondary data and legal frameworks. The objective was to analyse issues such as job insecurity, lack of social security, unsafe working conditions, and inadequate enforcement of labour laws. The findings indicated that nearly 80–90% of construction workers are part of the informal sector, with minimal access to healthcare, insurance, and welfare benefits.

Kantharia and Yadav (2024), in the study *"A Study on Challenges Faced by Workers in Construction Field"*, conducted across various regions, aimed to explore the diverse challenges affecting construction workers and their impact on well-being and productivity. The study used a mixed-methods approach, combining quantitative surveys and qualitative interviews. The objectives included identifying challenges, understanding their root causes, and assessing their impact on workers' mental and physical health. The findings revealed that construction workers face severe safety hazards, long working hours, inadequate training, low wages, and job insecurity.

Dr. Roopa K. (2015), in the study *"Issues and Challenges of Construction Industry Workers"* conducted in Mangalore, Karnataka, aimed to analyse the socio-economic conditions and challenges of construction workers. The study used qualitative methods, including interpretative phenomenological analysis and semi-structured interviews. The objectives were to highlight the characteristics, trends, and issues of construction labour. The findings showed that most workers come from poor, illiterate, and migrant backgrounds, with unstable employment and lack of training. The study also identified industry-level challenges such as material shortages, poor management, lack of safety measures, and inadequate labour policies, which negatively affect workers' livelihoods and working conditions.

Bajracharya et al. (2023), in their review article *"Occupational Health and Safety Issues in the Construction Industry in South Asia"*, examined the status of occupational health and safety among construction workers in South Asian countries, including India, Nepal, and Bangladesh. The study adopted a systematic review methodology using secondary data sources. The objective was to identify key occupational hazards and suggest improvements. The findings revealed that construction workers are exposed to high levels of risk, including accidents, respiratory diseases, and musculoskeletal disorders, due to poor working conditions, lack of awareness, and inadequate safety training.

The reviewed studies collectively highlight that construction workers in India and South Asia are predominantly part of the informal sector and face multiple interrelated challenges, including unsafe working conditions, lack of training, job insecurity, and inadequate access to social security benefits. Across different geographical contexts such as Indore and Mangalore, workers are largely migrants from economically weaker backgrounds, experiencing poor living conditions and limited welfare support. The literature consistently emphasizes occupational health risks, including accidents, respiratory issues, and physical strain, primarily due to the absence of proper safety measures and enforcement of labour laws.

Research Gap

Although existing studies have extensively documented the problems faced by construction workers, there are several notable gaps. Most studies focus broadly on challenges at a national or regional level, with limited in-depth analysis at the micro or local level. There is a lack of empirical research examining the socio-economic conditions and lived experiences of construction workers in specific regions or cities. Additionally, few studies integrate both socio-demographic variables and occupational factors to understand their combined impact on workers' well-being. There is also limited focus on evaluating the effectiveness of existing welfare schemes and policies from the perspective of the workers themselves.

Need for the Study

The construction sector is one of the largest employment generators in India, yet the workers remain one of the most vulnerable groups. Given the persistent issues of poor working conditions, lack of safety, and inadequate welfare measures, there is a pressing need to conduct focused research to understand the real-life problems faced by construction workers. Such a study is essential to generate region-specific data, assess the effectiveness of existing policies, and identify gaps in implementation. Understanding these aspects will help policymakers, social workers, and stakeholders design targeted interventions to improve the living and working conditions of construction workers.

Objectives of the Study

1. To study the socio-economic and demographic profile of construction workers.
2. To examine the working conditions and occupational health issues faced by construction workers.
3. To analyse the socio-economic factors influencing the well-being of construction workers.
4. To assess the availability and awareness of welfare measures and social security schemes among construction workers.
5. To provide the suggestions to improve working conditions of construction workers.

Research Methodology

The present study adopts a quantitative research approach to systematically examine the socio-economic conditions, working environment, and challenges faced by construction workers. A descriptive research design is employed to provide a detailed account of the characteristics and issues experienced by the respondents without manipulating any variables. The study is based on primary data collected from a sample of 64 construction workers in Visakhapatnam city selected through purposive sampling. An interview schedule was used as the main

tool for data collection, consisting of structured questions to gather information on demographic profile, working conditions, health issues, and awareness of welfare measures. The collected data were organized, tabulated, and analysed using simple statistical techniques such as frequency and percentage to draw meaningful conclusions.

Results and Discussion

Age: The study found that the majority of the respondents in this study are belonging to 26–45 years age group accounting for nearly 59.3% of the sample. Followed by the 18-25 years age people have also demand to because they will fast than the other groups.

Table 1: Distribution of the respondents by their Education

Education	Frequency	Percentage
Illiterate	18	28.1%
Primary	20	31.2%
Secondary	16	25.0%
Higher Secondary	8	12.5%
Graduate	2	3.2%
Total	64	100%

The data in the table 1 show that the significant proportion of construction workers possess low levels of education, with nearly 59.3% being either illiterate or having only primary education. Secondary and higher secondary respondents represented 37.5%. It indicated that the low education people may work in the construction industry.

Working hours: The study found that a majority (78.1%) of workers are engaged in work beyond the standard 8-hour workday, with 25% working more than 10 hours daily. This is very difficult to work that much hours in the construction industries which may lead to fatigue, reduced productivity, and increased risk of occupational hazards.

Monthly Income: The income distribution reveals that the majority of construction workers earn between ₹18000 - ₹21000 per month, indicating modest and unstable earnings. A significant proportion (34.4%) earns below ₹18000, highlighting economic vulnerability. As we know that the low income levels directly affect their living standards, access to healthcare, and overall well-being.

Nature of employment: the study found that a majority (59.4%) of construction workers are employed on a daily wage basis, followed by a small proportion (12.5%) of the respondents has yearly bond. Most of the time the rural youth who are not in a position to complete their education may become construction workers in house construction industry.

Table 2: Availability of Safety Equipment (PPE)

Availability of PPE	Frequency	Percentage
Yes	18	28.1%
No	46	71.9%
Total	**64**	**100%**

The table 2 reveals that a significant majority (71.9%) of workers do not have access to safety equipment at their workplace. This lack of protective measures increases the risk of accidents and occupational injuries. This occupation is included with lots of risks because they work on the higher buildings.

Availability of Basic Facilities at Worksite: The study found that the majority (68.8%) of the respondents reported inadequate basic facilities such as drinking water, sanitation, and rest areas at worksites. This reflects poor working conditions and neglect of workers' basic needs, which may adversely affect their health, hygiene, and overall well-being. This finding is inline with the study of K. P. Kannan (2018) who reported that the informal sector workers, especially in construction, often work under conditions where basic facilities are either inadequate or completely absent, reflecting systemic neglect of labour welfare

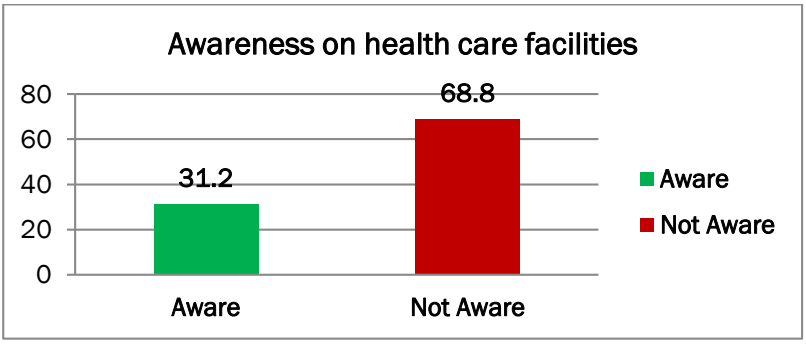
ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

provisions. Similarly, S. K. Panda (2015) reported that lack of sanitation, drinking water, and rest shelters at construction sites is a widespread issue in India, significantly impacting workers' health and hygiene.

The problem faced by construction workers: the study found that low wages (25%) and job insecurity (21.9%) are the most significant problems faced by construction workers. Health issues and poor living conditions are also notable problems of the respondents. This indicates that workers face multiple overlapping challenges, both economic and occupational, which collectively impact their overall well-being. The study is inline with the study of Mopeli & Abraham, 2022 who reported that the homeless population involved in the unorganised sector may get health problems. Similarly, R. K. Srivastava (2016) emphasized that informal construction workers face chronic job insecurity and low wages due to the absence of formal contracts and regulatory protection. In another study, K. N. Vaid (2014) highlighted that unsafe working conditions and lack of protective measures significantly contribute to occupational hazards in the construction industry.

Access to Medical Facilities: **the study found that a** majority (65.6%) of workers reported not having access to medical facilities in the work place, indicating serious gaps in healthcare support for construction labourers.

Figure 1: Awareness on Welfare Schemes



The figure indicates that a majority (68.8%) of construction workers are unaware of welfare schemes and social security benefits available to them. Because, majority of the respondents have been migrated from other areas of Andhra Pradesh. They do not have local identification proofs to access government social welfare schemes. This finding is inline with the study of Kumar and Mishra (2019) who reported that more than 60% of construction workers in urban India were unaware of welfare board schemes due to inadequate communication strategies and low literacy levels. Similarly, S. R. Babu (2018) found that poor dissemination of information and lack of proactive engagement by labour department's significantly contributed to low enrolment in welfare programs. Mehrotra and Sinha (2017), Manas (2018), Mohammed (2018) highlighted that informal sector workers, especially in construction, often remain excluded from social protection due to weak institutional outreach and absence of awareness campaigns. Furthermore, International Labour Organization (2020) also emphasized that lack of awareness is one of the major barriers preventing informal workers from benefiting from social security schemes in developing countries.

Suggested Measures by Workers: The study found that the large percentage (28.1%) of the respondents were stated that they need better wages. And (25%) of the respondents stated that they need improved healthcare facilities. Safety measures and job security are also significant concerns of the construction workers. These findings highlight the urgent need for comprehensive interventions by the Non-governmental organisations to address both economic and occupational aspects to enhance workers' quality of life.

Suggestions and recommendations

The government should strengthen the implementation of existing labour laws such as the Building and Other Construction Workers (BOCW) Act to ensure that workers receive adequate protection and welfare benefits. Regular inspections must be conducted at construction sites to enforce safety standards, including the mandatory provision of personal protective equipment (PPE).

The government should also enhance awareness campaigns regarding welfare schemes, health insurance, and social security benefits, as a large proportion of workers remain unaware of these provisions. Additionally, there is a need to introduce skill development and training programs to improve workers' competencies and reduce occupational risks. Provision of affordable housing, sanitation facilities, and accessible healthcare services for migrant workers should also be prioritized to improve their quality of life.

NGOs should play a proactive role in bridging the gap between construction workers and welfare services by conducting awareness programs and outreach activities. They can organize health camps, safety training sessions, and workshops to educate workers about occupational hazards and preventive measures.

NGOs should also assist workers in registering for welfare schemes and accessing social security benefits. Furthermore, they can advocate for workers' rights and collaborate with government agencies to ensure effective implementation of policies. Special focus should be given to migrant workers by providing support services such as legal aid, counselling, and temporary shelter facilities.

Construction workers should be encouraged to actively participate in training programs and awareness initiatives to improve their knowledge of safety practices and available welfare schemes. They should adopt the use of safety equipment consistently to minimize the risk of injuries and health issues. There is a lot of scope for the social workers and corporate companies to provide the basic amenities to the construction workers (Abraham & Rangarao, 2018)

Workers should also take collective efforts, such as forming groups or unions, to voice their concerns and demand better working conditions and fair wages. Additionally, improving personal health practices, including avoiding harmful habits and seeking timely medical care, can contribute to better overall well-being.

Limitations of the Study

The study is based on a relatively small sample size of 64 respondents, which may limit the generalizability of the results to the larger population of construction workers. The study conducted in Visakhapatnam. The findings of the study are more relevant to the geographical condition of Visakhapatnam city.

References

1. Abraham, M., & Rao, A. R. (2018). Role of CSR Activities in reduction of poverty in Visakhapatnam: A social work perspective. International Journal of Reviews and Research in Social Sciences, 6(4), 405-411.
2. Babu, S. R. (2018). Labour welfare schemes and their implementation challenges in India. *Indian Journal of Labour Economics, 61*(3), 421–435.
3. Bajracharya, N., Magar, P. R., Karki, S., Giri, S., & Khanal, A. (2023). Occupational health and safety issues in the construction industry in South Asia: A systematic review and recommendations for improvement. Journal of Multidisciplinary Research Advancements, 1(1), 27–31.
4. Bharawala, S. (2023). A study highlighting macro issues of the construction workers in Indore (the cleanest Indian city). Journal of Management Information and Decision Sciences, 26(5), 1–10.
5. International Labour Organization. (2020). *Extending social security to workers in the informal economy: Lessons from international experience*. Geneva: ILO.
6. Kannan, K. P. (2018). *Labour and employment issues in the informal sector in India*. New Delhi: Oxford University Press.
7. Kantharia, I., & Yadav, K. (2024). A study on challenges faced by workers in construction field. International Journal of Research Publication and Reviews, 5(4), 8523–8528.

8. Kumar, A., & Mishra, S. (2019). Awareness and utilization of welfare schemes among construction workers in urban India. *International Journal of Social Economics, 46*(5), 654–667.
9. Manas, R. N. (2018). Problems and Prospects of Informalworkers in Formal Sector: A Study of Migrant Women Construction Workers in Bhubaneswar city, Mahila Pratishtha, 4 (1), 45-54.
10. Mehrotra, S., & Sinha, S. (2017). Social security for informal workers in India: Issues and challenges. *Economic and Political Weekly, 52*(52), 58–66.
11. Mohammed, I. M. (2018). Construction workers in Hyderabad: A study on Labour addas, Social security and Awareness among them. Desh Vikas, 4 (4) 25-36.
12. Mopeli, N. E., & Abraham, M. (2022). Understanding the psycho-social and health problems faced by homeless population in Visakhapatnam City: An empirical study. Research Journal of Humanities and Social Sciences, 13(2), 105-112.
13. Panda, S. K. (2015). Working and living conditions of construction workers in India. *Indian Journal of Social Work, 76*(3), 345–360.
14. Poornamathi, N. C., & Marish Kumaran, C. M. (2025). A critical analysis of problems faced by building and other construction workers in India. Indian Journal of Legal Review, 5(1), 615–618.
15. Roopa, K. (2015). Issues and challenges of construction industry workers. International Journal of Research and Analytical Reviews, 2(2), 179–182.
16. Srivastava, R. K. (2016). Labour market transitions and conditions of informal workers in India. *Indian Journal of Labour Economics, 59*(4), 611–632.
17. Vaid, K. N. (2014). Occupational safety and health conditions of construction workers in India. *International Journal of Occupational Safety and Health, 4*(1), 45–52.

Social Issues and the Need for Creating Awareness in Contemporary Society

Tonmoy Pran Bez
Assistant Professor (Fine Arts)
Assam down town University

Abstract:

Contemporary Indian society is encountering various social challenges that affect the nation's overall development. Some of these issues stem from old traditions and historical factors, while others have emerged due to rapid changes in society, economy, and politics. In this context, raising awareness about these problems is crucial. Social awareness refers to understanding social situations, recognizing others' needs and feelings, and acting with care and responsibility. It fosters better relationships, collaboration, and societal harmony. The government, particularly the Ministry of Social Justice and Empowerment, plays a vital role in formulating policies and programs aimed at supporting marginalized or discriminated individuals.

In addition to the government, non-governmental organizations (NGOs) also contribute significantly by working directly with communities to promote awareness, offer education, and advocate for social change. These groups often focus on areas such as education, health, human rights, and community development. Media and advertising are also effective tools for raising awareness about social issues. Through newspapers, television, and the internet, media can highlight important topics like health, education, gender equality, and environmental protection. Social campaigns and advertisements encourage

responsible behavior, while visual tools such as posters help convey clear and impactful messages to a wide audience. Addressing social problems requires not only the efforts of groups and the government but also the actions of individuals. Developing skills such as empathy, effective communication, and understanding diverse backgrounds can enhance personal and collective awareness, leading to a more equitable and peaceful society.

Keywords: Social Awareness, Social Issues, NGOs, Media and Communication, Social Advertisements, Diversity, Social Development, Public Awareness.

Introduction:

Modern Indian society is characterized by diversity, swift transformation, and ongoing social challenges. While some issues, such as poverty, illiteracy, gender inequality, and societal discrimination, have deep historical roots, others have emerged due to rapid economic, political and technological changes. These challenges continue to impede inclusive growth and equitable development. India, as a developing nation, faces the dual challenge of managing traditional inequalities alongside modern socio-economic pressures. Access to education, healthcare, employment opportunities and basic services remains uneven across regions and communities. Tackling these concerns requires not only policy interventions but also a strong foundation of social awareness among citizens.

Social awareness involves understanding societal conditions, recognizing inequalities and responding with empathy and responsibility. It is closely associated with emotional intelligence, as it encourages individuals to build respectful relationships, appreciate diversity, and actively contribute to social well-being.

Objectives of the Study:

1. To examine significant social issues affecting contemporary Indian society.
2. To understand the role of social awareness in addressing these challenges.
3. To analyze the contributions of the government, NGOs, and media in spreading awareness.

4. To explore the economic dimensions of social issues and their impact on development.
5. To highlight the importance of collective action in achieving social progress.

Methodology:

This study is based on a descriptive and analytical approach, utilizing secondary sources such as academic literature, policy reports, government documents, and media observations. The analysis focuses on understanding the relationship between social awareness and societal development, while also examining the economic implications of social issues.

Understanding Social Awareness:

Social awareness refers to the ability to understand social realities, recognize the needs of others, and behave responsibly in different situations. It includes empathy, respect for diversity, and the ability to navigate complex social relationships.

A socially aware individual is better equipped to:

I. Communicate effectively
II. Respect cultural and social differences
III. Adapt to diverse environments
IV. Contribute positively to community life. In a diverse country like India, social awareness plays a crucial role in maintaining harmony and fostering mutual understanding.

Major Social Issues in India:

India continues to face several interconnected social challenges, including:

I. Poverty and economic inequality
II. Lack of access to quality education
III. Gender discrimination and inequality
IV. Caste-based and social discrimination

V. Limited access to healthcare and basic services. These issues are not isolated; they are deeply linked with structural inequalities and economic disparities, making them complex and difficult to resolve.

Economic Perspective on Social Issues:

Social issues in India have a strong economic dimension. Poverty, unemployment, and unequal distribution of resources directly affect social stability and development.

Poverty and Inequality: Economic disparities lead to unequal access to opportunities, reinforcing social divisions.

Education and Employment: Lack of education reduces employability, which in turn affects income levels and economic mobility.

Gender Inequality: When women are excluded from education and employment, it reduces overall economic productivity.

Healthcare Access: Poor health infrastructure impacts workforce efficiency and increases economic burdens on families.

Thus, social issues are not only moral or cultural concerns but also significant barriers to economic growth. Addressing them can lead to improved productivity, better human capital, and sustainable development.

Role of Government :

The government plays a central role in addressing social issues through policies and welfare programs. Various ministries and departments work toward inclusive development, especially for marginalized communities. Initiatives related to education, healthcare, skill development, and social justice aim to create equal opportunities. These efforts are designed to reduce inequality and ensure that development benefits all sections of society.

Role of NGOs :

Non-Governmental Organizations (NGOs) act as a bridge between the government and the people. Working at the grassroots level, they reach communities that may not have direct access to institutional support.

NGOs contribute by:

I. Conducting awareness campaigns

II. Organizing training and workshops

III. Promoting education and healthcare

IV. Advocating for human rights and social justice

Their localized approach helps in addressing specific community needs effectively.

Role of Media and Social Advertising :

Media plays a powerful role in shaping public awareness. Through newspapers, television, radio, and digital platforms, it informs people about social issues and encourages dialogue.

Social advertising, in particular, has been instrumental in promoting public welfare. Campaigns on education, health, sanitation, gender equality, and environmental protection have helped change attitudes and behaviors over time. Posters and visual media are especially effective in reaching diverse populations, including those with limited literacy. By combining strong visuals with simple messages, they communicate ideas quickly and effectively.

The media plays a very constructive role in today's society. The media plays a very useful role in today's society. Media is the most powerful tool of communication in emerging world and increased the awareness and presents the real stage of society. In this decade of Knowledge and awareness there is a huge and grand role of media, it is all around us when we watch on print and electronic media, everywhere public collect knowledge and information and a part of this media has to present a very responsible role for our society. Without the media, people in societies would be isolated.

Advertisement is easy source which connect with people directly to create awareness. The advertisements which contain publicity about the social concerns of a human being are called Social Advertisements. Social advertising refers to those advertisements which deal with social causes aimed at the welfare and well being of the people. In other words, such advertisements create awareness among the people, inform and educate them about socially relevant issues like, Health, Family Welfare, Literacy, Natural Resources ect. They aim at communicating social causes, social issues, ideas or messages to the people. The tremendous success of commercial products can largely be attributed to advertising. The successful use of advertising for commercial products has paved the way for a gradual increase in the use of advertising for noncommercial products, services and ideas for social causes . This is evident from the fact that even a practical organization like the government has to fall back on advertisements for propagating social causes such as Health, Child Care, Family Welfare, Literacy, etc. As compared to West, Social Ads are of recent origin in India. Way back in 1964 the government of India decided to tackle advertisements on family planning. In the late sixties with the increasing socio-economic problems and popularization of TV, Social ads were given increasing attention. Since then they have become part and parcel of life and the government sanctions some corers of rupees for the telecast of various social ads such as family planning and child care to mention only two. Besides from time to time ads are also shown on communal harmony. Apart from the indigenous advertising which has a major role to play in communicating about social causes to the masses, various government department/ministries, National and International Agencies, Voluntary Organizations and Autonomous Bodies deal with different social causes. Every day there's a new fashion trend, better technologies and various other developments. But, the mindset of the society is something that's taking ages to change. The social evils that we saw 10 years ago are still hovering around us. Coming along the line are the commercial ads creating a new trend with an impactful approach. Doing their bit, they contribute to eradicate certain social

evils. We've already seen commercial ads going a notch higher by producing powerful advertisements that revolve around social concerns for instance, the ad by Brooke Bond Red Label where they attempt to change the misconceptions around people of short stature on International Dwarfism Awareness Month and the series of Tata Tea, Jaago Re campaigns. But, we can't resist talking about how they are getting better and better.

The solving of a social problem depends upon finding out the causes of troublesome social conditions which create the problem. Though every social problem is caused by multiple factors, but it is always possible to find out the chief factor, the cooperative factors and the minor aggravates in the origin and development of the problem. Every problem is likely to be unique and is likely to have individualistic traits which may differentiate it from other problems.

Many a time, the nature of the social problem is such that the control becomes extremely difficult, if not impossible. This happens when a social problem is occasioned by natural factors like droughts or floods or when the conflict of social interests blocks the application of curative programmers, or a revolution is needed to change the existing political or economic systems.

But after understanding and judging social problems, the society has to be effective and has to take some action whether it is by attempting to alter the established social institutions or by trying to alleviate them by adopting measures without trying to change the existing institutions. Further, action can be organized or personalized.

Challenges in Addressing Social Issues

Despite increasing awareness, several challenges remain:

I. Deep-rooted cultural beliefs and social norms
II. Economic inequalities and resource constraints
III. Political and institutional limitations
IV. Environmental factors such as natural disasters
V. Conflicts and lack of consensus among groups

These challenges highlight the need for a comprehensive and collaborative approach.

Developing Social Awareness

Building social awareness requires both personal and collective effort. Individuals must develop skills such as:

I. Active listening and empathy
II. Respect for diversity
III. Open and constructive communication
IV. Self-awareness and emotional regulation

Recognizing differences in culture, language, religion, and background is essential for maintaining social harmony. Mutual respect and understanding are key to peaceful coexistence.

Implications

The study highlights several important implications:

I. Policy Implication: Effective policies must address both social and economic dimensions of issues.
II. Educational Implication: Education systems should promote social awareness and ethical values.
III. Economic Implication: Reducing inequality can significantly boost economic growth and productivity.
IV. Social Implication: Increased awareness leads to stronger communities and improved social cohesion.
V. Developmental Implication: Inclusive development is only possible when social issues are addressed collectively.

Conclusion:

In conclusion, being aware of social issues is important for creating a fair, welcoming, and forward-thinking society. It helps people understand the problems in society and make responsible choices. Although the government, non-profit

groups, and the media have important roles to play, everyone's involvement is equally important. To solve social problems, it is not just about knowing about them, but also about understanding why they happen, especially in terms of economic inequality. By showing compassion, valuing diversity, and working together, communities can move toward a better future and lasting peace.

REFERENCES:

1. Ahuja, Ram. (2014). Social problems in India (3rd ed.). Rawat Publications.
2. Berger, Peter L. (1963). Invitation to sociology: A humanistic perspective. Doubleday.
3. Berger, Peter L., & Luckmann, Thomas. (1966). The social construction of reality: A treatise in the sociology of knowledge. Anchor Books.
4. Best, Joel. (2013). Social problems. W. W. Norton & Company.
5. Eitzen, D. Stanley., Zinn, Maxine Baca., & Smith, Kelly Eitzen. (2017). Social problems (13th ed.). Pearson Education.
6. Giddens, Anthony. (2017). Sociology (8th ed.). Polity Press.
7. Leon Guerrero, Anna. (2024). Social problems: Community, policy, and social action (8th ed.). SAGE Publications.
8. Mills, C. Wright. (1959). The sociological imagination. Oxford University Press.
9. Merton, Robert K., & Nisbet, Robert A. (1976). Contemporary social problems. Harcourt Brace Jovanovich.
10. Giroux, Henry A. (1988). Schooling and the struggle for public life: Critical pedagogy in the modern age. University of Minnesota Press.

Socio-Economic Aspect of Integral Humanism: An Indigenous Model of Development (A Conceptual Review)

Nitin Katara
Ph.d Scholar,
Cluster Innovation
Centre University of delhi

Dr. Ashu Mishra
Assistant Professor
Cluster Innovation Centre
University of Delhi

Abstract

This review paper tries to understand the socio-economic aspects of Pandit Deen Dayal Upadhyaya's Ekatma Manavvaad (Integral Humanism) and views it as a strong indigenous alternative to western development paradigms. India's development journey after independence has sometimes revolved between Socialism and sometimes Liberalism. But these "segmented" models often fail to fully take into account the cultural and spiritual identity of our country. Due to this, problems like increasing inequality, damage to the environment and alienation among people have come to the fore. Qualitative conceptual review approach has been adopted in this study. In this, Upadhyay's lectures (primary data) given in Bombay in 1965 as well as thematic analysis of academic literature from 2010 to 2025 have been done. Additionally, this model has also been viewed from the perspective of decolonial development and indigenous economic thought.

This paper explains the core ideas of Ekatma Arthneeti (Integral Economy), which is based on "Dharmic Artha"—wealth that remains within the framework of ethical

and social responsibility. Its main pillars are Antyodaya (reaching the last man), Gram Swaraj (self-reliance of villages), and moving from "mass production" to "production by the masses".

The study shows that while Capitalism is more "greed-based" and Socialism is based on "envy-based" thinking, Integral Humanism talks about a "Family Model" in which labour and capital are allies of each other, not opponents. Ultimately, the paper concludes that Ekatma Manavvaad offers a "Third Way" that combines economic growth with spiritual and environmental balance. Decentralized production can be strengthened by making proper use of today's digital tools, which shows a practical path for Atma-nirbhar India.For further research, it has been suggested that such empirical tools should be created by which the impact of Antyodaya-based policies on rural society can be accurately measured.

Keywords: *Integral Humanism, Ekatma Manavvaad, Antyodaya, Indigenous Development, Ekatma Arthneeti, Decolonial Economics, Self-Reliance.*

Introduction

Today's world seems to be standing at a strange turning point. For decades we have been taught that the Western "Materialist" lifestyle—where earning and spending are the ultimate goals—is the only path to success. But the Global Financial Crisis of 2008 and the recent COVID-19 pandemic have shattered this thinking to a great extent. Today we are experiencing a kind of "Crisis of Meaning"— where people have money, but no peace of mind, and countries have high GDP, but deep problems also exist within society. Modern research also shows that when we focus only on "outer" wealth and ignore the "inner" aspect of a person, then imbalance occurs in the society (Laddunuri, 2021). If we talk about our country India, the journey after 1947 has largely been like an experiment with ideas that were not entirely our own. After independence we adopted the Socialist model. Big factories were built, plans started being decided from Delhi, but in this process the common man was often left behind and the control of the government increased a lot. Then in 1991 we moved towards Market Liberalism. This brought

malls, foreign brands, technology and jobs increased, but with it also came a different kind of competition. The gap between the rich and the poor increased and gradually our connection with our traditional villages and roots started decreasing (Raj, 2021). The biggest shortcoming of both these models was that they saw man only as a "consumer" or "taxpayer" and did not understand his entire existence.

Amidst such confusion, the philosophy of Pandit Deendayal Upadhyay, called Ekatma Manavvaad (Integral Humanism), gives a new direction. It talks about a "Third Way", where we are not forced to choose between the state and the market. Instead, it states that a human being is not just a physical entity, but a complete being consisting of body, mind, intellect and spirit (Chanu & Sharma, 2025). Yet, there appears to be a significant gap in our academic literature. In most places, Upadhyay ji is seen only as a political leader, while the depth of his socio-economic views has not been given that much attention. We know what he said, but we understand less about how his "Integral Economy"

(Ekatma Arthneeti) can provide solutions to today's problems—like climate change or unemployment.

This paper is an attempt to fill that gap. In this, we will try to understand how their indigenous model can help in building an India which is not only "rich" in statistics, but is also strong in its values and self-reliance (Uppal & Krishan, 2022)

Methodology

The methodology of this review paper has been designed in such a way that the philosophical principles of Integral Humanism can be understood systematically and it can be seen how relevant they are to today's socio-economic challenges. This is not an empirical study based on field data, but a qualitative conceptual review approach has been adopted. That is, mainly thematic analysis of different academic sources has been done in it.

A structured search was conducted to collect accurate and comprehensive literature. For this, many major academic databases like JSTOR, Google Scholar, Shodhganga and Taylor & Francis were used. In this search, attention was paid to

some specific keywords, so that both traditional and modern aspects of Indian economic thought could be understood. These keywords were:

a. Ekatma Manavvaad (to understand the main philosophy)
b. Indigenous Economics (to see it in the context of non-Western economic models)
c. Decolonial Development (to understand how this model challenges Western universalism)
d. Antyodaya (to focus on the welfare of the last man in the society)

The search was limited primarily to works published or reprinted between 1965 and 2025, to include original ideas as well as recent academic debates, especially in the context of Scopus-indexed journals .

The data for this review is divided into two main parts:

1. **Primary Data:**

The most important basis of this study is the four famous lectures given by Pandit Deendayal Upadhyay in Bombay (now Mumbai) in April 1965. These lectures are considered to be the original source of Ekatma Manavvaad and the foundation of the main philosophical ideas used in this paper also comes from here.

2. **Secondary Data:**

To make this paper a contemporary "review", modern academic journals and books have also been analysed. These sources include the views of many scholars who have tried to explain Upadhyay's principles in the context of today's issues—such as sustainable technology, rural self-reliance (Gram Swaraj), and global economic inequality.

In this way, this methodology not only helps us understand the original philosophy but also shows how it can be useful in today's times

Philosophical Ontology: "Integral" vs. "Segmented"

There is something very profound at the heart of Ekatma Manavvaad—it completely rejects the "segmented" view of Western thinking in which humans are

divided into separate parts. Upadhyay ji believed that whether it is Capitalism or Socialism, both do not see man as a "whole" but understand him in pieces. In contrast, his "Integral" approach considers the human being as a holistic unit, in which body, mind, intellect and spirit—all four are interconnected. Real development is possible only when there is balanced development of all four together.

The Four-FoldHuman (Chatushthaya)

1. **The Body (Prakriti/Sharira):** Western economics often starts with material needs and ends there. But Upadhyay ji considers the body only as the beginning, not the end. They neither talk about asceticism nor are they against wealth. He says that if a person's basic needs are not fulfilled, he will not be able to perform his major duties. But in the Integral model the body is not considered merely a machine of consumption. It is considered a medium (vessel), which requires "minimum necessity" so that man can move towards his higher goals. Here Artha (material prosperity) is considered a means and not the ultimate goal (Laddunuri, 2021).
2. **The Mind**: The mind is the center of our emotions, feelings and desires. Upadhyay ji understood that a person does not become happy just by having his stomach filled. Western models often ignore the impact that constant competition and loneliness have on a person's mind.

   In an integral framework, the development of the mind is linked to a society where there is emotional security, community feeling and mental peace. Therefore, the objective of economic policies should not be just to create "jobs", but to provide "meaningful work" that satisfies the human heart and saves him from alienation.
3. **The Intellect (Buddhi):** Wisdom is the power that teaches to differentiate between right and wrong. This is where the idea of Dharma enters the

economic field. The mind creates many desires, but the intellect decides which desire is right, moral and sustainable.

According to Upadhyay ji, the real strength of a society is seen in its values. Therefore, development should not only mean economic progress but also education that sharpens the intellect, so that people take decisions that are not only for themselves but in the interest of the entire society.

4. **The Soul (Atman):** The soul is the highest level of human existence—it is the true source of consciousness. According to Upadhyay, the western "segmented" human being is somehow cut off from the soul, because he is defined only on the basis of production and consumption.
   Atman symbolizes the spiritual quest where man seeks to connect with a truth greater than himself.

Integral Humanism therefore says that the ultimate goal of any socio-economic system should be Moksha (liberation), so that material progress does not suppress spiritual development (Chanu & Sharma, 2025).

Chiti and Virat: National Organism

Going beyond the individual, Upadhyay ji gives two important concepts to explain to the society – Chiti and Virat.

He calls Chiti "National Soul"—that is, the basic nature of a nation, which develops over thousands of years. Just as every person has his own nature, similarly every nation also has a basic character, which decides the direction of its development.

Virat has been called "Awakened National Energy". When a society runs according to its own will, a collective power is generated in it – this is Virat. This power makes the nation strong, self-reliant and vibrant. But if a country adopts a path of development that goes against its will—like imposing Western hyper-individualism on India—then this Virat weakens and the society gradually starts moving towards decline (Misra & Singh, n.d.).

Critical Comparison: Organism vs. Social Contract

Here a major difference emerges from Western political philosophy. In the West, thinkers like Thomas Hobbes and John Locke gave the "Social Contract" theory. According to this theory, society is a kind of contract, where different individuals come together for their own benefit and security. In this view, society is like an artificial structure—like a company or a club.

On the contrary, Upadhyay ji considers society as a living organism. Just as the hands, eyes and heart in the body are separate yet interconnected, similarly in society there are different individuals and groups, but they are part of the same overall unit. There is no "contract" here, because this relationship is natural and linked by birth.

While the western "Social Contract" model is based on competition and individual rights, Upadhyaya's "Organism" model is based on cooperation and Dharma (duties). Therefore, true indigenous development is not about balancing the interests of individual people, but about keeping the entire body of society healthy and balanced (Raj, 2021)

Ekatma Arthneeti: The Mechanics of an Ethical Economy

In the views of Pandit Deendayal Upadhyay, the economic system is not a separate running machine, rather it is a part of the entire social organism. On the basis of this thinking, he gave the idea of Ekatma Arthneeti (Integral Economy), which shows a way out of the "either-or" trap of Western economic models. In this part we understand why traditional "isms" fail and how an indigenous model redefines the relationship between wealth, ownership and labor.

Limits of Capitalism and Socialism

Upadhyaya's biggest criticism was that both Capitalism and Socialism ignore the spiritual aspect of man.

According to him Capitalism is a "greed-based" system. In this, man is seen as Homo Economicus— that is, a creature whose main objective is only to increase

his profits. When capital is placed at the top, a thinking like "survival of the fittest" arises. The result is centralization of wealth, exploitation of nature and constant competition and conflict in society.

Seen from an integral perspective, Capitalism fulfills the needs of the body, but leaves the soul empty—due to which the society appears prosperous from outside, but becomes weak from within (Raj, 2021).

On the other hand, Upadhyay considered Socialism and Communism as "envy-based" systems. They talk about equality, but for this they give all the power in the hands of the state. In such a system, the individual's freedom is reduced and he becomes a small part of the government structure. According to Upadhyay ji, Socialism does not eliminate greed, but rather removes it from the capitalist and transfers it to the bureaucrat. In this, man is seen as a "mass", due to which his intellect and creativity are suppressed.

Both systems are "segmented" because they focus only on material distribution and ignore deeper human needs such as dignity, autonomy, and moral purpose (Laddunuri, 2021).

Dharmic Artha: Ethical form of wealth

There is often a misconception that Indian philosophy is against wealth. But Upadhyay ji clearly said that Artha (Wealth) is one of the four Purusharthas of life. He also pointed out that just as "lack of money" (Artha-Abhav) weakens the society, similarly "excess of money" (Artha-Prabhav) can also lead to moral degradation. Its solution is-Dharmic Artha. That means wealth which is under the control of Dharma (ethics). There is nothing wrong in earning profit in this model, but it is right only when it is in the interest of the society and follows the ethical boundaries.

Here Dharma works like a "checks and balances" for the economy. It ensures that no business makes profits by harming the environment, exploiting workers or selling harmful products. In this thinking, wealth is considered a "Sacred Trust" (which is also connected to Gandhiji's Trusteeship concept). That means the owner

is actually just the custodian of the resources, and they should be used for the good of the society. Due to this, the economy ceases to be a competitive race and becomes like Yagya (contribution and sacrifice)—where earning is a duty and sharing is a responsibility (Uppal & Krishan, 2022).

Ownership and Labour: Toward Industrial Democracy

The most unique and forward-thinking part of Ekatma Arthneeti is the idea of Industrial Democracy. Upadhyay ji completely rejected the western "master-servant" relationship, where the employer is the owner and the employee remains just a "factor of production" or "labour unit". He believed that workers should be seen as "partners" in production. For this he talked about decentralized economic structure, where ownership is not limited to a few people but is spread widely.

Some key points include:

A. Worker Participation: Workers should get participation in management and profit.

B. Human-Centric Technology: Upadhyay ji was not against machines, but he believed that
technology should help humans, not replace them. Therefore, instead of "mass production" he described "production by the masses" (decentralized model) as better.

C. Right to Work: Working is a fundamental right in Integral Economy. It is not just a means of earning, but also a means of contributing to the society and nation (Virat).

In this way labour is not considered a commodity, but "living capital". This may reduce the class conflict seen in western economies.

Finally, Ekatma Arthneeti talks about a "Family Model", where the interests of the owner, worker and consumer are aligned. This model tries to create a balanced economic system based on harmony and ethics instead of competition (Upadhyay, 2024)

The Antyodaya Framework: Redefining Poverty

Antyodaya—the upliftment of the last man in society—is a kind of ethical compass of Integral Humanism. In today's time, the talk of development often limits poverty to measuring it only in terms of numbers and income, but Upadhyay ji's perspective is much deeper and humane than this.

They consider poverty not just a problem of "survival" but a problem of "dignity and participation". Typically in neoliberal economics, poverty is measured by a "poverty line"—such as daily calorie intake or a fixed income. But according to Upadhyay ji, this "segmented" thinking is incomplete. For them, poverty is not just hunger, but lack of respect (Sam-mana) and the ability to participate in society.

When a person is unable to contribute to Virat (National Energy) due to the shortcomings of the system, he becomes a victim of "social exclusion"—which is a kind of mental and spiritual breakdown. According to integral humanism, real development is not how much the upper class of the society has progressed, but what is the condition of the person standing at the bottom. Therefore, eradicating poverty is not a "charity" done from above, but is the Dharma (duty) of the entire society. If the weakest person in the society is hungry or feels humiliated, the entire nation will be considered unhealthy (Kumari, 2025).

Antyodaya in Modern Policy: From Theory to Practice

In today's India, Antyodaya's thinking is also visible in many government policies. Where earlier planning was mostly "top-down", now the focus has increased on "last-mile delivery"—that is, on providing convenience to the last person. This change is quite in line with the thoughts of Upadhyay ji.

Examples:

A. Pradhan Mantri Jan Dhan Yojana: Through this scheme, an attempt was made to connect every person with the banking system. This marked a step towards eliminating the "financial untouchability" that Upadhyaya criticized.

B. Ujjwala Scheme: Providing clean cooking fuel is not just a health issue, but it is also a way to improve the dignity and standard of living of rural women.

C. Deendayal Antyodaya Yojana (DAY-NRLM): This scheme works on reducing poverty through selfhelp groups. It promotes community-based empowerment, which is in line with Integral thinking— that is, empowering people themselves, and not just relying on government support (Uppal & Krishan, 2022).

A common shift is visible in all these schemes—from "welfarism" to "empowerment". The goal is that even the last person in the society becomes Atma-Nirbhar, which is the basic spirit of the indigenous development model.

Comparison: Antyodaya vs. Utilitarianism

Here an important difference is seen between Western Utilitarianism and Indian Antyodaya. In Western thought, thinkers like Jeremy Bentham and John Stuart Mill gave the principle of "greatest good for the greatest number". This sounds very democratic, but it may also mean that some people—especially the "last few"—are ignored for the benefit of the majority.

Upadhyay ji called this thinking "mathematical cruelty". He believed that society is an organic whole—just as if there is pain in the little finger of the body, it cannot be ignored even if the rest of the body is fine.

The principle of Antyodaya says—"Good for every individual" (Sarve Bhavantu Sukhinah). No person here is expendable. While Utilitarianism focuses on "average", Antyodaya thinks "absolute"—that is, the success of any policy will be determined by how much change it brings to the lives of the most vulnerable (Raj, 2021)

Decentralization, Gram Swaraj, and Sustainability

The spatial aspect of Ekatma Arthneeti is based on the principle of decentralization. According to Upadhyay, excessive centralization of economic power—whether in the hands of a few big capitalists or a centralized state—leads to social alienation and environmental problems. In this context, his idea of Gram Swaraj (village-based self-governance) provides an alternative which is more

balanced and sustainable than the Western urbanization model. Upadhyay ji made a clear difference between Western "mass production" and Indian "production by the masses".

"Mass production" is based on large factories and centralized capital, which often replaces human labor with machines. Due to this, migration of people from villages to cities increases and they are forced to live in urban slums. In this model, man follows the machine.

In contrast, Ekatma Manavvaad talks about a decentralized and labour-intensive economy. Upadhyay ji believed that in a country like India, where the population is very high, the economy should be made in such a way that a person can work in his own community.

"Production by the masses" means promoting production and consumption at the local level. This strengthens localism, that is, production and consumption remain around the same community. This reduces dependence on long and weak supply chains and the wealth generated in the village remains in the village. This develops a self-sustaining local ecosystem (Raj, 2021).

Integral approach towards environment

Integral Humanism gives a different and deeper way of looking at the environment, which becomes very important in today's climate crisis. Upadhyay ji used two words to explain man's relationship with nature – Dohan and Shoshan. In Western "segmented" thinking, nature is often considered a "resource" to be exploited and developed—that is, Shoshan. But Upadhyay ji considered nature as a living entity, which is a part of this entire "Integral" system. He gave the example of cow's milk to explain this—like we take as much milk from the cow as it can comfortably give, and at the same time take care of it. This is Dohan – that is, taking from nature and also protecting it. This thinking goes beyond the common definition of "Sustainability". Here the aim is not to merely maintain consumption,

but the emphasis is on Regenerative Ecology—that is, human activities should not harm nature, but contribute to making it better (Laddunuri, 2021).

Combination of Modern Technology and Gram Swaraj

It is often said that decentralization or Gram Swaraj is "anti-modern", but in today's time technology has made this thinking more possible. In earlier times, artisans and farmers of villages had difficulty in reaching the market, so they had to depend on middle-men and centralized markets. But today digital tools have bridged this distance to a great extent.

A. AI and E-commerce: Today a village weaver or farmer can directly sell his products in the global market. This reduces the need for exploitative middle-men.
B. Decentralized Energy: Technologies like solar micro-grids enable villages to generate their own electricity. This is a big step towards Swaraj in the field of energy.
C. Tele-education and Tele-medicine: Through these facilities, good education and health services can be provided in the villages itself. This reduces the need for people to migrate to cities and their Buddhi (intellectual) and Sharira (physical) development becomes possible there.

If seen in this way, Gram Swaraj is no longer an old or impractical idea, rather in today's time it has become more practical than before. Digital infrastructure can provide the "Virat" (energy) that can make local, ethical and sustainable production the basis of India's future economy (Upadhyay, 2024)

Discussion: Challenges of Implementation

Although the theoretical framework of Ekatma Manavvaad presents a strong and attractive alternative, it is not easy to implement practically in the 21st century. The move from a "segmented" global economy to an "integral" indigenous model is associated with a number of structural challenges—particularly due to the effects of globalization and consumerism.

The first big challenge is to strike a balance between Globalization and Chiti (National Soul). Today we live in a "borderless" digital world, where global capital, data and cultural influences move rapidly from one country to another. In such an environment, it becomes difficult to maintain a development model based on indigenous values. The danger here is that the National Soul (Chiti) may get buried under a kind of "Global Monoculture", where standardized consumption takes the place of local traditions. Therefore, a balanced approach is necessary to implement Integral Economy. India has to participate in the global market for economic growth (Artha), and at the same time has to preserve its equity. For this, such policies are needed which promote local production and cultural education. The biggest challenge is that we can create a kind of "Digital Swaraj"—where technology strengthens local communities, rather than making them dependent on global tech monopolies (Misra & Singh, n.d.).

The second big challenge is the psychological impact of modern consumerism. Today's digital economy runs on algorithms, which continuously create desires (Kama) in people and inculcate the habit of instant gratification. This thinking is completely opposite to Upadhyay ji's idea of Sanyam (restraint) and "minimum necessity". It is not easy to live a life of "Need over Greed" in today's times, especially when a person's identity on social media is often determined by his material possessions. If the Integral model is to be implemented, just changing policies will not suffice—we will also have to bring major changes in education and cultural thinking.

We have to move away from the identity of "Homo Economicus" and adopt the thinking of "Integral Man". This means that mental peace, balance and social contribution should be given more importance in the society, and not just collecting luxury goods (Raj, 2021).

Conclusion & Future Research

In conclusion, it can be said that Ekatma Manavvaad (Integral Humanism) offers an important "Third Way" for today's world—especially when people have become frustrated with both individualistic capitalism and state-led socialism. This model of Pandit Deendayal Upadhyay integrates Artha (material progress), Dharma (moral responsibility) and Moksha (spiritual peace). It gives a holistic framework, in which both the individual and the society are seen as a living and interconnected system. The biggest specialty of this indigenous approach is that it shows that economic development is possible without harming the cultural identity and environmental balance. It is important for future research that we not only limit ourselves to its philosophical aspects, but also focus on its quantitative impact—especially in the context of Antyodaya-based policies. We need empirical studies that can measure what impact decentralized and bottom-up schemes have on social mobility, psychological well-being and local economic resilience in rural India. Unless we combine this timeless philosophy with modern data and research, we will not be able to fully achieve a development model that is truly self-reliant (Atmanirbhar), inclusive and humancentric

References

1. Chanu, P. J., & Sharma, L. B. (2025). Pandit Deendayal Upadhyaya's Integral Humanism for contemporary Bharat: Its relevance in modern period. Department of Philosophy, Manipur University.
2. Kumari, N. (2025). Deendayal Upadhyaya's integral humanism: Implementation for social justice.
3. International Journal of Social Science Research, 7(1). https://doi.org/10.33545/26648652.2025.v7.i1b.159
4. Laddunuri, M. M. (2021). Economic theory of Deen Dayalji: A critical study from Indian nonmaterialistic approach. https://doi.org/10.17051/ilkonline.2021.01.677

5. Misra, K. K., & Singh, D. (n.d.). Integral humanism and the modern world. School of Humanities, Languages and Social Science, Shri Venkateshwara University.
6. Raj, R. (2021). Socio-economic thought of Pandit Deen Dayal Upadhyay. Education Department, Haryana.
7. Upadhyay, M. (2024, November 6). Economic thought of Deen Dayal Upadhyay. International Journal of Innovative Social Science & Humanities Research.
8. Upadhyaya, D. (1965). Integral humanism [Four lectures delivered in Bombay, April 22-25, 1965]. Navchetan Press.
9. Uppal, G. S., & Krishan, G. (2022). Pandit Deen Dayal Upadhyaya's perspective on 'Ektema Arthniti'. Gobindgarh Public College & Khalsa College, 10(6).

भारतीय संस्कृति में वानप्रस्थ आश्रम का महत्व

नशरा खाँन
शोधार्थी, संस्कृति विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

संस्कृत भाषा में 'सम्' उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु में क्तिन् प्रत्यय के योग से (सम्+कृ)[1] संस्कृति शब्द निष्पन्न होता है | जिसका अर्थ है संवारना, सजाना, परिष्कृत करना, अलंकृत करना, शुद्ध अथवा परिमार्जित करना | संस्कृति शब्द स्त्रीलिंग है | संस्कृति शब्द पृथ्वी के किसी भी विशिष्ठ भूखंड की मानसिकता, क्षमता एवं प्रगति का एक दीर्घकालीन इतिहास परिलक्षित होता है , सत्यम, शिवम, सुंदरम की अभिलाषा एवं संरक्षण ही संस्कृति की नीव है |

यही कारण है कि किसी भी मनुष्य के व्यवहार, विचार एवं उदार स्वभाव के कारण ही हम उसे सुसंस्कृत मानव कह सकते हैं |

संस्कृति मानव के जीवन की संवाहिका है और राष्ट्र की जीवन धारा का प्राण स्रोत है | श्री राज गोपालाचारी ने अपने शब्दों में संस्कृति को पारिभाषित किया है कि –

"किसी भी जाति अथवा राष्ट्र के श्रेष्ठ पुरुषों में विचार, वाणी एवं क्रिया को जो व्याप्त रखता है"[2]

सांस्कृतिक एवं संस्कृति ऐसा गुण है जो सम्पूर्ण मानव के जीवन में छाया हुआ है| यह एक आत्मिक गुण है जो मानवता स्वभाव में रस प्रकार व्याप्त है जिस प्रकार दूध में मक्खन पुष्पों मे सुगंध, इसका निर्माण हम कहें कि एक दिन में हो जाए ऐसा नहीं होता किन्तु इसको परिवर्तन होने में युग–युगांतर लग जाते है| **रामधारी सिंह दिनकर** का कथन है[3]

आश्रम क्या है ?

आश्रम व्यवस्था भारतीय संस्कृति के सभी तत्त्वों में से सबसे सुन्दर तत्त्व है तथा हिन्दू समाजिक संगठन के अनुसार आश्रम व्यवस्था की परीकल्पना से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य जीवन के प्रति भारतीय ऋषियों का दृष्टिकोण अत्यंत सार्वभौमिक तथा सर्वांगीण था |

आश्रम शब्द 'आ' उपसर्ग पूर्वक 'श्रम' धातु के संयोग से आश्रम शब्द बना है |

"आ श्रामयन्ती अस्मिन इति आश्रमः"[4] अर्थात् एक ऐसा जीवन स्तर जहाँ मनुष्य खूब श्रम करता है | जर्मन विद्वान **पाल डायसन** ने **इनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन** इस श्रम का अर्थ को ग्रहण करते हुए दो भागों मे विभाजित किया है |[5]

1. आश्रम अर्थात् पर्याप्त श्रम या प्रयत्न करना
2. वह स्थल जहाँ श्रम या प्रयत्न किया जाए

जिस प्रकार वर्ण चतुष्टय भारतीय संस्कृति की एक देन उसी तरह आश्रम चतुष्टय भी भारतीय संस्कृति का प्रमुख अंग है | मनुष्य विशिष्ठ श्रमपूर्वक जीवन व्यतीत करे, जीवन के प्रत्येक आयु के अनुरूप कार्य करे इस तथ्य को निम्नलिखित श्लोक सुंदरतया प्रस्तुत करते है

आद्ये वयसि नाधीतं, द्वितीय नार्जितं धनम्
तृतीये न तपस्तप्तं, चतुर्थे किं करिष्यति ||

रघुवंशम महाकाव्य मे कालिदास ने चतुराश्रम का एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है –

शैश्वेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्
वार्द्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् ||6||

महाभारत मे आश्रम के संदर्भ मे कुछ विचार इस प्रकार है –

चतुष्पदी हि निःश्रेणी ब्रह्मण्येषा प्रतिष्ठता
एतामारुह्य निःश्रेणी ब्रह्मलोके महीयते ||7||

अर्थात महाभारत मे आश्रम व्यवस्था को चार इण्डों वाली ऐसी सीढ़ी का अर्थ दिया, जो व्यक्ति क्रमशः ब्रह्म की ओर ले जाती है | एक एक पद पर पहुचाँ हुआ व्यक्ति अगली अवस्था के लिए तैयार हो जाता है | आश्रम को चार भागों मे विभाजित किया गया है

1 ब्रह्मचर्य आश्रम
2 गृहस्थ आश्रम
3 वानप्रस्थ आश्रम
4 सन्यास आश्रम

अब हम वानप्रस्थ आश्रम का विवेचन करते हुए कहते है कि वानप्रस्थ आश्रम जिसे व्यक्ति के आयु का तीसरा भाग कहा जाता है जिसका अर्थ वन में प्रस्थान करना है (वनमेव प्रस्थों, वनस्य वा प्रस्य प्रदेशः वन प्रदेश भवः)[8] अर्थात पूर्व की स्तिथियों का त्याग कर वन की ओर जाना वानप्रस्थ था |

वानप्रस्थ आश्रम के लिए बहुत प्रारंभ से ही 'वैखनास' शब्द का प्रयोग होता रहा है।[9] बौधायान ने वैखानस शास्त्र में उल्लिखित नियमों का पालन करने वाले को वानप्रस्थी कहा है।[10]

- मनु के टीकाकार मेधातिथि ने वैखनास को ऐसा शास्त्र कहा है जिसमें वन में रहने वाले यातियों या मुनियों के धर्मों का वर्णन हो[11]
- मनु के टीकाकार कुल्लूक ने पचास वर्ष की अवस्था में वानप्रस्थ के उपयुक्त ठहराया है।[12]

वस्तुत: वानप्रस्थ आश्रम किसी आयु में प्रारम्भ हो यह महत्वपूर्ण नहीं

याज्ञवल्क्यस्मृति के टीकाकार ने यही अर्थ कहा है-

वानप्रस्थ शब्द वनप्रस्थ ही है और इसका तात्पर्य है जीवन मे प्रकर्ष पूर्वक नियमों का पालन करते हुए रहता है वही वानप्रस्थ है।[13] जब मनुष्य गृहस्थ जीवन के सम्पूर्ण कर्तव्यों को पूर्ण कर लेता है तब वह प्रत्येक दायित्वों को अपने पुत्र को सौंप कर अपनी पत्नी के साथ या अकेला ही वृद्धावस्था मे वानप्रस्थ आश्रम की ओर प्रस्थान करता है

महाभारत में कहा है कि-

गृहस्थुस्तु यदा पश्येत् वलीपलितमात्मन:
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यंसमाश्रयेत् ||
संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिछदम्
पुत्रेषुभार्यां निक्षिप्य वनं गछेत्सहैवं वा ||14 ||

अर्थात गृहस्थ जब अपने शरीर पर झुर्रियाँ देखे तथा केशों में सफेदी देखे और जब उसकी संतान की भी संतान हो जाये तब वह वन को जाये। गाँव के भोजन तथा घर के सम्पूर्ण सामानों को त्यागकर अपनी पत्नी को पुत्रों का दायित्व सौंपकर या पत्नी के साथ (यदि पुत्र युवा हो और जिम्मेदारियाँ संभालने लायक हो) वन को जावे।[15]

वानप्रस्थ के लिए तीन बातें अनिवार्य थी –

1 वृद्धाश्रम के आगमनोपरांत
2 सांसरिक भोगों के प्रति वितृष्णा और धन संपत्ति के प्रति उदासीनता आ जाने पर तथा
3 गृहस्थी का दायित्व पुत्र का पौत्र द्वारा संभाल लिए जाने पर ही वन को प्रस्थान करें

वानप्रस्थ आश्रम में जीवन को अत्यधिक सरलम् संयमित तथा सदा रखने का नियम शास्त्रकारों ने किया है। व्यास मुनि ने शांतिपर्व में कहते है कि वानप्रस्थीपुरुष नियमानुकूल भोजन ग्रहण करे दिन के छठे भाग अर्थात तीसरे पहर में एक बार अन्न ग्रहण करे और प्रमाद से बचा रहे। वानप्रस्थी पुरुषों गृहस्थ

आश्रम की ही तरह अग्निहोत्र, वैसी ही गो-सेवा तथा यज्ञ के सम्पूर्ण अंगों का सम्पादन करना ही इनका धर्म है |[16]

वानप्रस्थ का जीवन शीत-ऊष्ण को सहन करनेवाला तपस्वी सा था | विष्णु पुराण मे उल्लिखित है –
तपश्च तस्य राजेन्द्र शीतोष्णादिसहिष्णुता

कौटिल्य अर्थशास्त्र में बताया गया है वानप्रस्थी ब्रह्मचारी की भांति भूमि पर सोते थे | जटाएँ रखते थे | अग्निहोत्र करते थे | ये पितृ-पूजा या पितृ-यज्ञ एवं नृयज्ञ करते थे | इनका आहार भी वन्य पदार्थ ही था - **वानप्रस्थस्व ब्रह्मचर्य भूमौ शय्या जटाऽजिनधारणाग्निहोत्रभिषेकों देवतातिथिपितृपूजा वन्यश्चाहर ||17||**

वानप्रस्थियों को चर्म, काश या कुश से अपनी पोशाक बनानी चाहिए **(चर्मकाशकुशै: कुर्यात्परिधानोंत्तरियके)** वायुपूराण के अनुसार मृगचर्म अथवा पत्तों सए वस्त्र बनाना चाहिए **(चीरपत्रजिनानि)**[18] | शरीर के साथ ही साथ सन्यास के लिए मन को भी तैयार किया जाता था, इसे संयमी एवं त्यागी बनाया जाता था | नैतिक गुणों को अपने दैनन्दिन व्यवहार में प्रतिष्ठापित करना ही वानप्रस्थ की मुख्य धर्म साधना थी | इसी धर्म साधना के विषय मे महाभारत के शांतिपर्व मे वानप्रस्थ के लिए चार प्रकार की वृत्तियों का उल्लेख है |-

वानप्रस्थाश्रमेऽप्येताश्चतस्रो वृत्तय: स्मृता
सद्य: प्रक्षालका: केचित् केचिन्मासिक संचया: ||19||

अर्थात कोई इतने ही धन का संचय करता कि तुरंत खाकर खत्म हो जाए, तो कोई एक माह के लिए अनाज का संग्रह करता है | पुनः वर्णित **वार्षिकं संचयं केचित् द्वादशवार्षिकम | कुरवन्त्यतिथिपूजार्थं यज्ञतंत्रार्थमेव वा ||** अर्थात कोई वर्ष भर के लिए तो कोई बारह वर्षों के लिए अन्न का संग्रह करते हैं | उनका यह संग्रह अतिथिसेवा एवं यज्ञ कर्म के लिए है |[20]

वस्तुत: वानप्रस्थ सन्यास आश्रम में प्रवेश की ले जाने वाली साधना एवं तपस्या की ओर प्रेरित करने की तैयारी थी | गृहस्थ जीवन एवं निर्जनता के बीच की कड़ी सन्यास थी मोह एवं मोक्ष के बीच की कड़ी वानप्रस्थ थी | बौद्धिक एवं आध्यात्मिक उत्कर्ष का तृतीय सोपान था वानप्रस्थ |

ग्रंथसूची

1. संस्कृत हिन्दी शब्द कोश – वामन शिवराम आपटे
2. भारतीय संस्कृति का मूल तत्त्व – पृष्ठ 02
3. भारतीय संस्कृति का मूल तत्त्व – वही से
4. धर्मशास्त्र का इतिहास – काणे पी वी – पृष्ठ 267
5. इनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन- पाल डायसन
6. रघुवंशम 1/8
7. महाभारत शांति पर्व 12/242/15
8. अमर कोश पृष्ठ 251.3
9. गौतम धर्मसूत्र 3/2
10. बौधायन धर्मसूत्र 3/6/19
11. मनुस्मृति 6/21 उस पर मेधतिथि की टीका
12. मनुस्मृति 3/50 उस पर कुल्लूक भट्ट की टीका
13. याज्ञवल्क्यस्मृति 3/45 पर मिताक्षरा
14. महाभारत शांति पर्व 244.4
15. महाभारत शांति पर्व 60.4
16. महाभारत शांति पर्व 244.6
17. महाभारत शांति पर्व 244.11.13
18. विष्णु पुराण 3.9.20
19. महाभारत शांति पर्व 244.8
20. महाभारत शांति पर्व 144.9

गिरौदपुरी सतनाम धाम संत गुरु घासीदास जन्मस्थली व तपोभूमि

डॉ. गणेश कुमार कोशले
(अतिथि व्याख्याता)
डॉ. भंवर सिंह पोर्ते शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
पेंड्रा जिला गौरेला पेंड्रा मरवाही (छ ग)

प्रस्तावना

गिरौदपुरी धाम, छत्तीसगढ़ राज्य के बलौदा बाज़ार जिले में स्थित एक अत्यंत पवित्र, ऐतिहासिक एवं सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थल है। यह स्थल राजधानी रायपुर से उत्तर-पूर्व दिशा में लगभग 130 किलोमीटर दूर महानदी एवं जोकनदी के मध्य स्थित एक मनोरम वनाच्छादित पर्वतीय क्षेत्र में अवस्थित है। यह वही भूमि है जहाँ संत शिरोमणि गुरु घासीदास जी का जन्म हुआ तथा जहाँ उन्होंने कठोर तपस्या, साधना और आत्मचिंतन के माध्यम से समाज को एक नई वैचारिक दिशा प्रदान की। गिरौदपुरी केवल धार्मिक आस्था का केंद्र नहीं है, बल्कि यह सामाजिक समता, मानव गरिमा और स्वाभिमान व सम्मान की चेतना का प्रतीक भी है।

गुरु घासीदास ने इसी पावन स्थल से सतनाम दर्शन का उद्घोष किया, जिसका मूल उद्देश्य जात-पात, छुआछूत, ऊँच-नीच, भेदभाव और अंधविश्वास से मुक्त समाज की स्थापना था। उनकी साधना केवल व्यक्तिगत मोक्ष तक सीमित नहीं रही, बल्कि वह सामाजिक परिवर्तन और मानव समानता के व्यापक उद्देश्य से जुड़ी हुई थी। इस कारण गिरौदपुरी को तपोभूमि, धाम और तीर्थस्थल के रूपों में विशेष मान्यता प्राप्त है।

गिरौदपुरी धाम का धार्मिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व केवल छत्तीसगढ़ तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका प्रभाव राष्ट्रीय स्तर तक विस्तारित है। यहाँ प्रतिवर्ष गुरु घासीदास जयंती व मेला तथा अन्य धार्मिक एवं सामाजिक आयोजन आयोजित किए जाते हैं, जिनमें देश के विभिन्न भागों से लाखों की संख्या में उनके अनुयायी भाग लेते हैं। ये आयोजन न केवल धार्मिक आस्था को सुदृढ़ करते हैं, बल्कि सामाजिक एकता और सांस्कृतिक चेतना को भी सशक्त बनाते हैं। इस प्रकार गिरौदपुरी धाम

गुरु घासीदास की तपोभूमि, उनके विचारों और सतनाम दर्शन की जीवंत विरासत का केंद्र है। यह स्थल आज भी समाज को सत्य, समानता और नैतिक जीवन के मार्ग पर अग्रसर होने की प्रेरणा प्रदान करता है।

गिरौदपुरी: भौगोलिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

गिरौदपुरी धाम, छत्तीसगढ़ राज्य के बलौदा बाज़ार जिले में स्थित एक अत्यंत महत्वपूर्ण धार्मिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक स्थल है। यह पावन भूमि महानदी और जोंक नदी के संगम के समीप स्थित होने के कारण प्राकृतिक दृष्टि से अत्यंत समृद्ध मानी जाती है। नदियों का संगम भारतीय परंपरा में सदैव पवित्रता, साधना और आध्यात्मिक ऊर्जा का प्रतीक रहा है, जिससे गिरौदपुरी का धार्मिक महत्व और अधिक बढ़ जाता है। यहाँ का शांत, हरित और प्राकृतिक वातावरण तपस्या एवं आत्मचिंतन के लिए अत्यंत अनुकूल माना जाता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से गिरौदपुरी को संत शिरोमणि गुरु घासीदास की जन्मभूमि के रूप में मान्यता प्राप्त है। इसी भूमि पर उन्होंने कठोर तपस्या कर सतनाम दर्शन का उद्घोष किया, जिसने आगे चलकर सामाजिक समता, मानव समानता और नैतिक जीवन मूल्यों पर आधारित एक व्यापक सामाजिक-धार्मिक आंदोलन का स्वरूप ग्रहण किया। इसी कारण गिरौदपुरी सतनाम सम्प्रदाय का प्रमुख तीर्थस्थल माना जाता है। गिरौदपुरी का सांस्कृतिक महत्व भी अत्यंत व्यापक है। यहाँ आयोजित होने वाले गुरु घासीदास जयंती समारोह, सतनाम गिरौदपुरी मेला तथा अन्य धार्मिक-सामाजिक आयोजन सतनामी समाज की सांस्कृतिक पहचान को सुदृढ़ करते हैं।

गिरौदपुरी धाम का सांस्कृतिक महत्व अत्यंत व्यापक, समावेशी और मानवीय मूल्यों से परिपूर्ण है। यह स्थल केवल किसी एक धर्म या समुदाय का पूजा-स्थल नहीं है, बल्कि छत्तीसगढ़ की समृद्ध लोक-संस्कृति, शोषित-वंचित वर्गों की धार्मिक आस्था तथा सामाजिक समता के आदर्शों का सशक्त संगम बिंदु है। यहाँ की सांस्कृतिक चेतना गुरु घासीदास के सतनाम दर्शन से गहराई से जुड़ी हुई है।

गुरु घासीदास का दर्शन स्त्री-पुरुष, जाति-धर्म, ऊँच-नीच और सामाजिक विभेद से परे मानव समानता पर आधारित रहा है। उन्होंने "मनखे-मनखे एक समान" का संदेश देकर समाज में व्याप्त भेदभाव को चुनौती दी। इसी कारण गिरौदपुरी धाम में विकसित सांस्कृतिक परंपराएँ समावेशी स्वरूप ग्रहण करती हैं, जहाँ सभी वर्गों और समुदायों के लोग समान श्रद्धा और सम्मान के साथ भाग लेते हैं।

गिरौदपुरी में आयोजित धार्मिक एवं सामाजिक आयोजनों के दौरान सतनाम जनजागृति, पंथी नृत्य, सतनाम भजन, सतनाम विचार, सामाजिक चेतना, लोक-संगीत, लोक-नृत्य और लोकपरंपराएँ, जीवंत रूप में अभिव्यक्त होती हैं। ये परंपराएँ न केवल आध्यात्मिक अनुभूति प्रदान करती हैं, बल्कि

सामाजिक एकता और सामूहिक चेतना को भी सुदृढ़ करती हैं। यहाँ की लोक-संस्कृति में श्रम की गरिमा, सरल जीवन, सत्य आचरण और सामूहिक सहभागिता जैसे मूल्य प्रमुख रूप से दृष्टिगोचर होते हैं।

"गिरौद", "गिरौदपुरी" अथवा "गिरौदपुरी धाम" समय के साथ स्थानीय समुदायों की आस्था, सामाजिक आवश्यकताओं तथा शासन की विकास योजनाओं के अंतर्गत अधिक प्रसिद्ध हुआ है। वर्तमान में इसे धार्मिक पर्यटन केंद्र के रूप में भी विकसित किया जा रहा है, जिससे इसकी ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विरासत को संरक्षित करते हुए व्यापक समाज तक पहुँचाया जा सके। इस प्रकार गिरौदपुरी धाम इतिहास और संस्कृति का एक अद्वितीय संगम प्रस्तुत करता है।

प्रारंभिक काल में गिरौदपुरी एक साधारण ग्रामीण बस्ती थी, किंतु गुरु घासीदास की साधना, आध्यात्मिक उपलब्धियों और सामाजिक कार्यों ने इस स्थान को राष्ट्रीय स्तर पर एक प्रतिष्ठित धार्मिक एवं तीर्थस्थल के रूप में स्थापित कर दिया। यहाँ उन्होंने दीर्घकाल तक ध्यान और आत्म चिंतन, आत्मसंयम का अभ्यास किया। दर्शन-शास्त्रीय दृष्टि से तपोभूमि वह स्थान होती है, जहाँ साधक सत्य, संयम और आत्मबोध का प्रत्यक्ष अनुभव करता है। इस दृष्टि से गिरौदपुरी का आध्यात्मिक महत्व अत्यंत उच्च और विशिष्ट माना जाता है।

इस प्रकार गिरौदपुरी धाम का सांस्कृतिक महत्व गुरु घासीदास के विचारों की जीवंत अभिव्यक्ति है। यह स्थल आज भी सामाजिक समता, सांस्कृतिक विविधता और मानवीय गरिमा का प्रेरणास्रोत बना हुआ है।

गुरु घासीदास : जीवन, दर्शन और समाज सुधार

गुरु घासीदास का जन्म 18 दिसंबर 1756 को इसी पावन भूमि गिरौदपुरी में एक साधारण कृषक परिवार में हुआ। उनका जीवन ऐसे समय में प्रारंभ हुआ, जब भारतीय समाज गहरी जातिगत विषमता, छुआछूत, अंधविश्वास और सामाजिक अन्याय से ग्रस्त था। बाल्यकाल में ही उन्होंने समाज में व्याप्त ऊँच-नीच, भेदभाव और शोषण को निकट से देखा और अनुभव किया। यही अनुभव आगे चलकर उनके धार्मिक, दार्शनिक और सामाजिक चिंतन की आधारशिला बने।

गुरु घासीदास बचपन से ही सत्य, नैतिकता और मानव मूल्यों के प्रति संवेदनशील थे। उन्होंने जीवन को केवल सांसारिक दृष्टि से नहीं, बल्कि साधना, तपस्या और सामाजिक उत्तरदायित्व के रूप में देखा। कठोर तप और आत्मचिंतन के माध्यम से उन्होंने "सतनाम दर्शन" की स्थापना की, जिसका मूल अर्थ है— सत्य का नाम। वे सतनाम पंथ के संस्थापक एवं प्रमुख गुरु माने जाते हैं। उनका प्रसिद्ध सामाजिक संदेश "मनखे-मनखे एक समान" मानव समानता और सामाजिक न्याय का सशक्त उद्घोष है, जिसने शोषित और वंचित समाज को आत्मसम्मान की नई चेतना दी।

गुरु घासीदास का दर्शन जाति-पंथ, मूर्तिपूजा और सामाजिक भेदभाव को मानवता के विकास में सबसे बड़ी बाधा मानता है। उन्होंने प्रत्यक्ष आत्मज्ञान की अवधारणा को महत्व दिया, जिसमें ईश्वर-प्राप्ति के लिए किसी मध्यस्थ या पुजारी की आवश्यकता नहीं होती। वे जातिगत छुआछूत, कुप्रथाओं, नशाखोरी और आडंबरपूर्ण धार्मिक कर्मकांडों के कठोर विरोधी थे। उनका जीवन अत्यंत सादा, संयमित और नैतिक मूल्यों पर आधारित था।

उनकी शिक्षाओं के प्रमुख सिद्धांतों में मानव के प्रति मानव का प्रेम एवं लगाव, जातिगत भेदभाव का विरोध, सदाचार और सत्यनिष्ठ जीवन, नशामुक्ति, महिला-पुरुष समानता तथा समाज-सुधार प्रमुख हैं। इन विचारों ने 19वीं शताब्दी में सतनाम आंदोलन को एक व्यापक सामाजिक आंदोलन का स्वरूप दिया। सतनाम पंथ ने दलित, वंचित और पिछड़े वर्गों को समानता, स्वाभिमान और सामाजिक न्याय का मार्ग दिखाया।

इस प्रकार गुरु घासीदास का जीवन और दर्शन केवल धार्मिक महत्व तक सीमित नहीं है, बल्कि वे सामाजिक चेतना, मानव अधिकार और नैतिक मूल्यों के महान प्रवर्तक के रूप में आज भी अत्यंत प्रासंगिक हैं।

सतनाम आंदोलन का विस्तार

गुरु घासीदास द्वारा स्थापित सतनाम आंदोलन प्रारंभ में एक सीमित क्षेत्रीय धार्मिक चेतना के रूप में आरंभ हुआ, किंतु शीघ्र ही यह छत्तीसगढ़ अंचल के विभिन्न जिलों में फैलकर एक व्यापक सामाजिक आंदोलन का रूप ले चुका था। उनके प्रत्यक्ष शिष्यों और अनुयायियों ने गिरौदपुरी से प्रेरणा लेकर उनके संदेश को गाँव-गाँव तक पहुँचाया। इस आंदोलन की मूल शक्ति इसकी सरलता, नैतिकता और समानता की अवधारणा में निहित थी, जिसके कारण यह दलित, वंचित और पिछड़े वर्गों में तीव्र गति से लोकप्रिय हुआ।

सतनाम आंदोलन के प्रसार में मौखिक परंपरा, लोकगीतों, कथाओं और सामूहिक आयोजनों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। गुरु घासीदास के उपदेश सरल भाषा में दिए जाते थे, जिससे सामान्य जन उन्हें सहजता से समझ सके। "मनखे-मनखे एक समान" जैसे सूत्रवाक्य सामाजिक चेतना के नारे बन गए। यह आंदोलन धार्मिक सुधार के साथ-साथ सामाजिक जागरण का माध्यम बन गया।

समकालीन समाज पर प्रभाव

19वीं शताब्दी में सतनाम आंदोलन ने छत्तीसगढ़ की सामाजिक संरचना को गहराई से प्रभावित किया। जहाँ एक ओर इसने जातिगत ऊँच-नीच और अस्पृश्यता को चुनौती दी, वहीं दूसरी ओर शोषित वर्गों में आत्मसम्मान और संगठन की भावना को प्रोत्साहित किया। सतनाम पंथ ने समाज को

यह संदेश दिया कि धर्म का अर्थ केवल पूजा-पाठ नहीं, बल्कि नैतिक आचरण और सामाजिक न्याय है।

इस आंदोलन ने ग्रामीण समाज में नशाखोरी, अंधविश्वास और कुरीतियों के विरुद्ध भी चेतना उत्पन्न की। गुरु घासीदास की शिक्षाओं के प्रभाव से अनेक परिवारों ने नशामुक्त जीवन अपनाया और सदाचार को प्राथमिकता दी। महिलाओं की स्थिति में भी सुधार के संकेत मिले, क्योंकि सतनाम दर्शन में स्त्री-पुरुष समानता पर विशेष बल दिया गया।

वर्तमान समय में प्रासंगिकता

आज के आधुनिक लोकतांत्रिक समाज में भी गुरु घासीदास का सतनाम दर्शन और गिरौदपुरी धाम की परंपरा अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए है। जातिवाद, सामाजिक भेदभाव और असमानता जैसी समस्याएँ आज भी किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं। ऐसे में "मनखे-मनखे एक समान" का सिद्धांत सामाजिक समता और मानवाधिकारों का मार्गदर्शक सूत्र बन सकता है।

समकालीन संदर्भ में सतनाम आंदोलन को सामाजिक न्याय, समान अवसर और आत्मसम्मान की चेतना से जोड़ा जा सकता है। यह आंदोलन हमें यह सिखाता है कि परिवर्तन केवल कानूनों से नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना और नैतिक मूल्यों से आता है। गिरौदपुरी धाम आज भी अनुयायियों व श्रद्धालुओं के साथ-साथ शोधकर्ताओं, समाजशास्त्रियों और इतिहासकारों के लिए अध्ययन का महत्वपूर्ण केंद्र बना हुआ है।

गुरु घासीदास का संदेश आज भी दलित, पिछड़े और वंचित वर्गों के लिए प्रेरणा का स्रोत है, क्योंकि यह उन्हें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करता है और आत्मसम्मान के साथ जीवन जीने की दिशा दिखाता है।

प्रमुख दर्शनीय स्थल व पर्यटन और सांस्कृतिक महत्व

संपूर्ण गिरौदपुरी धाम लगभग 15–20 किलोमीटर के दायरे में विस्तृत है। अनुयायियों व श्रद्धालुगण इन 3–5 दिनों में पैदल पंचकोशी परिक्रमा करते हैं। साथ ही गुरु घासीदास से संबंधित निम्न स्थलों का दर्शन विशेष रूप से महत्वपूर्ण माना जाता है—

सतनाम पंथ: गिरौदपुरी धाम सतनाम पंथ का एक प्रमुख केंद्र है, जो गुरु घासीदास द्वारा स्थापित एक धार्मिक समुदाय है। यह समुदाय एकेश्वरवाद (मोनोथीज़म) में विश्वास रखता है और समाज में समानता और न्याय को महत्व देता है।

"तपोभूमि सतधाम"

सतनाम पंथ के प्रवर्तक गुरु घासीदास का जन्मभूमि गिरौदपुरी सतनाम पंथ के अनुयायियों के लिए सबसे बड़ा एवं महत्वपूर्ण तीर्थस्थल है, जो विश्वविख्यात है। महानदी एवं जोगनदी (जोकनदी) के मध्य स्थित एक मनोरम वनाच्छादित पर्वतीय क्षेत्र में अवस्थित है। यहाँ आने पर सुकून एवं शांति की अनुभूति होती है। इसी आकर्षण के कारण प्रतिदिन हजारों की संख्या में उनके अनुयायी व श्रद्धालु खिंचे चले आते हैं।

तपोभूमि स्थल व मुख्य मंदिर

गुरु घासीदास का आसन (काष्ठ निर्मित तथा चाँदी से मढ़ित है) एवं गुरु की चरण-पादुकाएँ स्थापित हैं। इनके दर्शनार्थ देश-विदेश से अनुयायियों व श्रद्धालु आते हैं। यहाँ घी से प्रज्वलित सतनाम ज्योति अनवरत जलती रहती है। यहां स्थित मुख्य मंदिर में सूर्योदय की प्रथम किरणें गुरुगद्दी का स्पर्श करती हैं।

मंदिर परिसर में अवरा - धौवरा वृक्ष (आंवला) स्थित हैं, जिनके नीचे गुरु जी तपस्या किया करते थे, तथा एक विशाल तेंदू का वृक्ष भी है, जिसके नीचे बैठकर वे आत्मचिंतन करते थे, लोगों को उपदेश देते थे और उनके दुःख-पीड़ा के निवारण हेतु उपचार एवं मार्गदर्शन करते थे।

समीपवर्ती सोनाखान के जंगल में स्थित छातापहाड़ पर छह माह की कठोर तपस्या के उपरांत गुरु घासीदास को आत्मज्ञान की प्राप्ति हुई। इसी ज्ञान के आधार पर उन्होंने वहाँ उपस्थित विशाल जनसमूह को सप्त सिद्धांत एवं अमृतवाणियों का उपदेश देकर सतनाम पंथ का प्रवर्तन किया। इसी कारण यहाँ गुरु घासीदास की स्मृति में प्रतिवर्ष फागुन शुक्ल पंचमी, षष्ठी एवं सप्तमी को लाखों लोगों का विशाल मेला आयोजित होता है। इस अवसर पर देश-विदेश से अनुयायी एवं पर्यटक उपस्थित होकर सहज योग, ध्यान, चिंतन-मनन तथा गुरुवाणियों के श्रवण द्वारा स्वयं को कृतार्थ करते हैं।

फागुन शुक्ल पंचमी को मेला परिसर स्थित विशाल जैतखाम में गुरु वंशज धर्मगुरुओं द्वारा सफ़ेद ध्वज (पालो) चढ़ाकर मेला का शुभारंभ किया जाता है। वहीं फागुन शुक्ल सप्तमी को मुख्य मंदिर एवं परिसर स्थित जोड़ा जैतखाम में धर्मगुरुओं द्वारा ध्वज फहराकर मेला का समापन किया जाता है। इस अवधि में निरंतर पंथीनृत्य-गीत, मंगल-भजन, साधु-अखाड़ा, सत्संग प्रवचन, सहज योग समाधि, ध्यान, गुरुगद्दी दर्शन तथा पूजन की गतिविधियाँ चलती रहती हैं।

जैतखाम: गुरु घासीदास की जन्मभूमि और तपोभूमि गिरौदपुरी धाम में दुनिया का सबसे ऊंचा लगभग 77 मीटर (243 फीट) जैतखाम स्थित है। यहाँ की सबसे प्रमुख विशेषता विशाल "जैतखाम" है,

जो एक बड़ा सफेद स्तंभ है जिसे गुरु घासीदास की याद में बनाया गया है। यह सफेद स्तंभ शांति, समता और एकता का प्रतीक है। इसकी भव्यता और वास्तुकला पर्यटकों को आकर्षित करती है। यह जैतखाम छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक धरोहर होने के साथ लाखों-करोड़ों अनुयायियों व श्रद्धालुओं के आस्था का प्रतीक भी है।

विशाल भू-भाग में फैले गिरौदपुरी मेला परिसर में यह भव्य जैतखाम स्थित है। इसके भीतर ऊपर तक पहुँचने के लिए सीढ़ियों के साथ लिफ्ट की व्यवस्था भी की गई है, जिससे अनुयायि शीर्ष तक पहुँच सकते हैं। प्रत्येक वर्ष फागुन शुक्ल पंचमी के दिन धर्मगुरुओं की उपस्थिति में अनुयायियों व श्रद्धालुओं के समक्ष ध्वज (पालो) चढ़ाकर गिरौदपुरी मेले का विधिवत शुभारंभ किया जाता है।

संपूर्ण गिरौदपुरी धाम लगभग 15–20 किलोमीटर के दायरे में विस्तृत है। अनुयायियों व श्रद्धालुगण इन 3–5 दिनों में पैदल पंचकोशी परिक्रमा करते हैं। साथ ही गुरु घासीदास से संबंधित निम्न स्थलों का दर्शन विशेष रूप से महत्वपूर्ण माना जाता है-

जन्मस्थल

गिरौदपुरी बस्ती के उत्तर-पूर्व में स्थित मिट्टी एवं खपरैल के दो मंजिला मकान में महान संत शिरोमणि गुरु घासीदास जी का जन्म हुआ। यह स्थल लाखों अनुयायियों के लिए अत्यंत पवित्र है, जहाँ अखंड सतनाम ज्योति प्रज्ज्वलित रहती है। यहाँ आकर अनुयायि व श्रद्धालु कृतार्थ होते हैं।

यहाँ से मुख्य मंदिर व तपोभूमि लगभग 3 किलोमीटर की दूरी पर स्थित हैं। गुरु घासीदास के प्रति अत्यधिक आस्था रखने वाले व मनोवांछित फल की प्राप्ति की चाह रखने वाले, लोग यहां से भूमि नापते हुए व नंगे पाँव तपोभूमि स्थल तक जाते हैं। मेला के समय हजारों की संख्या में स्त्री-पुरुष हाथ में नारियल लेकर भूमि पर लोटते हुए मेला स्थल की ओर जाते देखे जा सकते हैं। इसके लिए मेला समिति द्वारा पृथक व्यवस्था की जाती है। लोगों में विश्वास है कि इससे मन्नते पूरी होती है।

कुंआबाड़ी

यहां युवा अवस्था में गुरु घासीदास ने वैज्ञानिक आधार पर खेती व बाड़ी लगाया था, ऐसा कहते है कि भाटा व मिर्च आदि का वैज्ञानिक प्रयोग करके दिखाया था।

बहराडोली

ग्राम से लगभग 1 किलोमीटर दूर प्रसिद्ध पाँच एकड़ का खेत (बहराडोली) स्थित है, जहाँ गुरु घासीदास ने युवावस्था में अपनी हल (नागर) चलाया तथा पाँच मुट्ठी धान बोकर वहाँ प्रचलित अंधविश्वास, कि यह खेत बलि लेता है, को समाप्त किया।

सफुरा माता समाधि स्थल

घर से थोड़ी दूरी पर स्थित तालाब के निकट गुरु घासीदास की धर्मपत्नी सफुरा माता का समाधि स्थल है। यह स्थल भी प्रमुख दर्शनीय स्थलों में से एक है।

शेरपंजा एवं गुरु चरण-चिह्न मंदिर

ऐसा कहते है कि यहाँ समतल चट्टान पर शेर के पंजे तथा गुरु के चरण-चिह्न मंदिर स्थित हैं।

चरणकुंड

चरणकुंड मुख्य मंदिर के पीछे नीचे की ओर सीढ़ियाँ के रास्ते से पहुंचा जाता हैं। यह प्राकृतिक जलस्रोत है, जो कभी सूखता नहीं। जनश्रुति है कि यहाँ गुरु जी ने अपने चरण धोए व पानी का उपयोग किया करते थे।

अमृतकुंड

चरणकुंड से आगे सघन वन एवं पहाड़ियों की तलहटी में स्थित मीठे एवं स्वच्छ जल का यह स्रोत अमृतकुंड कहलाता है। इसके जल का स्वाद नारियल जल के समान है, इसलिए इसे अमृततुल्य माना जाता है। जनश्रुति है कि ज्ञान प्राप्ति के उपरांत गुरु घासीदास इसी कुंड से अमृततुल्य जल प्राप्त हुआ। जिनका उपयोग विशेष रूप से किया।

आज भी लोगों में बड़ी आस्था है और अमृतकुंड के जल का विशेष महत्व है। यह कभी खराब नहीं होता तथा इसका उपयोग प्रत्येक धार्मिक कार्य में किया जाता है। श्रद्धालु बाँस की पोंगरियों, बोतलों एवं गैलनों में भरकर इसे श्रद्धापूर्वक अपने घर ले जाते हैं। कुछ लोग अपने खेतों में भी इसका छिड़काव करते हैं, जिससे फसलों में रोग एवं कीट-पतंग नहीं लगते और अधिक उत्पादन होता है, ऐसा जनमानस का दृढ़ विश्वास है।

चरणकुंड एवं अमृतकुंड जैसे पर्वतीय तलहटी के मनोरम स्थलों पर मंदिर निर्मित हैं, जहाँ प्रातः एवं सायं कुंड की आरती तथा सतनाम भजन-कीर्तन होते रहते हैं।

जोगनदी का हाथीपथरा (हाथी पत्थर)

जोकनदी (जोगनदी) के मध्य में हाथी के आकार की एक विशाल चट्टान स्थित है, जो दर्शनीय स्थल है। यहाँ लोग आकर जोगनदी के शीतल, स्वच्छ एवं प्रवाहमान जल में स्नान करते हैं तथा नदी तट पर भोजन बनाकर सघन वन में 2–3 दिन प्रकृतस्थ जीवन व्यतीत करते हैं। श्रद्धा एवं भक्ति के साथ प्रकृति के सान्निध्य में कल-कल बहती नदी की जलधारा के समीप साधनामय जीवन अत्यंत आनंददायक, प्रेरक एवं उपयोगी होता है।

छातापहाड़

गिरौदपुरी से महाराजी ग्राम के आगे से छातापहाड़ जाने की पगडंडी थी, जहाँ ऊँचे-ऊँचे विशाल साल वृक्षों से घिरा घनघोर जंगल है। गिरौदपुरी मुख्य मंदिर से लगभग 8–10 किलोमीटर की पहाड़ी घाटी वाले मार्ग से गुजरना स्वयं प्रकृति से जुड़ने जैसा अनुभव कराता है। यहाँ नदी, पहाड़, जंगल एवं प्राकृतिक जलकुंड विद्यमान हैं। वन्य जीवों एवं पक्षियों से भरा यह सुरम्य वन अत्यंत मनमोहक है। पैदल छातापहाड़ तक पहुँचना अत्यंत रोमांचकारी होता है। वर्तमान में सड़क बन जाने से यहाँ सुगमता से पहुँचा जा सकता है।

इसी सघन वन में, जहाँ आज भी सूर्य की किरणें कठिनाई से पहुँच पाती हैं, एक विशाल चट्टान है, जो चारों ओर से मधुमक्खी के छत्ते के समान आकार की है। इसी कारण इसका नाम छातापहाड़ पड़ा। इस पहाड़ पर चढ़ने के लिए केवल एक इमली का वृक्ष था, कहते है कि इसके सहारे गुरु जी ऊपर चढ़े और एकांतवास कर तपस्या, साधना एवं ज्ञान प्राप्त हुआ।

सतलोकी गुफा यहाँ स्थित गुफा को सतलोकी गुफा कहा जाता है। यह निरंतर विस्तारित होती जा रही है। जनश्रुति है कि इसी गुफा में गुरु घासीदास ने अपने एकांतवास किया। यहां विशाल पत्थर तीन भागों में विभक्त हो गई, जिसके चिह्न आज भी स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं।

पंचकुंडी धाम

छातापहाड़ जाने वाले मार्ग में लगभग 2 किलोमीटर दूर पंचकुंडी एवं सुंदरवन जाने का मार्ग है। यहां सघन वन एवं हरित मार्ग से युक्त है। रास्ते में विभिन्न जीव-जंतु, पक्षी, मोर, बंदर एवं हिरण कभी-कभी मेलों के अवसर पर भी दृष्टिगोचर हो जाते हैं।

पंचकुंडी अर्थात पाँच कुंडों का समूह है। समीप ही मंदिर एवं सराय निर्मित है। यह प्राकृतिक जलस्रोत है, जो परस्पर जुड़े हुए हैं। जलधारा प्रातःकाल दूध जैसी श्वेत प्रतीत होती है। ऊपर विशाल पर्वतमाला है, जिसके शिखर पर जैतखाम स्थापित है।

सुंदरवन

इसके आगे दुर्गम जंगल है, जहाँ पहुँचने का कोई स्पष्ट मार्ग नहीं है। कठिनाई से पगडंडियों द्वारा नीचे तराई तक पहुँचा जा सकता है। यह निर्जन, ग्रामविहीन एवं घनघोर जंगल है। यह क्षेत्र सुंदरवन के नाम से जाना जाता है। वर्तमान समय में यहाँ साधक, साधु एवं संत कभी-कभी तप-साधना करते हुए दिखाई देते हैं।

भारत के हृदयस्थल में स्थित छत्तीसगढ़ का यह पावन स्थल अपनी प्राकृतिक सुंदरता तथा सतनाम पंथ के प्रवर्तक गुरु घासीदास की जन्मस्थली एवं तपोभूमि होने के कारण अत्यंत महत्वपूर्ण है। यहाँ विश्व की सबसे ऊँची जैतखाम का भव्य निर्माण प्राकृतिक सौंदर्य में और भी वृद्धि करता है। ऊपर चढ़कर गिरौदपुरी की सुरम्य वादियों के साथ-साथ मेला परिसर एवं दूर-दूर तक फैले लाखों अनुयायियों व श्रद्धालुओं की गतिविधियों का विहंगम दृश्य देखा जा सकता है।

निष्कर्ष एवं उपसंहार

गुरु घासीदास का जीवन, उनका सतनाम दर्शन और गिरौदपुरी धाम का ऐतिहासिक महत्व भारतीय सामाजिक एवं धार्मिक परंपरा में एक विशिष्ट स्थान रखता है। उन्होंने ऐसे समय में मानव समानता और सामाजिक न्याय का संदेश दिया, जब समाज गहरी जातिगत विषमता, अंधविश्वास और शोषण से ग्रस्त था। उनका सिद्धांत "मनखे-मनखे एक समान" केवल एक धार्मिक उद्घोष नहीं, बल्कि सामाजिक समता, मानव गरिमा और नैतिक चेतना का सशक्त सूत्र है।

गिरौदपुरी धाम, जहाँ गुरु घासीदास ने साधना की और सतनाम दर्शन की घोषणा की, आज केवल एक तीर्थस्थल नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना का केंद्र बन चुका है। यह स्थल हमें यह स्मरण कराता है कि धर्म का वास्तविक उद्देश्य मनुष्य को मनुष्य से जोड़ना है, न कि उसे विभाजित करना। सतनाम आंदोलन ने वंचित और शोषित समाज को आत्मसम्मान, संगठन और अधिकार-बोध की दिशा दिखाई तथा सामाजिक सुधार की प्रक्रिया को गति प्रदान की।

सतनाम आंदोलन का ऐतिहासिक महत्व इस बात में निहित है कि उसने धार्मिक सुधार के साथ-साथ सामाजिक परिवर्तन को भी समान महत्व दिया। इस आंदोलन ने जातिगत भेदभाव, अस्पृश्यता और कुरीतियों के विरुद्ध चेतना जगाई तथा सदाचार, नशामुक्ति और नैतिक जीवन को सामाजिक मूल्य के रूप में स्थापित किया। इस प्रकार यह आंदोलन छत्तीसगढ़ की सामाजिक संरचना में एक परिवर्तनकारी शक्ति के रूप में उभरा।

वर्तमान समय में भी गुरु घासीदास का दर्शन उतना ही प्रासंगिक है जितना उनके जीवनकाल में था। आज जब समाज आधुनिकता की ओर बढ़ रहा है, तब भी असमानता, भेदभाव और सामाजिक अन्याय जैसी समस्याएँ बनी हुई हैं। ऐसे में सतनाम दर्शन हमें यह सिखाता है कि सच्चा विकास तभी संभव है, जब प्रत्येक व्यक्ति को समान सम्मान और समान अवसर प्राप्त हों।

अंततः यह कहा जा सकता है कि गुरु घासीदास केवल एक धार्मिक गुरु नहीं थे, बल्कि वे सामाजिक क्रांति के अग्रदूत, मानव समानता के प्रवक्ता और नैतिक मूल्यों के संरक्षक थे। गिरौदपुरी धाम

उनकी साधना और विचारों का जीवंत प्रतीक है। उनका जीवन और संदेश आज भी समाज को सत्य, समानता और न्याय के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. शुक्ल, हीरालाल, गुरु घासीदास संघर्ष, समन्वय और सिद्धांत, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 1990
2. मार्कण्डेय, के.आर., छत्तीसगढ़ राज्य और सतनामी समाज, तमस्कर टंडन, दुर्ग, 2000
3. वर्मा, भगवान, छत्तीसगढ़ का इतिहास, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2001
4. सोनकर, पी. डी., छत्तीसगढ़ में सतनाम आंदोलन और सांस्कृतिक पुनर्जागरण, वैभव प्रकाशन, रायपुर, 2015
5. शुक्ल, हीरालाल, छत्तीसगढ़ की शांति के मसीहा गुरु घासीदास, छत्तीसगढ़ के गौरव रत्न, 1990
6. वर्मा, परदेसीराम, मेरा छत्तीसगढ़, वैभव प्रकाशन, रायपुर, 2011
7. टी.आर. खूंटे, सतनाम दर्शन, स्वागत सतनाम कल्याण एवं गुरु घासीदास चेतना संस्थान, भिलाई
8. सुबोध, लखन, गुरु घासीदास सेवादार संघ कैडर क्लास, गुरु घासीदास सेवादार, बिलासपुर, 2012
9. स्वरूप, सर्वोत्तम, गुरु घासीदास और उनका सतनाम आंदोलन, कबीर संस्थान पंडरी, रायपुर, 2018
10. सतनाम दर्शन स्मारिका 2012, प्रकाशन गुरु घासीदास साहित्य एवं संस्कृति अकादमी, रायपुर, 2012

ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

पश्चिमी उत्तर प्रदेश में गांधीवादी अहिंसा का व्यवहारिक स्वरूप: एक ऐतिहासिक अध्ययन

मुकुल सैनी
शोधार्थी (Ph.D.), इतिहास विभाग
रघुनाथ गर्ल्स पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज, मेरठ

सारांश

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में महात्मा गांधी द्वारा प्रतिपादित अहिंसा और सत्याग्रह की अवधारणाओं ने संघर्ष की प्रकृति को एक मौलिक दिशा प्रदान की, जिसने उसे केवल राजनीतिक टकराव तक सीमित न रखकर एक व्यापक सामाजिक और नैतिक आंदोलन में परिवर्तित कर दिया। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य पश्चिमी उत्तर प्रदेश के संदर्भ में गांधीवादी अहिंसा के व्यवहारिक स्वरूप का ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना है। यह अध्ययन इस प्रश्न पर केंद्रित है कि एक ऐसा क्षेत्र, जिसकी सामाजिक संरचना में संघर्षशीलता, सामूहिकता और प्रतिरोध की दीर्घ परंपरा विद्यमान रही, वहाँ अहिंसा को किस प्रकार स्वीकार किया गया और उसे स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप कैसे रूपांतरित किया गया।

इस शोध में यह स्थापित किया गया है कि अहिंसा को पश्चिमी उत्तर प्रदेश में निष्क्रियता या समर्पण के रूप में नहीं देखा गया, बल्कि इसे एक सक्रिय, संगठित और रणनीतिक प्रतिरोध के रूप में अपनाया गया। स्थानीय नेतृत्व ने गांधीवादी विचारों को जनजीवन के साथ जोड़ते हुए उन्हें व्यवहारिक स्वरूप प्रदान किया, जिसके परिणामस्वरूप यह क्षेत्र स्वतंत्रता संग्राम के एक महत्वपूर्ण केंद्र के रूप में उभरा। किसान आंदोलनों, असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा और भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि अहिंसा ने यहाँ एक प्रभावी जनआंदोलन का स्वरूप ग्रहण किया।

प्रस्तावना

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का अध्ययन करते समय यह आवश्यक है कि उसे केवल राष्ट्रीय स्तर की घटनाओं और महान नेताओं के दृष्टिकोण से न देखा जाए, बल्कि इसके क्षेत्रीय और स्थानीय आयामों

को भी समान महत्व दिया जाए। किसी भी व्यापक आंदोलन की वास्तविक शक्ति उसके स्थानीय रूपों में निहित होती है, जहाँ विचारधारा व्यवहार में परिवर्तित होती है। प्रस्तुत शोध इसी दृष्टिकोण को अपनाते हुए पश्चिमी उत्तर प्रदेश में गांधीवादी अहिंसा के व्यवहारिक स्वरूप का अध्ययन करता है।

गांधीवादी विचारधारा ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को एक नई दिशा प्रदान की, जिसमें नैतिकता, आत्मबल और सत्य की अवधारणाओं को केंद्र में रखा गया। इस विचारधारा का सबसे महत्वपूर्ण तत्व अहिंसा था, जिसे गांधी ने एक सक्रिय राजनीतिक उपकरण के रूप में प्रस्तुत किया। यह केवल हिंसा के अभाव का सिद्धांत नहीं था, बल्कि यह अन्याय के विरुद्ध एक नैतिक और प्रभावी प्रतिरोध का माध्यम था।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश का क्षेत्र इस संदर्भ में विशेष महत्व रखता है। यह क्षेत्र 1857 की क्रांति का केंद्र रहा है और यहाँ के समाज में संघर्ष और प्रतिरोध की परंपरा गहराई से निहित रही है। ऐसी पृष्ठभूमि में यह प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है कि अहिंसा जैसे सिद्धांत को इस क्षेत्र में किस प्रकार स्वीकार किया गया। क्या यह केवल एक बाहरी विचार के रूप में आया, या फिर इसे स्थानीय समाज ने अपने अनुभवों के अनुरूप पुनः परिभाषित किया? यही प्रश्न इस शोध का मुख्य आधार है।

गांधीवादी अहिंसा: सिद्धांत, दर्शन और व्यावहारिकता

गांधीवादी अहिंसा को समझने के लिए यह आवश्यक है कि इसे केवल एक नैतिक उपदेश के रूप में न देखा जाए। गांधी के लिए अहिंसा एक जीवंत और सक्रिय शक्ति थी, जो अन्याय के विरुद्ध संघर्ष का एक प्रभावी साधन बन सकती थी। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि अहिंसा का अर्थ कायरता नहीं है, बल्कि यह अत्यंत उच्च स्तर के साहस और आत्मबल की मांग करती है।

अहिंसा का मूल आधार 'सत्य' है। गांधी के अनुसार सत्य और अहिंसा एक-दूसरे के पूरक हैं, और इन दोनों के बिना किसी भी प्रकार का नैतिक संघर्ष संभव नहीं है। यह विचारधारा व्यक्ति को आत्मानुशासन और नैतिक जिम्मेदारी के प्रति जागरूक करती है, जिससे वह केवल बाहरी परिवर्तन की अपेक्षा नहीं करता, बल्कि अपने भीतर भी परिवर्तन लाने का प्रयास करता है।

जब इस सिद्धांत को सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर लागू किया गया, तो यह एक व्यापक आंदोलन में परिवर्तित हो गया। यह आंदोलन केवल सत्ता परिवर्तन तक सीमित नहीं रहा, बल्कि इसने समाज के विभिन्न वर्गों को एक साझा उद्देश्य के लिए एकजुट किया

पश्चिमी उत्तर प्रदेश की सामाजिक-ऐतिहासिक संरचना

पश्चिमी उत्तर प्रदेश का समाज मुख्यतः कृषि पर आधारित रहा है, जहाँ जाट, गुर्जर, त्यागी और मुस्लिम कृषक समुदायों का प्रभाव रहा है। इस क्षेत्र की सामाजिक संरचना में सामूहिकता और संगठन की विशेष प्रवृत्ति देखने को मिलती है, जो पंचायत प्रणाली और सामुदायिक जीवन के माध्यम से विकसित हुई।

इस क्षेत्र की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में 1857 की क्रांति की स्मृति अत्यंत महत्वपूर्ण है। मेरठ और उसके आसपास के क्षेत्रों में विद्रोह की गूँज लंबे समय तक बनी रही, जिसने लोगों के भीतर स्वतंत्रता और स्वाभिमान की भावना को बनाए रखा। यह पृष्ठभूमि किसी भी नए आंदोलन को स्वीकार करने के लिए एक अनुकूल वातावरण प्रदान करती है, किंतु यह अपेक्षा भी करती है कि वह आंदोलन स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप हो।

व्यवहारिक स्वरूप: आंदोलन, समाज और नेतृत्व का समन्वय

जब गांधीवादी विचार इस क्षेत्र में पहुँचे, तो उनका प्रभाव केवल वैचारिक स्तर तक सीमित नहीं रहा। स्थानीय नेताओं ने इन सिद्धांतों को व्यवहार में उतारने का प्रयास किया और उन्हें जनजीवन से जोड़ दिया।

मेरठ क्षेत्र के स्वतंत्रता सेनानी विष्णु शरण दुबलिश का जीवन इस संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण है। प्रारंभिक दौर में वे क्रांतिकारी गतिविधियों से जुड़े रहे, किंतु बाद में उन्होंने गांधीवादी आंदोलनों में सक्रिय भागीदारी की। यह परिवर्तन इस बात का प्रतीक है कि किस प्रकार एक संघर्षशील मानसिकता भी अहिंसा को एक प्रभावी साधन के रूप में स्वीकार कर सकती है।

इसी प्रकार इंद्र विद्यावाचस्पति ने अपने लेखन और भाषणों के माध्यम से राष्ट्रवादी चेतना का प्रसार किया। उन्होंने अहिंसा को एक व्यावहारिक रणनीति के रूप में प्रस्तुत किया, जिससे लोगों में जागरूकता और प्रेरणा का संचार हुआ।

ग्रामीण क्षेत्रों में पंडित मुखराम त्यागी और चौधरी रघुवीर नारायण त्यागी जैसे नेताओं ने किसानों को संगठित किया और उन्हें अहिंसात्मक आंदोलनों में भाग लेने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने कर न देने, विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार और शांतिपूर्ण विरोध के माध्यम से औपनिवेशिक शासन को चुनौती दी।
इन नेताओं की विशेषता यह थी कि वे केवल विचारों का प्रचार नहीं करते थे, बल्कि वे स्वयं उन सिद्धांतों का पालन भी करते थे। इस प्रकार, उनका नेतृत्व एक नैतिक उदाहरण बन जाता था, जो लोगों को प्रभावित करता था।

किसान आंदोलनों में अहिंसा का रूपांतरण

पश्चिमी उत्तर प्रदेश के किसान आंदोलनों में अहिंसा का स्वरूप विशेष रूप से स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। किसानों ने संगठित होकर कर न देने का निर्णय लिया और शांतिपूर्ण ढंग से अपनी असहमति व्यक्त की। यह एक ऐसा प्रतिरोध था, जिसमें हिंसा का प्रयोग नहीं किया गया, किंतु उसका प्रभाव अत्यंत व्यापक था।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इस प्रकार का आंदोलन केवल आर्थिक मांगों तक सीमित नहीं था। यह एक राजनीतिक चेतना का भी प्रतीक था, जिसने किसानों को यह समझने में सहायता की कि वे भी स्वतंत्रता संग्राम का हिस्सा हैं। इस प्रकार, अहिंसा ने उन्हें एक सशक्त भूमिका प्रदान की।

अहिंसा और संघर्षशीलता का अंतर्संबंध

पश्चिमी उत्तर प्रदेश के संदर्भ में सबसे महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि यहाँ अहिंसा और संघर्षशीलता के बीच एक संतुलन स्थापित हुआ। यह संतुलन स्वतः नहीं आया, बल्कि यह एक दीर्घकालिक प्रक्रिया का परिणाम था, जिसमें स्थानीय नेतृत्व और सामाजिक अनुभवों की महत्वपूर्ण भूमिका रही।

यहाँ के लोगों ने अपने पारंपरिक साहस को बनाए रखते हुए अहिंसा को अपनाया। उन्होंने संघर्ष के साधनों को बदल दिया, किंतु संघर्ष की भावना को बनाए रखा। इस प्रकार, हिंसात्मक टकराव के स्थान पर नैतिक प्रतिरोध ने स्थान ले लिया, जो अधिक प्रभावी और व्यापक सिद्ध हुआ।

आलोचनात्मक विश्लेषण

हालाँकि गांधीवादी अहिंसा का प्रभाव व्यापक रहा, किंतु इसकी कुछ सीमाएँ भी थीं। सभी वर्गों ने इसे समान रूप से स्वीकार नहीं किया, और कुछ परिस्थितियों में आंदोलन उग्र भी हुआ। औपनिवेशिक दमन, आर्थिक दबाव और सामाजिक तनाव ने कई बार अहिंसा के पालन को चुनौती दी।
फिर भी, यह स्वीकार करना होगा कि इन सीमाओं के बावजूद अहिंसा ने स्वतंत्रता संग्राम को एक नैतिक आधार प्रदान किया, जिसने इसे वैधता और व्यापक समर्थन दिलाया।

निष्कर्ष

समग्र विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि पश्चिमी उत्तर प्रदेश में गांधीवादी अहिंसा का स्वरूप एक स्थिर और एकरूप विचार के रूप में विकसित नहीं हुआ, बल्कि यह एक गतिशील, संदर्भानुकूल और अनुभव-आधारित प्रक्रिया के रूप में उभरा। इस क्षेत्र की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, विशेषतः 1857 की क्रांति की विरासत, तथा इसकी सामाजिक संरचना, जिसमें संघर्षशीलता और सामूहिकता के तत्व गहराई से विद्यमान थे, ने अहिंसा को एक विशिष्ट रूप प्रदान किया। यहाँ अहिंसा को केवल नैतिक आदर्श के रूप में नहीं, बल्कि एक व्यवहारिक और प्रभावी रणनीति के रूप में अपनाया गया, जो औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध संगठित प्रतिरोध का माध्यम बन सकी।

स्थानीय नेतृत्व ने इस प्रक्रिया में केंद्रीय भूमिका निभाई। विष्णु शरण दुबलिश, इंद्र विद्यावाचस्पति, मुखराम त्यागी और रघुवीर नारायण त्यागी जैसे नेताओं ने गांधीवादी सिद्धांतों को केवल प्रचारित नहीं किया, बल्कि उन्हें अपने कार्यों के माध्यम से जीवंत बनाया। उन्होंने यह सिद्ध किया कि अहिंसा

निष्क्रियता का पर्याय नहीं है, बल्कि यह एक सशक्त नैतिक बल है, जो संगठित जनशक्ति के साथ मिलकर प्रभावी राजनीतिक परिवर्तन ला सकता है।

किसान आंदोलनों के संदर्भ में यह और अधिक स्पष्ट हो जाता है कि अहिंसा ने ग्रामीण समाज को एक नई राजनीतिक चेतना प्रदान की। कर न देने, बहिष्कार और शांतिपूर्ण विरोध जैसे साधनों के माध्यम से किसानों ने यह दर्शाया कि वे केवल आर्थिक इकाई नहीं हैं, बल्कि राजनीतिक परिवर्तन के सक्रिय भागीदार भी हैं। इस प्रकार, अहिंसा ने उन्हें एक वैचारिक और रणनीतिक आधार प्रदान किया, जिसने उनके संघर्ष को व्यापकता और वैधता दी।

हालाँकि, यह भी स्वीकार करना आवश्यक है कि अहिंसा का पालन हर परिस्थिति में पूर्णतः संभव नहीं था। औपनिवेशिक दमन, आर्थिक दबाव और सामाजिक तनावों के कारण कुछ अवसरों पर आंदोलन उग्र भी हुआ। फिर भी, इन सीमाओं के बावजूद, गांधीवादी अहिंसा ने स्वतंत्रता संग्राम को एक नैतिक दिशा प्रदान की, जिसने उसे केवल सत्ता परिवर्तन के संघर्ष से ऊपर उठाकर एक व्यापक सामाजिक आंदोलन में परिवर्तित कर दिया।

अतः यह कहा जा सकता है कि पश्चिमी उत्तर प्रदेश का अनुभव यह सिद्ध करता है कि किसी भी विचारधारा की वास्तविक सफलता उसके स्थानीय रूपांतरण में निहित होती है। गांधीवादी अहिंसा यहाँ केवल एक सिद्धांत नहीं रही, बल्कि यह एक जीवंत और प्रभावी सामाजिक-राजनीतिक प्रक्रिया के रूप में विकसित हुई, जिसने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को एक नई दिशा प्रदान की।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Bipan Chandra. (1989). India's Struggle for Independence. Penguin.
2. Brown, J. (1972). Gandhi's Rise to Power. Cambridge University Press.
3. Gandhi, M. K. (1938). Hind Swaraj. Navajivan.
4. Pandey, G. (1978). The Ascendancy of the Congress in Uttar Pradesh. Oxford.
5. Sarkar, S. (1983). Modern India. Macmillan.
6. Amin, S. (1995). Event, Metaphor, Memory. University of California Press.
7. Guha, R. (1983). Elementary Aspects of Peasant Insurgency. Oxford

Equal Online Opportunity And Digital Accessibility To Educate Hearing Impaired Students.

Dr. Sandeep Kumar Morishetty
Assistant Professor
Department Of Social Work
Guru Ghasidas Vishwavidyalaya
Bilaspur, Chhattisgarh

Khushboo Tiwari
Research Scholar,
Department Of Social Work
Guru Ghasidas Vishwavidyalaya
Bilaspur, Chhattisgarh

Abstract

The quick development of digital and mobile technologies has drastically changed the educational landscape, especially with regard to the incorporation of e-learning into the larger context of distance learning (d-learning). The idea of m-learning, which gives students the freedom to access instructional materials whenever and wherever they choose, has surfaced with the introduction of contemporary mobile devices. In general, e-learning refers to methods of instruction and learning that are facilitated by computers, the internet, and other electronic devices. It includes virtual classrooms, computer-based learning, online learning, and digital learning environments. E-learning, which combines aspects of learning theory with knowledge management, is essentially a potent system of knowledge transmission made possible by networks and technological platforms.

E-learning has emerged as a particularly useful teaching tool for deaf students. Accessibility is significantly improved by the visual and interactive aspects of digital content, such as animations, graphics, and videos with subtitles, and materials that support sign language. HI students can learn at their own pace, review material as needed, and access resources without the communication

barriers that are frequently present in traditional classrooms thanks to e-learning's mobility and flexibility. As a result, it helps students with hearing impairments develop their skills, become more engaged in their studies, and become more independent.

For the majority of students, e-learning has become a crucial form of instruction in higher education. It offers a quick and easy way to learn new things, improve skills, and keep up with academic material. In many institutions today, e-learning resources serve as the foundation for the delivery of instruction. This article explores the use of e-learning systems by HI students in higher education institutions in and around Bilaspur (C.G.), highlighting the opportunities and difficulties they face while pursuing their academic goals.

Key words- Deaf, Hearing Impaired, Digital Accessibility, E-Learning

Introduction

For those with disabilities, the internet has proven to be a blessing. Deafness and dumbness are among the most common congenital disabilities worldwide. It is estimated to occur 30 times more frequently than other congenital disorders. Two-thirds of the world's 250–300 million deaf people live in developing nations, with India having the highest percentage, according to the WHO. One in twelve (1/12) Indians have hearing loss, according to a recent article published on January 23, 2007, in India's leading daily newspaper, The Times of India. India is home to about 63 million members of the deaf and hard of hearing community (DHH).

We now live in a digital age thanks to advancements in information and communication technology. The new era of education is known as e-learning, which transitions from physical facilities to networked ones, from the classroom to any location at any time, and from paper to the internet. Computers are becoming an essential component of contemporary technology. They act as a gateway to the Internet, which is the main explanation. Educational technology has grown in importance as a result of the regular improvements in computer technology and the Internet, which most teachers have access to.

Digital accessibility is the process of developing web content that is usable by everyone, including people with disabilities. While web accessibility refers to the particular practice of making websites (and web-based apps) more user-friendly, digital accessibility has a wider definition. Any type of electronic media can use it. The ability of people with disabilities to interact, engage, perceive, understand, and contribute to the Web is referred to as web accessibility. This term encompasses visual, auditory, muscular, verbal, cognitive, and neurological issues. Eighty percent of Deaf people are illiterate or have limited literacy, according to the World Federation of the Deaf. As a result, we need to work harder to give Deaf people equal opportunities in the workplace and in education. E-learning is a great way to increase the percentage of Deaf people who are educated by utilising new technology. Recently, a number of cutting-edge technologies have been created to enable HI people to use the internet for training and education. Often called "e-learning," this is the intentional use of networked internet and communication technologies in the classroom.

The primary means of communication for the deaf is sign language. It is one of the fields of study that is currently expanding the fastest. Many new technologies have recently been developed in these fields. In this instance, we must assist deaf people with their Sign Language-translated e-learning resources. The availability of the internet, telephone, and multimedia information services serves as a common electronic platform for processes such as training the Deaf community remotely and continuously.

In India, very few colleges provide e-learning for the deaf. Only a few higher education institutions in Bilaspur used the e-learn technique, which allows us to use the e-learning approach to improve the learning abilities of deaf people, due to a lack of communication equipment, multimedia software, and high implementation costs. Here, we discuss the efficacy of e-learning based on sign language for deaf students at higher education institutions in Bilaspur.

Purpose of the study:-

Finding Barriers: The main goal of this research is to determine the obstacles that deaf and hard of hearing students encounter when trying to use digital platforms and online learning materials. Developing successful solutions to improve accessibility requires an understanding of these obstacles.

Literature Review

1. The flexibility of online learning appeared to appeal to students. The lack of a live instructor, however, was the main drawback of taking classes online. It was thought that students might feel more comfortable taking classes online if the professors answered emails more quickly. The instructors in this study ought to have outlined the communication requirements for the online course. Well ahead of time. Since the professors had morning classes to teach, this would not have happened. In the evenings, students would email the professors and wait for their responses. **(Bilowus, Matthew,)**
2. Goal the purpose of this study is to investigate how hearing and deaf students use the internet. The study also looks into how students perceive digital libraries, online databases, and the internet**. (Kaba, A., & Ellala, Z. K)**
3. This study's goal is to evaluate the literature on these studies and pinpoint the major issues that deaf and hard-of-hearing students have faced since transitioning to an online setting. For a systematic literature review, 34 carefully selected, located, and categorised publications from various academic sources were chosen. The articles in this collection study primarily focused on the difficult issues deaf students faced in higher education during the outbreak. By providing a comprehensive overview of technological challenges, this work contributes to the body of research. Impeding the learning of hearing students. In order for researchers, education specialists, and higher education authorities to adopt the content, the study also makes recommendations for solutions. This task necessitates research. To benefit from an enhanced online learning environment, deaf and hard-of-hearing

students require more comprehensive and efficient teaching and learning strategies**. (Aljedaani, W., Krasniqi, R., Aljedaani, S., Mkaouer, M. W., Ludi, S., & Al-Raddah, K.)**

4. Higher education now has a greater number of students with hearing impairments. Most deaf individuals who finished their education were hired by multinational corporations. Deaf people's careers are completely unrelated to voice. After joining IT organisations, they face more challenges. Utilise technology for computing and communication. As a result, e-learning must be implemented in both education and higher education. People can learn many skills in their higher education, including how to use computers and communication tools. They don't experience a free work environment until after that Occupation. As a result, we must promote and implement e-learn-based instruction in all universities. Facilities for education in and around Chennai. **(N.Vinoth ,Nirmala K.)**

5. The use of instructional technology in remote Alaskan schools was the subject of a survey. All of the surveyed teachers were certified deaf and hard-of-hearing educators working with elementary and high school pupils. The majority of responders were female elementary school teachers with a good education who were older and more knowledgeable. More than 25% had support for deaf education, and nearly half had special education credentials. Data research indicates that teachers who use instructional technology in curriculum or wide agenda formats may benefit from being older, having a higher education, and being certified in secondary education. They also actively use the Internet to access in-service training at the location where their schools have access to technology. One of the main obstacles to increasing the use of technology in the classroom, according to the majority of educators surveyed, is the lack of software integration training. The results of the study have led to recommendations. Created in reference to the educational prerequisites for teachers in rural Alaska. **(Patrick Pillai)**

6. The study focusses on how software that supports deaf children's e-learning can be developed using ICT and web technologies made possible by Web 2.0. Children are taught sign language and traditional teaching techniques in a hybrid way using software. Features for the teacher and student roles are built into an online user interface. By posting and maintaining the materials, users in the teacher role enable users in the student role—deaf children—to effectively learn the foundations of the English language. The results demonstrated that the proposed sample e-Learning mechanism is a good illustration of the concept and could be improved to provide deaf students with a fully functional e-Learning portal. **(Shwan Hadi and Ouzhan A–zdemir)**

Objective Of The Study

1) To find out how easily deaf and hard of hearing students can access online programmes.
2) To determine the obstacles that students who are deaf or hard of hearing have when trying to use online resources.
3) To investigate possible approaches for improving this student population's digital accessibility.

Research methodology:-

In this research, the researcher employed a descriptive research method. Purposive sampling was used to select the participants, and data were collected through both primary and secondary sources.

Importance of Sign language:-

Deaf people go through a different learning process. They use sign language to communicate. In the classroom, the instructor must also teach the pupils sign language. In India, we utilise Indian Sign Language (ISL). There are more indications. The ISL videos available on the internet. The examples for teaching sign language in the classroom are shown in Figure 4. It can be difficult to communicate with deaf people. Without utilising a symbol. There are now more

educational opportunities than ever for Deaf people in Bilaspur. In every way With the help of the sign language interpreter, they can easily exchange information and pick up new skills. These days, sign language interpreters can be found everywhere, including courts, police stations, hospitals, hotels, dining establishments, and educational institutions. For the deaf and dumb, one TV news channel even provides news in sign language.

E-Learning Systems for the Deaf:-

Deaf persons need the e-learning system to acquire knowledge. The following are necessary for e-learn implementation

1. An all-devices virtual classroom
2. Written and visual content
3. A sign language dictionary.
4. Technology for computers and communications
5. Interpreter of sign language
6. Pictures of hand signs
7. A video with instructional material in sign language

Understanding The Needs Of E-Studentswith Hearing Disability:-

The European VET sector (Vocational and Educational Training) has seen a remarkable use of ICT and e-content over the past decade. The implementation of initiatives and tactics targeted at the rehabilitation of a particular population has been spurred by a number of target groups that were having trouble being included in the labour market. The development of e-learning and e-content has been the primary means of addressing this context. Few of the aforementioned initiatives, however, have addressed the issues Deaf people face with learning and inclusion. It is crucial to remember that each student has unique needs. Understanding speech is a very complicated process that can involve the eyes, ears, and brain, even though it is possible to "measure" and describe a person's hearing ability in a number of ways. As a result, a student with "less" measured hearing may be able to comprehend what is being said more clearly than a student with "more"

measured hearing. Tinnitus, or "hearing "internally generated" sounds," and other disabilities, such as visual impairments, can also accompany hearing impairments, which can vary over time.

Higher Education System

The e-learn system is used by most higher education institutions. System-based instruction is preferred by most students in this generation. They prefer to learn new things fast and easily. They take pleasure in using cutting-edge technology on all platforms, including mobile ones. The classroom. In this regard, most colleges and universities employ technology-based teaching, which includes the use of projectors, video conferencing, and audio and video-based methods to present subject materials. Students of all kinds will find it to be very beneficial.

Deaf Students Higher Education System Using E-Learning

We discuss the aforementioned subject with both normal (speech and hearing) and deaf students. Teachers in the conventional teaching style quickly and thoroughly explain the concept. However, we have to explain things to deaf students until they understand them. Teaching at the high school and college levels must be separated in this article on deaf education in higher education.

The majority of educational institutions do not employ the e-learning approach to teaching. Students occasionally use them when necessary. Additional factors contributing to the lack of e-learning adoption include implementation costs and a lack of technology, such as computers and communication equipment.

Most schools at the school level do not use the e-learn method of instruction. Students occasionally use them when needed. For a variety of reasons, including installation costs and a lack of technology (such as computers and communication tools), e-learning has not been widely adopted.

Benefits of E-Learning in Higher Studies

Back then, writing on a board and copying it onto notes was part of the learning process. This method is still used by most educational institutions. A student's absence or absence from class is solely the result of ignorance. In order to

implement the e-learning system, people will watch the instructional film via computers and communication systems if students are absent or miss class the next day. Better education for the deaf is now possible thanks to e-learn technology. We need the infrastructure software, and platform for the e-learning method. Choosing the appropriate technical advanced video is essential in the e-learning system. There are numerous ways to improve video technology.

Communications for people who are deaf and use sign language as their primary language. When selecting or developing sign language communication systems, a method for evaluating a system's utility is necessary. With video communications, there are numerous opportunities for better deaf telecommunications. But there are high standards for the moving picture in sign language. Many of the video conference systems that are currently in use are of insufficient quality for sign language. It was essential to have a method for evaluating the usefulness of sign language communication systems when selecting or developing them.

Proposed System

7. To adopt e-learning using cloud computing and big data in all institutions of higher learning for the deaf.
8. Posting fresh instructional sign language videos while regulating video speed
9. Using cutting-edge software to construct a good computer and communication system.
10. Chatting (text and video chat) with user tracking
11. File sharing and any newly released instructional resources.
12. Make use of ICT.

Obstacles That Students Who Are Deaf or Hard of Hearing Face When Using Online Resources

Numerous obstacles and difficulties deaf or hard-of-hearing students encounter when utilising digital content, web-based learning resources, and online educational platforms. These challenges result from a lack of consideration for

inclusive technology features, visual communication requirements, and accessibility in the design of many online resources.

- **Inaccurate or absent captions in audio-based lessons and videos.**

  The lack of captions or inaccurate, poorly written captions in instructional videos and audio-based lessons is one of the biggest obstacles deaf and hard-of-hearing students encounter when learning online. These students are instantly prevented from comprehending important explanations, instructions, and discussions presented in audio format when multimedia content is not captioned. Even when captions are available, they are frequently inaccurate, out-of-synch, mistranslated, or produced automatically with numerous mistakes, which can skew meaning and lead to confusion. Students find it challenging to follow complicated ideas, technical jargon, or rapid-fire speech when captions are inaccurate, which can result in misconceptions and learning gaps. Deaf and hard-of-hearing students have to spend more time looking for clarification, watching videos again, or depending on outside assistance if captioning is unreliable. This has an impact on their confidence and academic performance in addition to slowing down their learning process. In general, inadequate captioning hinders equitable access to digital content and compromises the inclusiveness of online learning.

- **Lack of sign language interpretation for intricate or complicated material**

  Lack of sign language interpretation for online classes is another significant barrier for deaf and hard-of-hearing students, particularly when the material is intricate, technical, or complex. It can be challenging for many students who primarily use sign language to comprehend written text or captions on their own, especially when the subject matter includes complex vocabulary, abstract ideas, or specialised terminology. These students lose out on the organic, expressive, and visual mode of communication that facilitates deeper understanding in the absence of sign language interpretation. Sign language interpreters also assist in communicating context, tone, and emphasis—aspects

that captions may not always be able to convey. Students find it difficult to keep up with the teacher, take part in discussions, or get their questions answered when online learning platforms do not offer real-time interpretation during live classes or lectures that have been recorded. Because they have to put in more effort to decipher information in a format they are unfamiliar with, this makes students feel alone and increases cognitive load. In the end, the lack of sign language interpretation restricts the academic achievement of deaf and hard-of-hearing students in digital learning environments and results in unequal access to learning opportunities.

- **Learning management systems' limited accessibility features**

  This point relates to the inadequacies or lack of integrated accessibility features in many online learning management systems (LMS). Deaf and hard-of-hearing students find it challenging to use an LMS efficiently when it lacks crucial features like adjustable caption settings, screen reader compatibility, visual alerts, adjustable text size, simple navigation, and integrated sign language support. They are unable to easily access course materials, take part in discussions, receive notifications, or comprehend instructions in real time due to these limitations. Because the platform is not made to accommodate their unique visual and accessibility needs, students encounter difficulties with communication, comprehension, and general engagement.

- **Communication problems in online forums or live virtual classes**

  This point discusses the difficulties deaf and hard-of-hearing students encounter when attempting to engage in live chats, virtual classrooms, and group discussions. Students who are unable to hear or lip-read clearly may find it difficult to follow the conversation, react promptly, or effectively convey their ideas because these platforms frequently rely heavily on spoken communication. Without features like real-time captioning, sign language interpretation, or visual communication tools, it becomes challenging for them to follow fast-paced conversations, recognise who is speaking, and

comprehend the direction of the conversation. They might feel excluded as a result, communicate slowly, or decide not to take part at all. In the end, this diminishes meaningful interaction, teamwork, and engagement in the virtual learning environment.

- **Technical obstacles, such as poor graphics or erratic internet**

This point relates to the technological obstacles that deaf and hard-of-hearing students face when trying to access and comprehend online learning materials. Any technical problem can seriously interfere with these students' learning because they rely so heavily on visual information, such as lip movements, facial expressions, clear video quality, and sign language. It can be difficult to follow sign language or correctly interpret visual cues in low-quality images, blurry video, or dim lighting. In a similar vein, erratic or sluggish internet connections can result in videos freezing, captions lagging, or live sessions disconnecting, which can cause students to miss instructions or not fully comprehend lessons. Even though the content itself may be accessible, these technical obstacles increase frustration, disrupt the learning process, and give deaf and hard-of-hearing students unequal access to digital education.

- **Teachers' lack of knowledge about deaf-friendly digital practices**

This point relates to the difficulties that occur when educators lack the necessary knowledge or training to enable deaf and hard-of-hearing students to participate in online learning. It's possible that many teachers don't know how to create or present digital lessons that satisfy these students' visual, linguistic, and communication needs. Because of this, educators might neglect crucial procedures like offering precise captions, disseminating transcripts, employing lucid images, making sure the lighting is appropriate for lip-reading, or setting up sign language interpretation. Additionally, they might conduct online classes at a pace that is challenging for deaf students to follow, rely too much on spoken instructions, or neglect to monitor caption quality. Teachers may inadvertently erect obstacles that restrict student involvement,

comprehension, and engagement if they lack sufficient knowledge and training. This ignorance emphasises the need for professional development in accessible and inclusive digital education and leads to unequal learning experiences.

- **Deaf Students Educational Institutions in Bilaspur, Chhattisgarh.**
  There are almost four hearing-impaired schools in and around Bilaspur. They were unable to implement an e-learning system for teaching due to a lack of technology and communication systems. They occasionally have to use the e-learn method if they need to display any multimedia-related images or videos. The majority of students who attended these schools had rudimentary e-learning skills. Only one of these four schools offers higher secondary education, while the other three only offer secondary education up to the tenth grade. All schools must use the e-learn teaching method in order to provide deaf students with a successful education.

Results of the study:-

As evidenced by the advantages of using technology in the classroom. However, when it comes to the implementation of mobile application learning techniques, there aren't many resources outlining how mobile apps can assist deaf and dumb students in learning Malay using sign language. Therefore, this study examines the basis for using mobile applications to instruct and learn for students who are deaf or mute. The results of the study will be used as a guide for incorporating mobile apps and other forms of technology into teaching and learning. The national education strategy, which aims to empower information and communication technology (ICT) in education to produce capable, innovative, and exploration of new fields to generate wealth for the country, may also benefit from the involvement and collaboration of expert groups.

Conclusion:-

Building an inclusive and equitable education system requires providing deaf and mute (deaf and speech-impaired) students with equal online opportunities and digital accessibility. With features like sign-language interpretation, captioned multimedia content, visual alerts, accessible communication tools, and user-friendly interfaces, digital learning platforms must be built to support diverse learners as they grow. In addition to removing obstacles to learning, these resources enable students to actively participate, gain self-assurance, and succeed academically.

Teachers, legislators, tech developers, and families must work together to create a digitally accessible environment. Deaf and speech-impaired students can learn on their own, express themselves clearly, and realise their full potential when accessibility is given top priority in online learning. In the end, encouraging digital accessibility is a commitment to inclusive education and equal rights for all students rather than merely a technical necessity.

References:-

1. Domínguez, A. B., & Alonso, F. (2020). Accessibility in digital learning environments: Improving inclusion for students with disabilities. *Universal Access in the Information Society, 19*(4), 877–887. https://doi.org/10.1007/s10209-019-00695-y
2. Kushalnagar, P., Luckner, J. L., & Kushalnagar, R. (2018). Accessibility and usability of educational technology for deaf and hard-of-hearing students. *American Annals of the Deaf, 163*(1), 65–83. https://doi.org/10.1353/aad.2018.0004
3. Marschark, M., & Knoors, H. (2019). Shifting contexts in deaf education: Toward a broader understanding of learning and teaching. *American Annals of the Deaf, 164*(5), 535–550. https://doi.org/10.1353/aad.2019.0007
4. National Institute for the Deaf. (2020). *Guidelines for accessible online learning for deaf students.* Rochester Institute of Technology.
5. UNESCO. (2021). *The global report on assistive technology.* World Health Organization & UNICEF. https://www.who.int/publications/i/item/9789240049451

6. World Wide Web Consortium (W3C). (2018). *Web Content Accessibility Guidelines (WCAG) 2.1*. https://www.w3.org/TR/WCAG21/
7. World Health Organization. (2021). *World report on hearing*. WHO Press. https://www.who.int/publications/i/item/world-report-on-hearing
8. Challenges and Opportunities in Online Learning Amid COVID-19: A Study on Hearing–Speech Impaired Students of Jammu and Kashmir - Renu Kotwal, Gajendra Singh Chauhan, Swagata Ghosh, 2022 (sagepub.com)
9. Alshawabkeh, A. A., Woolsey, M. L., & Kharbat, F. F. (2021). Using online information technology for deaf students during COVID-19: A closer look from experience. Heliyon, 7(5), e06915. https://doi.org/10.1016/j.heliyon.2021.e06915
10. Aljedaani, W., Krasniqi, R., Aljedaani, S., Mkaouer, M. W., Ludi, S., & Al-Raddah, K. (2022b). If online learning works for you, what about deaf students? Emerging challenges of online learning for deaf and hearing-impaired students during COVID-19: a literature review. Universal Access in the Information Society, 22(3), 1027–1046. https://doi.org/10.1007/s10209-022-00897-5
11. Chemnad, K., & Othman, A. (2024). Digital accessibility in the era of artificial intelligence—Bibliometric analysis and systematic review. Frontiers in Artificial Intelligence, 7, 1349668. https://doi.org/10.3389/frai.2024.1349668
12. Utami, I. S., Surjono, H. D., Sujarwo, S., & Hafid, A. (2025). Online Learning for Students with Hearing Impairment: A Systematic Review. TEM Journal, 1762–1770. https://doi.org/10.18421/tem142-74
13. Rahman, S., Thankachan, B., Samposalo, H. M., Pade, C. S., Tandon, C., Kinnula, M., Monga, C., & Turunen, M. (2024). Technology-Assisted Sign Language Learning for Elementary Schoolchildren - A Cross-Country Study. Front Artif Intell., 222–232. https://doi.org/10.1145/3696593.3696602
14. Joy, S., & Gundmi, A. (2024). E-Learning Strategies Implemented by Instructors for Individuals with Hearing Impairment. Indian Journal of Otolaryngology and Head & Neck Surgery, 76(4), 3140–3145. https://doi.org/10.1007/s12070-024-04630-x
15. Challenges and Opportunities in Online/Hybrid Education for Hearing-Impaired Students in the Context of NEP 2020 – Edusanchar.com. (n.d.). https://edusanchar.com/article/challenges-and-opportunities-in-online-hybrid-education-for-hearing-impaired-students-in-the-context-of-nep-2020/

Understanding Child Sexual Abuse in India: The Role of Parent–Child Relationships and Social Empowerment

Priya Ashok Bambal
Phd scholar, Department of Psychology, RTM Nagpur University Nagpur.

Dr .Subodh Bansod. Asst.Professor, Department of Psychology,RTM Nagpur University Nagpur.

Abstract

Child sexual abuse (CSA) is a serious public health and social issue in India, affecting children across socio-economic, cultural, and regional backgrounds. CSA includes a range of inappropriate sexual behaviours imposed upon children and often results in severe psychological, emotional, behavioural, and social consequences. Despite legal reforms and increasing public awareness, CSA remains significantly underreported in India due to stigma, fear, social pressure, and lack of awareness. This paper examines the role of parent–child relationships and social empowerment in preventing and addressing CSA in India. Strong parent–child communication, emotional trust, and awareness act as protective factors against abuse and encourage disclosure when abuse occurs. Social empowerment through education, legal literacy, awareness campaigns, and community participation further strengthens prevention and intervention efforts. The paper also highlights the specific context of Maharashtra, where urbanization, migration, socio-economic disparities, and digital exposure present additional child protection challenges. Major barriers such as social stigma, inadequate

reporting systems, and limited mental health support are critically analysed. The paper concludes with recommendations including parent education programs, school-based child safety education, community-based interventions, legal awareness campaigns, and improved counselling services to create a safer environment for children in India.

Keywords: child sexual abuse, India, Maharashtra, parent–child relationship, social empowerment, child protection, POCSO Act

Introduction

Child sexual abuse (CSA) is a grave violation of children's human rights and a significant public health concern across the world. According to World Health Organization, CSA includes involving a child in sexual activity that he or she does not fully comprehend, cannot consent to, or is developmentally unprepared for (World Health Organization [WHO], 2016). CSA may involve physical contact, non-contact abuse, exploitation, online abuse, grooming, and exposure to pornography.

Globally, millions of children experience sexual abuse every year, often resulting in long-term consequences such as depression, anxiety, post-traumatic stress disorder (PTSD), substance abuse, low self-esteem, suicidal ideation, and difficulties in interpersonal relationships (Finkelhor, 1994). In India, CSA presents a particularly complex challenge due to cultural silence surrounding sexuality, gender inequality, social stigma, lack of awareness, and institutional weaknesses.

A landmark national study conducted by the Ministry of Women and Child Development found that a significant number of Indian children reported experiencing some form of sexual abuse during childhood (Kacker et al., 2007). The study also revealed that many perpetrators were individuals known to the child, including relatives, neighbours, teachers, and caregivers.

Recognizing the seriousness of CSA, the Government of India enacted the Protection of Children from Sexual Offences Act, 2012 commonly known as the

POCSO Act. This legislation provides a comprehensive legal framework for protecting children from sexual offences and mandates child-friendly reporting and judicial procedures (Government of India, 2012).

In Maharashtra, one of India's most populous and urbanized states, CSA cases have increasingly gained public attention. Rapid urbanization, internet accessibility, migration, economic inequality, and overcrowded urban settlements create vulnerabilities that can expose children to abuse and exploitation. Metropolitan cities such as Pune, Mumbai, and Nagpur have witnessed growing concerns regarding online exploitation, trafficking, and abuse within institutional settings. Although awareness has improved, many cases continue to remain hidden due to fear, shame, and social pressure.

Given these realities, understanding the role of parent–child relationships and social empowerment becomes essential for prevention and intervention. Families, schools, communities, and institutions collectively influence children's safety, resilience, and ability to seek help.

Understanding Child Sexual Abuse in India

CSA in India cuts across:

- gender
- caste
- religion
- socio-economic status
- urban and rural populations

Contrary to common assumptions, boys as well as girls are vulnerable to sexual abuse. Abuse may occur in homes, schools, religious institutions, workplaces, childcare settings, online environments, and public spaces.
Forms of CSA include:

- inappropriate touching
- rape or assault

- exposure to pornography
- online grooming
- sexual harassment
- exploitation for pornography or trafficking
- verbal sexual abuse

The psychological effects of CSA are often severe and long lasting. Survivors may experience:

- anxiety
- depression
- trauma symptoms
- sleep disturbances
- emotional withdrawal
- academic decline
- behavioural problems
- social isolation

In many Indian families, discussions regarding sexuality and bodily autonomy remain culturally restricted. This silence often prevents children from recognizing abusive behaviour or reporting it to trusted adults.

The Role of Parent–Child Relationships

Communication and Trust

Healthy parent–child relationships are built on open communication, trust, emotional warmth, and responsiveness. Children who feel emotionally secure are more likely to disclose inappropriate experiences or seek help during distress.

Parents who maintain open conversations about:

- personal safety
- body boundaries
- privacy
- consent

- inappropriate touch

help children identify abusive situations more effectively.

Research suggests that supportive communication between parents and children significantly enhances preventive practices against CSA (AlRammah et al., 2019). Children who trust their parents are less likely to conceal abuse due to fear or shame.

In the Indian cultural context, authoritarian parenting styles sometimes discourage children from expressing emotions or discussing sensitive issues. Consequently, many children fear punishment, blame, or disbelief if they report abuse. Encouraging emotionally supportive parenting can therefore become a major protective factor.

Awareness and Education

Parents serve as children's first educators and role models. Early education regarding:

- safe and unsafe touch
- body autonomy
- personal boundaries
- identifying suspicious behaviour

can reduce vulnerability to abuse.

Age-appropriate safety education enables children to:

- recognize danger
- refuse inappropriate contact
- seek assistance
- report uncomfortable situations

In Maharashtra, several schools and non-governmental organizations have introduced child safety workshops and awareness initiatives. However, rural and economically disadvantaged communities often lack access to such programs.

Parental digital awareness is also increasingly important due to growing online exposure among children. Internet-based abuse, cyber grooming, and exposure to explicit material have become significant concerns in urban Maharashtra.

Emotional Support

Emotional support from parents plays a crucial role both in prevention and recovery. Children who receive empathy, validation, and reassurance after disclosure are more likely to recover psychologically.

Supportive parental responses help reduce:

- guilt
- shame
- fear
- self-blame

Negative responses such as:

- denial
- victim-blaming
- emotional neglect
- suppression

can intensify trauma and discourage further disclosure.

The family environment strongly influences resilience among survivors of abuse. A nurturing home environment can promote healing and emotional recovery.

Social Empowerment and Its Impact

Education and Awareness Campaigns

Social empowerment begins with public education and awareness. Awareness campaigns educate parents, teachers, caregivers, and children about:

- recognizing abuse
- prevention strategies
- legal rights
- reporting procedures

In India, organizations such as UNICEF and various child rights groups conduct educational campaigns to strengthen child protection mechanisms.

School-based awareness programs are particularly effective because schools provide direct access to children and educators. Programs involving:

- role-play
- storytelling
- interactive discussions
- child helplines

have shown positive outcomes in increasing children's awareness.

Maharashtra has implemented several initiatives through educational institutions and child welfare organizations, though implementation remains inconsistent across districts.

Legal Awareness

Legal empowerment is essential for effective prevention and reporting. The POCSO Act, 2012 established:

- mandatory reporting provisions
- child-friendly investigation procedures
- special courts for child sexual offence cases
- protection of survivor identity

Despite these legal protections, many families remain unaware of their rights and reporting mechanisms.

Lack of legal literacy often results in:

- delayed reporting
- withdrawal of complaints
- fear of legal procedures
- social intimidation

Strengthening legal awareness through:

- schools

- media campaigns
- community outreach
- local governance institutions

can improve access to justice.

Community Support Systems

Communities play a central role in protecting children. Effective child protection requires collective responsibility among:

- parents
- teachers
- healthcare professionals
- social workers
- local authorities
- community leaders

Community support systems may include:

- child protection committees
- counselling centres
- helplines
- safe school policies
- women's self-help groups
- youth organizations

In Maharashtra, urban child welfare systems have expanded in cities such as Mumbai and Pune. However, rural areas often face shortages of:

- trained counsellors
- reporting centres
- rehabilitation facilities
- mental health professionals

Community engagement can reduce social isolation and increase collective vigilance regarding child safety.

Challenges in Addressing CSA in India

Social Stigma

Social stigma remains one of the greatest barriers to addressing CSA in India. Families often avoid reporting abuse due to:

- fear of social humiliation
- concerns regarding family reputation
- victim-blaming attitudes
- pressure from relatives or community members

In many cases, survivors are discouraged from speaking openly because of patriarchal norms and cultural silence surrounding sexuality.

This stigma is particularly severe in rural and conservative communities where disclosure may result in:

- social exclusion
- forced silence
- withdrawal from education
- early marriage

Lack of Awareness

A lack of awareness among children and adults significantly increases vulnerability to abuse.

Many children:

- cannot identify abusive behaviour
- do not understand body autonomy
- are unaware of reporting options

Similarly, many adults fail to recognize behavioural signs of abuse such as:

- withdrawal
- fearfulness
- aggression
- academic decline
- sleep disturbances

Insufficient teacher training also weakens early identification and intervention.

Underreporting

Underreporting remains a major issue in CSA cases across India. Studies indicate that many incidents are never officially reported due to:

- fear
- shame
- dependency on perpetrators
- distrust of authorities
- lengthy legal processes

Children abused by family members or trusted adults may experience confusion and emotional conflict, making disclosure particularly difficult.

In Maharashtra, urban police units and child welfare committees have improved reporting mechanisms, yet systemic barriers persist, especially in marginalized communities.

Psychological and Social Consequences of CSA

CSA can produce profound short-term and long-term effects, including:

- PTSD
- depression
- anxiety disorders
- dissociation
- substance abuse
- self-harm
- suicidal ideation
- interpersonal difficulties

Academic performance often deteriorates due to:

- concentration problems
- emotional distress
- school avoidance

Social consequences may include:

- isolation
- distrust
- difficulty forming relationships
- occupational challenges in adulthood

Without timely intervention, trauma may continue across developmental stages.

Child Protection in Maharashtra: Additional Context

Maharashtra presents a unique context due to:

- rapid urbanization
- migration
- industrialization
- digital expansion
- socio-economic inequality

Large urban centers such as:

- Mumbai
- Pune
- Nagpur

have experienced increased concerns regarding:

- online exploitation
- trafficking
- institutional abuse
- cyber grooming

Government and non-government organizations in Maharashtra have initiated:

- school safety programs
- cyber awareness campaigns
- women and child helplines
- child counselling services

However, disparities between urban and rural regions remain significant. Tribal and rural districts often face:

- limited mental health services
- lack of trained personnel
- inadequate reporting infrastructure

Addressing these inequalities is essential for comprehensive child protection.

Recommendations

1. Parent Education Programs

Governments and educational institutions should implement parent-training programs focused on:

- communication skills
- emotional support
- child safety education
- digital safety awareness

2. School-Based Child Safety Education

Schools should integrate:

- personal safety education
- consent education
- online safety awareness
- emotional literacy

into regular curricula.

Teachers should receive specialized CSA identification and response training.

3. Nationwide Awareness Campaigns

Large-scale media campaigns can:

- reduce stigma
- encourage reporting
- increase public awareness
- normalize conversations regarding child protection

4. Strengthening Counselling and Mental Health Services

Accessible trauma-informed counselling services are essential for survivors and families.

Maharashtra especially requires expanded:

- school counselling services
- child psychology centres
- rehabilitation programs

5. Community Participation

Community-based child protection systems should involve:

- local leaders
- NGOs
- healthcare workers
- teachers
- law enforcement agencies

Collaborative approaches improve monitoring and prevention.

6. Digital Safety Measures

Children should receive education regarding:

- cyber grooming
- online privacy
- safe internet practices
- reporting online abuse

Parents and schools must also monitor digital risks effectively.

Conclusion

Child sexual abuse in India is a multidimensional social and public health issue requiring coordinated efforts across families, communities, institutions, and government systems. Strong parent–child relationships create emotional security, open communication, and trust, enabling children to disclose abuse and seek support. Social empowerment through education, legal awareness, counselling,

and community participation further strengthens prevention and intervention mechanisms.

Although India has made progress through laws such as the POCSO Act, significant challenges including stigma, underreporting, lack of awareness, and unequal access to support services continue to hinder effective child protection. In Maharashtra, urbanization and digital exposure present additional vulnerabilities requiring targeted interventions.

A comprehensive child protection strategy must therefore combine:

- family-based prevention
- school education
- community empowerment
- legal literacy
- psychological support
- social awareness

to create safer environments for children and ensure their rights, dignity, and well-being are protected.

References

1. AlRammah, T., Alqahtani, S. M., Elzubair, A. G., Alnaim, L., Alshammari, E., & Alanazi, A. (2019). Parent–child communication and preventive practices for child sexual abuse. Journal of Taibah University Medical Sciences, 14(4), 363–369.
2. Das, S., De, A., Sharma, N., Sinha, S., Dutta, A., & Nanda, S. (2020). Sexual abuse in children and relevance of the POCSO Act. Indian Journal of Dermatology, 65(1), 74–76.
3. Finkelhor, D. (1994). The international epidemiology of child sexual abuse. Child Abuse & Neglect, 18(5), 409–417.
4. Government of India. (2012). The Protection of Children from Sexual Offences Act, 2012. Government of India.

5. Kacker, L., Varadan, S., & Kumar, P. (2007). Study on child abuse in India. Ministry of Women and Child Development.
6. Patel, V., Flisher, A. J., Hetrick, S., & McGorry, P. (2007). Mental health of young people: A global public-health challenge. The Lancet, 369(9569), 1302–1313.
7. UNICEF. (2020). Child protection in India. UNICEF India
8. World Health Organization. (2016). Responding to children and adolescents who have been sexually abused: WHO clinical guidelines. World Health Organization

Gendered Risks in Cyberspace: Women's Security and Digital Privacy Concerns

Dr. Parijat Pradhan
Senior Assistant Professor, Department of Sociological Studies,
Central University of South Bihar

Abstract:

In the present era of post-industrial society or information age, with the rise of technological advancement and innovations, there is always existence of new opportunities along with potential threats. The adverse repercussions of technology in the form of digital pornography, indecent representation through morphing videos and pictures has become a nightmare for women's security and privacy issues. Any type of vitriolic distortion and manipulation of video and images are possible through use of deepfake technology to cause ignominy for victim which may be either in the form of slut-shaming or revenge porn, etc. According to the NCRB report of 2020, the total number of 2756 cases are being registered for offences against women that includes cyber pornography, publishing obscene sexual materials, cyber stalking, cyber-bullying, defamation, indecent representation of women. 1463 cases out of 2756, are cyber pornography resulted cause of revenge. The malicious approach of cyber criminals violates not only the right of privacy of individuals, but also result into disparaging acts. The misuse of social media accounts points towards the issue of hyperreality, quasi and unreal interactions, fragmented identities, emotional laundering, etc. which turn the real physical spaces into an iron cage. There are cases of suicides, mental depression and loss of work-life balance for women because of cyber threats and intimidation.

This paper will try to do a critical sociological analysis on the flow of technology and the question of women's privacy and security through a secondary data analysis. The researcher will use socio-legal framework for qualitative analysis and to bring out some possible suggestions.

Introduction:

The explosion of digital communication platforms, social networks, and data-driven technologies has fundamentally reshaped social life in the 21st century. For women, the digital world presents both unprecedented avenues for self-expression, economic engagement, and social connectivity, as well as novel forms of risk, surveillance, and exclusion. At the heart of this transformation is Artificial Intelligence (AI), a set of technologies that automate decision making, personalize interactions, and structure vast flows of digital information. While AI promises efficiency and innovation, it also embodies the biases and power inequalities present in the society. This research paper investigates how AI influences women's security and identity in digital spaces through a sociological lens. Specifically, it asks: How does AI shape women's experience of safety, representation, and selfhood online? What are the gendered dimensions of digital risk? How do digital identities intersect with social structures of power? These questions are urgent because digital spaces increasingly mediate public life- from political speech and social movements to access to services and economic participation. Women's participation in these spaces is mediated by algorithms that determine what content they see, who sees their content, how their data is used, and how they are exposed to risks like harassment or doxxing. AI systems, therefore, are not neutral: they reflect and propagate social inequalities, including gender hierarchies. The sociological significance of this inquiry lies in understanding digital identity not as static but as constructed through interaction, visibility and power relations. Women's digital identities ate shaped by personal choices, community norms, technocratic structures, and algorithmic governance.

Theoretical Framework:

Identity in sociological thought refers to how individuals perceive themselves and are perceived by others within social contexts. Erving Goffman's (1956) concept of self-representation suggests that identity is performed through interaction- both offline and online. In digital spaces, identity becomes a curated performance mediated by platform affordances (e.g. profiles, images, text). Digital identity extends beyond self-presentation to encompass datafied subjectivity: the way individuals are categorized, quantified and interpreted through data. Sociologist Zizi Papacharissi (2014) notes that online identity construction is influenced by technologies that both constrain and enable self-expression. Women, in particular, navigate social expectations about gender norms while contending with platform structures that can amplify or suppress their voices. Feminist scholars argue that technology is socially constructed rather than value neutral. Technologies embed and reinforce existing power relations. Women's experiences with technology often reflect broader gender inequalities, including underrepresentation in tech design, pervasive stereotypes, and structural barriers to full participation. Feminist technology studies highlight how AI systems can replicate gender biases hen trained on unrepresentative data. Michael Foucault's (1980) notion of power knowledge illuminates how digital platforms and AI systems produce regimes of visibility that govern what is known about individuals and how they are classified. Surveillance, as a form of power, operates through data collection and algorithmic inference. Women's digital experiences are shaped by these power relations, which influence who is seen, who is targeted, and how identities are interpreted by machines and humans alike. AI encompasses machine learning algorithms, recommendation systems, natural language processing, and predictive analytics. Sociologically, AI functions as a mediating institution: it governs interactions, shapes social norms, and affects civic engagement. Algorithms curate information flows, reinforce social networks, and determine content visibility. Importantly, they do so based on patterns derived from historical data, which often reflect societal biases. Intersectionality- a concept articulated by Kimberle Crenshaw

(1991)- highlights how gender intersects with race, class and other social categories, resulting in layered experiences of privilege or marginalization. Women's interactions with AI must be understood through this lens, as algorithmic systems often fail to account for intersectional identities, leading to disproportional harms for women of colour, queer women, or women from economically disadvantaged backgrounds.

Challenges of Women's Security in Digital Spaces

AI systems trained on biased datasets can misidentify women at higher rates in facial recognition technologies. Research shows that facial analysis algorithms often perform poorly on women, especially women of color, leading to misclassification and potential harms such as wrongful surveillance or exclusion from services. When AI misrepresents women's identities, it erodes trust in digital governance and amplifies social inequalities. Moreover, recommendation algorithms can reinforce gender stereotypes by steering women towards content based on historical consumption patterns such as beauty, caregiving or household management topics, while marginalizing women's voices in domains like politics, science and leadership. These algorithmic steering shapes woman's digital identity and agency. Gendered online harassment disproportionately affects women. AI powered moderation tools are deployed to detect and remove abusive content, yet they often struggle with nuanced language, sarcasm or context- specific harassment. Some systems either fail to protect women from targeted abuse or wrongly censor feminist expressions when keywords trigger automated filters. AI technologies underpin digital surveillance, enabling detailed monitoring of user behaviour, location and communication patterns. For women in patriarchal or restrictive sociocultural contexts, such technologies can facilitate coercive control by intimate partners, family members, or state actors. Mobile phone tracking, image analysis, and behavioral production tools can be used to monitor women's movements and interactions without consent. Moreover, data privacy violation – exacerbated by AI's capacity to correlate diverse data sources – expose women to

identity theft, financial fraud, and exploitation. Women often have less control over their personal data, which may be commodified by companies or abused by external actors. The adverse repercussions of technology in the form of digital pornography, indecent representation through morphing videos and pictures has become a nightmare for women's security and privacy issues. Women are disproportionately targeted online with abusive messages, threats and unwanted attention, often facilitated by the ease of tracking their digital presence. Revenge Porn" where private images are shared without consent can have severe psychological and social consequences for women. There are cases of suicides, mental depression and loss of work-life balance for women because of cyber threats and intimidation. Algorithms may serve women with ads based on gender assumptions, potentially reinforcing harmful stereotypes like using them as commodities for luring men (Wild stone and shaving cream ads). Leaks of personal data from online platforms can expose women's private information to potential abusers. The malicious approach of cyber criminals violates not only the right of privacy of individuals, but also result into disparaging act. For examples cases of sharing photos of girls and women on different apps like Bully Bai case, Sulli Deals case, Bois Locker Room Case, photos and videos of women taking a ritual bath at Maha Kumbh were being shared online through social media accounts (India Today Story), etc. The misuse of social media accounts points towards the issue of hyperreality, quasi and unreal interactions, fragmented identities, emotional laundering, etc. which turn the real physical spaces into an iron cage.

Famous Cases of Misuse of AI and identity- based offences

- AI -Generated Sexual Content and Deepfakes (Niloy Banik Arrest in India, 2025): In Gurgaon, India, a 33-year-old man was arrested for using AI tools to create and distribute obscene, morphed images of a woman on social media. The victim filed a complaint after discovering a fake Instagram account with explicit AI- altered content using her photos. Police acted under cybercrime and relevant criminal provisions addressing the outraging

of a woman's modesty. The accused was taken into judicial custody. This case highlights digital impersonation, identity violation, and sexual exploitation enabled by AI. (The Times of India)

- Spanish Teenager Investigated for AI- Generated Nude Videos (2025): In Valencia, Spain, authorities investigated a 17-year-old male student suspected of creating and sharing AI- generated sexually explicit fake videos of female classmates. Over a dozen victims came forward after fake nude profiles were posted in their names. This case also involved potential charges related to corrupting minors and distribution of explicit AI content. (The Guardian) Europe's enforcement against AI- generated nude deepfakes highlights how criminal law is adapting to non-consensual synthetic media especially where minors are involved.
- Benjamin Jomaa sextortion Case (Australia, 2025): A man in Australia, Benjamin Michael Jomaa pleaded guilty to multiple criminal charges for using AI-generated deepfake images to coerce women into providing intimate photos and threatening distribution. The charges included: using electronic communications to transit sexual material without consent; threatening distribution of intimate images; and, attempts to incite non-consensual acts. This case illustrates how digital and AI-generated content can be weaponized for sextortion and emotional harm and how courts are treating such conduct as serious criminal behaviour. (Daily Telegraph)
- Ashley St. Clair vs. Xai (USA, 2026): Ashley St. Clair filed a lawsuit against Elon Musk's AI company in New York State Superior Court, alleging that the AI chatbot Grok generated and disseminated sexually explicit and sexually exploitative AI images of her including alleged child deepfakes. The suit claims the company failed to remove these images and retaliated against her for reporting them. Although this is civil litigation, it raises

questions about legal accountability for AI platforms that produce harmful content affecting a woman's identity, reputation and psychological security.

- Telugu film actress filed a criminal complaint in Hyderabad after facing online harassment and AI-generated vulgar content following her public comments women's freedom. She identified dozens of individuals allegedly involved in spreading sexually abusive material. Police registered a case under the Bhartiya Nyaya Sanhita and the IT Act, including sexual harassment, defamation, and criminal intimidation. This case shows real-world legal recourse in India for AI-augmented harassment against women in public discourse, combining digital law and traditional penal provisions.
- Vikas Dogra v. State of Himachal Pradesh (2015): Although predating modern AI tools, this case involved the morphing of a woman's face onto a nude body and online circulation. The defendant admitted the act, and the High Court noted problematic societal views in its judgement. Cases like this are now relevant in understanding how courts handle offline-digital intersections of identity and violation that AI amplifies.
- Sulli Deals and Bulli Bai App Cases: These were high profile criminal investigations where apps hosted photos and personal data of Muslim women without consent in a humiliating auction format. FIRs were registered, and suspects were arrested under sections covering insult to modesty and hate speech, these incidents show systemic digital identity harms targeted at women. While not solely a case about AI, the Sulli Deals/Bulli Bai controversies demonstrate how digital platforms and identity exploitation trigger criminal action and public outrage in India.
- Two Zimbabwean Women have lost their important private data because of indecent sharing of their images as victims of revenge porn; one lost her

education midway and the other lost her job. (Expressed to She –Word, BBC).

- In 2014, in Udupi, a college student came to know about her ex-boyfriend who shared her private photographs to the internet. Even in Ahmadabad, a husband was accused of projecting his wife and sister-in-law as sex workers by sharing their naked images on social platform.

  Even in West Bengal after his breakup with his fiancée, a young man shared all personal chats and private moments on social media.

- Celebrity Porn Case: Another form of deepfake sex material refers to face-swapped celebrity porn where famous photos are placed on the bodies of persons participating in sexual acts. Scarlett Johansson and Gal Gadot are just two of the well-known actresses who have appeared in the earliest examples of deep fake sex material. Yet anyone could be a victim of having his or her face superimposed onto the bodies of porn stars engaged in sexual acts.

Towards Equitable Digital Spaces: Policy and Practice

First of all, AI must be designed with gender equity in mind. This includes diverse training data that reflects women's experiences; bias audits to detect and mitigate discriminatory outcomes; showing transparency in algorithmic decision making; and, framing inclusive development teams that prioritize gender perspectives. Incorporating women's voices in design and governance processes ensures that digital systems serve diverse needs rather than replicating exclusionary norms. In fact, robust regulations are needed to protect women's privacy, data rights, and freedom from digital violence. Policies should strengthen data protection and consent mechanisms. It must define clear accountability for AI-driven harms. Government must establish reparative measures for victims of online abuse with integration of intersectional analyses in regulatory standards. International

governance bodies, civil society, and tech companies must collaborate to create frameworks that balance innovation with social justice. Empowering women with digital skills enhances agency and resilience. Digital literacy initiatives should educate women on cybersecurity, privacy management and digital self-defense. Authorities should offer training on AI literacy to understand algorithmic impacts and to support community networks that provide peer learning and advocacy. By building collective capacity, women can better navigate and reshape digital environments. Even many cases shows that courts and law enforcement are using traditional cybercrime statutes (IT Act, IPC, sexual harassment provisions) to handle AI-related harms – even as legal frameworks lag behind rapidly evolving technology. Ironically, women are disproportionately represented as victims in AI abuse cases, leading to prosecutions under defamation, privacy, sexual harassment, and modesty offences.

References

1. Crenshaw, Kimberle. 1991. "Mapping the Margins: Intersectionality, Identity Politics, and Violence Against Women of Color", Stanford Law Review, VOL. 43, NO. 6, PP. 1241-1299
2. Eubanks, Virginia. 2018. "Automating Inequality: How High-Tech Tools Profile, Police and Punish the Poor", St. Martin's Press, Manhattan, New York City.
3. Foucault, Michel. 1980. "Power/Knowledge: Selected Interviews and Other Writings, 1972-1977", Vintage- Penguin Random House India.
4. Goffman, Erving. 1956. "The Presentation of Self in Everyday Life", Doubleday Publisher, Scotland.
5. Noble, Safiya Umoja. 2018. "Algorithms of Oppression: How Search Engines Reinforce Racism", NUY Press, United States

6. Papacharissi, Zizi. 2014. "Affective Publics: Sentiment, Technology and Politics", Oxford Studies in Digital Politics, Oxford University Press, University of Oxford.
7. https://timesofIndia.Indiatimes.com/city/gurgaon/man from assam held for circulating AI morphed photos of Gurgaon woman on social media.
8. https://www.theguardian.com/world/2025/jul/27/spanish teenager investigated - AI-generated nude videos
9. https://www.dailytelegraph.com.au/newslocal/central-coast/man-pleads-guilty-to-using-AI-deepfakes-in-sextortion-plot-against-seven-women/news-story
10. https://timesofIndia.indiatimes.com/city/hyderabad/telugu-actress-files-plaint-over-online-harassment-vulgar-content-using-AI

ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

छात्रावासी एवं गैर छात्रावासी विद्यालय में अध्ययनरत विद्यार्थियों के शालेय वातावरण पर मानसिक स्वास्थ्य के प्रभाव का अध्ययन

डॉ. चंकी राज वर्मा
सहायक प्राध्यापक, स्कूल ऑफ़ एजुकेशन
मैट्स विश्वविद्यालय, गुल्लू, रायपुर

सारांश

विद्यालयों में विद्यार्थियों को अनेक प्रकार के नियमों का समय के अनुसार पालन करना अनिवार्य होता है। जैसे स्कूल समय पर पहुंचना, शिक्षकों की आज्ञा मानना, सबसे मित्र पूर्ण व्यवहार एवं सहानुभूति पूर्ण व्यवहार करना एवं शांति के साथ चलना फिरना समय पर खेलकूद एवं अन्य कार्यक्रमों में भाग लेना आदि इन सभी बातों का पालन करना विद्यालयों की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य एवं विद्यार्थियों की समस्त शक्तियों का विकास करते हुए उसका सर्वांगीण विकास करना होता है। शिक्षा की परिभाषा व्यापक अर्थ में शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो आजीवन चलती रहती है और जीवन के प्रायः प्रत्येक अनुभव से उसके ज्ञान भंडार में वृद्धि होती है शिक्षा से मेरा भी प्रायः बालक था मनुष्य में निहित शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक श्रेष्ठ शक्तियों का सर्वांगीण विकास है। सर्वोच्च शिक्षा वही है जो संपूर्ण दृष्टि से हमारे जीवन का सामंजस्य स्थापित करती है। शिक्षा से मेरा तात्पर्य बालक और मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा की सर्वोच्च सर्वांगीण एवं उत्कृष्ट विकास से है। मनुष्य के अंदर को संपूर्ण रूप से जानना या अभिव्यक्त करना ही शिक्षा कहलाती है। शिक्षा मानव की संपूर्ण शक्तियों का प्रगतिशील सामंजस्य पूर्ण और प्राकृतिक विकास से होता है।

शिक्षा का लक्ष्य मानसिक एवं बौद्धिक विकास को शिक्षा की प्रक्रिया के द्वारा ही सरलता से प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन बालक के संवेगात्मक विकास को सुनिश्चित करना भी विद्यालय का उद्देश्य होना चाहिए लेकिन इसके लिए विद्यालय को अपनी पद्धति का नियोजन करें जिससे बालक का शिक्षा में परिवार के साथ भावनात्मक रूप से जोड़कर अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन करें।

कीवर्ड - विद्यालय, विद्यार्थी, शिक्षा, सर्वांगीण विकास, शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक विकास, शैक्षिक उद्देश्य, विद्यालयीन वातावरण, संवेगात्मक विकास, व्यवहारिक शिक्षा, मूल्यपरक शिक्षा।

प्रस्तावना - विद्यालय के वातावरण को आकर्षक एवं सुदृढ़ बनाने के लिए प्रमुख व्यक्ति की आवश्यकता होती है। लेकिन वातावरण के दो भाग पढ़ सकते हैं जिसमें भौतिक और मनोवैज्ञानिक है आप देखते हैं कि विद्यालय का भवन भले ही सादा हो उसे आकर्षक बनाया जाता बनाया जा सकता है। यदि विद्यालय बनवाने में बहुत पैसे खर्च होता है इसमें अध्यापकों, विद्यार्थियों एवं अभिभावकों की सहायता नहीं मिले तो भी न्यूनतम अनिवार्य आवश्यकता जुटाना कठिन नहीं होगा हमको बस विद्यालय में यही चाहिए कि स्थान को स्वच्छ और व्यवस्थित रखने में सभी के सहयोग की आवश्यकता होती है। जिसे सुचारू ढंग से चला सके जिससे विद्यालय का सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण भी महत्वपूर्ण होता है।

बालक अपने जन्म से मरते दम तक अनेक समस्याओं का सामना करता है। भारत एक विकासशील देश है जिसमें प्रत्येक क्षेत्र में लगभग संसाधनों की अत्यंत कमी होती है। जो व्यक्ति को अपने जीवन काल में आवश्यकताओं की पूर्ति करने में कठिनाई महसूस करती है। कठिनाई उसके व्यक्तिगत, सांवेगिक एवं सामाजिक कारणों से व्यक्ति में दुश्चिंता उत्पन्न करती है। फ्रायड ने किशोरावस्था के काल को आंतरिक संघर्ष मनोवैज्ञानिक समस्या एवं अनिश्चित व्यवहार का बताया है। किशोर एक तरफ अत्यंत अहंकारी देष में अपने आप को केंद्र में रखने वाले होते हैं वहीं दूसरी तरफ आत्म बलिदान तथा समर्पण करने की क्षमता रखते हैं।

भारत में शिक्षा- भारतीय शिक्षा का इतिहास को हम देखें तो भारतीय समाज के विकास एवं छात्रावासी एवं गैर-छात्रावासी बालकों के मानसिक स्वास्थ्य, शैक्षिक दुश्चिंता एवं शाला के वातावरण के अनुसार परिवर्तन देखने को मिल सकते हैं। जिससे उनकी शिक्षा में हम निरंतर विकासशील देखने को मिलता है। प्राचीन भारत में शिक्षा व्यवस्था का निर्माण किया गया था। इसी समय भारत की शिक्षा व्यवस्था का ह्रास हुआ क्योंकि विदेशियों के द्वारा भारत की शिक्षा व्यवस्था को जिस अनुपात से विकसित करना चाहिए उस अनुपात से विकसित नहीं हुआ जिससे विद्यार्थियों का मानसिक स्वास्थ्य का सही से विकास नहीं हो पाई। जिससे विद्यार्थियों को शैक्षिक दुश्चिंता का शिकार होते गए और जिसके कारण शाला का वातावरण में भी प्रभाव देखा गया।

अध्ययन की आवश्यकता - छात्रावासी एवं गैर-छात्रावासी विद्यालय का परिवेश और छात्राओं की उपलब्धियों में अत्यधिक सुस्पष्ट सहसंबंध होता है। विद्यालय वातावरण से विद्यार्थी की बहुत कुछ अपेक्षाएं होती है। उन्हीं सभी अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए भरसक प्रयास करता है। विद्यार्थियों को

प्रेरक एवं मुक्त परिवेश छात्रों के विचारों एवं अभिव्यक्ति की पूरी स्वतंत्रता प्रदान करता है। यह छात्रों की सकारात्मक दृष्टिकोण तथा कार्य निष्पादन से सभी पक्षों में पर्याप्त रूप से प्रतिबिंबित होती है। शाला का वातावरण शाला के स्तरों को उन्नत करने के लिए एक महत्वपूर्ण निवेश है कक्षा के कमरे में शिक्षण अधिगम के प्रभावकारी केंद्र बने उसके लिए विद्यालयों की सहायता अवश्य की जानी चाहिए। जिससे शालाओं में मुक्त परिवेश दे सके। जिससे अध्यापक एकत्रित होकर बिना शिकायत के अच्छा काम कर सकें। अपने कार्य में संतुष्टि होती रही जिससे स्वतः पर्याप्त मात्रा में अभिप्रेरित होते रहे।

अध्ययन का औचित्य - छात्रावासी एवं गैर-छात्रावासी विद्यालय में अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों की मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक दुष्चिंता से शालाओं के वातावरण से विद्यार्थियों को सीखने में प्रभाव डाल सकता है। विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास में शालाओं का महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जिसमें विद्यार्थियों के मानवीय गुणों का विकास करना और विद्यार्थियों को सुयोग्य, सुचरित्र नागरिक बनाने में चुनाव का महत्वपूर्ण योगदान होता है। जिससे विद्यार्थी का मानसिक स्वास्थ्य पर भी इतना प्रभाव पड़ता है। शाला का वातावरण विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती है। जिससे शालाओं के अध्यापक का व्यक्तित्व विकास एवं पाठ्य सहगामी क्रियाएं शिक्षण विधियों का प्रयोग एवं विद्यालय का सामान्य वातावरण से बालकों के शैक्षिक विषमता को दूर भी किया जा सकता है। यह सब बालक के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव डालता है शाला ही एक ऐसा स्थान है जहां बालकों का मानसिक विकास सही तरीके से हो पाता है। इसीलिए कहा गया है कि बालकों में शैक्षिक दुश्चिंता आने पर भी शिक्षा के द्वारा बालकों का सर्वांगीण विकास करना आवश्यक होता है। शाला में आप देखेंगे कि शिक्षक तथा वहां का वातावरण सबसे अधिक महत्वपूर्ण होता है लेकिन शाला एक ऐसा स्थान है जो विद्यार्थी के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित कर विद्यार्थी के विकास में अपना सहयोग दे सकते हैं।

अध्ययन का महत्व - शालेय वातावरण विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने में बहुत महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। छात्रावासी गैर-छात्रावासी विद्यालय में अध्ययनरत विद्यार्थियों की सहानुभूति, प्रेम, सद्भावना और सहयोग से ओतप्रोत होता है। विद्यार्थियों में जाति-भेद, ऊंच-नीच की भावना नहीं होनी चाहिए। प्रत्येक बालक चाहे वह छात्रावासी हो या गैर-छात्रावासी शालाओं में अपने आप को सुरक्षित अनुभव करते हैं। विद्यालय का वातावरण विद्यार्थियों के समूह भावना का विकास करें जिससे विद्यार्थियों में अपने शैक्षिक परिणामों एवं अपने भविष्य के प्रति विद्यार्थियों में चिंता होती रहती है। आज के समय के अनुसार समाज में अपने गुणों तथा योग्यताओं के अनुरूप विषयों का चयन करने के लिए अनेक अवसर प्रदान किए जाते हैं। ऐसी स्थिति में विद्यार्थियों में निर्णय लेने की गतिशील प्रक्रिया को शिक्षक एवं अभिभावक को समझना होगा। जिसे विद्यार्थी अपने विवेकपूर्ण ढंग से अपने विषय के बारे में सही एवं उपयुक्त तरीके से अध्ययन करते हुए उपयुक्त शैक्षिक परिणामों को प्राप्त करें। इस स्तर पर

प्राप्त शैक्षिक स्तर पर उसके शैक्षिक परिणामों में प्रभाव डालेगा। जिससे विद्यार्थी का शैक्षिक दुश्चिंता से व्यक्तित्व का समुचित विकास संभव नहीं है इसके लिए मानसिक रूप से स्वस्थ बालक सामाजिक परिवारिक संवेगात्मक तथा व्यवसायिक जीवन में समायोजन करने में सफल होता है। यदि कोई बालक मानसिक द्वंद-चिंता और मनोग्रंथियों से पीड़ित हो तो उसके लिए समायोजन करना संभव नहीं समायोजन का अभाव उसके व्यक्तित्व को विघटित कर सकता है अतः व्यक्तित्व का संगठन मानसिक स्वास्थ्य के द्वारा ही प्राप्त हो सकती है।

अध्ययन की सार्थकता - किसी भी छात्रावासी एवं गैर छात्रावासी विद्यालय का वातावरण एवं वहां के शिक्षा का स्वरूप बालक की योग्यता तथा क्षमता को प्रभावित करती है। छात्रावासी एवं गैर छात्रावासी दोनों विद्यालय में भिन्न-भिन्न आदत के बालक भिन्न-भिन्न रुचि और दृष्टिकोण रखने वाले विद्यार्थी आते हैं। जिस तरह से बालक का शारीरिक विकास होता है लेकिन बाहरी वातावरण के संपर्क में आने से छात्रावासी विद्यार्थी के शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन देखने को मिलता है। इसके परिवर्तन से शाला का वातावरण तथा बाहरी वातावरण का प्रमुख योगदान होता है। अभी हम देखें तो सभी स्तरों में स्पर्धा का माहौल है विद्यार्थियों में भी हमें यह देखने को मिलता है। इस स्पर्धा के कारण बाकी अपने सहपाठियों से पीछे रहना पसंद नहीं करते और साथ ही आगे अच्छी संस्था में प्रवेश के लिए प्रयास करते हैं। जिसमें उनको रोजगार उपलब्ध हो सके लेकिन कई विद्यार्थियों को रोजगार नहीं मिल पाने से शैक्षिक रूप से चिंतित रहते हैं। अच्छा पढ़ाई लिखाई और परिणाम अच्छा प्राप्त करने से शाला का वातावरण की उपस्थिति अनिवार्य है। सभी संबंधित शोध अध्ययनों को देखने से यह स्पष्ट होता है कि प्रस्तावित शोध समस्या पर छात्रावासी एवं गैर-छात्रावासी बालकों की मानसिक स्वास्थ्य शैक्षिक दुश्चिंता पर शालेय वातावरण का प्रभाव एवं शोध अध्ययन का अभाव पाया गया। इस शोध में इसके अभाव की पूर्ति का माध्यम बना है प्रस्तुत अध्ययन से यह ज्ञात होगा कि शाला का वातावरण मानसिक स्वास्थ्य एवं शैक्षिक दुश्चिंता को प्रभावित करता है। इसके परिणाम से छात्रावासी एवं गैर-छात्रावासी विद्यार्थियों, शिक्षकों, अभिभावकों, प्रशासकों एवं शैक्षिक नीति निर्धारणों के मार्गदर्शन हेतु लाभप्रद होंगे। विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य में वृद्धि हेतु प्रयास किए जा सकेंगे तथा शालेय वातावरण इस प्रकार निर्मित किए जा सकेंगे जिससे कि विद्यार्थियों में शैक्षिक क्षमता कम हो सके।

अध्ययन का उदेश्य:-

1. छात्रावासी एवं गैर छात्रावासी विद्यालय के विद्यार्थीयों की शालेय वातावरण एवं मानसिक स्वास्थ्य के मध्य संबंध का अध्ययन करना।
2. छात्रावासी एवं गैर छात्रावासी विद्यालय के विद्यार्थीयों की मानसिक स्वास्थ्य एवं शालेय वातावरण के मध्य संबंध का अध्ययन करना।

3. छात्रावासी एवं गैर छात्रावासी विद्यालय के विद्यार्थीयों की मानसिक स्वास्थ्य एवं लिंग एवं परिवेष के मध्य संबंध का अध्ययन करना।
4. छात्रावासी एवं गैर छात्रावासी विद्यालय के विद्यार्थीयों की शालेय वातावरण एवं लिंग एवं परिवेष के मध्य संबंध का अध्ययन करना।

परिकल्पना:-

- **H_{01}.** छात्रावासी एवं गैर छात्रावासी विद्यालय के विद्यार्थीयों की मानसिक स्वास्थ्य एवं शालेय वातावरण के मध्य संबंध का सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।
- **H_{02} .** छात्रावासी एवं गैर छात्रावासी विद्यालय के ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थीयों की मानसिक स्वास्थ्य एवं शालेय वातावरण के मध्य संबंध का सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।
- **H_{03} .** छात्रावासी एवं गैर छात्रावासी विद्यालय के शहरी क्षेत्र के विद्यार्थीयों की मानसिक स्वास्थ्य एवं शालेय वातावरण के मध्य संबंध का सार्थक अंतर नहीं पाया जाएगा।

अध्ययन की विधि - शोध अध्ययन में शोधार्थी के द्वारा सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। शोध एक ऐसा व्यवस्थित तथा नियंत्रित अध्ययन है। जिसके अंतर्गत संबंधित चरो व घटनाओं के पारस्परिक संबंधों का अन्वेषण तथा विश्लेषण उपयुक्त सांख्यिकीय विधि तथा वैज्ञानिक विधि के द्वारा किया जाता है। जिससे प्राप्त परिणाम से वैज्ञानिक निष्कर्ष, नियम तथा सिद्धांतों की रचना, खोज व उसकी पुष्टि की जाती है।

न्यादर्श - प्रस्तुत शोध अध्ययन में न्यादर्श के रूप में रायपुर जिले के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के छात्रावासी एवं गैर-छात्रावासी उच्चतर मा. विद्यालय में से 600 न्यादर्ष के रूप में लिया गया है।

उपकरण -

क्र.	उपकरण का नाम	चर	निर्माणकर्ता का नाम
1	शालेय वातावरण मापनी	शालेय वातावरण	डॉ. करूणा शंकर मिश्रा
2	मानसिक स्वास्थ्य बैटरी	मानसिक स्वास्थ्य	प्रो. अरूण कुमार सिंग,डॉ. अल्पना सेन गुप्ता

परिकल्पनों का सत्यापन -

परिकल्पना क्रमांक H_{01} छात्रावासी एवं गैरछात्रावासी उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का सार्थक सहसंबंध उनके शालेय वातावरण के प्रभाव के साथ नहीं पाया जायेगा। इस परिकल्पना के सत्यापन के लिये आंकड़ों का विश्लेषण तालिका क्रमांक 1 में दिया गया है। तालिका क्रमांक 1 में छात्रावासी एवं गैरछात्रावासी उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत्

विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य तथा शालेय वातावरण के प्रभाव के मध्य सहसंबंध गुणांक को प्रस्तुत किया गया है।

तालिका क्रमांक -1

छात्रावासी एवं गैरछात्रावासी उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य तथा शालेय वातावरण के प्रभाव के मध्य सहसंबंध गुणांक

चर	N	'r'
छात्रावासी विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य	600	.157
शालेय वातावरण के प्रभाव	600	

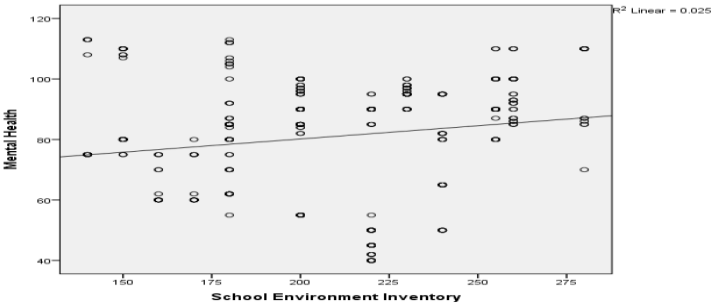
r(df=398)0.148 at .01 level

.01 के सार्थकता स्तर पर

तालिका क्रमांक 1 के अनुसार छात्रावासी एवं गैरछात्रावासी उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य तथा शालेय वातावरण के प्रभाव के मध्य सहसंबंध गुणांक r=.157 है। गणना किये गये सहसंबंध गुणांक का मान भी सारणी में दिये गये मान r(df=398)0.148 at .01 level से अधिक है। प्राप्त परिणामों के अनुसार छात्रावासी एवं गैरछात्रावासी उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के शैक्षिक शालेय वातावरण के प्रभाव प्राप्तांकों (प्रतिशत) में वृद्धि होने पर उनके मानसिक स्वास्थ्य परीक्षण में अंकों में वृद्धि हो रही है। अतः छात्रावासी एवं गैरछात्रावासी उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य का सार्थक एवं धनात्मक सहसंबंध उनके शालेय वातावरण के प्रभाव के साथ है। छात्रावासी एवं गैरछात्रावासी उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य एवं शालेय वातावरण के प्रभाव के मध्य सहसंबंध को आरेख क्रमांक 1 में भी दर्शाया गया है।

आरेख क्रमांक - 1

छात्रावासी एवं गैरछात्रावासी उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत् विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य तथा शालेय वातावरण के प्रभाव के मध्य सहसंबंध गुणांक का प्रकीर्ण आरेख



आरेख क्रमांक -1 के अनुसार ट्रेंड रेखा में नीचे से ऊपर की ओर ढाल दिखायी दे रही है जो कि दो चरों के बीच सहसंबंध को सिद्ध करती है। आरेख क्रमांक 1 से प्राप्त R^2=.025से यह ज्ञात होता है कि मानसिक स्वास्थ्य पर छात्रावासी एवं गैरछात्रावासी उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत् विद्यार्थियों पर शालेय वातावरण का प्रभाव 2% विचरण उत्पन्न करता है। उपरोक्त परिणाम के परिप्रेक्ष्य में **परिकल्पना क्रमांक H_{01} अस्वीकार्य है।**

परिकल्पना क्रमांक H_{02} छात्रावासी एवं गैरछात्रावासी विद्यालय में अध्ययनरत् ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों पर शालेय वातावरण का सार्थक सहसंबंध उनके मानसिक स्वास्थ्य के साथ नहीं पाया जायेगा। इस परिकल्पना के सत्यापन के लिये आंकड़ों का विश्लेषण तालिका क्रमांक 2 में दिया गया है। तालिका क्रमांक 2 में छात्रावासी एवं गैरछात्रावासी उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत् ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों पर शालेय वातावरण तथा मानसिक स्वास्थ्य के मध्य सहसंबंध गुणांक को प्रस्तुत किया गया है।

तालिका क्रमांक -2

छात्रावासी एवं गैरछात्रावासी उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत् ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों पर शालेय वातावरण तथा मानसिक स्वास्थ्य के मध्य सहसंबंध गुणांक

चर	N	'r'
विद्यालय में अध्ययनरत् ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों पर शालेय वातावरण	300	.361
मानसिक स्वास्थ्य	300	

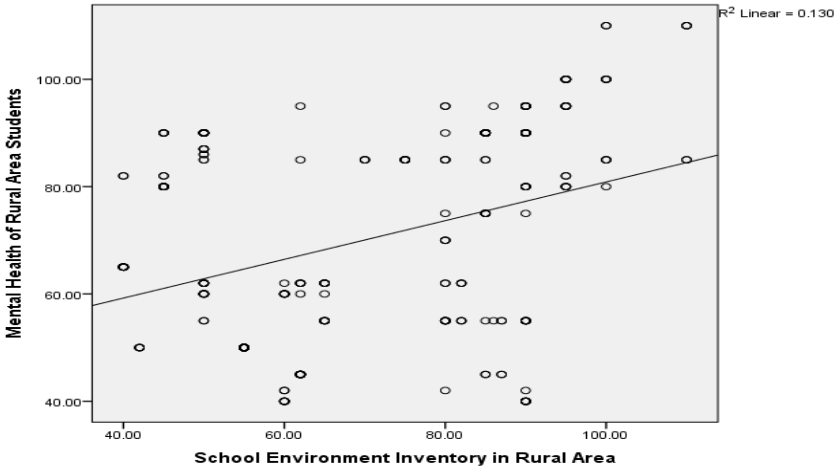
R(df= 369)0.10 at .01 Level

.01 के सार्थकता स्तर पर

तालिका क्रमांक 2 के अनुसार छात्रावासी एवं गैरछात्रावासी उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत् ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों पर शालेय वातावरण तथा मानसिक स्वास्थ्य के मध्य सहसंबंध गुणांक तत्र r=.361 है । गणना किये गये सहसंबंध गुणांक का मान भी सारणी में दिये गये मान r(df=369) = 0.10 at .01 Level से अधिक है । प्राप्त परिणामों के अनुसार छात्रावासी एवं गैरछात्रावासी उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत् ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों पर शालेय वातावरण परीक्षण में अंकों में वृद्धि होने पर उनके मानसिक स्वास्थ्य प्राप्तांकों (प्रतिशत) में वृद्धि हो रही है । अतः छात्रावासी एवं गैरछात्रावासी उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत् ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों पर शालेय वातावरण का सार्थक एवं धनात्मक सहसंबंध उनके शैक्षिक दृष्ंिचता के साथ है। छात्रावासी एवं गैरछात्रावासी उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत् ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों पर शालेय वातावरण एवं मानसिक स्वास्थ्य के मध्य सहसंबंध को आरेख क्रमांक 2 में भी दर्शाया गया है।

आरेख क्रमांक - 2

छात्रावासी एवं गैरछात्रावासी उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत् ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों पर शालेय वातावरण तथा मानसिक स्वास्थ्य के मध्य सहसंबंध गुणांक का प्रकीर्ण आरेख



आरेख क्रमांक 2 के अनुसार ट्रेंड रेखा में नीचे से ऊपर की ओर ढाल दिखायी दे रही है जो कि दो चरों के बीच सहसंबंध को सिद्ध करती है। आरेख क्रमांक 2 से प्राप्त R^2=0.130 से यह ज्ञात होता है कि मानसिक स्वास्थ्य पर छात्रावासी एवं गैरछात्रावासी उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत ग्रामीण क्षेत्र के विद्यार्थियों पर मानसिक स्वास्थ्य 13% विचरण उत्पन्न करती है। उपरोक्त परिणाम के परिप्रेक्ष्य में **परिकल्पना क्रमांक H_{02} अस्वीकार्य है।**

परिकल्पना क्रमांक H^{03} छात्रावासी एवं गैरछात्रावासी विद्यालय में अध्ययनरत् शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों के पर शालेय वातावरण का सार्थक सहसंबंध उनके मानसिक स्वास्थ्य के साथ नहीं पाया जायेगा। इस परिकल्पना के सत्यापन के लिये आंकड़ों का विश्लेषण तालिका क्रमांक 3 में दिया गया है। तालिका क्रमांक 3 में छात्रावासी एवं गैरछात्रावासी उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत् शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों पर शालेय वातावरण तथा मानसिक स्वास्थ्य के मध्य सहसंबंध गुणांक को प्रस्तुत किया गया है।

तालिका क्रमांक 3

छात्रावासी एवं गैर छात्रावासी उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत् शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों पर शालेय वातावरण तथा मानसिक स्वास्थ्य के मध्य सहसंबंध गुणांक

चर	N	'r'
विद्यालय में अध्ययनरत् शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों पर शालेय वातावरण	300	.204
मानसिक स्वास्थ्य	300	

r(df=369)0.10 at .01 Level

.01 के सार्थकता स्तर पर

तालिका क्रमांक 3 के अनुसार छात्रावासी एवं गैरछात्रावासी उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत् शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों पर शालेय वातावरण तथा मानसिक स्वास्थ्य के मध्य सहसंबंध गुणांक तत्र r=.204 है। गणना किये गये सहसंबंध गुणांक का मान भी सारणी में दिये गये मान **r(df=369)0.10 at .01 Level** से अधिक है। प्राप्त परिणामों के अनुसार छात्रावासी एवं गैरछात्रावासी उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत् शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों पर शालेय वातावरण परीक्षण में अंकों में वृद्धि होने पर उनके मानसिक स्वास्थ्य प्राप्तांकों (प्रतिशत) में वृद्धि हो रही है। अतः छात्रावासी एवं गैरछात्रावासी उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत् शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों पर शालेय वातावरण का सार्थक एवं धनात्मक सहसंबंध उनके मानसिक स्वास्थ्य के साथ है। छात्रावासी एवं गैरछात्रावासी उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय में अध्ययनरत् शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों

पर शालेय वातावरण एवं मानसिक स्वास्थ्य के मध्य सहसंबंध को आरेख क्रमांक 3 में भी दर्शाया गया है।

सुझाव –

प्रस्तुत शोध अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर कुछ सुझाव प्रस्तुत है-

1. किसी भी राष्ट्र में अध्यापक निर्णायक स्थिति में होते हैं क्योंकि वे ही भावी नागरिकों का निर्माण करते हैं।
2. बालकों को अपने लक्ष्य, योग्यता, क्षमता व बालकों के रूचि के आधार पर निर्णय लेना चाहिए ना कि दूसरों का अनुसरण करना चाहिए।
3. बच्चों के अध्ययन के समय स्कूलों का वातावरण पर प्रमुखता ध्यान देना चाहिए।
4. अभिभावकों को अपने बालकों के लिए उचित समय निकालने और उन्हें उपेक्षित ना करें।
5. बच्चों के अभिभावक दूसरों के सामने अपने बच्चों की कमजोरियों के बारे में बात न करें इससे बच्चों में हिन की भावना आ जाती है।
6. प्राचार्य उच्चतर माध्यमिक विद्यालय या बाकी स्कूलों के एक समूह बनाकर कम से कम एक निर्देशन व परामर्श केंद्र खोला जाए, जिससे प्रशिक्षितों के द्वारा छात्र-छात्राओं को लाभ प्रदान करना चाहिए।
7. छात्रावासी एवं गैर-छात्रावासी विद्यालय में निर्देशन एवं परामर्श केंद्र की स्थापना करने का उचित प्रयास करना है।
8. स्कूल स्तर पर यदि संभावना हो तो यथासंभव संकुल स्तर पर परामर्शदाता की नियुक्ति की जाए। इस हेतु आवश्यक है कि निर्देशन एवं परामर्श प्रशिक्षण केंद्रों में वृद्धि की जाए।
9. संदर्भ सूचि:-

संदर्भ सूची

1. बेस्ट, जॉन डब्ल्यू. एवं काह्न, जेम्स वी.. (2006). शिक्षा में अनुसंधान (10वाँ संस्करण). पियर्सन एजुकेशन।
2. भाटिया, हंसराज. (2011). शैक्षिक मनोविज्ञान का पाठ्यपुस्तक. मैकमिलन पब्लिशर्स इंडिया लिमिटेड।
3. गैरेट, हेनरी ई.. (2008). मनोविज्ञान एवं शिक्षा में सांख्यिकी. सुरजीत पब्लिकेशन्स।

4. मंगल, एस. के.. (2012). उन्नत शैक्षिक मनोविज्ञान (द्वितीय संस्करण). पीएचआई लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड।

5. सिंह, अरुण कुमार. (2015). व्यवहारिक विज्ञानों में परीक्षण, मापन एवं अनुसंधान विधियाँ. भारती भवन प्रकाशन।

6. अग्रवाल, जे. सी.. (2010). शिक्षा के सिद्धांत एवं दर्शन. विकास पब्लिशिंग हाउस प्राइवेट लिमिटेड।

7. मिश्रा, करूणा शंकर. (2009). शालेय वातावरण मापनी निर्देशिका. नेशनल साइकोलॉजिकल कॉर्पोरेशन।

8. सिंह, अरुण कुमार एवं सेन गुप्ता, अल्पना. (2013). मानसिक स्वास्थ्य बैटरी निर्देशिका. नेशनल साइकोलॉजिकल कॉर्पोरेशन।

9. फ्रायड, सिगमंड. (2010). मनोविश्लेषण का सामान्य परिचय. स्टर्लिंग पब्लिशर्स।

10. पाण्डेय, रामशकल. (2014). शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धांत. विनोद पुस्तक मंदिर।

11. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद. (2005). राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2005. एनसीईआरटी।

12. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग. (2018). उच्च शिक्षा एवं मानसिक स्वास्थ्य दिशा-निर्देश. यूजीसी प्रकाशन।

13. कौल, लोकेश. (2009). शैक्षिक अनुसंधान की पद्धति (चतुर्थ संस्करण). विकास पब्लिशिंग हाउस।

14. शर्मा, आर. ए.. (2011). शैक्षिक अनुसंधान के मूल तत्व. लॉयल बुक डिपो।

15. बुच, एम. बी.. (2012). शिक्षा में अनुसंधान का द्वितीय सर्वेक्षण. एनसीईआरटी।

ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

जनपद हमीरपुर में ऐतिहासिक एवं धार्मिक पर्यटन विकास का अध्ययन

डॉ. सुशील कुमार यादव
सहायक प्राध्यापक, इतिहास
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय हमीरपुर उ.प्र.

आज पर्यटन एक उभरता हुआ उद्योग है। हमीरपुर , उत्तर प्रदेश में बुन्देलखण्ड क्षेत्र के अन्त्रगत राजा हम्मीर देव की पुण्यस्थली है। चन्देल कालीन शासन में यहा का वैभव एवं गौरव खूब बढा। यह महर्षि पाराशर, जमदग्नि एवं श्रृंगी ऋषि जैसे मनस्वियों की तपोसाधना से सुवासित रही है। यह यमुना और वेतवा नदियों के बीच में बसा हुआ शहर है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में इस जनपद का उल्लेखनीय योगदान रहा है। बुन्देलखण्ड के गांधी नाम से लोकविश्रुत दीवान शत्रुघ्न सिंह और बुन्देलखण्ड के मालवीय स्वामी ब्रम्हानंद इसी धरा से थे। जनपद हमीरपुर में 4 तहसील हमीरपुर, राठ, मौदाहा, सरीला हैं। 7 ब्लाक हैं। यह चित्रकूट धाम मण्डल का हिस्सा है। यह 25,95 उत्तरी व 80,15 पूर्वी निर्देशांक पर स्थित है। अतीत में पूर्वजों द्वारा अपनी सभ्यता के अनुकूल रुचि के अनुसार ज्ञानकौशल का प्रदर्शन कर अनेक स्मारकों का निर्माण करवाया गया जिनमें वहां की संस्कृति झलकती है, ऐतिहासिक विरासत कहलाती है। इतिहासकार ए. एल. बाषम के अनुसार, विरासत सिर्फ स्मारकों या कला वस्तुओं तक ही सीमित नहीं होती। इसमें उन परम्पराओं एवं प्रभावी सोचों को भी शामिल किया जाता है जो पूर्वजों से अगली पीढ़ी को प्राप्त होते हैं। जैसेः कला प्रदर्शन, धार्मिक एवं सांस्कृतिक उत्सव और परम्परागत शिल्पकला। यह विरासत अपनी प्रकृति के अनुरूप क्षणभंगुर होती है। इन्हें संरक्षण के साथ-साथ समझने की भी आवश्यकता है। वैश्वीकरण के इस बढ़ते दौर में अपनी विरासत को अक्षक्षुण्ण बनाये रखना एक बड़ी चुनौती है। बीता हुआ समय बहुत महत्वपूर्ण होता है क्योंकि यह फिर वापस नहीं आता। इसीलिये शुभचिंतकों द्वारा अतीत को हमारी विरासत के तौर पर कहीं पुस्तकों तो कही इमारतों के रूप में संजोकर रखा गया है। पुस्तकों, इमारतों अथवा अन्य रूपों में जो भी हमारी विरासत है, उसे नजरअंदाज नहीं करना चाहिये। इतिहास प्रेमी एवं धार्मिक आस्थावान व्यक्ति ऐतिहासिक एवं धार्मिक पर्यटन की ओर आकर्षित होते हैं। हम अपने शोध के द्वारा पर्यटन के नजरिये से महत्वपूर्ण यहाँ के इतिहास को, ऐतिहासिक एवं

धार्मिक विरासत को जनमानस तक पहुंचाना चाहते हैं। पर्यटन का शाब्दिक अर्थ है-अपने मूल निवास स्थान को छोड़कर अन्य भूभाग में भ्रमण हेतु जाना, कुछ समय वहाँ ठहरना तथा वहाँ की विशेषता को महसूस करना। पर्यटन अंग्रेजी के शब्द 'टूरिज्म' का समानार्थक है जिसका सम्बन्ध टूर से है।जब हम पर्यटक के रूप में किसी स्थान की यात्रा करते हैं तो हमें उस स्थान या क्षेत्र की ऐतिहासिकता, समाज के रीति रिवाज, पहनावा, संस्कृति एवं खान पान आदि को समझने का अवसर प्राप्त होता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पर्यटन के समय अध्ययन की प्रक्रिया भी चलती रहती है इसीलिए हिब्रू भाषा में पर्यटन को टूअर (अध्ययन) कहा जाता है। पर्यटन मनोरंजन के साथ साथ अर्थव्यवस्था से भी सम्बन्धित होता है। व्यापक नजरिये से विचार करने पर पर्यटन को उद्योग का नाम दिया जाता है।पर्यटन के प्रमुख घटक प्राकृतिक ऐतिहासिक अथवा धार्मिक स्थलों की उपलब्धता, सड़क, परिवहन, सुरक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, भोजन, पेयजल, ठहरने की उत्तम व्यवस्था, स्थानीय लोगों का व्यवहार, टूर गाइड, स्थानीय उत्पाद बाजार, सांस्कृतिक कार्यक्रमों की धूम आदि पर्यटन विकास को प्रभावित करते हैं। अतः पर्यटन विकास को ध्यान में रखते हुए सरकारी और प्राइवेट स्तर पर स्थनीय उत्पादों तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों के लिए विशेष मंच स्थापित किए जाने चाहिये। यदि हम पर्यटन स्थलों की साज सज्जा, मनोरंजन के साधन और उच्च गुणवत्ता युक्त परिधीय सेवाओं को विश्व के समक्ष प्रस्तुत करें तो अवश्य ही यहाँ का पर्यटन विकास तेजी से होगा। विरासतों का नष्ट हो जाना तथा अपने अतीत को खो देना प्रत्येक राष्ट्र के लिए बड़ी क्षति होती है। मेरे इस शोध के द्वारा समाज, सरकार और प्रशासन में जागरुकता बढ़ी है।

प्रमुख ऐतिहासिक एवं धार्मिक स्थल-

1- **सिंह महेश्वर मन्दिर** – यह हमीरपुर का बहुत ही प्रसिद्ध एवं मान्यता वाला मन्दिर है। यह यमुना और वेतवा नदियों के संगम पर स्थित है इसीलिए इसे श्री संगमेश्वर धाम भी कहा जाता है। यहा पर स्थापित शिव पार्वती की प्रतिमाएं बडी आस्था की प्रतीक हैं। श्रावण मास के सोमवार और शिवरात्रि को यहा बडे मेंले लगते हैं।



ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

2. **-चैरा देवी मन्दिर-** यह हमीरपुर शहर में मा दुर्गा का बहुत ही सिद्ध मन्दिर है। यहा एक ही प्रांगण में कई देवी देवताओं की प्रतिमाएं स्थापित हैं। यहा सदैव भक्तों की भीड दिखती रहती है। नवरात्रि के दिनों में यहा बहुत बडा मेला लगता है। ऐसी मान्यता है कि यहा मा दुर्गा की मूर्ति स्वयं प्रकट हुई थी। यहा समय समय पर प्रसाद और भोजन के भण्डारे चलते रहते हैं।



3. **कल्पवृक्ष-** यह हमीरपुर में बस स्टैण्ड के पास बहुत ही दुर्लभ वृक्ष है। इसे पारिजात वृक्ष भी कहा जाता है। लोगों का ऐसा मानना है कि यह स्वर्ग का वृक्ष है और शरद पूर्णिमा, गणेश चतुर्थी जैसे कुछ विशेष दिनों में यदि इसके नीचे खड़े होकर कोई कामना की जाए तो वह अवश्य पूरी होती है। इसे देव व्रत के नाम से भी जाना जाता है। क्योंकि इसके पास देवताओं का निवास होता है, ऐसा कहा जाता है। इसमें फूल फल दोनों होने के बावजूद इसकी दूसरी प्रजाति उत्पन्न नहीं हो पाती है।



ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

4. **मेहर बाबा समाधि स्थल-** हमीरपुर के इतिहास में मेहर बाबा का बहुत ही उच्च स्थान है। यहा नवम्बर माह में प्रत्येक वर्ष बहुत बडा मेला लगता है। हमीरपुर निवासी मेहर बाबा की कृपा सदैव महसूस करते रहते हैं।



5. **हजरत निजामी शाह एवं मस्तान शाह की दरगाह-** गंगा जमुनी तहजीब का प्रतीक यह स्थान मौदाहा तहसील के कम्हरिया गाव में स्थित है। यहा शालाना उर्स बडी ही धूम धाम से मनाया जाता है। यहा बडी दूर दूर से लोग मन्नतों की चादर चढाने आया करते हैं। यह हिन्दू मुस्लिम एकता का प्रतीक है। यहा बीमारी, भूत बयार आदि का झाड फूक से रूमानी इलाज किया जाता है।



ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026



6. **रोटी राम बाबा समाधि स्थल एवं गायत्री शक्ति पीठ-** यह हमीरपुर और भरूआ सुमेरपुर के बीच एक सिद्ध स्थान है। यहा रोटी राम बाबा के चमत्कार की अनेक कहानिया प्रसिद्ध हैं। एक बार उन्होंने पानी से पूडिया बना दीं थीं।



ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026



निष्कर्ष-

शोध के फलस्वरूप यह स्पष्ट हो जाता है कि हमीरपुर ऐतिहासिक एवं धार्मिक पर्यटन की दृष्टि से बहुत ही समृद्ध जनपद है। यदि यहा पर्यटन के विभिन्न घटकों को विकसित किया जाए तो पर्यटन उद्योग स्थापित होगा जिससे यहा के युवाओं को रोजगार मिल सकेगा और क्षेत्र का आर्थिक विकास होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1. समर गाथा ,बुन्देलखण्ड - हमीरपुर एवं महोबा संघर्ष द्वारा डॉ. भवानीदीन , आराधना ब्रदर्स प्रकाशन कानपुर , 2025
2. अभिनंदन ग्रंथ दीवान शत्रुघ्न सिंह, गांधी राष्ट्रीय विद्यालय राठ
3. भारत में पर्यटन विकास, द्वारा डॉ. संजय कान्त भरद्वाज, हेमन्त पब्लिशिंग हाउस दिल्ली, 2013
4. हमीरपुर में प्रमुख दर्शनीय स्थल, न्यूजपेपर हिन्दुस्तान
5. कल्चरल हिस्ट्री आफ बुन्देलखण्ड द्वारा डॉ. एम. एल. निगम
6. चन्देल कालीन कालिंजर अभिलेख
7. बुन्देलखण्ड का सांस्कृतिक इतिहास द्वारा लक्ष्मी प्रसाद मिश्र
8. पर्यटन मंत्रालय एवं हमीरपुर डिस्ट्रिक्ट वेबस

ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

Beyond Access: Reimagining Inclusion through Education 5.0 in Indian Higher Education Institutions

Pradeep Vishwakarma
Research Scholar, Department of Education, Doctor Harisingh Gour Vishwavidyalaya, Sagar (M.P.)

Dr. Naveen Singh
Assistant Professor, Department of Education, Doctor Harisingh Gour Vishwavidyalaya, Sagar (M.P.)

Abstract

The paradigm of inclusion in higher education has shifted from ensuring access to promoting meaningful participation, equity, and empowerment of all learners. In the Indian context, this transformation becomes crucial as the country envisions Viksit Bharat 2047. Education 5.0 a new-age learning framework, redefines education as human-centered, technologically enhanced, emotionally intelligent, and ethically grounded. It integrates the capabilities of artificial intelligence, robotics, big data, and cognitive learning with empathy, social responsibility, and sustainability. This research paper explores how Indian Higher Education Institutions (HEIs) can reimagine inclusion beyond physical access by adopting Education 5.0 principles. It emphasizes that inclusion must extend to digital accessibility, psychological safety, emotional wellbeing, and intellectual participation. The study also examines the intersection of Education 5.0 and India's National Education Policy (NEP) 2020, which envisions a holistic, multidisciplinary, and inclusive education ecosystem. By analyzing key areas such as AI-driven personalized learning, assistive technologies, faculty sensitization, and universal design for learning (UDL), this paper demonstrates how technology and empathy can co-create inclusive academic spaces. Furthermore, it highlights the barriers infrastructural, cultural, and digital that still hinder participation of Persons with Disabilities (PwDs) and other marginalized groups in Indian HEIs. The paper concludes that true inclusion in the Education 5.0 era must transcend tokenistic access and aim toward empowerment through intelligent learning ecosystems. It recommends institutional reforms, accessibility audits, and innovation labs dedicated to inclusive technologies. Such a transformative approach will enable India's higher education to evolve from education for all to education with all realizing the spirit of inclusive excellence envisioned in NEP 2020 and the global Sustainable Development Goals (SDG4).

Keywords: Inclusion, Education 5.0, Higher Education, NEP 2020, Artificial Intelligence, PwDs, Digital Accessibility.

Introduction

The landscape of higher education in the 21st century is undergoing a profound transformation. The advent of the Fourth Industrial Revolution significantly reshaped education through automation, digitization and artificial intelligence (AI), emphasizing efficiency, scalability and skill alignment with emerging labor markets (Puncreobutr, 2016; Schwab, 2017). However the emerging paradigm of Education 5.0 moves beyond technological determinism to envision a human-centered, value-driven and inclusive educational ecosystem. It seeks to harmonize technological intelligence with empathy, ethics and emotional intelligence, thereby preparing learners not only for employability but also for responsible citizenship and humane social engagement (Fukuyama, 2018; UNESCO, 2021). Education 5.0 is grounded in the philosophy that education is not merely an academic or economic pursuit but a social responsibility a critical instrument for promoting equity, sustainability, and collective well-being. This paradigm represents a conceptual shift from "technology for efficiency" toward "technology for inclusion and empowerment,"where digital innovation is guided by ethical values and human needs rather than market imperatives alone (Shiroishi, Uchiyama, & Suzuki, 2019). In this sense, Education 5.0 closely aligns with the vision of Society 5.0, which emphasizes the use of advanced technologies to enhance human dignity, social justice, and inclusive development (Fukuyama, 2018).

In the Indian context, this vision assumes particular significance as the nation aspires to realize the goal of Viksit Bharat 2047. Achieving this objective necessitates the creation of a higher education ecosystem capable of empowering every learner irrespective of disability, gender, caste, region, or socioeconomic background to learn, innovate, and contribute meaningfully to national development (GoI, 2020). True inclusion, therefore, extends far beyond physical access or enrollment statistics; it encompasses active participation, equity in learning outcomes, learner agency and a sense of belonging within academic spaces (UNESCO, 2020). Despite considerable expansion in enrollment and infrastructure, Indian HEIs continue to face significant challenges in realizing substantive inclusion. Students with disabilities (PwDs), learners from marginalized communities, and first-generation students frequently encounter barriers related to academic participation, inaccessible infrastructure, digital exclusion, inflexible assessment practices, and limited psychosocial support (UGC, 2023; AISHE, 2023). These challenges reveal a persistent gap between progressive policy frameworks and institutional practices, suggesting that access without empowerment remains fundamentally incomplete (Singh, 2022).

The National Education Policy 2020 provides a strong normative foundation by emphasizing inclusive and equitable education as both a constitutional mandate and a moral responsibility of the state (MoE, 2020). The policy advocates flexible curricula, multidisciplinary learning, technology enabled education, and targeted support for marginalized learners, particularly PwDs. However, translating these policy aspirations into lived educational realities requires a paradigmatic transformation in institutional design, pedagogy, governance and technology adoption (UNESCO, 2021). In this context, Education 5.0 offers

a timely and transformative framework for reimagining inclusion in Indian higher education. By integrating AI-driven personalized learning, assistive technologies, Universal Design for Learning and emotionally intelligent pedagogy, Education 5.0 enables HEIs to evolve into adaptive, empathetic and inclusive learning ecosystems (Meyer, Rose, & Gordon, 2014; Holmes, Bialik, & Fadel, 2019). Therefore, the present paper explores how the philosophy and practices of Education 5.0 can help Indian higher education transcend the boundaries of access and reimagine inclusion as a pathway toward empowerment, innovation, and human flourishing.

Objectives of the Study

1. To conceptualize Education 5.0 as a human-centered, ethical, and inclusive educational paradigm within the context of higher education.
2. To examine the current status of inclusion in Indian Higher Education Institutions, with special reference to PwDs and marginalized learners.
3. To analyze the limitations of access-based inclusion models and identify gaps between policy frameworks and institutional practices in Indian HEIs.
4. To explore how Education 5.0 can reimagine inclusion through intelligent technologies, inclusive pedagogy, and adaptive governance structures.
5. To propose a strategic framework and policy recommendations for implementing Education 5.0 driven inclusive practices aligned with NEP 2020, SDG 4, and the Viksit Bharat 2047 vision.

Research Methodology

This study employs a qualitative and analytical research methodology to examine Education 5.0 and its potential for promoting inclusive practices in Indian HEIs. The research primarily utilizes secondary data sources, including government policies, institutional reports, scholarly articles, and case studies. Key references include the National Education Policy 2020 (MoE, 2020), the Rights of Persons with Disabilities UNESCO reports on inclusive education (UNESCO, 2021), and studies on Education 5.0 (Fukuyama, 2018; Puncreobutr, 2016).

The methodology follows three approaches. First, conceptual analysis explores the principles of Education 5.0, emphasizing human-centeredness, ethics, and inclusivity (UNESCO, 2021). Second, policy and document analysis examines NEP 2020, RPwD Act 2016, UGC guidelines, and AICTE accessibility norms to identify gaps between policy and institutional practice (UGC, 2022). Third, case study review investigates best practices in institutions such as IIT Madras, Delhi University, and TISS, highlighting the integration of intelligent technologies, inclusive pedagogy, and adaptive governance (Holmes, Bialik, & Fadel, 2019; Radianti et al., 2020). The study is exploratory and interpretive, ensuring ethical use of credible sources and equitable representation of marginalized learners. This methodology supports the study's objectives by conceptualizing Education 5.0, assessing current inclusion practices, and proposing actionable strategies for fostering inclusive, technology-enabled higher education in India.

Conceptual Framework of Education 5.0

Education 5.0 emerges from the global vision of Society 5.0, first proposed by Japan, which seeks to create a human-centered, super-smart society by harmonizing advanced technologies with social well-being, sustainability, and inclusion (Fukuyama, 2018). Translating this vision into education, Education 5.0 represents a qualitative shift in educational philosophy—moving beyond digital efficiency and automation toward humanization, ethical intelligence, and inclusive innovation. Unlike earlier paradigms that emphasized content mastery or technological adoption, Education 5.0 focuses on nurturing empathy, creativity, critical thinking, and social responsibility alongside technological competence (UNESCO, 2021). In this framework, technology is not treated as an end in itself but as a means to enhance human potential and social equity. Artificial intelligence (AI), big data, and immersive technologies are strategically employed to personalize learning, remove accessibility barriers, and support marginalized learners, particularly persons with disabilities (PwDs). Thus, Education 5.0 marks a transition from learning for employment to learning for life and societal transformation.

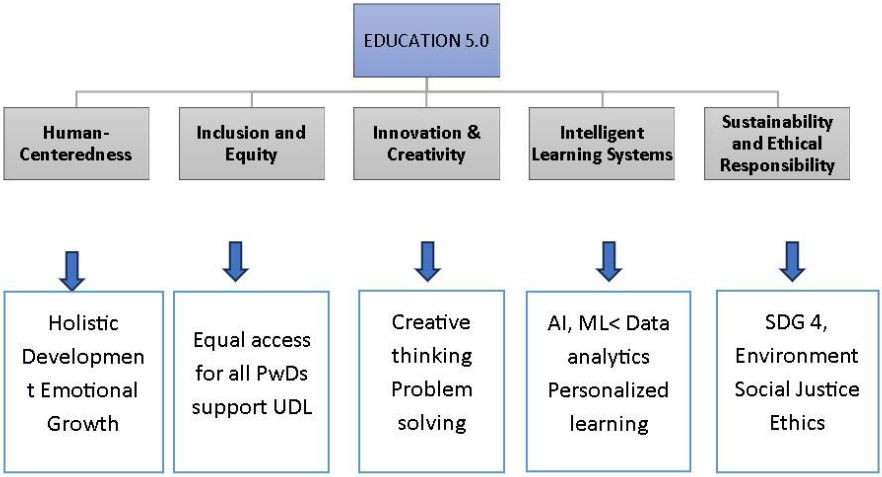
Evolution of Educational Paradigms: Education 1.0 to 5.0

Educational Era	Dominant Focus	Key Characteristics	Role of Technology	Learning Orientation
Education 1.0	Knowledge transmission	Teacher-centered, rote learning, authority-driven	Minimal	Passive reception
Education 2.0	Industrial efficiency	Standardization, discipline-based curricula	Mechanical aids	Controlled learning
Education 3.0	Information access	Computer-based learning, internet use	ICT and e-learning	Self-paced learning
Education 4.0	Digital transformation	Automation, AI, online platforms, MOOCs	Advanced digital tools	Blended learning
Education 5.0	Human-centered innovation	Empathy, inclusion, sustainability, ethics	AI + human intelligence	Adaptive, personalized learning

Source: Adapted from Puncreobutr (2016); Fukuyama (2018); UNESCO (2021).

Core Principles of Education 5.0

Education 5.0 is founded on a set of interrelated principles that collectively redefine the purpose, process, and outcomes of education in the twenty-first century. These principles emphasize the integration of advanced technologies with human values, ensuring that education remains inclusive, ethical, and socially responsive (Fukuyama, 2018; UNESCO, 2021).



Dimensions of Education 5.0 in Higher Education

Education 5.0 represents a transformative paradigm in higher education, integrating human-centered pedagogy, intelligent technology, and inclusive practices to create adaptive, socially responsive learning ecosystems (Fukuyama, 2018; Shiroishi, Uchiyama, & Suzuki, 2019). Unlike earlier models, it emphasizes holistic learner development by combining technical competence with emotional intelligence, creativity, ethical responsibility, and social awareness. Its curricular dimension focuses on multidisciplinary, competency-based, and value-oriented programs that incorporate ethics, sustainability, critical thinking, and inclusion, aligning with India's National Education Policy (NEP) 2020 and particularly benefiting marginalized learners and persons with disabilities (*MoE*, 2020). The pedagogical dimension prioritizes learner-centered, collaborative, and experiential approaches, with educators acting as mentors guiding project-based and inquiry-oriented learning that accommodates diverse cognitive and emotional needs (UNESCO, 2020). The technological dimension employs AI, learning analytics, virtual and augmented reality, and assistive technologies to personalize learning, provide adaptive feedback, and enhance accessibility, positioning technology as an enabler rather *than* a replacement for teachers (Holmes, Bialik, & Fadel, 2019; OECD, 2021). Inclusive governance and assessment frameworks monitor participation and learning outcomes while AI-supported, competency-based evaluations recognize diverse abilities and reduce systemic disadvantages (Brown & Race, 2013; UGC, 2022). Finally, the social and ethical dimension encourages universities to function as agents of societal transformation through community engagement, service-learning, and ethical education, fostering empathy, civic responsibility, and social consciousness in alignment with Sustainable Development Goal 4 (SDG 4) (United Nations, 2015). Overall, Education 5.0 enables Indian higher education institutions to

offer equitable, adaptive, and human-centered learning that promotes inclusion, innovation, and holistic development for all learners.

Education 5.0 and the Indian Context

In the Indian context, the concept of Education 5.0 closely aligns with the vision of the National Education Policy (NEP) 2020, which emphasizes equity, inclusion, multidisciplinary learning, and the integration of technology within education (MoE, 2020). The NEP's emphasis on providing education that is "rooted in Indian ethos while responding to global needs" resonates strongly with the human-centered, holistic, and socially responsive philosophy of Education 5.0, which prioritizes ethical values, adaptability, and learner well-being (UNESCO, 2021). Key areas of convergence include the promotion of flexible curricula and multidisciplinary education, enabling learners to acquire diverse competencies across disciplines, as well as the strengthening of digital infrastructure to ensure equitable access through national platforms such as SWAYAM, DIKSHA, and NPTEL (Government of India, 2020). Furthermore, NEP 2020 highlights inclusive education, particularly for Persons with Disabilities (PwDs), through the use of accessible learning resources, assistive technologies, and universal design principles, which reflects the inclusive and adaptive learning ecosystems advocated by Education 5.0 (Singh, 2022). Additionally, both frameworks underscore the importance of value-based education, aiming to cultivate empathy, ethics, social responsibility, and global citizenship among learners. Thus, Education 5.0 can be viewed as a philosophical and operational framework that strengthens the implementation of NEP 2020 by supporting intelligent, inclusive, and adaptive educational systems capable of addressing contemporary societal challenges.

Education 5.0 and Inclusive Learning Outcomes

By integrating human-centered pedagogy with intelligent technologies, Education 5.0 enables measurable inclusive outcomes:

- Enhanced learner autonomy and engagement through adaptive systems.
- Reduction in dropout rates among PwDs and marginalized learners.
- Improved faculty responsiveness through learning analytics.
- Development of ethical, empathetic, and socially responsible graduates.

These outcomes align directly with NEP 2020, SDG 4, and India's vision of Viksit Bharat 2047 (Government of India, 2020).

Pedagogical Implications of Education 5.0

The pedagogical implications of Education 5.0 necessitate a fundamental shift in teaching philosophy, moving away from traditional content transmission toward the co-creation of knowledge through active learner engagement and social interaction (UNESCO, 2021). Contemporary pedagogical models within this framework emphasize collaborative learning, which fosters teamwork, peer learning, and mutual respect among students with diverse abilities and backgrounds, thereby strengthening inclusive educational practices (Johnson & Johnson, 2019). The adoption of blended and hybrid learning

approaches integrating digital technologies with conventional classroom methods enhances flexibility, accessibility, and learner autonomy, particularly in heterogeneous learning environments (Graham, 2020). Furthermore, the application of Universal Design for Learning (UDL) principles ensures that curriculum design, instructional strategies, and assessment methods are accessible and responsive to the needs of all learners, including those with disabilities (CAST, 2018). Education 5.0 also foregrounds empathy-based teaching, which requires educators to develop emotional intelligence and sensitivity toward students' cognitive, emotional, and social contexts, thereby promoting well-being and meaningful learning (OECD, 2021). Additionally, reflective practice is recognized as a core pedagogical strategy, encouraging both teachers and learners to engage in self-assessment, critical reflection, and continuous improvement, which are essential for lifelong learning and professional growth (Schön, 1983). Collectively, these pedagogical shifts position Education 5.0 as a transformative approach that aligns instructional practices with human-centered, inclusive, and future-oriented educational goals.

Inclusion in Indian Higher Education: Current Status and Challenges

Inclusion in higher education signifies not merely access but active participation, representation, and success for learners of all social, economic, and physical diversities. In India, where higher education serves as a gateway to social mobility and empowerment, inclusion holds profound importance (Antil, 2014). Yet, despite progressive policies and constitutional safeguards, the lived realities of many marginalized groups especially persons with disabilities (PwDs), women, and socioeconomically disadvantaged communities reveal persistent barriers. With the emergence of Education 5.0, inclusion is being redefined beyond physical accessibility to encompass digital inclusion, emotional wellbeing, and intelligent support systems. To understand the transformative potential of Education 5.0, it is vital first to assess the current landscape of inclusion in Indian higher education institutions (HEIs).

Policy Framework for Inclusive Higher Education in India

India's commitment to inclusive higher education is rooted in its constitutional ethos and supported by legislative and policy frameworks ensuring equity, access, and social justice. The Constitution of India through Articles 15, 29, 30, 41, and 46 guarantees equality of opportunity, prohibits discrimination, and enables provisions for disadvantaged groups, including Persons with Disabilities (PwDs) (Government of India, 1950). The Rights of Persons with Disabilities (RPwD) Act, 2016 strengthens this mandate by ensuring equal access, reasonable accommodation, and a 5% reservation for PwDs in higher education (Government of India, 2016). The National Education Policy (NEP) 2020 further emphasizes inclusive and equitable education through barrier-free environments, flexible curricula, and assistive technologies (MoE, 2020). Additionally, UGC guidelines (2022) and AICTE Accessibility Guidelines (2021) promote Equal Opportunity Cells, enabling units, and accessible infrastructure. Despite this robust framework, implementation remains uneven due to funding, infrastructure, capacity, and monitoring challenges, limiting effective inclusion.

Present Scenario of Inclusion in Indian HEIs

The expansion of higher education in India has been significant: from a Gross Enrollment Ratio (GER) of 10% in 2000 to nearly 28.4% in 2023 (AISHE, 2023). Yet, this quantitative growth often masks qualitative disparities.

1) Access and Participation

- While female enrollment has increased considerably (49% of total HEI enrollment in 2023), participation of PwDs remains under 0.26%, far below the mandated 5%.
- Students from Scheduled Castes (SCs) and Scheduled Tribes (STs) still face cultural and linguistic barriers that hinder full participation.
- Digital divides particularly in rural and marginalized areas exacerbate inequality in online and blended learning modes.

2) Institutional Mechanisms

Most central and state universities have established Equal Opportunity Cells (EOCs), yet these are often underresourced or lack dedicated staff. Assistive technologies are either outdated or inconsistently implemented. Few institutions, such as the University of Delhi, JNU, and IITs, have set examples through accessibility audits and disability resource centers, but such initiatives are not universal.

3) Curriculum and Pedagogy

Inclusion within pedagogy remains limited. Teaching methods largely follow a "one-size-fits-all" approach, neglecting diverse learning needs. Courses seldom integrate Universal Design for Learning (UDL) principles or provide accessible materials such as etexts, captions, or signlanguage support.

4) Digital and Technological Barriers

The transition to digital education during the COVID19 pandemic highlighted the digital inequity among students. PwDs and economically weaker students faced difficulties accessing online classes due to lack of assistive devices, internet connectivity, and accessible interfaces. The "Digital India" initiative and SWAYAM platform have improved reach, but accessibility compliance remains inconsistent.

Inclusion of Persons with Disabilities (PwDs)

PwDs represent one of the most excluded groups in higher education. According to census data 2011, India has over 2.68 crore persons with disabilities, yet their enrollment in higher education is disproportionately low. Key challenges include:

1. Physical Barriers: Inaccessible buildings, hostels, libraries, and transportation within campuses.
2. Technological Barriers: Limited assistive devices and lack of digital content in accessible formats.

3. Attitudinal Barriers: Stereotypes and low expectations among faculty and peers.
4. Policy Gaps: Delayed implementation of reservation policies, lack of financial assistance, and unclear accountability mechanisms.
5. Assessment Challenges: Inflexible examination formats that disadvantage learners with specific disabilities.

Some universities, such as IGNOU and Banaras Hindu University (BHU), have initiated inclusive practices like audio books, scribes, and dedicated support centers but these remain isolated cases rather than systemic norms.

Emerging Best Practices

Despite challenges, several Indian institutions have pioneered inclusive initiatives that align with the Education 5.0 ethos

- IIT Madras – "Assistive Technology Lab" developing innovative solutions for visually and hearingimpaired learners.
- University of Delhi – "Centre for Disability Studies" providing accessibility audits and inclusive curriculum workshops.
- Tata Institute of Social Sciences (TISS) – "Resource Centre for Inclusion" promoting Universal Design for Learning (UDL) in higher education.
- Amrita University – "LiveinLabs" initiative integrating communitybased learning for marginalized groups through digital innovation.

These examples illustrate that inclusion can be effectively institutionalized when leadership commitment, technology, and pedagogy converge.

Challenges in Achieving Full Inclusion

While progress has been made, several systemic and structural challenges hinder India's path toward fully inclusive higher education:

1. Resource Inequity: Financial and infrastructural constraints in state universities limit the implementation of accessibility measures.
2. Lack of Trained Faculty: Most educators lack training in inclusive pedagogy or the use of assistive technologies.
3. Fragmented Policy Implementation: Policies exist but lack monitoring mechanisms and accountability frameworks.
4. Cultural Resistance: Deeprooted social stigma and hierarchical academic culture impede acceptance of diversity.
5. Technological Limitations: Inadequate digital literacy among students and teachers restricts equitable participation in online learning.

These challenges demand a paradigm shift moving from "accessbased inclusion" to "intelligent inclusion," which Education 5.0 envisions.

Reimagining Inclusion through Education 5.0: Strategies, Framework, and Innovations

The transition from mere educational access to authentic inclusion requires more than physical entry into classrooms or statutory reservations. It necessitates the creation of intelligent, empathetic, and adaptive educational ecosystems capable of responding to the diverse cognitive, emotional, social, and technological needs of learners. Education 5.0 reconceptualizes inclusion as a dynamic interaction between human values and advanced technologies, wherein both collaborate to dismantle structural barriers and enable personalized, dignified, and meaningful learning experiences (UNESCO, 2021). In Indian higher education institutions (HEIs), this vision involves the integration of artificial intelligence (AI), assistive technologies, data-driven governance, and human-centered pedagogy, with the objective of building campuses that are not only physically accessible but also emotionally supportive, technologically intelligent, and socially equitable (MoE, 2020).

Rethinking Inclusion Beyond Access

Traditional inclusion models in Indian HEIs have primarily focused on physical accessibility and affirmative measures, such as reservations, ramps, and basic accommodations. While these interventions are necessary, they remain insufficient for achieving holistic inclusion. Education 5.0 advocates a paradigm shift from access toward engagement, empowerment, and excellence, emphasizing learner agency and personalized learning pathways (OECD, 2021). Instead of uniform curricula and standardized assessments, Education 5.0 promotes adaptive curricula, AI-enabled flexible assessments, and integrated support systems, replacing sympathy-based approaches with empathy-driven and innovation-oriented practices (CAST, 2018). This reimagining enables learners, regardless of ability or background, to actively design their educational trajectories through intelligent learning systems. Traditional inclusion models in Indian HEIs have focused primarily on physical access—ramps, quotas, and basic accommodations. Education 5.0 encourages institutions to move beyond access toward engagement, empowerment, and excellence.

Dimension	Conventional Approach	Education 5.0 Approach
Access	Reservation, physical accessibility	Universal digital and cognitive accessibility
Learning	Uniform curriculum	Adaptive and personalized learning pathways
Assessment	Standardized exams	AIenabled flexible assessments
Support	Disability centers	Intelligent inclusion hubs integrating technology, psychology, and pedagogy
Mindset	Sympathybased	Empathy and innovationbased

This reimagination emphasizes agency-enabling every learner, regardless of ability or background, to design their own educational trajectory through intelligent systems.

Innovative Strategies for Inclusive Transformation

Education 5.0 introduces AI-based personalization, enabling learning management systems to tailor content, pace, and assessment to individual learner needs, particularly benefiting Persons with Disabilities (PwDs) without stigmatization (Holmes et al., 2019). AR and VR technologies provide immersive experiential learning environments, while digital twin campuses enable remote participation, accessibility audits, and inclusive infrastructure planning. Blockchain-based credentialing systems democratize recognition by valuing diverse learning outcomes beyond traditional examinations (Selwyn, 2022). Indian initiatives such as IIT Delhi's Assistech and IIT Madras's R2D2 Lab exemplify how AI-driven assistive technologies can enhance mobility, communication, and independence for PwDs at affordable costs.

- **Faculty and Institutional Transformation**

  The realization of Education 5.0 requires faculty reskilling and institutional cultural transformation. Structured training in inclusive pedagogy, digital accessibility, adaptive assessment, and ethical AI use is essential. The establishment of Inclusion Leadership Cells, interdisciplinary research initiatives, and incentive systems for inclusive innovation fosters a culture of shared responsibility, empathy, and digital fluency (MoE, 2020).

- **Reimagining Inclusion for Persons with Disabilities (PwDs)**

  Education 5.0 positions PwDs as co-creators of knowledge and innovation rather than passive recipients of support. Technology-enabled empowerment, participatory design, inclusive research ecosystems, and entrepreneurial support align inclusion with innovation and the Atmanirbhar Bharat vision (Government of India, 2016).

- **Alignment with National and Global Goals**

  Education 5.0 aligns directly with NEP 2020, Sustainable Development Goal 4 (SDG 4), the Digital India Mission, and the Viksit Bharat 2047 Vision, positioning inclusive higher education as a driver of equitable, ethical, and knowledge-based national development (UNESCO, 2021).

Policy Recommendations and Conclusion

Policy Recommendations

A coordinated, multi-level framework is essential to implement Education 5.0.

A. Policy-Level:

NEP 2020 should integrate AI-enabled pedagogy, intelligent inclusion, and universal accessibility (Government of India, 2020). A National Centre for Inclusive Innovation, inclusion indicators in NAAC/NIRF (UGC, 2022), targeted funding, public–private partnerships, and a Digital Equity Policy are crucial for accessible infrastructure and content (AICTE, 2021).

B. Institutional-Level:

HEIs should establish Intelligent Inclusion Hubs and ensure faculty training in inclusive pedagogy, AI tools, and UDL via platforms like SWAYAM and DIKSHA. Adaptive LMS, inclusive research, and accessibility audits aligned with the RPwD Act, 2016 are essential (Government of India, 2016).

C. Technological & Pedagogical:

UDL based curricula, AI-driven analytics, accessible digital content, blended learning, and ethical AI frameworks should ensure inclusive and flexible learning (Meyer, Rose, & Gordon, 2014; UNESCO, 2021).

D. Community Engagement:

Community-based learning, awareness programs, and public–private partnerships should promote inclusion, innovation, and equitable employment, supported by recognition of best practices.

Conclusion

The transition from Education 4.0 to Education 5.0 signifies a fundamental shift from technology-driven efficiency to a human-centered, ethical, and inclusive intelligence framework in education. Education 5.0 foregrounds empathy, creativity, and social responsibility alongside advanced digital technologies, thereby redefining the role of higher education in contemporary societies (Puncreobutr, 2016). In the Indian context, this paradigm offers a transformative opportunity to address historical inequities in higher education and to empower marginalized groups, particularly persons with disabilities (PwDs). The analysis reveals that inclusion in Indian Higher Education Institutions (HEIs) has evolved from a statutory obligation into a strategic necessity aligned with the national vision of Viksit Bharat 2047 (Government of India, 2020). Despite progressive legislative and policy frameworks such as the Rights of Persons with Disabilities (RPwD) Act, 2016 and the National Education Policy (NEP) 2020, significant challenges persist. Infrastructural gaps, digital divides, limited faculty preparedness, and entrenched attitudinal biases continue to constrain meaningful participation and academic success (UGC, 2022). Education 5.0 reframes inclusion not as a welfare-oriented intervention but as a driver of innovation, excellence, and national development. By integrating intelligent technologies with ethical, learner-centered pedagogy, Indian HEIs can create adaptive and empathetic learning environments that support holistic development. This model recognizes diversity as a source of creativity and collective strength, envisioning a future where technology amplifies human potential and education becomes a shared journey toward equity, dignity, and enlightenment (UNESCO, 2021).

References

1. UGC. (2022). Accessibility Guidelines and Stendards for Higher Education Institutions and Universities. New Delhi. MoE. https://www.ugc.gov.in/pdfnews/8381868_Draft-Guidelines-UGC_20-Feb-2021.pdf
2. Antil. N. (2014). Inclusive Education: Challenges and Prospects in India. IOSR Journal Of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS) Volume 19, Issue 9, Ver. V (Sep. 2014), PP 85-89 https://www.iosrjournals.org/iosr-jhss/papers/Vol19-issue9/Version-5/N019958589.pdf
3. AISHE. (2023). All India Survey on Higher Education 2021–22. Ministry of Education, Government of India. https://cdnbbsr.s3waas.gov.in/s392049debbe566ca5782a3045cf300a3c/uploads/2024/02/20240214825688998.pdf
4. Fukuyama, M. (2018) Society 5.0: Aiming for a New Human-Centered Society. Japan Spotlight, 1, 47-50. https://www.scirp.org/reference/referencespapers?referenceid=2839468
5. Government of India. (2020). National Education Policy 2020. Ministry of Education. https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf
6. Holmes, W., Bialik, M., & Fadel, C. (2019). Artificial intelligence in education: Promises and implications for teaching and learning. Center for Curriculum Redesign. https://www.researchgate.net/publication/332180327_Artificial_Intelligence_in_Education_Promise_and_Implications_for_Teaching_and_Learning
7. Meyer, A., Rose, D. H., & Gordon, D. (2014). Universal Design for Learning: Theory and practice. CAST Professional Publishing.
8. https://www.researchgate.net/publication/276267753_Universal_Design_for_Learning_Theory_and_practice
9. Puncreobutr, V. (2016). Education 4.0: New Challenge of Learning. St. Theresa Journal of Humanities and Social Sciences, 2, No. 2. https://www.scirp.org/reference/referencespapers?referenceid=2395494
10. Schwab, K. (2017). The fourth industrial revolution. Crown Business. https://law.unimelb.edu.au/__data/assets/pdf_file/0005/3385454/Schwab-The_Fourth_Industrial_Revolution_Klaus_S.pdf
11. Shiroishi, Y., Uchiyama, K., & Suzuki, N. (2019). Society 5.0: For human security and well-being. Computer, 52(7), 91–95. https://doi.org/10.1109/MC.2019.2902789

12. Singh, A. (2022). Inclusive higher education in India: Policy, practice, and challenges. Journal of Educational Planning and Administration, 36(2), 145–160. https://www.niepa.ac.in/Pub_Jepa
13. UGC. (2023). Guidelines for Equitable Opportunity to the Socio-Economically Disadvantaged Groups (SEDGs) in HEIs. University Grants Commission.
14. https://www.ugc.gov.in/pdfnews/4649840_Draft-Guidelines-for-SEDGs.pdf
15. UNESCO. (2020). Global education monitoring report: Inclusion and education. UNESCO Publishing. https://www.unesco.org/gem-report/en/publication/inclusion-and-education
16. UNESCO. (2021). Reimagining our futures together: A new social contract for education. UNESCO Publishing. https://unevoc.unesco.org/pub/futures_of_education_report_eng.pdf
17. Government of India. (2016). Rights of Persons with Disabilities (RPwD) Act, 2016. Ministry of Law and Justice. https://www.sparsh.mp.gov.in/Sparsh/RPWD_Act___Hindi_2016(1).pdf
18. UNESCO. (2021). Futures of education: Learning to become. Paris: UNESCO. https://unesdoc.unesco.org/ark:/48223/pf0000370801
19. Radianti, J., Majchrzak, T. A., Fromm, J., & Wohlgenannt, I. (2020). A systematic review of immersive virtual reality applications for higher education: Design elements, lessons learned, and research agenda. Computers & Education, 147, 103778. https://doi.org/10.1016/j.compedu.2019.103778
20. Holmes, W., Bialik, M., & Fadel, C. (2019). Artificial intelligence in education: Promises and implications for teaching and learning. Boston, MA: Center for Curriculum Redesign. https://curriculumredesign.org/wp-content/uploads/AIED-Book-Excerpt-CCR.pdf
21. UNESCO. (2021). AI and education: Guidance for policy-makers. UNESCO Publishing. https://discovery.ucl.ac.uk/id/eprint/10130180/1/Miao%20and%20Holmes%20-%202021%20-%20AI%20and%20education%20guidance%20for%20policy-makers.pdf
22. AICTE. (2021). Accessibility guidelines for technical institutions. All India Council for Technical Education. https://www.aicte.gov.in/bureaus/administration/rulesregulations

23. CAST. (2018). Universal design for learning guidelines version 2.2. Center for Applied Special Technology. https://udlguidelines.cast.org/static/udlg2.2-text-a11y.pdf
24. OECD. (2021). Beyond academic learning: Social and emotional skills for life. OECD Publishing. https://www.oecd.org/content/dam/oecd/en/publications/reports/2021/09/beyond-academic-learning_46cf4e15/92a11084-en.pdf
25. OECD. (2021). Education at a glance 2021: OECD indicators. OECD Publishing. https://doi.org/10.1787/b35a14e5-en
26. Selwyn, N. (2022). Education and technology: Key issues and debates (2nd ed.). Bloomsbury Academic. https://www.bloomsbury.com/in/education-and-technology-9781350145566/
27. Government of India. (1950). The Constitution of India. https://nationalarchives.nic.in/constitution-india
28. Indian Institute of Technology Madras. (2022). Assistive technology and inclusive innovation initiatives. IIT Madras. https://r2d2.iitm.ac.in/resources/ncaht
29. University of Delhi. (2021). Equal Opportunity Cell: Policies and student support services. University of Delhi. https://sites.google.com/du.ac.in/equalopportunitycell/home
30. Dr. B.R. Ambedkar University Delhi. (2020). Centre for Disability Studies: Research and inclusive pedagogy. AUD. https://aud.delhi.gov.in/inclusive-education
31. Graham, C. R. (2020). Blended learning systems: Definition, current trends, and future directions. In Handbook of blended learning (pp. 3–21). Wiley. https://med.uniroma2.it/wp-content/uploads/2024/07/007-Blended-learning-systems.pdf
32. Johnson, D. W., & Johnson, F. P. (2019). Joining together: Group theory and group skills (12th ed.). Pearson. https://www.scribd.com/document/728052209/12-David-W-Johnson-Frank-P-Johnson-Joining-Together-Group-Theory-and-Group-Skills-12th-Edition
33. Schön, D. A. (1983). The reflective practitioner: How professionals think in action. Basic Books. https://raggeduniversity.co.uk/wp-content/uploads/2025/03/1_x_Donald-A.-Schon-The-Reflective-Practitioner_-How-Professionals-Think-In-Action-Basic-Books-1984_redactedaa_compressed3.pdf

34. UGC. (2023). Guidelines for Digital University and online education. University Grants Commission, Government of India. https://www.ugc.gov.in/regulations/UGC_Regulations_university
35. United Nations. (2015). Transforming our world: The 2030 Agenda for Sustainable Development. https://sustainabledevelopment.un.org/content/documents/21252030%20Agenda%20for%20Sustainable%20Development%20web.pdf
36. Brown, S., & Race, P. (2013). Using effective assessment to promote learning. Routledge. https://scholar.google.co.in/scholar?q=Brown,+S.,+%26+Race,+P.+(2013).+Using+effective+assessment+to+promote+learning.+Routledge.&hl=en&as_sdt=0&as_vis=1&oi=scholart

ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

राजस्थानी लोक साहित्य में समाजवाद

हेमलता बीठू
शोधार्थी, एम.ए. राजस्थानी,
महाराजा गंगा सिंह विश्वविद्यालय (MGSU), बीकानेर

सार

राजस्थानी लोक साहित्य सदियों से जन-जीवन की पीड़ा, संघर्ष और सपनों की जीवंत अभिव्यक्ति का साधन रहा है। समाजवादी चेतना भारत के व्यापक लोक-वाङ्मय में मूल मानवीय मूल्य है, जो सदियों की पीड़ा और संघर्ष से पैदा हुआ है। इस शोधपत्र में राजस्थानी लोकगीत, लोककथा, संत-भजन, ख्याल-रम्मत (लोकनाट्य) और लोकोक्तियों में शामिल समाजवादी तत्त्वों का विश्लेषण किया गया है। इसमें प्रमाणित स्रोतों के आधार पर वर्ग-चेतना, श्रम की महत्ता, स्त्री-विमर्श, जातीय भेद-भाव का विरोध, दलित-आदिवासी चेतना और सामूहिक जीवन की अवधारणाएं रेखांकित की गई हैं।

मूल शब्द : राजस्थानी लोक साहित्य, समाजवाद, लोकगीत, वर्ग-चेतना, सामाजिक न्याय, श्रम-संस्कृति, दलित-चेतना, स्त्री-विमर्श।

प्रस्तावना

राजस्थान की धरती पर, जहां कड़कती धूप और रेतीली आँधियों में भी मानवीय चेतना कभी नहीं मरती, वहाँ की लोकवाणी में एक विशिष्ट सामाजिक चेतना जीवंत है। राजदरबारी साहित्य से लोक साहित्य अलग है- खेत-खलिहानों में काम करने वाले लोगों, पानी भरने वाले लोगों, ऊँटां री नकेल थामणियां चरवाहां, चाक चलावणियां कुम्हारां री वाणी है। यो साहित्य सिर्फ एक वर्ग का दर्पण नहीं है, बल्कि पूरे समाज का दर्पण है, जिसमें दुःख, विद्रोह और जीवन की ललक है। डॉ. नारायण सिंह भाटी ने कहा कि राजस्थानी लोक-साहित्य में जन-मानस की पीड़ां और आकांक्षाओं का सटीक और जीवंत चित्रण है। इसमें उन लोगों की आवाज है जो शासन-तंत्र में कभी सुनवाई नहीं हुई है।(भाटी, लोक-साहित्य: स्वरूप और महत्त्व, 1987) यह आवाज समाजवाद का बीज है। समाजवाद का मूल उद्देश्य समानता, न्याय, श्रम की प्रतिष्ठा और शोषण-मुक्त समाज की स्थापना है। राजस्थानी लोक-कवियों में 'समाजवाद' का

शास्त्रीय ज्ञान नहीं होता, लेकिन उनकी वाणी में समाजवाद का भाव आसानी से प्रकट होता है। इस शोध-पत्र में भाव-सम्पदा को प्रमाणित साक्ष्यों के साथ प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है।

राजस्थानी लोक कथाएँ: स्वरूप और रिवाज

राजस्थानी लोक साहित्य का दायरा बहुआयामी और विस्तृत है। इसमें लोकगीत, लोककथा, लोकनाट्य (ख्याल, रम्मत, तमाशा, गवरी), लोकोक्तियां, पहेलियां, भजन-माहरा, वीर-रासां और देव-फड़ां रो शामिल हैं। यह साहित्य मूलतः एक मौखिक श्रुति-परम्परा है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आयी है। डॉ. सत्यप्रकाश जोशी ने कहा कि राजस्थानी लोक साहित्य अपनी विविधता और वैभव में किसी भी प्रदेश से कम नहीं है। इसमें रागड़ी, मांड, सोरठ, पाबूजी री फड़ और देवनारायण री फड़ जैसी प्राचीन परम्परावां शामिल हैं, जो सामाजिक न्याय की मांग करते हैं।(जोशी, राजस्थानी लोक-परम्परा, 1994) इस परम्परा में स्त्री-श्रम, किसान-जीवण, जलसंकट, जाति-उत्पीड़न और आर्थिक शोषण जैसी समस्याओं का जीवंत चित्रण है। उस वर्णन में समाजवादी चेतना का प्रवाह निरंतर है। लोक-कवि को किसी "वाद" की आवश्यकता नहीं है; उनका जीवन-अनुभव उनका सिद्धान्त है।

लोकगीतों में सामजिक चेतना

राजस्थानी लोकगीत सिर्फ मनोरंजन करने के लिए उपयोगी साधन हैं। इस गीत में श्रम, पीड़ा और संघर्ष की अभिव्यक्ति की जाती है, जो सामाजिक विषमता को उजागर करता है। पनिहारी गीत, बारहमासा, बन्नी गीत, सांझी गीत और काम-गीत इनमें सबसे प्रसिद्ध हैं। पनिहारी गीतों में राजस्थान की उण स्त्रियों की कहानी बताई गई है, जो दूर-दूर से पानी लाते हैं। यह सिर्फ पाणी की तकलीफ है- इसमें शोषित महिला श्रम और सामाजिक असमानता का वर्णन है। इसमें सासू-नणद की दुर्व्यवहार, पति की उदासीनता और समाज की उपेक्षा का चित्रण है। गीतों में स्त्री की दोहरी दासता, घरेलू शोषण और सामाजिक उपेक्षा का वर्णन किया गया है, जो समाजवादी नारीवाद की मूल धारणा से पूरी तरह से मेल खाता है।

"पाणी भरण नैं जाऊं पनघट, सासू-नणद री झिड़कां खाऊं, पग-पग पर पीड़ा मेरी साथी, फिर भी जीवण रो गीत गाऊं।" -(राजस्थानी पनिहारी लोकगीत, लोकवार्ता विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय संकलन)

बारहमासा गीतां में किसानों की वर्ष भर की लड़ाई चित्रित है। खेत जोतने, बीज बोने और फसल काटने में श्रम पुनः प्रतिष्ठित होता है। साथ ही महाजनों, जमींदारों, सूदखोरों की पीड़ा और शोषण भी प्रकट होवे है। यह राजस्थानी लोकगीतों में वर्ग-संघर्ष की मार्मिक अभिव्यक्ति है।

"हाड़ तोड़ मेहनत करां, धरती नैं सींचां पसीने सूं, सेठ लेवे सब अनाज, खाली हाथ जावां पीने नैं।" - (बारहमासा लोकगीत, भाटी, लोक-साहित्य संग्रह, 1987)

सार्वजनिक कथाओं में समता रो संदेश

राजस्थानी लोककथाओं में कई कहानियां हैं जो राजा-रंक, अमीर-गरीब और भेद को चुनौती देती हैं। इसमें अक्सर गरीब और विनम्र मिनख विजयी होते हैं। इस परंपरा ने समाजवादी मूल्यों को बनाया है, जो बुद्धि, नैतिकता और परिश्रम को धन और जाति से अधिक महत्व देता है। डॉ. विजयदान देथा (बिज्जी) की लोककथा संग्रह 'बातां री फुलवारी' में कई कहानियां हैं जो जाति-व्यवस्था और आर्थिक शोषण के खिलाफ जनचेतना को उजागर करती हैं। "राजस्थान री लोककथावां में लोक रो न्यायबोध शासकां रे न्याय सूं सदा ऊँचो रैयो है", कहा गया है। यहाँ हर अमीर का घमण्ड टूट गया है और हर गरीब की बुद्धि जीवित हुई है।(देथा, बातां री फुलवारी, खण्ड-1, 1960) "बाँझड़ी" कहानी में समाज का व्यवहार और निःसन्तान स्त्री की तीखी आलोचना है। कथा, "सांप री बामी", जमींदार रे अत्याचारों का विरोध है। पूरी श्रृंखला में, "चतुर बहू" में स्त्री-बुद्धि को पुरुष-सत्ता पर विजयी दिखाया गया है। यह कहानियां समाजवादी यथार्थवाद की ओर इशारा करती हैं। इसमें भूमि-संबंध, जमींदारी शोषण और वर्ण-व्यवस्था का विश्लेषण शामिल है।

संत-भजन में जात-पात और वर्ग चेतना का विरोध

राजस्थान के संत-कविओं, जैसे कबीरदास, दादूदयाल, संत पीपाजी, संत रामदेवजी और मीराबाई, की वाणी में समाजवादी चेतना की प्रखर और स्पष्ट अभिव्यक्ति मिलती है। यह संत न केवल आत्म-मुक्ति की बात करता है, बल्कि सामाजिक अन्याय के खिलाफ रोते हैं। संत दादूदयाल की बोली में जाति-वर्ग और सामाजिक स्तर का स्पष्ट विरोध है। वर्ग-भेद की समाप्ति ही पूरी दृष्टि का आधार है। उस पंथ में सभी जाति और वर्ग के लोग एक समान भावना से जुड़े थे।:

"जात-पात री बेड़ियां, कूण किसनैं पड़ाई? दादू कहे निरबैर मन सूं, ईश्वर एक बनाई।" - (दादूवाणी, सम्पादक : डॉ. परशुराम चतुर्वेदी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी)

मीराबाई री पदावली में भी सामाजिक बंधनों के खिलाफ भयानक विद्रोह है। मीरा ने वर्ण व्यवस्था को खारिज करते हुए रैदास जैसे दलित संत को अपना गुरु मान लिया। यह एक ऐतिहासिक बदलाव है जो किसी भी समय अकल्पनीय होगा। मीरा ने अपने इस कार्य से जाति-श्रेष्ठता की विचारधारा को स्पष्ट रूप से चुनौती दी।

संत पीपाजी रो दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से वर्ग-भेद के खिलाफ है। ईश्वर ने उनके कर्मों में अमीर-गरीब के भेद को बेकार बताया है। संत रामदेवजी ने अपने जीवनकाल में ही दलितों को समर्थन देकर सामाजिक समानता का प्रतीक बनाया। राजस्थानी संत-परम्परा रो यो का समाजवादी पक्ष महत्वपूर्ण है।

लोकोक्तियों और कहावताओं में सामाजिक न्याय

राजस्थानी कहावतें सामाजिक चेतना को बहुत सरल, सटीक और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती हैं। आम जनता की जुबान पर ये कहावतें बोली जाती हैं और सामूहिक ज्ञान और अनुभव की व्यापक अभिव्यक्ति होती हैं। इसमें सदियों की दुःख और सदियों की समझ दोनों महत्वपूर्ण हैं। डॉ. शक्तिदान कवी ने कहा कि राजस्थानी कहावतां लोगों की जीवनशैली का जीवंत दर्पण हैं, जिनमें हजारों वर्षों की सामाजिक चेतना संचित है। यह कहावतें सिर्फ भाषा की संपत्ति नहीं, बल्कि समाज की स्मृति हैं।(कविया, राजस्थानी लोकोक्ति कोश, 2003) में कुछ महत्वपूर्ण कहावतें और उनका समाजवादी अर्थ निम्नलिखित है: "धन बिना धरम नीं, पेट भर्यां पछे परमारथ।" इस कहावत ने आर्थिक आधार की प्राथमिकता को आसानी से स्वीकार किया है और कहा कि खाली पेट भोजन नहीं करना चाहिए। "एक हाथ सूं ताळी नीं बाजे।" सामूहिकता और वर्ग-एकता की आवश्यकता "जात सूं नीं काम सूं पिछाणो"- जाति-भेद रो सीधा संघर्ष "हाड़ तोड़ो खेत बोवो, सेठ खावे बैठ-बैठ।" श्रम शोषण की पुनः सटीक समीक्षा। "मिलकर खाओ, बांटकर पीओ"- साम्यवादी सामूहिकता की पुरानी परंपरा

लोकनाट्य में सामाजिक व्यंग्य या बहस

राजस्थानी लोकनाट्य, खासकर ख्याल, रम्मत, गवरी अर तमाशा, में सामाजिक व्यंग्य की परम्परा बहुत समृद्ध है। बीकानेर री रम्मत अर कुचामण रे ख्यालां में राजा, नेता और सेठ जैसे शक्तिशाली लोगों पर तीखा व्यंग्य है, जो आम जनता को बड़ा आनन्द और चेतना भी देता है। डॉ. उर्मिला श्रीवास्तव का कहना है कि लोकनाट्य सबसे प्रभावी माध्यम है जो राजनीतिक चेतना को प्रोत्साहित करता है। इसमें व्यंग्य और हास्य का प्रयोग किया जाता है, जो सीधे नहीं कहे जा सकते हैं।"व्यंग्य लोक-समाजवाद की मूल भाषा है" (श्रीवास्तव, राजस्थानी लोकनाट्य, 2001)।

"हीड़-रम्मत" में जलसंकट और उससे पीड़ित गरीब लोगों की परेशानियों को सार्वजनिक रूप से दिखाया जाता है। इसमें जल की स्वायत्तता और गरीबों की उससे वंचना का चित्रण है। "सांग" परम्परा में कृषक-श्रमिकों की स्थिति मार्मिक है। गवरी (भीलां रो लोकनाट्य) में आदिवासी अधिकारों के प्रति जागरूकता की स्पष्ट अभिव्यक्ति होगी।

दलित-आदिवासी लोगों के लोक साहित्य में क्रांति

राजस्थान की भील, मीणा, बंजारा, कालबेलिया और डोम जनजातियों के लोक साहित्य में सामाजिक उत्पीड़न के खिलाफ सख्त और निर्भीक विद्रोह है। यो लोक साहित्य समाजवादी चेतना रो सबसूं प्रामाणिक रूप है, क्योंकि यो उणरी वाणी है जका सबसूं शोषित रैया हैं। भारतीय जनजाति के गीतों में वन-जमीन का अधिकार माँगना, वन-कानूनों का विरोध करना और स्वाधीनता की इच्छा है। "गवरी नृत्य-नाट्य" में शोषण रे के खिलाफ एक स्पष्ट रोमांटिक दृश्य है। डॉ. मनोहर शर्मा ने कहा कि राजस्थान

के आदिवासी लोक साहित्य में वर्ग चेतना की अभिव्यक्ति पूरी तरह से निर्भीक रूप से हुई है।(शर्मा, राजस्थान रे आदिवासी अर उणरो साहित्य, 2008) 'तेजाजी रो भजन' और 'देवनारायण री फड़' में भी निम्न वर्ग के लोगों का ध्यान रखा गया है। तेजाजी स्वयं जाट-किसान जाति के लोक देवता हैं, जो भूमि के लिए संघर्षों, पशुधन की रक्षा और श्रम की प्रतिष्ठा पर बोलते हैं। यह फड़-परम्परा भी सामाजिक इतिहास को बचाता है और लोगों को संघर्ष करने की प्रेरणा देता है।

स्त्री-विमर्श या समाजवादी विचार

राजस्थानी लोक साहित्य में स्त्री-विमर्श केवल सौन्दर्य-वर्णन तक सीमित है। इसमें महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थिति, उनका शोषण और उनका विद्रोह शामिल हैं। लोक साहित्य में स्त्री नायिका सिर्फ प्रेम नहीं करती, बल्कि सवाल भी पूछती है और प्रतिक्रिया भी करती है। गीत "घूमर" स्त्री-स्वतन्त्रता का रोमांटिक उत्सव है। "कजळी" गीतों में स्त्री के मन की इच्छाएँ और अधूरे सपने बताए गए हैं। "बन्नी गीतां" में विवाह-स्थल पर छोटा सा व्यंग्य है। कुंवारी लड़कियों की सामाजिक स्वतंत्रता को 'सांझी गीतां' में दिखाया गया है। विरह-गीतों में स्त्री-पुरुष सत्ता को चुनौती देते हुए अपनी भावनाओं को व्यक्त किया जाता है। मीराबाई इणी परम्परा का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। राजसत्ता, पतिसत्ता और ब्राह्मणसत्ता तीनों एक साथ संघर्ष करती हैं। डॉ. विजयदान देथा ने लिखा है कि मीरा सिर्फ एक भक्त नहीं है, बल्कि एक विद्रोही है, जिसके हर पद एक समाजशास्त्रीय दस्तावेज है।(देथा, राजस्थानी भक्ति परम्परा, 1975) मीरा की दृष्टि समाजवाद की स्पष्ट अभिव्यक्ति है।

राजस्थानी साहित्य में आज का लोक-समाजवाद

वर्तमान राजस्थानी कवियों, जैसे कन्हैयालाल सेठिया, मेघराज मुकुल, चन्द्रप्रकाश देवल और विजयदान देथा, ने लोक-परम्परा को आगे बढ़ाते हुए आज के सामाजिक मुद्दों को उठाया है। लेखकों ने आधुनिकता की चुनौतियों का सामना किया है। 'धरती धोरां री' नामक सेठिया की कविता में राजस्थान के किसानों और कर्मचारियों को गहरा दर्द है। वर्तमान वर्ग-चेतना उणरी 'पाथल-पीथल' में ऐतिहासिक संदर्भ में दिखाई देती है। सेठिया की रचनाओं में जनता की भाषा और समाजवादी भावनाओं का अद्भुत संयोजन है। डॉ. चन्द्रप्रकाश देवल रे शब्दां में : "लोक-साहित्य कोई संग्रहालय री वस्तु नीं है। यो तो जीवण-संग्राम रो हथियार है। जद तक गरीब-किसान रैसी, लोक री यो आवाज बन्द नीं होसी।" (देवल, राजस्थानी साहित्य : आज री चुनौतियां, 2012) आज भूमण्डलीकरण रे दौर में यो स्वर और भी प्रासंगिक हो गयो है।

निष्कर्ष

शोध-पत्र और विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि राजस्थानी लोक साहित्य पर समाजवाद का कोई बाहरी प्रभाव नहीं है। यो एक प्राकृतिक और साधारण अभिव्यक्ति है जो लोगों ने शोषण, अन्याय और असमानता के खिलाफ सदियों से संघर्ष किया है। लोकगीत, लोककथा, भजन, लोकोक्ति और लोकनाट्य में श्रम की प्रतिष्ठा, समता की माँग और न्याय की इच्छा एक सूत्र में मिली हुई है। समाजवादी विचार में जात-पात का विरोध, स्त्री-विमर्श, दलित चेतना, श्रम शोषण की आलोचना और सामूहिकता की स्थापना शामिल हैं। राजस्थान की लोक-संस्कृति सदियों से अपनी सरल और मार्मिक भाषा में किसी 'वाद' की आवश्यकता बिना बोलती आई है।

अंत में, राजस्थानी लोक साहित्य में मौजूद समाजवादी स्वर हमें याद दिलाता है कि असली समाजवाद धरती के जीवन, संघर्ष और वाणी में है। यह पढ़ना और बचाना न केवल साहित्यिक कर्तव्य है, बल्कि सामाजिक न्याय की लड़ाई का भी एक हिस्सा है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

1. भाटी, नारायण सिंह (1987). लोक-साहित्य, स्वरूप अर महत्त्व. राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर
2. जोशी, सत्यप्रकाश (1994). राजस्थानी लोक-परम्परा, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली
3. देथा, विजयदान (1960). बातां री फुलवारी (खण्ड 1-14)., रूपायन संस्थान,बोरुन्दा, जोधपुर
4. देथा, विजयदान (1975). राजस्थानी भक्ति परम्परा, रूपायन संस्थान, जोधपुर
5. कविया, शक्तिदान (2003). राजस्थानी लोकोक्ति कोश. राजस्थानी भाषा साहित्य एवं संस्कृति अकादेमी, बीकानेर
6. चतुर्वेदी, परशुराम (सं.). दादूवाणी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयागराज
7. श्रीवास्तव, उर्मिला (2001). राजस्थानी लोकनाट्य, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर
8. शर्मा, मनोहर (2008). राजस्थान रे आदिवासी अर उणरो साहित्य, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर
9. देवल, चन्द्रप्रकाश (2012). राजस्थानी साहित्य, आज री चुनौतियां, सूर्य प्रकाशन मन्दिर, बीकानेर
10. सेठिया, कन्हैयालाल (2002). धरती धोरां री (सम्पूर्ण रचनावली), राजस्थानी भाषा अकादेमी, बीकानेर
11. मुकुल, मेघराज (1998). लोक-जीवण अर राजस्थानी कविता, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयागराज
12. राजस्थानी भाषा साहित्य एवं संस्कृति अकादेमी (2005). राजस्थानी लोक-साहित्य, एक दृष्टि., बीकानेर
13. तैस्सितोरी, एल.पी. (1914-19). नोट्स ऑन द ग्रामर ऑफ ओल्ड वेस्टर्न राजस्थानी। इंडियन एंटिक्वेरी, बॉम्बे।
14. लोकवार्ता विभाग, जोधपुर विश्वविद्यालय, राजस्थानी लोकगीत संकलन.

ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

छत्तीसगढ़ के धमतरी जिले में सोशल ऑडिट हेतु ग्राम सभा की भूमिकाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन

सौरभ शर्मा
शोधार्थी समाजकार्य विभाग
मैट्स विश्वविद्यालय रायपुर
छत्तीसगढ़

डॉ. छबिनाथ यादव
सहायक प्राध्यापक
समाजकार्य विभाग
मैट्स विश्वविद्यालय रायपुर, छत्तीसगढ़

सारांश

भारत में सामाजिक लेखापरीक्षा (सोशल ऑडिट) पंचायती राज व्यवस्था के अंतर्गत पारदर्शिता और जवाबदेही सुनिश्चित करने का एक महत्वपूर्ण लोकतांत्रिक उपकरण है। महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) के तहत सोशल ऑडिट को अनिवार्य रूप से लागू किया गया है, जिसमें ग्राम सभा को केन्द्रीय भूमिका प्रदान की गई है। यह शोध अध्ययन छत्तीसगढ़ राज्य के धमतरी जिले के चयनित ग्राम पंचायतों में सोशल ऑडिट प्रक्रिया में ग्राम सभा की भूमिकाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन करता है। अध्ययन का उद्देश्य सोशल ऑडिट हेतु ग्राम सभा के सैद्धांतिक प्रावधानों, वास्तविक क्रियान्वयन की स्थिति, प्रमुख चुनौतियों और सुधार के संभावित उपायों की पहचान करना है। शोध मिश्रित पद्धति (Mixed Method) पर आधारित है, जिसमें प्राथमिक स्रोतों से एकत्रित आंकड़ों का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन के निष्कर्ष बताते हैं कि जहाँ एक ओर छत्तीसगढ़ में सोशल ऑडिट के लिए एक सुदृढ़ नियामक ढाँचा मौजूद है, वहीं दूसरी ओर ग्राम सभा की प्रभावशीलता कई बाधाओं - जैसे जागरूकता का अभाव, दस्तावेजों की अनुपलब्धता, स्थानीय शक्ति संरचनाओं का दबाव और अनुवर्ती कार्रवाई में कमी - से ग्रस्त है। धमतरी जिले के संदर्भ में, सोशल ऑडिट ग्राम सभाएँ तो आयोजित की जाती हैं, लेकिन उनकी गुणवत्ता और प्रभावशीलता वांछित स्तर पर नहीं है। अध्ययन सुझाव देता है कि ग्राम सभाओं को सशक्त बनाने, सामुदायिक भागीदारी बढ़ाने और अनुवर्ती कार्रवाई के तंत्र को मजबूत करने के लिए ठोस कदम उठाए जाने की आवश्यकता है।

मुख्य शब्द: सोशल ऑडिट, ग्राम सभा, मनरेगा, धमतरी, जवाबदेही, पंचायती राज, सामुदायिक भागीदारी

परिचय /पृष्ठभूमि

भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया में 73वें संविधान संशोधन (1992) ने एक ऐतिहासिक मोड़ लाया। इस संशोधन ने पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया और ग्राम सभा को ग्रामीण शासन की आधारशिला के रूप में स्थापित किया। ग्राम सभा - जो किसी गाँव के पंचायत क्षेत्र के मतदाताओं का निकाय है - को योजना निर्माण, कार्यान्वयन और निगरानी के महत्वपूर्ण अधिकार प्रदान किए गए। हालाँकि, केवल अधिकार प्रदान करना पर्याप्त नहीं था; इन अधिकारों के प्रभावी उपयोग के लिए उपयुक्त तंत्र की आवश्यकता थी।

इसी संदर्भ में सोशल ऑडिट (सामाजिक लेखापरीक्षा) की अवधारणा ने महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया। सोशल ऑडिट एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें योजनाओं/कार्यक्रमों के क्रियान्वयन की जाँच और मूल्यांकन लाभार्थियों और आम नागरिकों की सक्रिय भागीदारी से किया जाता है। यह पारंपरिक लेखापरीक्षा से भिन्न है, जो केवल वित्तीय लेन-देन की जाँच करती है; सोशल ऑडिट में यह भी देखा जाता है कि योजना का लाभ सही पात्रों तक पहुँचा या नहीं, कार्यों की गुणवत्ता कैसी है, और क्या वितरण में न्यायसंगतता बरती गई है।

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा), 2005 ने सोशल ऑडिट को वैधानिक दर्जा प्रदान किया। अधिनियम की धारा 17 में यह प्रावधान है कि योजना के कार्यान्वयन के विभिन्न चरणों में सोशल ऑडिट किए जाएँगे। इसके बाद, केंद्र सरकार ने 2011 में सोशल ऑडिट नियम बनाए, और विभिन्न राज्यों ने अपने-अपने नियम बनाए। इस क्षेत्र में छत्तीसगढ़ राज्य एक अग्रणी राज्य के रूप में उभरा है, जहाँ मनरेगा के अंतर्गत सोशल ऑडिट की प्रक्रिया को व्यवस्थित और प्रभावी बनाने के लिए "महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना-छत्तीसगढ़, सोशल ऑडिट नियम, 2015" बनाए गए।

समस्या का निरूपण

विधिक प्रावधानों और नियामक ढाँचे के होते हुए भी, सोशल ऑडिट के व्यावहारिक क्रियान्वयन में अनेक चुनौतियाँ विद्यमान हैं। सोशल ऑडिट प्रक्रिया का केन्द्र बिन्दु "सोशल ऑडिट ग्राम सभा" है, जहाँ सभी निष्कर्षों को जनता के समक्ष रखा जाता है और स्पष्टीकरण माँगा जाता है। किंतु, प्रायः यह देखा गया है कि: ग्राम सभाओं में आवश्यक उपस्थिति (कोरम) पूरी नहीं हो पाती; दस्तावेजों को सोशल ऑडिट टीम को उपलब्ध नहीं कराया जाता; स्थानीय शक्ति संरचनाओं (जाति, वर्ग, लिंग) के कारण हाशिए के समूह अपनी बात नहीं रख पाते; सोशल ऑडिट के निष्कर्षों पर अनुवर्ती कार्रवाई (Follow-

up Action) नहीं हो पाती; और सोशल ऑडिट टीमों के साथ प्रतिकूल व्यवहार किया जाता है। इन चुनौतियों का सामना करते हुए भी, यह प्रश्न बना रहता है कि क्या ग्राम सभा सोशल ऑडिट के उद्देश्यों को पूरा कर पा रही है? क्या यह केवल एक औपचारिकता भर रह गई है, या यह वास्तव में जवाबदेही सुनिश्चित करने का सशक्त मंच है? धमतरी जिला, जो छत्तीसगढ़ के उन जिलों में शामिल है जहाँ मनरेगा का क्रियान्वयन सक्रिय रूप से होता है, इस अध्ययन का क्षेत्र चुना गया है।

सैद्धांतिक एवं संकल्पनात्मक ढाँचा

सोशल ऑडिट: अवधारणा और परिभाषा

सोशल ऑडिट की अवधारणा मूलतः "सामाजिक जवाबदेही" (Social Accountability) के व्यापक सिद्धांत पर आधारित है। शब्द 'ऑडिट' की उत्पत्ति लैटिन भाषा से हुई है जिसका मूल अर्थ है 'सुनना'। प्राचीन काल में सम्राट अपने साम्राज्य की स्थिति की जानकारी प्राप्त करने के लिए लेखापरीक्षकों को नियुक्त करते थे, जो सार्वजनिक स्थानों पर जाकर नागरिकों की राय सुनते थे। आधुनिक लेखापरीक्षा किसी संगठन द्वारा कार्यान्वित गतिविधियों और कार्यक्रमों का स्वतंत्र मूल्यांकन है। छत्तीसगढ़ सोशल ऑडिट नियम, 2015 के अनुसार, "सोशल ऑडिट का अर्थ योजना की लेखापरीक्षा योजना के प्राथमिक हितधारकों की सक्रिय भागीदारी से करना है। लेखापरीक्षा में कार्यान्वयन प्रक्रिया के सत्यापन, श्रमिकों के अधिकारों की पुष्टि, कार्यों का सत्यापन, आधिकारिक अभिलेखों के साथ जमीनी हकीकत की तुलना और लिखित या मौखिक साक्ष्यों को शामिल करना है"।

सोशल ऑडिट की यह अवधारणा पारंपरिक लेखापरीक्षा से कहीं अधिक व्यापक है। जहाँ पारंपरिक लेखापरीक्षा केवल व्यय-उन्मुख होती है, वहीं सोशल ऑडिट लोकतंत्र के मूल सिद्धांत पर आधारित है कि निर्णय लेने वालों को अपनी शक्तियों के उपयोग के लिए जवाबदेह होना चाहिए और उनकी शक्तियों का प्रयोग जहाँ तक संभव हो, सभी संबंधितों की सहमति और समझ से किया जाना चाहिए। चार्ल्स मेडॉयवर के अनुसार, सोशल ऑडिट की अवधारणा इस सिद्धांत से प्रारंभ होती है कि लोकतंत्र में निर्णय निर्माताओं को अपनी शक्तियों के उपयोग के लिए जवाबदेह होना चाहिए।

सोशल ऑडिट केवल वित्तीय अनियमितताओं को पकड़ने का साधन नहीं है, बल्कि यह एक व्यापक लोकतांत्रिक प्रक्रिया है। यह लक्षित समूहों को कार्यक्रमों के लाभों के प्रति संवेदनशील बनाता है, कार्यान्वयन में अंतरालों की पहचान करता है, लोगों के लिए तकनीकी विकल्पों के निहितार्थों की जाँच करता है, और प्रणाली को लोगों के प्रति खुला और जवाबदेह बनाता है। सोशल ऑडिट सामाजिक न्याय, समानता और पारदर्शिता के सिद्धांतों पर आधारित है। यह सुनिश्चित करता है कि सरकारी योजनाओं का लाभ सही पात्रों तक पहुँचे और संसाधनों का उपयोग इच्छित उद्देश्यों के लिए हो।

ग्राम सभा: संवैधानिक एवं विधिक परिप्रेक्ष्य

ग्राम सभा भारतीय लोकतंत्र में प्रत्यक्ष जनतंत्र (Direct Democracy) की सबसे छोटी इकाई है। यह एक गाँव में रहने वाले सभी मतदाताओं की सभा है, जो ग्रामीण शासन में प्रत्यक्ष जनभागीदारी सुनिश्चित करने वाला एकमात्र मंच है। 73वें संविधान संशोधन ने ग्राम सभा को परिभाषित किया और उसे शक्तियाँ प्रदान कीं। विभिन्न राज्य अधिनियमों में ग्राम सभा को सौंपे गए कार्यों में वार्षिक लेखा और लेखापरीक्षा रिपोर्ट की जाँच, पूर्ववर्ती वर्ष के प्रशासन पर रिपोर्ट पर चर्चा, नए कार्यक्रमों की समीक्षा, योजनाओं, लाभार्थियों और कार्यों के स्थानों का चयन, तथा ग्राम पंचायत के बजट और विकास कार्यक्रमों पर विचार शामिल हैं।

केरल के सत्य ब्रत सेन समिति ने ग्राम सभा के अधिकारों का विस्तृत विवरण दिया है। इस समिति के अनुसार, ग्राम सभा को यह जानने का अधिकार है कि अगले तीन महीनों के लिए योजनाओं की कार्य योजना क्या है, प्रस्तावित कार्यों के विस्तृत अनुमान क्या हैं, ग्राम सभा क्षेत्र में किए गए प्रत्येक व्यय के विस्तृत मदवार लेखे क्या हैं, पंचायत के प्रत्येक निर्णय का तर्क क्या है, और अगले तीन महीनों में अधिकारी क्या सेवाएँ देंगे। इसके अतिरिक्त, ग्राम सभा लाभार्थियों के चयन के लिए मानदंड निर्धारित करने और उन मानदंडों के अनुसार लाभार्थियों का चयन करने की भी अपेक्षा रखती है।

ग्राम सभा की जिम्मेदारियाँ भी उतनी ही व्यापक हैं। इसमें विकास और कल्याणकारी कार्यक्रमों पर जानकारी का प्रसार, स्वास्थ्य, साक्षरता और इसी तरह के विकास अभियानों में भागीदारी सुनिश्चित करना, आवश्यक सामाजिक-आर्थिक आंकड़ों का संग्रह, विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन पर प्रतिक्रिया प्रदान करना, करों का भुगतान और ऋणों की वापसी के लिए नैतिक प्रेरणा देना, तथा महामारियों और प्राकृतिक आपदाओं की त्वरित रिपोर्टिंग की व्यवस्था बनाना शामिल है। केरल में ग्राम सभा बुलाने में विफलता पंचायती राज अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन है, जिसके लिए दंडात्मक कार्रवाई का प्रावधान है, जिसमें लगातार दो बार अनुपालन न करने पर आयोजक की सदस्यता समाप्त करना भी शामिल है।

छत्तीसगढ़ सोशल ऑडिट नियम, 2015 के अनुसार, सोशल ऑडिट के प्रयोजन हेतु, ग्राम सभा का अर्थ है एक वार्ड/गाँव/पैरा/बस्ती के निवासियों की बैठक। यह परिभाषा महत्वपूर्ण है क्योंकि यह स्पष्ट करती है कि सोशल ऑडिट के संदर्भ में, ग्राम सभा का आयोजन वार्ड स्तर पर भी किया जा सकता है - जहाँ लोगों की संख्या कम होती है और भागीदारी अधिक सार्थक हो सकती है।

पूर्व शोधों का अवलोकन

1. ग्राम सभा की प्रभावशीलता पर अध्ययन

ग्राम सभा की प्रभावशीलता पर विद्वानों ने विभिन्न दृष्टिकोणों से अध्ययन किया है। जॉर्ज मैथ्यू (1999) ने अपने ऐतिहासिक लेख "ग्राम सभा एंड सोशल ऑडिट" में इस बात पर जोर दिया कि ग्राम सभा बैठकों को कार्यात्मक बनाने के लिए स्थल, समय, एजेंडा, महिलाओं और अन्य समूहों की भागीदारी, निगरानी और अनुवर्ती कार्रवाई जैसे पहलुओं पर ध्यान देना आवश्यक है। उन्होंने बताया कि अब तक ग्राम सभाओं के कामकाज में ये प्रमुख कमियाँ रही हैं। केवल बैठकों की संख्या पर नहीं, बल्कि गुणात्मक पहलुओं जैसे गाँव समुदाय के सभी वर्गों की भागीदारी पर जोर दिया जाना चाहिए। इसके लिए ग्राम सभा के आकार और क्षेत्र के मानदंडों की पुनः जाँच की आवश्यकता हो सकती है, क्योंकि बड़े आकार और क्षेत्र को बैठकों के सफल आयोजन के लिए हानिकारक पाया गया है।

मैथ्यू ने यह भी तर्क दिया कि ग्राम सभा और पंचायतों के बीच संबंध द्वंद्वात्मक है। पंचायतें तभी प्रभावी होंगी जब ग्राम सभाएँ नियमित रूप से अधिकतम जनभागीदारी के साथ मिलेंगी। साथ ही, ग्राम सभा तभी प्रभावी होगी जब पंचायती राज संस्थाएँ सशक्त होंगी। उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि संविधान में संशोधन करके राज्यों पर ग्राम सभा को आवश्यक शक्तियाँ प्रदान करना अनिवार्य बनाया जाना चाहिए। ग्राम सभा को योजना, बजट, लाभार्थियों की सूची, विभिन्न कार्यों के स्थलों और पंचायत के लेखों को अनुमोदित करने की शक्ति होनी चाहिए।

2. सोशल ऑडिट के अनुभवजन्य अध्ययन

भारत में सोशल ऑडिट के क्रियान्वयन पर विभिन्न अनुभवजन्य अध्ययन हुए हैं। राजशेखर, लखा और मंजुला (2013) द्वारा कर्नाटक में किए गए एक महत्वपूर्ण अध्ययन ने चित्रदुर्ग जिले की पाँच ग्राम पंचायतों से प्राथमिक डेटा एकत्र कर यह तर्क दिया कि हालाँकि दस्तावेजी साक्ष्य बताते हैं कि सोशल ऑडिट आयोजित किए जाते हैं, वे योजना के लाभार्थियों को शामिल करने और योजना को प्रभावी बनाने के मुख्य उद्देश्य को पूरा नहीं करते हैं। उनका अध्ययन बताता है कि सोशल ऑडिट प्रक्रिया गाँव के कुलीन वर्गों द्वारा डाली गई शक्ति से समझौता कर ली जाती है, जिसके परिणामस्वरूप उन गरीब मजदूरों का बहिष्कार होता है जिनके लिए यह योजना मुख्य रूप से बनाई गई थी। यह निष्कर्ष अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह सोशल ऑडिट की केन्द्रीय चुनौती - सत्ता की गतिशीलता - को उजागर करता है।

वोंग (2023) द्वारा झारखंड में किए गए एक अध्ययन ने सोशल ऑडिट के संचार पहलू पर प्रकाश डाला। उन्होंने पाया कि नौकरशाह अधिक सक्रिय रूप से प्रतिक्रिया करते हैं जब उनकी लेखापरीक्षा

किए जाने की संभावना के बारे में उच्च अपेक्षाएँ होती हैं। जब लेखापरीक्षा की अपेक्षाएँ अधिक होती हैं, तो व्यय में 15% की गिरावट देखी गई। यह परिणाम मजदूरी व्यय में गिरावट से प्रेरित था। उनका अध्ययन यह भी बताता है कि बजट की कमी के बावजूद, नौकरशाहों को उनके लेखापरीक्षा के बारे में पहले से सूचित करना अनपेक्षित लेखापरीक्षाओं की तुलना में गलत आवंटित व्यय को कम करने में अधिक प्रभावी हो सकता है। इस अध्ययन का निहितार्थ यह है कि सोशल ऑडिट के डिजाइन में संचार रणनीति एक महत्वपूर्ण चर है।

3. सोशल ऑडिट और पंचायती राज

डॉ. कविता ए. जैन (2023) के एक अध्ययन ने सोशल ऑडिट प्रथा के माध्यम से पंचायती राज संस्थाओं के प्रदर्शन का विश्लेषण किया। उनका अध्ययन शुद्ध रूप से प्राथमिक डेटा पर आधारित था जिसमें सुविधाजनक नमूनाकरण विधि का उपयोग किया गया था। परिणामों ने योगदान दिया कि ग्राम सभा के माध्यम से सोशल ऑडिट प्रथा ने ग्रामीण क्षेत्रों का विकास किया है, लेकिन फिर भी सोशल ऑडिट प्रथा के प्रभावी कार्यान्वयन की आवश्यकता है। अध्ययन ने सुझाव दिया कि सरकार को पंचायत राज कर्मचारियों को प्रशिक्षण प्रदान करना चाहिए तथा एनजीओ जैसे अन्य संस्थानों को ग्रामीणों का समर्थन करने की आवश्यकता है।

राष्ट्रीय ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज संस्थान (NIRD&PR) के एक अध्ययन में छत्तीसगढ़ में सोशल ऑडिट प्रक्रिया की विस्तृत समीक्षा की गई। इस अध्ययन में पाया गया कि प्रति पंचायत लगभग ₹12,366 की लागत आती है, लेकिन केवल लगभग 70% दस्तावेज ही सोशल ऑडिट के लिए उपलब्ध कराए जाते हैं। प्रमुख चुनौतियों में धमकी और प्रलोभन, विभागीय समन्वय की कमी, तथा अनुवर्ती कार्रवाई में देरी शामिल हैं।

सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य

सोशल ऑडिट के सैद्धांतिक आधार पर मैथ्यू (1999) ने विस्तार से लिखा है। उनके अनुसार, सोशल ऑडिट को प्रभावी बनाने के लिए लक्षित समूहों को कार्यक्रमों के लाभों के प्रति संवेदनशील बनाना और कार्यान्वयन में अंतरालों की पहचान करना, लोगों के लिए तकनीकी विकल्पों के निहितार्थों की जाँच करना, लोगों के हितों, प्राथमिकताओं और धारणाओं को ध्यान में रखते हुए संगठनात्मक संरचना और नीति विकास की जाँच करना, और प्रणाली को लोगों के प्रति खुला और जवाबदेह बनाना आवश्यक है।

विभिन्न राज्य अधिनियमों के अध्ययन से ग्राम सभा को सौंपी गई शक्तियों और कार्यों के व्यापक क्षेत्रों का पता चलता है। इनमें वार्षिक लेखा विवरण और लेखापरीक्षा रिपोर्ट की जाँच, पूर्ववर्ती वर्ष के प्रशासन पर रिपोर्ट पर चर्चा, वर्ष के लिए कार्य कार्यक्रम की समीक्षा, नए कराधान या मौजूदा करों में वृद्धि के

प्रस्तावों पर विचार, योजनाओं, लाभार्थियों और कार्यों के स्थानों का चयन, विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में सहायता, ग्राम पंचायत के बजट पर विचार, मौजूदा योजनाओं की जाँच और समीक्षा, तथा ग्राम पंचायत के सरपंच और पंचों से गतिविधियों, आय, व्यय, योजनाओं और अन्य मामलों पर स्पष्टीकरण माँगना शामिल है।

शोध अंतराल (Research Gap)

पूर्व शोधों की समीक्षा से निम्नलिखित अंतराल स्पष्ट होते हैं: अधिकांश अध्ययन छत्तीसगढ़ के बस्तर या सरगुजा अंचल के जिलों पर केन्द्रित रहे हैं; धमतरी जिले पर विशिष्ट अध्ययन की कमी है। सोशल ऑडिट के तकनीकी पहलुओं पर तो काम हुआ है, किंतु ग्राम सभा के सामाजिक-राजनीतिक आयामों का गहन विश्लेषण नहीं हुआ है। सोशल ऑडिट ग्राम सभा में सत्ता की गतिशीलता (power dynamics) और हाशिए के समूहों की भागीदारी पर बहुत कम अध्ययन हुए हैं। कोविड-19 के बाद की अवधि में सोशल ऑडिट प्रक्रिया में आए बदलावों का अध्ययन अभी प्रारंभिक चरण में है। यह अध्ययन इन अंतरालों को भरने का प्रयास करता है, विशेष रूप से धमतरी जिले के संदर्भ में ग्राम सभा की भूमिका के विश्लेषणात्मक अध्ययन के माध्यम से।

संकल्पनात्मक ढाँचा (Conceptual Framework)

इस अध्ययन के लिए एक संकल्पनात्मक ढाँचा विकसित किया गया है जो सोशल ऑडिट में ग्राम सभा की भूमिका को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों को दर्शाता है। इस ढाँचे के अनुसार, स्वतंत्र चरों में सामुदायिक कारक (जन जागरूकता, साक्षरता, सामाजिक पूँजी), संस्थागत कारक (प्रशासनिक समर्थन, दस्तावेज उपलब्धता), राजनैतिक कारक (स्थानीय शक्ति संरचनाएँ, जाति-वर्ग गतिशीलता), और प्रक्रियागत कारक (पूर्व-सूचना, प्रशिक्षण, सुविधाएँ) शामिल हैं। मध्यस्थ चरों में सोशल ऑडिट टीम की क्षमता और निष्पक्षता, स्वतंत्र पर्यवेक्षक (Independent Observer) की भूमिका, तथा अनुवर्ती कार्रवाई का तंत्र शामिल हैं। आश्रित चर सोशल ऑडिट ग्राम सभा की प्रभावशीलता है, जिसे उपस्थिति, भागीदारी की गुणवत्ता, प्रश्नों की संख्या, पहचानी गई अनियमितताएँ, और अनुवर्ती कार्रवाई की दर जैसे संकेतकों से मापा जाता है। इस ढाँचे के अनुसार, ग्राम सभा की प्रभावशीलता केवल एक ही कारक पर निर्भर नहीं है, बल्कि यह सामुदायिक, संस्थागत, राजनैतिक और प्रक्रियागत कारकों के जटिल अंतर्संबंध का परिणाम है।

शोध प्रश्न

इस अध्ययन में निम्नलिखित शोध प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास किया गया है:

1. सोशल ऑडिट प्रक्रिया में ग्राम सभा की सैद्धांतिक (विधिक) भूमिकाएँ क्या हैं?

2. धमतरी जिले में सोशल ऑडिट ग्राम सभाओं का वास्तविक क्रियान्वयन किस प्रकार हो रहा है?
3. सोशल ऑडिट ग्राम सभा की प्रभावशीलता को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक कौन-से हैं?
4. ग्राम सभा की भूमिका को सुदृढ़ करने हेतु क्या सुझाव दिए जा सकते हैं?

शोध उद्देश्य

इस अध्ययन के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. सोशल ऑडिट हेतु ग्राम सभा के संवैधानिक, वैधानिक और नियामक प्रावधानों का विश्लेषण करना।
2. धमतरी जिले के चयनित ग्राम पंचायतों में सोशल ऑडिट ग्राम सभाओं के क्रियान्वयन का अध्ययन करना।
3. ग्राम सभा की प्रभावशीलता में बाधक कारकों की पहचान करना।
4. तथा सोशल ऑडिट प्रक्रिया में ग्राम सभा की भूमिका को सुदृढ़ करने हेतु व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत करना।

अध्ययन का महत्त्व

यह अध्ययन शैक्षणिक, नीति-निर्माण, सामाजिक कार्यकर्ताओं और प्रशासनिक सुधारों की दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। सोशल ऑडिट और ग्राम सभा पर किए गए अध्ययनों में यह अध्ययन धमतरी जिले के विशिष्ट संदर्भ में नए तथ्यात्मक निष्कर्ष प्रस्तुत करेगा। अध्ययन के निष्कर्ष नीति-निर्माताओं और प्रशासकों को सोशल ऑडिट प्रक्रिया में सुधार हेतु मार्गदर्शन प्रदान करेंगे। साथ ही, यह अध्ययन सामाजिक कार्यकर्ताओं और सिविल सोसाइटी संगठनों को ग्राम सभाओं को सशक्त बनाने की रणनीति विकसित करने में सहायक होगा तथा अध्ययन में सुझाए गए उपाय प्रशासनिक सुधारों की दिशा में उपयोगी साबित होंगे।

अध्ययन की सीमाएँ

यह अध्ययन भौगोलिक रूप से धमतरी जिले की केवल चार ग्राम पंचायतों तक सीमित है। समय और संसाधनों की कमी के कारण बड़े नमूने पर अध्ययन संभव नहीं हो सका। कोविड-19 के बाद की अवधि में किए गए इस अध्ययन में कुछ ऑनलाइन साक्षात्कार लेने पड़े, जिससे गहन गुणात्मक आंकड़ों के संग्रह में थोड़ी कमी रही।

शोध पद्धति

1. शोध डिज़ाइन

यह अध्ययन **मिश्रित पद्धति (Mixed Method Research Design)** पर आधारित है, जो गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों प्रकार के आंकड़ों का संग्रह और विश्लेषण करता है। गुणात्मक घटक के अंतर्गत गहन साक्षात्कार, फोकस समूह चर्चा और अवलोकन शामिल हैं, जबकि मात्रात्मक घटक के अंतर्गत सर्वेक्षण और सांख्यिकीय विश्लेषण शामिल है। यह मिश्रित दृष्टिकोण सोशल ऑडिट प्रक्रिया की जटिलताओं को बेहतर ढंग से समझने में सहायक है, क्योंकि यह संख्यात्मक डेटा के साथ-साथ प्रतिभागियों के अनुभवों और धारणाओं को भी कैप्चर करता है।

2. अध्ययन क्षेत्र: धमतरी जिला

धमतरी जिला छत्तीसगढ़ राज्य के दक्षिण-पूर्वी भाग में स्थित है। इस जिले का चयन निम्नलिखित कारणों से किया गया: भौगोलिक विविधता (जिले में मैदानी, वनांचल और आदिवासी बहुल क्षेत्र शामिल हैं); मनरेगा का सक्रिय क्रियान्वयन (जिले में मनरेगा के तहत कार्यों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक है); पिछले सोशल ऑडिट अनुभव (जिले में पिछले कई वर्षों से सोशल ऑडिट नियमित रूप से हो रहे हैं); तथा शोध की सुगमता (शोधकर्ता के लिए जिले तक पहुँच और आंकड़े एकत्र करने में सुविधा)।

अध्ययन हेतु जिले की चार ग्राम पंचायतों का चयन किया गया। धमतरी ब्लॉक की ग्राम पंचायत 'ए' शहरी सीमा से सटी हुई है और इसमें अपेक्षाकृत अधिक साक्षरता दर है। कुरूद ब्लॉक की ग्राम पंचायत 'बी' मैदानी कृषि प्रधान क्षेत्र है। मगरलोड ब्लॉक की ग्राम पंचायत 'सी' अर्ध-वनांचल एवं आदिवासी बहुल है। नगरी ब्लॉक की ग्राम पंचायत 'डी' एक पिछड़ा क्षेत्र है जो नक्सल प्रभावित भी है।

3. नमूनाकरण विधि (Sampling Method)

नमूनाकरण के लिए स्तरीकृत प्रयोजनमूलक नमूनाकरण (Stratified Purposive Sampling) का उपयोग किया गया, जिसके तहत जिले के चारों ब्लॉकों में से प्रत्येक ब्लॉक से एक ग्राम पंचायत का चयन किया गया। इसके बाद, यादृच्छिक नमूनाकरण के माध्यम से प्रत्येक ग्राम पंचायत में 30 परिवारों (कुल 120) का चयन सर्वेक्षण हेतु किया गया। सोशल ऑडिट टीम के सदस्यों और स्थानीय नेताओं तक पहुँच के लिए हिमकन्दुकी नमूनाकरण (Snowball Sampling) का प्रयोग किया गया।

4. आंकड़ा संग्रह के स्रोत और उपकरण

प्राथमिक स्रोतों से डेटा संग्रह के लिए विभिन्न उपकरणों का उपयोग किया गया। अर्ध-संरचित साक्षात्कारों के माध्यम से 4 ग्राम प्रधानों/सरपंचों, 4 ग्राम सचिवों, 8 सोशल ऑडिट टीम सदस्यों, और 4 ब्लॉक स्तरीय अधिकारियों का साक्षात्कार लिया गया। फोकस समूह चर्चा के माध्यम से हाशिए के समूहों (महिलाएँ, अनुसूचित जाति/जनजाति) के साथ 4 समूह चर्चा आयोजित की गई, जिसमें प्रत्येक समूह में 8-10 प्रतिभागी थे। सर्वेक्षण के माध्यम से 120 ग्राम सभा सदस्यों का सर्वेक्षण किया गया। इसके अतिरिक्त, प्रतिभागी अवलोकन के माध्यम से 4 सोशल ऑडिट ग्राम सभाओं का अवलोकन किया गया।

द्वितीयक स्रोतों में सोशल ऑडिट नियम, 2015 (छत्तीसगढ़), मनरेगा अधिनियम, 2005, ग्राम पंचायतों के सोशल ऑडिट रिपोर्ट, पूर्व शोध पत्र और अध्ययन रिपोर्ट, तथा NIRD&PR द्वारा प्रकाशित स्टेटस रिपोर्ट शामिल हैं।

5. आंकड़ा संग्रह प्रक्रिया

आंकड़ा संग्रह जनवरी 2024 से जून 2024 के बीच किया गया। प्रक्रिया की शुरुआत में जिला पंचायत धमतरी से आवश्यक प्रशासनिक अनुमति प्राप्त की गई। इसके बाद एक ग्राम पंचायत में प्रश्नावली और साक्षात्कार दिशानिर्देशों का पायलट अध्ययन किया गया। मुख्य अध्ययन में घर-घर जाकर 120 प्रतिभागियों का सर्वेक्षण, 20 गहन साक्षात्कार, 4 फोकस समूह चर्चा, और 4 सोशल ऑडिट ग्राम सभाओं का प्रतिभागी अवलोकन किया गया। अंत में, संबंधित पंचायतों और कार्यालयों से रिकॉर्ड प्राप्त किए गए।

6. आंकड़ा विश्लेषण योजना

मात्रात्मक आंकड़ों के विश्लेषण के लिए SPSS सॉफ्टवेयर का उपयोग करते हुए सांख्यिकीय विश्लेषण (प्रतिशत, औसत, ची-स्क्वायर टेस्ट) किया गया। गुणात्मक आंकड़ों के लिए थीमैटिक विश्लेषण (Thematic Analysis) और सामग्री विश्लेषण (Content Analysis) का उपयोग किया गया। विभिन्न स्रोतों से प्राप्त निष्कर्षों की पुष्टि के लिए डेटा त्रिकोणीकरण (Triangulation) किया गया।

सभी प्रतिभागियों को अध्ययन के उद्देश्य के बारे में जानकारी दी गई और उनकी लिखित/मौखिक सहमति (Informed Consent) ली गई। प्रतिभागियों की पहचान को गुप्त रखा गया और कोड नामों का प्रयोग किया गया (Confidentiality)। प्रतिभागियों को कभी भी अध्ययन से हटने का अधिकार दिया गया (स्वैच्छिक भागीदारी)। अध्ययन इस प्रकार डिज़ाइन किया गया कि प्रतिभागियों को कोई शारीरिक/मानसिक क्षति न हो (न्यूनतम जोखिम)।

सोशल ऑडिट में ग्राम सभा का विधिक ढाँचा: एक विश्लेषण

यह खंड शोध के पहले उद्देश्य - सोशल ऑडिट में ग्राम सभा की सैद्धांतिक भूमिकाओं का विश्लेषण - को पूरा करता है।

- **संवैधानिक आधार (Constitutional Foundation)**

  73वें संविधान संशोधन ने ग्राम सभा को संवैधानिक मान्यता दी। हालाँकि, सोशल ऑडिट का स्पष्ट उल्लेख संविधान में नहीं है, किंतु ग्राम सभा को सौंपे गए कार्यों में "योजनाओं की निगरानी" शामिल है, जो सोशल ऑडिट का आधार बनता है। अनुच्छेद 243 (क) के अनुसार, ग्राम सभा ऐसी शक्तियों का प्रयोग करेगी जो राज्य का विधानमंडल निर्धारित करे। सोशल ऑडिट नियम इसी संवैधानिक प्रावधान का एक व्यावहारिक स्वरूप है। बैंगलोर में आयोजित एक राष्ट्रीय सम्मेलन में यह सिफारिश की गई थी कि संविधान में संशोधन करके राज्यों पर ग्राम सभा को आवश्यक शक्तियाँ प्रदान करना अनिवार्य बनाया जाना चाहिए। सम्मेलन ने यह भी सिफारिश की कि "सोशल ऑडिट" ग्राम सभा का एक प्रमुख कार्य होना चाहिए और कुछ गैर-पंचायत सदस्यों को लेखों की जाँच करने और उन पर हस्ताक्षर करने का अधिकार दिया जाना चाहिए।

- **मनरेगा अधिनियम, 2005: सोशल ऑडिट के प्रावधान**

  मनरेगा अधिनियम की धारा 17 सोशल ऑडिट से संबंधित है। यह प्रावधान स्पष्ट करता है कि सोशल ऑडिट का दायित्व ग्राम सभा पर है, न कि किसी बाहरी एजेंसी पर, हालाँकि तकनीकी सहायता के लिए बाहरी एजेंसियों को शामिल किया जा सकता है। सोशल ऑडिट उस लोकतांत्रिक सिद्धांत का प्रतीक है जो स्थानीय नौकरशाहों के प्रदर्शन के बारे में नागरिकों को सूचित रखने के लिए ग्राम सभा (ग्रामीण सार्वजनिक सुनवाई) में लेखापरीक्षा के निष्कर्षों की घोषणा करता है, जिससे नौकरशाहों को जवाबदेह बनाना संभव होता है।

- **छत्तीसगढ़ सोशल ऑडिट नियम, 2015: विस्तृत विश्लेषण**

  छत्तीसगढ़ के सोशल ऑडिट नियम, 2015 सोशल ऑडिट प्रक्रिया का सबसे व्यापक नियामक ढाँचा प्रदान करते हैं। नियमों के अनुसार, "सोशल ऑडिट ग्राम सभा एक विशेष ग्राम सभा है जो प्रत्येक छह माह में कम से कम एक बार सोशल ऑडिट निष्कर्षों पर चर्चा करने हेतु आयोजित की जाएगी।" "प्राथमिक हितधारकों" में मनरेगा के श्रमिक, उनके परिवारजन और पंचायत के निवासी शामिल हैं। "स्वतंत्र पर्यवेक्षक" (Independent Observer) को जिला कार्यक्रम समन्वयक (DPC) द्वारा सोशल ऑडिट ग्राम सभा में भेजा जाएगा।

सोशल ऑडिट प्रक्रिया के सोपान निम्नलिखित हैं: सोशल ऑडिट टीम और ग्राम पंचायत द्वारा ग्राम सभा की पूर्व-सूचना; दरवाजे-दरवाजे और कार्य स्थलों का 100% सत्यापन; निष्कर्षों की प्रस्तुति और चर्चा हेतु ग्राम सभा; क्लस्टर स्तर पर एग्जिट कॉन्फ्रेंस; तथा 15 दिनों के भीतर अनुवर्ती कार्रवाई की शुरुआत।

ग्राम सभा की भूमिका के संबंध में नियमों में स्पष्ट प्रावधान हैं। ग्राम सभा में अधिक से अधिक भागीदारी सुनिश्चित करना, ग्राम पंचायत द्वारा ग्राम सभा की सूचना देना, सोशल ऑडिट टीम के आग्रह पर ग्राम सभा बुलाना, सोशल ऑडिट निष्कर्षों का ग्राम सभा में वाचन, किसी निष्कर्ष से असहमत होने पर स्वतंत्र पर्यवेक्षक द्वारा पुनःपरीक्षा, और यह सुनिश्चित करना कि दर्ज साक्ष्य एग्जिट कॉन्फ्रेंस में पुनः नहीं खोले जाएँ, इन प्रावधानों में शामिल हैं।

अनुवर्ती कार्रवाई के तंत्र के अनुसार, सोशल ऑडिट में उठाया गया कोई भी मुद्दा स्वतः धारा 19 के तहत शिकायत माना जाएगा। DPC एग्जिट कॉन्फ्रेंस के 15 दिनों के भीतर कार्रवाई शुरू करेगा और वसूली की गई धनराशि 7 दिनों के भीतर श्रमिकों को लौटाई जाएगी। नियम यह भी कहता है कि "सोशल ऑडिट कार्यान्वयन एजेंसियों द्वारा किए गए कार्यों का एक स्वतंत्र मूल्यांकन है। प्रशासनिक तंत्र द्वारा इस प्रक्रिया में हस्तक्षेप या प्रभावित करने का कोई भी प्रयास कठोरता से निपटा जाएगा।" यह प्रावधान अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह सोशल ऑडिट प्रक्रिया की स्वतंत्रता की रक्षा करता है।

धमतरी जिले में सोशल ऑडिट ग्राम सभाओं का क्रियान्वयन

यह खंड शोध के दूसरे उद्देश्य - क्रियान्वयन की वास्तविक स्थिति - का वर्णन करता है।

- **धमतरी जिले में सोशल ऑडिट का संगठनात्मक ढाँचा**

  धमतरी जिले में सोशल ऑडिट प्रक्रिया एक पदानुक्रमिक ढाँचे से संचालित होती है। शीर्ष पर राज्य सोशल ऑडिट यूनिट (CGSAU) है, जो नीति निर्धारण और मार्गदर्शन प्रदान करता है। जिला स्तर पर जिला कार्यक्रम समन्वयक (DPC) और जिला कलेक्टर इस प्रक्रिया के नोडल अधिकारी होते हैं। ब्लॉक स्तर पर ब्लॉक कार्यक्रम समन्वयक और जनपद पंचायत के सीईओ इसकी निगरानी करते हैं। सोशल ऑडिट टीम (सीनियर और जूनियर फैसिलिटेटर) जमीनी स्तर पर डेटा संग्रह और सत्यापन का कार्य करती है। ग्राम स्तरीय ऑडिटर (Village Social Auditors) सबसे निचले स्तर पर कार्य करते हैं। स्वतंत्र पर्यवेक्षक, जो DPC द्वारा नामित होता है, सोशल ऑडिट ग्राम सभा की निष्पक्षता सुनिश्चित करता है। इसके बाद क्लस्टर स्तर पर एग्जिट कॉन्फ्रेंस आयोजित की जाती है और अंत में अनुवर्ती कार्रवाई की जाती है।

- **सोशल ऑडिट प्रक्रिया के चरण: सिद्धांत बनाम व्यवहार**

  सोशल ऑडिट प्रक्रिया को नियमों के अनुसार चार मुख्य चरणों में विभाजित किया गया है - प्रारंभिक तैयारी, सोशल ऑडिट ग्राम सभा का आयोजन, चर्चा और प्रश्नोत्तरी, तथा निष्कर्ष और अनुवर्ती कार्रवाई।

  प्रारंभिक तैयारी के चरण में, सैद्धांतिक रूप से 100% दस्तावेज उपलब्ध कराने और 100% कार्य स्थलों के भौतिक सत्यापन का प्रावधान है। हालाँकि, धमतरी में व्यवहार में औसतन केवल 65-70% दस्तावेज ही उपलब्ध हो पाते हैं, और लगभग 80% कार्य स्थलों का ही सत्यापन हो पाता है। दरवाजे-दरवाजे सत्यापन के तहत लगभग 60% श्रमिकों तक ही पहुँच बन पाती है। सोशल ऑडिट से पूर्व प्रचार अभियान (वातावरण निर्माण) लगभग न के बराबर होता है। NIRD&PR के अध्ययन के अनुसार, छत्तीसगढ़ में सोशल ऑडिट में दीवार लेखन को "बेस्ट प्रैक्टिस" माना गया है, किंतु धमतरी में इसका व्यापक प्रयोग नहीं देखा गया।

  सोशल ऑडिट ग्राम सभा के आयोजन के चरण में, सर्वेक्षण में शामिल 120 प्रतिभागियों में से 82 (68.3%) ने बताया कि उनके गाँव में पिछले एक वर्ष में सोशल ऑडिट ग्राम सभा का आयोजन हुआ था। किंतु, उपस्थिति के आंकड़े चिंताजनक हैं। औसतन, प्रति ग्राम पंचायत में केवल 6.78% मतदाता ही ग्राम सभा में उपस्थित होते हैं, जिसमें महिलाओं की हिस्सेदारी केवल 33.9% है। यह ध्यातव्य है कि NIRD&PR के अध्ययन में उल्लिखित "मनरेगा श्रमिक द्वारा अध्यक्षता" का प्रावधान धमतरी में पूर्णतः क्रियान्वित नहीं होता। अधिकांश ग्राम सभाओं की अध्यक्षता सरपंच या उपसरपंच द्वारा की जाती है, जो स्वयं निष्पक्षता पर प्रश्नचिह्न लगाता है।

  चर्चा और प्रश्नोत्तरी के चरण में, केवल 18.3% सदस्यों ने ही कोई प्रश्न पूछा। प्रश्नों में से 45% भुगतान से संबंधित थे, 28% कार्य की गुणवत्ता से, 15% लाभार्थी चयन से, और 12% अन्य विषयों से संबंधित थे। महिला सदस्यों में से केवल 8.5% ने कोई प्रश्न पूछा। फोकस समूह चर्चा में महिलाओं ने बताया कि वे "बोलने से डरती हैं" या "अपनी बात रखने का तरीका नहीं जानतीं।" यह "स्थानीय शक्ति संरचनाओं" के प्रभाव को दर्शाता है।

  निष्कर्ष और अनुवर्ती कार्रवाई के चरण में, सभी ग्राम सभाओं में निष्कर्षों का दस्तावेजीकरण तो हुआ, लेकिन 75% निष्कर्ष ही एग्जिट कॉन्फ्रेंस में प्रस्तुत किए गए। केवल 25% मामलों में ही अनुवर्ती कार्रवाई 15 दिनों के भीतर शुरू हुई, और 7 दिनों के भीतर वसूली और वापसी का कोई मामला दर्ज नहीं था। एक प्रशासनिक अधिकारी ने साक्षात्कार में बताया कि सोशल ऑडिट के निष्कर्ष आते हैं, लेकिन उन पर कार्रवाई करना एक लंबी प्रक्रिया है, जिसमें कार्मिक विभाग के नियम, अपील की प्रक्रिया, और राजनीतिक हस्तक्षेप बाधा डालते हैं।

सोशल ऑडिट ग्राम सभा की प्रभावशीलता को प्रभावित करने वाले कारक

यह खंड शोध के तीसरे उद्देश्य - प्रभावशीलता को प्रभावित करने वाले कारकों की पहचान - को पूरा करता है।

सामुदायिक कारक

सर्वेक्षण के अनुसार, ग्राम सभा सदस्यों में सोशल ऑडिट की समझ का स्तर अत्यंत निम्न है। जहाँ 68.3% ने सोशल ऑडिट शब्द सुना था, वहीं केवल 41.7% इसका उद्देश्य समझते थे। 52.5% जानते थे कि वे प्रश्न पूछ सकते हैं, लेकिन केवल 16.7% जानते थे कि किन दस्तावेजों की माँग करें। केवल 22.5% पिछले सोशल ऑडिट के निष्कर्षों से अवगत थे। NIRD&PR के अध्ययन में भी यह पाया गया कि "पूर्व-ग्राम सभा वातावरण निर्माण" अपर्याप्त है। इस अध्ययन में, 120 में से केवल 20 प्रतिभागियों (16.7%) ने बताया कि उन्हें सोशल ऑडिट की पूर्व-सूचना मिली थी। यह कर्नाटक अध्ययन के निष्कर्षों के अनुरूप है कि सोशल ऑडिट प्रक्रिया गाँव के कुलीन वर्गों द्वारा डाली गई शक्ति से समझौता कर ली जाती है।

सामाजिक पूँजी (Social Capital) का भी महत्वपूर्ण प्रभाव है। जहाँ जातीय ध्रुवीकरण कम था (ग्राम पंचायत ए), वहाँ भागीदारी अधिक थी। नक्सल प्रभावित ग्राम पंचायत डी में सबसे कम उपस्थिति (5.14%) और न्यूनतम भागीदारी देखी गई। एक फोकस समूह प्रतिभागी ने कहा कि वे गाँव में दो गुटों में बँटे हैं और यदि वे सरपंच के खिलाफ कुछ बोलेंगे तो उनके काम बंद हो सकते हैं, इसलिए चुप रहना ही बेहतर है। यह उस स्थिति का उदाहरण है जहाँ "ग्राम सभा की अध्यक्षता सरपंच द्वारा" एक समस्या बन जाती है।

लिंग और हाशिए के समूहों की भागीदारी अत्यंत असमान है। जहाँ अनुसूचित जनजाति की जनसंख्या में 35% हिस्सेदारी है, वहीं ग्राम सभा उपस्थिति में उनकी हिस्सेदारी 42% (अपेक्षाकृत बेहतर) है, लेकिन प्रश्न पूछने वालों में केवल 12% हैं। अनुसूचित जाति की जनसंख्या में 12% हिस्सेदारी के विपरीत, उपस्थिति में 8% और प्रश्न पूछने वालों में केवल 4% हैं। सामान्य वर्ग, जिसकी जनसंख्या में 25% हिस्सेदारी है, उपस्थिति में 19% है लेकिन प्रश्न पूछने वालों में 56% है। महिलाओं की स्थिति सबसे चिंताजनक है - 49% जनसंख्या हिस्सेदारी के विपरीत, उपस्थिति में 34% और प्रश्न पूछने वालों में केवल 8.5% हैं। एक महिला फोकस समूह प्रतिभागी ने कहा कि वे आती तो हैं, लेकिन बोलने की हिम्मत नहीं होती क्योंकि पुरुष उन्हें बोलने नहीं देते, और यदि वे कुछ कहेंगी तो घर में झगड़ा होगा।

संस्थागत कारक (Institutional Factors)

दस्तावेजों की उपलब्धता सोशल ऑडिट की सबसे बड़ी तकनीकी चुनौती है। धमतरी में, मनरेगा रोजगार कार्ड 92% उपलब्ध थे, लेकिन मस्टर रोल केवल 68%, मापन पुस्तिका 55%, भुगतान पर्ची 48%, और कार्य पूर्ति प्रमाण पत्र केवल 35% उपलब्ध थे। एक ग्राम सचिव ने साक्षात्कार में बताया कि कभी-कभी दस्तावेज जानबूझकर नहीं दिए जाते क्योंकि उनमें गड़बड़ियाँ छिपी होती हैं, लेकिन कई बार प्रशासनिक अव्यवस्था के कारण भी दस्तावेज समय पर नहीं मिल पाते।

विभागीय समन्वय भी एक बड़ी चुनौती है। पंचायत विभाग ने 80% मामलों में सहयोग किया, जल संसाधन विभाग ने 45% मामलों में, और वन विभाग ने केवल 20% मामलों में सहयोग किया। NIRD&PR के अध्ययन में भी "लाइन विभागों में सीमित समन्वय" को एक समस्या के रूप में पहचाना गया है।

स्वतंत्र पर्यवेक्षक की भूमिका के संबंध में, धमतरी में चार में से तीन ग्राम सभाओं में स्वतंत्र पर्यवेक्षक उपस्थित थे (75%), लेकिन वे औसतन केवल 1.5 घंटे (जबकि ग्राम सभा 3-4 घंटे चलती है) ही उपस्थित रहते थे। स्वतंत्र पर्यवेक्षक की भूमिका का एक बड़ा दोष यह है कि यह पदाधिकारी प्रशासनिक व्यवस्था का ही हिस्सा है, जिससे पूर्ण स्वतंत्रता संदिग्ध है।

बजटीय एवं संसाधन सीमाओं के संदर्भ में, प्रति ग्राम पंचायत ₹12,366 की लागत से सोशल ऑडिट होता है, जिसमें टीम के रहने-खाने का खर्च, प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण, ग्राम सभा हेतु टेंट, और यात्रा भत्ता शामिल हैं। यह बजट अक्सर अपर्याप्त होता है, जिससे सोशल ऑडिट की गुणवत्ता प्रभावित होती है। वोंग (2023) के अध्ययन के अनुसार, बजट की कमी सरकारों को उस गुणवत्ता या तीव्रता के साथ लेखापरीक्षा करने से रोकती है जो भ्रष्ट व्यवहार को और अधिक रोकने के लिए आवश्यक है ।

निष्कर्ष

इस अध्ययन ने छत्तीसगढ़ के धमतरी जिले में सोशल ऑडिट हेतु ग्राम सभा की भूमिकाओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया है। अध्ययन के निष्कर्ष बताते हैं कि जहाँ एक ओर छत्तीसगढ़ में सोशल ऑडिट के लिए एक सुदृढ़ नियामक ढाँचा मौजूद है, वहीं दूसरी ओर ग्राम सभा की प्रभावशीलता कई बाधाओं से ग्रस्त है। धमतरी जिले के संदर्भ में, सोशल ऑडिट ग्राम सभाएँ तो आयोजित की जाती हैं, लेकिन उनकी गुणवत्ता और प्रभावशीलता वांछित स्तर पर नहीं है।

प्रमुख निष्कर्षों में, सबसे पहले, ग्राम सभा की उपस्थिति अत्यंत कम (औसतन 6.78%) है, जो यह दर्शाता है कि सोशल ऑडिट के प्रति जनसामान्य में रुचि या जागरूकता का अभाव है। दूसरे, सदस्यों की भागीदारी गुणात्मक रूप से भी कमजोर है - केवल 18.3% ने ही कोई प्रश्न पूछा, और महिलाओं तथा हाशिए के समुदायों की भागीदारी अत्यंत सीमित है। तीसरे, दस्तावेजों की अनुपलब्धता और

विभागीय समन्वय की कमी के कारण सोशल ऑडिट की तकनीकी गुणवत्ता प्रभावित होती है। चौथे, अनुवर्ती कार्रवाई के तंत्र में कमी के कारण सोशल ऑडिट के निष्कर्षों पर ठोस कार्रवाई नहीं हो पाती। पाँचवें, स्थानीय शक्ति संरचनाएँ (जाति, वर्ग, लिंग) ग्राम सभा की कार्यप्रणाली को गहराई से प्रभावित करती हैं।

यह अध्ययन पूर्व शोधों के निष्कर्षों की पुष्टि करता है कि सोशल ऑडिट प्रक्रिया गाँव के कुलीन वर्गों द्वारा डाली गई शक्ति से समझौता कर ली जाती है , और यह कि अनुवर्ती कार्रवाई में देरी एक व्यापक समस्या है। साथ ही, यह अध्ययन यह भी दर्शाता है कि सोशल ऑडिट के बावजूद, ग्राम सभा अभी भी एक "मिलना, चर्चा करना और आलोचना करना" का मंच बनकर रह गई है, न कि वास्तविक जवाबदेही सुनिश्चित करने का सशक्त तंत्र ।

सुझाव

1. **प्रथम, सामुदायिक जागरूकता एवं क्षमता निर्माण:** सोशल ऑडिट से पूर्व व्यापक प्रचार अभियान चलाया जाना चाहिए, जिसमें दीवार लेखन, नुक्कड़ नाटक, और स्थानीय मीडिया का उपयोग किया जाए। ग्रामीणों को सोशल ऑडिट के अधिकारों और प्रक्रियाओं के बारे में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए, विशेष रूप से महिलाओं और हाशिए के समुदायों को। स्कूलों और सामुदायिक केंद्रों में सोशल ऑडिट साक्षरता कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए।
2. **द्वितीय, दस्तावेज उपलब्धता और प्रशासनिक सुधार:** सभी मनरेगा दस्तावेजों को डिजिटल रूप से उपलब्ध कराने की व्यवस्था की जानी चाहिए। दस्तावेज उपलब्ध न कराने वाले अधिकारियों/कर्मचारियों के विरुद्ध दंडात्मक कार्रवाई का प्रावधान किया जाना चाहिए। विभिन्न विभागों (पंचायत, जल संसाधन, वन आदि) के बीच समन्वय हेतु एक साझा मंच बनाया जाना चाहिए।
3. **तृतीय, ग्राम सभा की अध्यक्षता एवं संचालन में सुधार:** सोशल ऑडिट ग्राम सभा की अध्यक्षता मनरेगा श्रमिक द्वारा की जानी चाहिए, जैसा कि नियमों में प्रावधान है। ग्राम सभा के संचालन हेतु एक मानक संचालन प्रक्रिया (SOP) विकसित की जानी चाहिए, जिसमें समय सीमा, एजेंडा, और प्रश्नोत्तरी की प्रक्रिया स्पष्ट हो। वार्ड स्तर पर छोटी ग्राम सभाएँ आयोजित की जानी चाहिए, जहाँ भागीदारी अधिक सार्थक हो सके।
4. **चतुर्थ, स्वतंत्र पर्यवेक्षक की भूमिका को सुदृढ़ करना:** स्वतंत्र पर्यवेक्षक को गैर-प्रशासनिक व्यक्ति (जैसे सेवानिवृत्त न्यायाधीश, शिक्षाविद्, या सिविल सोसाइटी प्रतिनिधि) नियुक्त किया जाना चाहिए। स्वतंत्र पर्यवेक्षक को पूर्ण ग्राम सभा अवधि में उपस्थित रहना अनिवार्य बनाया जाना चाहिए।

ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

5. **पंचम, अनुवर्ती कार्रवाई को सुनिश्चित करना:** सोशल ऑडिट के निष्कर्षों पर त्वरित कार्रवाई हेतु एक स्वतंत्र तंत्र बनाया जाना चाहिए। कार्रवाई की प्रगति की नियमित समीक्षा हेतु जिला स्तरीय समिति गठित की जानी चाहिए। सोशल ऑडिट के निष्कर्षों और की गई कार्रवाई को ऑनलाइन सार्वजनिक किया जाना चाहिए।
6. **षष्ठम, सामाजिक समावेशन:** महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने हेतु अलग महिला सत्र आयोजित किए जाने चाहिए। अनुसूचित जाति और जनजाति के प्रतिनिधियों को विशेष रूप से प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। स्थानीय शक्ति संरचनाओं के दबाव को कम करने हेतु गुमनाम शिकायत प्रणाली विकसित की जानी चाहिए।
7. **सप्तमम, बजटीय एवं संसाधन वृद्धि:** प्रति पंचायत सोशल ऑडिट बजट में वृद्धि की जानी चाहिए। सोशल ऑडिट टीम के सदस्यों को पर्याप्त मानदेय और प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। तकनीकी संसाधनों (जैसे टैबलेट, जीपीएस) का उपयोग बढ़ाया जाना चाहिए।

संदर्भ सूची

1. भारत सरकार. (2005). *महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम, 2005*. नई दिल्ली: भारत सरकार.
2. छत्तीसगढ़ शासन. (2015). *महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना-छत्तीसगढ़, सोशल ऑडिट नियम, 2015*. रायपुर: छत्तीसगढ़ शासन.
3. Mathew, G. (1999). Gram Sabha and Social Audit. *Kurukshetra*, October 1999, 24-27.
4. Rajasekhar, D., Lakha, S., & Manjula, R. (2013). How effective are social audits under MGNREGS? Lessons from Karnataka. *Sociological Bulletin*, 62(3), 431-455.
5. Jain, K. A. (2023). Social Audit And Panchayati Raj. *The Journal of Oriental Research*, 8(8).
6. Wong, S. (2023). *Expected or unexpected? Strategic communication around audits to maximise deterrence*. Ideas for India.
7. राष्ट्रीय ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज संस्थान (NIRD&PR). (2018). *सोशल ऑडिट का मूल्यांकन: छत्तीसगढ़ का अध्ययन*. हैदराबाद: NIRD&PR.
8. केरल सरकार. (1996). *Decentralisation Committee Report (Satya Brata Sen Committee)*. तिरुवनंतपुरम: केरल सरकार.

9. भारत सरकार. (2011). *महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी (सोशल ऑडिट) नियम, 2011*. नई दिल्ली: भारत सरकार.
10. Institute of Social Sciences. (1999). *Recommendations of National Conference on Amendments to the Constitution (73rd and 74th Amendments) Acts, 1992*. नई दिल्ली: ISS.

ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

कुपोषण की स्थिती एवं आँकड़ों पर एक तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. रेणु कुमारी
गृह विज्ञान विभाग,
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार।

परिचय : यह एक ऐस चक्र है जिसके चंगुल में बच्चे अपनी माँ के गर्भ मे ं ही फंस जाते हैं। उनके जीवन की नियति दुनिया में जन्म लेने के पहले ही तय हो जाती है। यह नियति लिखी जाती है गरीबी और भुखमरी की स्याही से। इसका रंग स्याह उदास होता है और स्थिति गंभीर होने पर जीवन में आशा की किरणें भी नहीं पनप पाती हैं। कुपोषण के मायने होते हैं आयु और शरीर के अनुरूप पर्याप्त शारीरिक विकास न होना। स्तर के बाद यह मानसिक विकास की प्रक्रिया को भी अवरूद करने लगता है। बहुत छोटे बच्चों खासतौर पर जन्म से लेकर 5 वर्ष की आयु तक के बच्चों को भोजन के जरिये पर्याप्त पोषण आहार न मिलने के कारण उनमें कुपोषण की समस्या जन्म ले लेती है। इसके परिणाम स्वरूप बच्चों में रोग प्रतिरोधक क्षमता का हास होता है और छोटी–छोटी बीमारियां उनकी मृत्यु का कारण बन जाती हैं। कुपोषण वास्तव में घरेलू खाद्य असुरक्षा का सीधा परिणाम है। सामान्य रूप में खाद्य सुरक्षा का अर्थ है सब तक खाद्य की पहुंचए हर समय खाद्य की पहुंच और सक्रिय और स्वस्थ्य जीवन के लिए पर्याप्त खाद्य। जब इनमें से एक या सारे घटक कम हो जाते हैं तो परिवार खाद्य असुरक्षा में डूब जाते है। खाद्य सुरक्षा सरकार की नीतियों और प्राथमिकताओं पर निर्भर करती है। अगर हम अपने भारत देश का उदाहरण ले तो जहां सरकार खाद्यान्न के ढेर पर बैठती है। उपयुक्त नीतियों के अभाव में यह जरूरत मंदों तक नहीं पहुंच पाता है। अनाज भण्डारण के अभाव में सड़ता है, चूहों द्वारा नष्ट होता है या समुद्रों में डुबाया जाता है पर जन संख्या का बड़ा भाग भूखे/खाली पेट सोता है। कुपोषण बच्चों को सबसे अधिक प्रभावित करता हैं। यह जन्म या उससे भी पहले शुरू होता है और 6 महीने से 3 वर्ष की अवधि में तीव्रता से बढ़ता है। इसके परिणाम स्वरूप वृदि में बाधिता, मृत्यु, कम दक्षता और लगभग 15 पाइंट तक आईक्यू का नुकसान होता है। सबसे भयंकर परिणाम इसके द्वारा जनित आर्थिक नुकसान होता है। कुपोषण के कारण मानव उत्पादकता लगभग 10.15 प्रतिशत तक कम हो जाती है जो सकल घरेलू उत्पाद को 5.10 प्रतिशत तक कम कर सकता है। कुपोषण के कारण बड़ी तादाद में बच्चे स्कूल छोड़ देते हैं। कुपोषित बच्चे अपनी घटी हुई सिखने की क्षमता के कारण खुद को स्कूल में अधिक देर रोक नहीं पाते। स्कूल से बाहर वे सामाजिक उपेक्षा तथा घटी हुई कम क्षमता तथा जीवन पर्यंत कुपोषण के शिकार हो जाते है। इस कारण बड़ी संख्या में बच्चें बाल श्रमिक

या बाल वैश्यावृत्ति के लिए मजबूर हो जाते हैं। बड़े होने पर वे अकुशल मजदूरों की लम्बी कतार में जुड़ जाते हैं जो राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था पर भारी बोझ बनता है।

कुंजी शब्द : कुपोषण, स्वास्थ्य, बच्चों में रोग, बीमारियां, कुपोषित, विटामिन ए, स्वस्थ्य, परिवार, संतुलित भोजन, सुपोषण।

शोध विधि : प्रस्तुत शोध–पत्र द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है। शोध पत्र के लिए इंटरनेट वेबसाइटों, न्यूज पेपर लेखों, टीवी, पत्रिकाओ ं और रिपोर्टों से सहयोग लिया गया है। शोध का उद्देश्य :– शोध पत्र का उद्देश्य शिक्षा के आर्थिक कारकों, जरूरते एंव वर्तमान समय में कुपोषण से होने वाले प्रभाव का अध्ययन करना है तथा कुपोषण की स्थित एवं आँकड़ों पर एक तुलनात्मक अध्ययन एवं विभिन्न नीतिगत उपायों का भी विश्लेषण करना है। कुपोषण जन्म या उससे भी पहले शुरू होता है और 6 माह से 3 वर्ष की अवधि में तीव्रता से बढ़ता है। 6 माह से 3 वर्ष की उम्र में बच्चे के लिए मॉ का दूध पर्याप्त नहीं होता। बच्चा खुद खा पाने या मांग पाने में असमर्थ होता है। उसको बार–बार नरम भोजन की जरूरत होती है जो उसे कोई वयस्क/व्यक्ति ही खिला सकता है। माताओं को अजीविका कमाने के साथ–साथ और भी कई घरेलू काम करने पड़ते हैं जैसे–खाना पकाना, पानी लाना, सफाई करना आदि। उनमें इतनी ऊर्जा या समय नहीं बचता कि वह बच्चे को बार–बार खिला सके। परिवार में भी अन्य वयस्क/व्यक्ति इसे सिर्फ मॉ की जिम्मेदारी समझते हैं। बचपन में कुपोषित बच्चे को बाद में सुधार की संभावना बहुत कम होती है। मध्यान्ह भोजन, छात्रवृत्ति, बाल श्रमिकों के लिए विशेष स्कूल आदि सहायक तो है किन्तु पहले 6 वर्षों के नुकसान की भरपाई नहीं कर सकते।

कुपोषण मुख्यतः 6 रूपों में नजर आता है जो क्रमशः 1. जन्म के समय कम वजन, 2. बचपन में बाधित विकास, 3. अल्प रक्तता 4. विटामिन ए की कमी 5. आयोडिन कमी संबंधित बिमारियां 6. मोटापा। बच्चों में कुपोषण मुख्यतः दो प्रकार का होता हैः– सूखे वाला कुपोषण, सूजन वाला कुपोषण, कुपोषण के सूचक बच्चे की उम्र एंव ऊंचाई के अनुरूप उसका वजन कम होना। उसके हाथ पैर पतले और कमजोर होना और पेट बढ़ा होना। बच्चे को बार–बार संक्रमण होना और बीमार होना। कुपोषण और स्वास्थ के संबध लगभग 500 लाख से ज्यादा ऐसे परिवार हैं जो अति गरीब की श्रेणी में आते हैं। इसका मतलब यह है कि आधी आबादी को दो वक्त की रोटी भी नसीब नहीं हो पाती है। यह सिद्ध हो चुका है कि पर्याप्त भोजन नहीं मिलने पर शरीर की रोगों से लड़ने की क्षमता कम हो जाती है और वह शीघ्र ही बीमारियों की चपेट में आ जाता है। जन्म के समय ढाई किलो से कम वजन होने पर बच्चे के बहुत कम उम्र में मरने की संभावना तीन गुना बढ़ जाती है। जबकि जहां कुपोषण ज्यादा होता है वहां खसरा से होने वाली मौतों की दर सामान्य से चार सौ गुना ज्यादा होती है। 3 वर्ष पूर्व राष्ट्रीय पोषण संस्थान द्वारा किये गये अध्ययन से पता चलता है कि भारत के राज्य मध्यप्रदेश की जनसख्या सबसे अधिक कुपोषण शिकार हुई है और यहां बच्चों की रोग प्रतिरोधक क्षमता बहुत क्षीण हो चुकी है। कुपोषित बच्चों पर दस्त का प्रकोप सामान्य से 4 गुना अधिक होता है। खून की कमी की शिकार औरतों में मातृत्व सम्बन्धी मौतें स्वस्थ्य औरतों की तुलना में पांच गुना ज्यादा होती हैं। अध्ययनों से पता चलता है कि कुल मरीजों मे ं से करीब तीन–चौथाई की रूग्णता का कारण कुपोषण या उससे जुड़ी अन्य दिक्कतें हो सकती हैं। संयुक्त राष्ट्र का कहना है कि हमारे भारत देश में हर साल कुपोषण के कारण मरने वाले पांच साल से कम उम्र वाले

बच्चों की संख्या लगभग दस लाख से भी ज्यादा है। दक्षिण एशिया में भारत कुपोषण के मामले मे ं सबसे बुरी हालत में है. राजस्थान और मध्य प्रदेश मे ं किए गए सर्वेक्षणों में पाया गया था कि देश के सबसे गरीब इलाकों में आज भी बच्चे भुखमरी के कारण अपनी जान गंवा रहे हैं. रिपोर्ट में कहा गया है कि अगर इस ओर ध्यान दिया जाए तो इन मौतों को रोका जा सकता है. संयुक्त राष्ट्र ने भारत में जो आंकड़े पाए हैं, वे अंतरराष्ट्रीय स्तर से कई गुना ज्यादा हैं. संयुक्त राष्ट्र ने स्थिति को चिंताजनक बताया है भारत में फाइट हंगर फाउंडेशन और एसीएफ इंडिया ने मिल कर जनरेशनल न्यूट्रिशन प्रोग्राम की शुरुआत की है भारत में एसीएफ के उपाध्यक्ष राजीव टंडन ने इस प्रोग्राम के बारे में बताते हुए कहा कि कुपोषण को चिकित्सीय आपात स्थिति के रूप में देखने की जरूरत है साथ ही उन्होंने इस दिशा में बेहतर नीतियो ं के बनाए जाने और इसके लिए बजट दिए जाने की भी पैरवी की नई दिल्ली में हुई कॉन्फ्रेंस में सरकार से जरूरी कदम उठाने पर जोर दिया गयाण् राजीव टंडन ने सरकार से कुपोषण मिटाने को एक मिशन की तरह लेने की अपील की हैण् उन्होंने कहा कि प्रधानमंत्री मोदी अगर चाहेंए तो इसे एक नई दिशा दे सकते हैंण् एसीएफ की रिपोर्ट बताती है कि भारत में कुपोषण जितनी बड़ी समस्या हैए वैसा पूरे दक्षिण एशिया में और कहीं देखने को नहीं मिला है रिपोर्ट में लिखा गया हैए भारत में अनुसूचित जनजाति 28% अनुसूचित जाति (21%), पिछड़ी जाति (20%) और ग्रामीण समुदाय (21%) पर अत्यधिक कुपोषण का बहुत बड़ा बोझ है वहीं महाराष्ट्र में राजमाता जिजाऊ मिशन चलाने वाली वंदना कृष्णा का कहना है कि राज्य सरकार कुपोषण कम करने के लिए कई कदम उठा रही है, पर साथ ही उन्होंने इस ओर भी ध्यान दिलाया कि दलित और आदिवासी इलाकों में अभी भी सफलता नहीं मिल पाई है संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट में बच्चों को खाना ना मिलने के साथ साथए देश में खाने की बर्बादी का ब्योरा भी दिया गया है। आज के समय में कुपोषण अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के लिये चिंता का विषय बन गया है। यहां तक की विश्व बैंक ने इसकी तुलना ब्लेक डेथ नामक महामारी से की है। जिसने 18 वीं सदीं में यूरोप की जनसंख्या के एक बड़े हिस्से को निगल लिया था। कुपोषण को क्यों इतना महत्वपूर्ण माना जा रहा हैं, विश्व बैंक जैसी संस्थायें क्यों इसके प्रति इतनी चिंतित है, सामान्य रूप में कुपोषण को चिकित्सीय मामला माना जाता है और हममें से अधिकतर सोचते हैं कि यह चिकित्सा का विषय है। वास्तव में कुपोषण बहुत सारे सामाजिक राजनैतिक कारणों का परिणाम है। जब भूख और गरीबी राजनैतिक एजेडा की प्राथमिकता नहीं होती तो बड़ी तादाद में कुपोषण सतह पर उभरता है। भारत का उदाहरण ले जहां कुपोषण उसके पड़ोसी अधिक गरीब और विकसित जैसे बांगलादेश और नेपाल से भी अधिक है। बंगलादेश में शिशु मृत्युदर 48 प्रति हजार है जबकि इसकी तुलना में भारत में यह 67 प्रति हजार है। यहां तक की यह उप सहारा अफ्रीकी देशों से भी अधिक है। भारत में कुपोषण का दर लगभग 55 प्रतिशत है जबकि उप सहारीय अफ्रीका में यह 27 प्रतिशत के आसपास है।

5 वर्ष से कम उम्र के बच्चों में मृत्युदर प्रति हजार लगभगः तुलनात्मक तालिका

क्रम स.	देश का नाम	मृत्युदर प्रति हजार
1	बंगलादेश	77
2	ब्रजील	36

3	मिश्र	41
4	चीन	09
5	भारत	93
6	इंडोनेशिया	45
7	मैक्सिको	29
8	नाईजेरिया	183
9	पाकिस्तान	109

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के 2015–2016 और 2005–06 के तीसरे और चौथे चक्र से प्राप्त आंकड़ों का उपयोग करते हुए पाँच साल से कम उम्र के बच्चों के लिये पोषण संकेतकों के बीच किया गया तुलनात्मक अध्ययन यह दर्शाता है कि भले ही स्टंटिंग की दर 46.3: से घटकर 344 हो गई है लेकिन वेस्टिंग की दर 16.5 से बढ़कर 25.6 हो गई है। इसके अलावा, पिछले 10 वर्षों में सामान्य से कम वजन की दर 36 पर स्थिर रही है। यह दुनिया के कुछ सबसे गरीब देशों– बांग्लादेश अफगानिस्तान या मोजाम्बिक (15%) की तुलना में भारत की खराब स्थिति को दर्शाता है। कुपोषण का यह स्तर जनसंख्या के सबसे गरीब वर्ग को समान रूप से प्रभावित करता है। जनजातीय क्षेत्रों मे ं प्रत्येक दूसरे बच्चे का विकास अवरोधित होने का कारण लम्बे समय तक भूखे रहने से उत्पन्न कुपोषण की समस्या है। वर्ष 2005 में महाराष्ट्र के केवल पालघर जिले में ही 718 बच्चे कुपोषण से ग्रस्त थे। पालघर में कुपोषण की स्थिति में नाममात्र का सुधार हुआ है।

स्वतंत्र सर्वेक्षण से प्राप्त परिणाम

सितंबर 2016 में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने पालघर में कुपोषण के कारण मरने वाले 600 की रिपोर्ट पर महाराष्ट्र सरकार को नोटिस जारी किया था। जिसके फलस्वरूप सरकार ने कुपोषण की जाँच के लिये जच्चा–बच्चा और एकीकृत बाल विकास सेवाओं जैसी योजनाओं को सही ढंग सेन्चित करने का वादा किया। इसके बावजूद विधान परिषद में महाराष्ट्र की महिला एवं बाल विकास मंत्री ने दावा किया कि. सरकार द्वारा किये गए विभिन्न प्रयासों के कारण पिछले कुछ महीनों में पालघर में कुपोषण का स्तर कम हो गया।

आहार विविधता में कमी का कारण प्रभाव और निवारण

आमतौर पर यह माना जाता है कि मंद विकास में वृद्धि केवल तभी संभव है जब प्रभावित बच्चे को दे आहार दिये जाते हैं जो आवश्यक पोषक तत्त्वों से पूर्ण हो स्टंटिंग आहार विविधता में कमी के कारण उत्पन्न होने वाली प्रमुख समस्याओं में से एक है। पोषक तत्त्वों की पर्याप्तता का एक महत्त्वपूर्ण पहलू आहार विधता है जिसका निर्धारण एक से 15 दिनों तक की अवधि के दौरान उपभोग किये गए खाद्य पदार्थों के विभिन्न समूहों की गणना करके किया जाता है। इस अध्ययन मे ं बच्चे को पिछले 24 घंटों मे ं प्राप्त खाद्य समूहों की संख्या की गणना करके 24 घंटे के दौरान आहार विविधता स्कोर की गणना की गई। ज्यादातर घरों में चावल और दाल ही अक्सर पकाया जाता था और एक दिन में तीन बार खाया जाता था। किसी प्रकार का दुग्ध उत्पाद या फल शामिल नहीं था। केवल 17% बच्चों ने आहार विविधता का न्यूनतम स्तर हासिल किया। उन्हें आठ खाद्य समूहों मे ं से चार या उससे अधिक प्रकार के भोजन

प्राप्त हुए। आदिवासी परिवारों में इस तरह की विकट खाद्य असुरक्षा बन आजीविका पर उनकी पारंपरिक निर्भरता में कमी और राज्य में गहन कृषि संकट के कारण उत्पन्न होती है। इसके अलावा, व्यवस्थित मुद्दों और सार्वजनिक पोषण कार्यक्रमों की कमजोरी ने समस्या को और अधिक संगीन बना दिया है। उदाहरण के लिये विक्रमगढ़ मे ं 20% जनजातीय परिवारों को सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अंतर्गत राशन नहीं मिला क्योंकि उनके पास राशन कार्ड नहीं था।

कैसे हो कुपोषण की समस्या का समाधान

कुपोषण और गरीबी एक ही सिक्के के दो पहलू है। कुपोषण की समस्या सबसे अधिक वहीं पाई जाती है जहाँ निर्धनता विद्यमान है। सरकारें विभिन्न कार्यक्रमों के जरिये कुपोषण से लड़ने का प्रयास करती हैं और इसी क्रम में बच्चों को आवश्यक पोषक तत्त्व उपलब्ध कराए जाते हैं। खाद्य किलेबंदी के माध्यम से आवश्यक पोषक तत्त्व बच्चों के भोजन तक पहुँचाए जाते हैं। लेकिन यह खाद्य किलेबंदी कुछ प्रचलित खाद्य वस्तुओं के लिये ही की जाती है। भारत सरकार द्वारा किये गए प्रयास महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा बच्चों के पोषण के लिये मानक तय करते हुए कई योजनाएँ बनाई गई है। शिशुओं और छोटे बच्चो ं के पोषण (फीडिंग) के संबंध में राष्ट्रीय मार्गदर्शी सिद्धांत इन मार्गदर्शी सिद्धांतों द्वारा स्तनपान के महत्त्व पर जोर दिया गया है। राष्ट्रीय पोषण नीति– इस नीति को महिला व बाल विकास विभाग के तत्वावधान में भारत सरकार द्वारा 1993 में अंगीकार किया गया था। इसके द्वारा कुपोषण मिटाने और सबके लिये इष्टतम पोषण का लक्ष्य प्राप्त करने के लिये बहु–सेक्टर संबंधी योजना की वकालत की गई। यह योजना देश भर में पोषण के स्तर की निगरानी करने तथा अच्छे पोषण की आवश्यकता व कुपोषण रोकने की जरूरत के संबंध में सरकारी मशीनरी को सुग्राही बनाने की वकालत करती है। राष्ट्रीय पोषण नीति में आहार व पोषण बोर्ड भी सम्मिलित है, जिसके द्वारा स्तनपान व पूरक फीडिंग के संबंध में सही तथ्यों का प्रसार करने के लिये पोस्टर, श्रव्य तुकबंदी या संदेश और वीडियो स्पॉट्स विकसित किये जाते हैं। समन्वित बाल विकास सेवा योजना यह पूरे देश में व कदाचित विश्वभर में बाल विकास के संबंध में, उपलब्ध सबसे विस्तृत ब्लूप्रिंट में से एक महिला एवं बाल विकास मंत्रालय बच्चों पर राष्ट्रीय नीति के अनुसार 1975 से इस कार्यक्रम का संचालन कर रहा है। इसका लक्ष्य ग्रामीण, आदिवासी और स्तन समुदायों में इष्टतम विकास और विकास का समर्थन करने के लिए स्कूल शुरू करने से पहले बच्चों को एकीकृत सेवाएं देना है। सरकार द्वारा प्रायोजित यह कार्यक्रम बच्चों के पोषण पर भी नजर रखता है। उदिशाः उदिशा का अर्थ होता है नए भोर की पहली किरण यह विश्व बैंक से सहायता प्राप्त महिला व बाल विकास परियोजना है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य देश भर में बाल देखभाल करने वाले कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करना है। बच्चों के लिये राष्ट्रीय नीति इसके द्वारा यह निर्धारित किया गया हैकि राज्य द्वारा बच्चों के पूर्ण शारीरिक, मानसिक और सामाजिक विकास के लिये उनके जन्म पूर्व व जन्म के पश्चात् (दोनों) और विकास की अवस्थाओं में पर्याप्त सेवाएँ उपलब्ध कराई जाएंगी। बच्चों के लिये राष्ट्रीय घोषणा पत्र इसके अनुसार बच्चों के जीवित रहने, स्वास्थ्य और पोषण, जीवन स्तर खेल और अवकाश, प्रारंभिक बचपन की देखभाल, शिक्षा, बालिकाओं की सुरक्षा, किशोरों को अधिकार संपन्न बनाना, गुणवत्तापूर्ण जीवन और स्वतंत्रता, नाम व राष्ट्रीयता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, साझेदारी व

शांतिपूर्ण एकत्रीकरण और आर्थिक शोषण व सभी प्रकार के दुर्व्यवहार से रक्षा के अधिकार के प्रति भारत सरकार की प्रतिबद्धता पर जोर दिया गया है। बच्चों के लिये कार्यवाही की राष्ट्रीय योजनाः इस योजना में बच्चो ं के पोषण स्तर को सुधारने, नवजात शिशुओं की मृत्युदर में कमी लाने, पंजीयन अनुपात में वृद्धि, स्कूली शिक्षा को बीच मे ं छोड़ने (ड्राप आउट) की दर में कमी प्रारंभिक शिक्षा को व्यापक स्तर पर लागू करने और प्रतिरक्षण क्षेत्र में विस्तार के लक्ष्य उद्देश्य योजनाएँ व गतिविधियाँ सम्मिलित है।

भारतीय संविधान और सुपोषण

यद्यपि संविधान के अनुच्छेद 21 और 47 भारत सरकार को सभी नागरिकों के लिये पर्याप्त भोजन के साथ एक सम्मानित जीवन सुनिश्चित करने हेतु उचित उपाय करने के लिये बाध्य करते हैं। फिर भी भारतीय संविधान में भोजन के अधिकार को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता प्राप्त नहीं है। अनुच्छेद का मे कहा गया है कि राज्य का यह कर्तव्य है कि वह लोगों के पोषण स्तर और जीवन स्तर को बढ़ाने तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य को सुधारने के लिये निरंतर प्रयास करे। जबकि अनुच्छेद 21 के अनुसार, किसी मी व्यक्ति को उसके जीवन अथवा निजी स्वतंत्रता से बंचित नहीं किया जा सकता। इसमें कोई संदेह नहीं है कि भोजन में पोषक तत्वों की कमी कुपोषण का सबसे प्रमुख कारण है लेकिन समाज के एक बड़े हिस्से मे ं इस संबंध में जागरूकता की अत्यंत कमी और साफ–सफाई का अनाव जैसे अन्य कई कारण है जिन्हें कुपोषण के लिये जिम्मेदार माना जा सकता है। बच्चों में कुपोषण की इस समस्या का समाधान करना अति आवश्यक है। इसके लिये एक खाद्य और पोषण आयोग की स्थापना सम्पूर्ण देश में पोषण के स्तर को बढ़ाए जाने की जरूरत जैसी बातों पर भी ध्यान देना चाहिये। समय आ गया है कि सरकार इस मुद्दे के मूल कारण की पहचान करे और कुपोषण से निपटने के लिये एक स्थायी समाधान की खोज करे यह तभी संभव है जब राज्य हाशिये पर जीवन जी रहे लोगों के लिये रोजगार के अवसर पैदा करके समावेशी विकास पर ध्यान केंद्रित करेगा जो उनकी क्रय शक्ति में सुधार के साथ–साथ कुपोषण को कम करने में मददगार साबित होगा।

शारीरिक स्वास्थ्य

1. जीवनचर्या तय करें। हालांकि हमारे पेशेवर जीवन में काफी पैदा हो गई हैं और हम में से अधिकांश लोग घरों से काम कर रहे हैं. इसके बावजूद यह जरूरी है कि हम अपने लिए एक रूटीन तय करें और उस पर कायम रहें। दिनचर्या सुनिश्चित हो तो इससे तनाव घटता है और मानसिक स्वास्थ्य बेहतर होता है। बच्चों की पढाई में मदद करना, ऑफिस का काम घर से करना, खाना बनाना घर के दूसरे काम करना और स्वास्थ्य के उपाय जैसे आसन, व्यायाम और प्राणायाम सभी फायदेमंद होते हैं।
2. नियमित अंतराल पर संतुलित भोजन करें। स्वस्थ भोजन करना महत्वपूर्ण है। मीठा पेय पदार्थों के बजाय अधिक पानी पीकर अपने सोडियम और नमक का सेवन कम करें। खाना पकाने में इस्तेमाल होने वाले घी, तेल और मक्खन की मात्रा कम करें। उच्च वसा वाले मास को समुद्री भोजन से बदलें, और सब्जियों और फलों का सेवन बढ़ाए। घर में रहने से आपके खान–पान पर भी असर पड़ सकता है। शोध के अनुसार

अनियमित और अनियमित भोजन करना आपकी सेहत के लिए हानिकारक हो सकता है। घर पर होने पर अपने खाने के कार्यक्रम को बनाए रखने की सलाह दी जाती है।

3. **पर्याप्त नींद** नींद की मात्रा को वापस पाने का प्रयास करें जो आप नियमित रूप से प्राप्त करते थे, क्योंकि पर्याप्त नींद महत्वपूर्ण है। हर दिन एक सुसंगत सोने का समय और जागने का समय निर्धारित करें। आप बेहतर नींद ले पाएंगे और इसके परिणामस्वरूप अधिक तरोताजा महसूस करेंगे। शोध के अनुसार, जो लोग पर्याप्त नींद नहीं लेते हैं. उन्हें मानसिक और शारीरिक परेशानी अधिक होती है। नींद की कमी पहले से मौजूद मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य समस्याओं को बढ़ा सकती है। यदि आप रात में पर्याप्त नींद लेते हैं तो यह आपकी संज्ञानात्मक क्षमता, स्मृति, मनोदशा और हृदय स्वास्थ्य के साथ–साथ आपकी प्रतिरोधक क्षमता को भी बढ़ाएगा। यद्यपि आप इन दिनों घर पर सबसे अधिक संभावना रखते हैं, यह महत्वपूर्ण है कि आप सक्रिय रहें और शारीरिक गतिविधि में सलग्न हो योग और व्यायाम आपकी शारीरिक और भावनात्मक मलाई को बढ़ाने में आपकी मदद कर सकते हैं। यदि आपके क्षेत्र में कोई प्रतिबंध नहीं है, तो आप टहलने के लिए स्वतंत्र हैं। भले ही बाहर घूमना एक विकल्प नहीं है. कई गतिविधियों, जैसे कि खड़े होकर कूदना, बेंच वेट्स और पुश–अप्स, घर के अंदर की जा सकती हैं। वैकल्पिक रूप से घर के भीतर एक ही स्थिति मे ं लंबे समय तक बैठने के बजाय, एक सीमित क्षेत्र में कुछ समय के लिए चलने पर विचार करें। आप चाहें तो अपने वर्कआउट में कुछ वेट लिफ्टिंग भी शामिल कर सकते हैं। यदि आपके पास कोई डम्बल या अन्य वजन नहीं है, तो आप इसके बजाय पानी की बोतल का उपयोग कर सकते हैं। इन दिनों कई लोग नियमित रूप से घर से काम करते हैं। यदि आप या आपके परिवार का कोई सदत्त्व इसके लिए दोषी है, तो नीचे सूचीबद्ध कुछ उपाय आजमाएं। नतीजतन, यह इस नई सेटिंग मे ं काम करते हुए अपनी उत्पादकता बढ़ा सकते हैं। अपने कार्यक्षेत्र को अपने घर के सीमित क्षेत्र मे ं स्थापित करें। चाहे वह आपकी डाइनिंग टेबल का कोना हो या खाली गेस्ट रूम इससे आपको लगेगा कि आप ऑफिस या ऑफिस में है। साथ ही घर और ऑफिस के काम में फर्क बना रहेगा। यदि इस स्थान पर प्राकृतिक प्रकाश ताजी हवा, कुछ पौधे या बाहर का दृश्य है तो यह आपके मूड में सुधार करेगा। काम करते समय प्रति घंटे एक या दो मिनट खड़े होने का प्रयास करें। लंबे समय तक बैठे रहने से आपके शरीर का मेटाबॉलिज्म धीमा हो सकता है, जो आपके स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकता है। कुछ मिनट खड़े रहने, स्ट्रेचिंग और चलने से आपको काम पर बेहतर ध्यान केंद्रित करने में मदद मिलेगी। अपने परिवार और दोस्तो ं के साथ समय बिताना याद रखें, और उस किताब को पढ़े जो महीनों से कैबिनेट में बैठी है। खाना पकाने, सफाई और व्यायाम करने में समय व्यतीत करें। आप साप्ताहिक आधार पर परिवार और दोस्तों के साथ वीडियो चोट भी मूल कर सकते हैं। तात्कालिक समस्या के बारे में ही सोचते रहने की बजाय कुछ नया आजमाएं चिंता व अवसाद दूर करने और बुजुगों में स्मृति बनाए रखने में प्रभावी पाई गई है। हमारा शरीर स्वस्थ रहने तथा दैनिक कार्य के लिए भोजन से ऊर्जा एवं पोषक तत्व प्राप्त करता है लेकिन जब हम भोजन एवं पौष्टिक पदार्थों का सेवन अनियमित एवं अव्यवस्थित रूप से करने लगते

हैं तो हमारे शरीर को पूर्ण पोषण नहीं मिल पाता और हम कुपोषण के शिकार हो जाते हैं। आर्थिक कारण भोजन संबंधित दोषपूर्ण आदतें लिंग भेद

कुपोषण के कारण

कुपोषण के कुछ प्रमुख कारण निम्नलिखित है–

- अपर्याप्त आहार।
- भोजन में पौष्टिक तत्वों की कमी।
- धार्मिक कारण।
- ज्ञान का अभाव।
- अवशोषण एवं दोषपूर्ण पाचन।
- अत्यधिक शराब पीना।
- बाल विवाह।

कुपोषण के प्रकार

मानव शरीर में उपस्थित पोषक तत्वों के आधार पर कुपोषण को दो भागो में बांटा जा सकता है।

1. **अल्प पोषण–** अल्प पोषण में मानव शरीर में एक या फिर एक से अधिक पोषक तत्वों की कमी हो जाती है।
2. **अति पोषण–** पोषक तत्वों की अधिकता के कारण मानव शरीर में उत्पन्न विकृतियाँ (जैसे– पेट का बाहर आना इत्यादि). अतिपोषण को परिभाषित करती है।

बच्चों में कुपोषण के लक्षण

विश्व स्वास्थ्य संगठन तथा यूनिसेफ ने कुपोषण के पहचान के लिए निम्नलिखित तीन लक्षणों को मुख्य माना है–

नाटापन– जब बच्चे की लम्बाई उसकी आयु की अनुपात में कम हो तब बच्चा नाटा कहलाता है।

निर्बलता– जब बच्चे का वजन उसके लम्बाई के अनुपात में कम हो तब बच्चा निर्बल कहलाता है।

कम वजन – जब आयु के अनुपात में बच्चे का वजन कम हो तब बच्चा अंडरवेट कहलाता है। सामान्य शब्दों मे कहें तो कुपोषण का संबंध शरीर में पोषक तत्वों की कमी या अधिकता से होता है अर्थात एक लम्बे समय तक असंतुलित आहार के सेवन से शरीर में होने वाले पोषक तत्वों की कमी या अधिकता को कुपोषण कहते हैं। कुपोषण के चलते बच्चों का प्रतिरक्षा तंत्र कमजोर हो जाता है जिसके कारण वे कई बीमारियों के चपेट में आ जाते है।

बच्चों में कुपोषण के प्रकार

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार बच्चों में निम्नलिखित चार (4) प्रकार के कुपोषण होते हैं–

1. निर्बलता यह समस्या बच्चों मे अक्सर किसी बीमारी या इन्फेक्शन के बाद देखने को मिलती है इसमें अचानक से शरीर में पोषक तत्वों की कमी हो जाती है जिससे उनका शारीरिक विकास (जैसे–वजन) बाधित हो जाता है।
2. नाटापन यह समस्या शिशु में भरूणावस्था के दौरान ही माता के खान–पान में हुई कमियों के कारण हो जाती है और इसका प्रभाव शिशु के दो वर्ष का होते–होते दिखने लगता है। इस समस्या के कारण बच्चों के लम्बाई में पूर्ण रूप से विकास नहीं हो पाता है।
3. अधिक वजन यह समस्या बच्चों में तब देखने को मिलती है जब उनमें किसी विशिष्ट पोषक तत्व की अधिकता हो जाती है। जैसे–वसा की मात्रा अधिक होने पर बच्चा मोटापे का शिकार हो जाता है।
4. कम वजन यह समस्या बच्चों में तब देखने को मिलती है जब उन्हें भोजन द्वारा पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्व नहीं मिल पाता है, इन पोषक तत्वों की कमी से उनका शारीरिक विकास धीमा पड़ जाता है।

विटामिन कुपोषण से होने वाले रोगों के लक्षण

कुपोषण एक बहुत घातक समस्या है जो मानव शरीर में असंख्य रोगों का कारण हो सकता है। कुपोषण जनित रोगों के कुछ मुख्य लक्षण निम्नलिखित है–

- शारीरिक विकास का रुक जाना।
- मासपेशियों में ढीलापन एवं सिकुड़न
- त्वचा का रंग पीला होना।
- त्वचा पर झुर्रियों का पड़ना।
- कम कार्य करने पर भी थकान आना।
- चिड़चिड़ापन एवं घबराहट होना।
- औखों के चारों ओर काला वृत्त बनना।
- वजन का कम होना।
- पाचन क्रिया का गढ़बड़ होना।
- हाथ, पैर आदि में सूजन आना।

कुपोषण की रोकथाम के उपाय

कुपोषण के रोकथाम के लिए निम्नलिखित उपाय किये जा सकते है– जनसंख्या को नियंत्रित करके कुपोषण पर काबू पाया जा सकता है। फूड फोर्टिफिकेशन–इसके तहत अनेक पोषक तत्वों जैसे विटामिन, आयरन तथा जिंक आदि को सामान्य खाद्य पदार्थों में मिला के दिया जाता है।

- 6 माह तक शिशु को माँ का दूध पिलाना चाहिए।
- बाल विवाह पर रोक लगानी चाहिए।
- गरीबी कुपोषण का मुख्य कारण है। इसलिए सरकार को चाहिए की गरीबी उन्मूलन की दिशा में कुछ ठोस कदम उठाए जाए।

- लोगों में कुपोषण के प्रति जागरूकता लाकर।
- कुपोषण संबंधित योजनाओं का सही क्रियान्वयन करके इत्यादि।

भारत में कुपोषण की स्थिति व आकडे हाल ही में प्रकाशित अपनी एक रिपोर्ट में विश्व बैंक ने कहा था कि वर्ष 1990 से 2018 तक भारत ने गरीबी से लड़ने में काफी हद तक सफलता पायी है और देश के गरीबी दर में बहुत कमी आयी है गरीबी दर तकरीबन आधी रह गई है किन्तु कुपोषण और भूख की समस्या आज भी देश मे ं बरकरार है। वर्ल्ड्स चिल्ड्रेन रिपोर्ट कहता है, कि 5 वर्ष तक की आयु के प्रत्येक 3 बच्चों में 1 बच्चा कुपोषण से ग्रसित है। यूनिसेफ की रिपोर्ट बताती है कि सबसे कम वजन वाले बच्चों की संख्या वाले देशों मे ं भारत का स्थान 10 वाँ है । "द लैसेट" नामक पत्रिका द्वारा पता चलता है कि 5 वर्ष से कम आयु के 1.04 मिलियन बच्चों के मौतों में से दो–तिहाई बच्चों की मृत्यु कुपोषण के वजह से हुई है। कुपोषण जनित रोग कुपोषण का अर्थ होता है शरीर में पोषक तत्वों की कमी और जब शरीर में पोषक तत्वों की कमी हो जाती है तो शरीर रोगों से ग्रसित हो जाता है। कुपोषण जनित रोग खासकर बच्चों एवं महिलाओं मे ं ज्यादा होता है।

कुपोषण जनित कुछ रोग निम्नलिखित है–

यह बीमारी प्रोटीन एवं ऊर्जा की कमी के कारण होता ह।. इस बीमारी में शारीरिक विकास ठीक से नहीं हो पाता है और शरीर में सूजन भी आ जाती है। यह बीमारी कम प्रोटीन तथा अधिक कार्बोहाइड्रेटयुक्त आहार के सेवन से होता है। यह बीमारी भी प्रोटीन एवं ऊर्जा की कमी के कारण होता है, इस बीमारी में शरीर को आवश्यक कैलोरी की पूर्ति नहीं हो पाती जिसके कारण टिशू एवं मांसपेशियां ठीक से विकसित नहीं हो पाती। माइक्रोन्यूट्रिएंट्स की कमी जिंक, मल्टीविटामिन, फोलिक एसिड विटामिन ए, कॉपर, आयरन इत्यादि जरूरी पोषक तत्वों की कमी से बच्चे कुपोषण के शिकार हो जाते हैं। भारत में कुपोषण से निपटने की सरकारी पहल, कुपोषण से निपटने के लिए अनेक सरकारी योजनाएं बनाई गई हैः जिनमें से कुछ निम्न हैं–

राष्ट्रीय पोषण नीति 1993

इस नीति को भारत सरकार ने 1993 में स्वीकार किया था। इसमें कुपोषण से लड़ने के लिए बहु–सेक्टर संबंधी योजनाओं की सिफारिश की गई थी।

मिड–डे मील

कार्यक्रम इसकी शुरुआत वर्ष 1995 में केन्द्र सरकार द्वारा की गई थी। तत्पश्चात वर्ष 2004 में इस योजना में व्यापक परिवर्तन करते हुए मेनू पर आधारित ताजा, पका हुआ एवं गर्म भोजन देना प्रारम्भ किया गया।

शोध की समस्या/आवश्यकता

यौवन के विकास के साथ, ऊर्जा, प्रोटीन, खनिज और विटामिन की आवश्यकताएं भी काफी बढ़ जाती है। पोषण की स्थिति को लोगों के स्वास्थ्य का प्रमुख संकेतक माना जाता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन बताता है कि पोषण संबंधी मूल्यांकन का एक निश्चित लक्ष्य मानव स्वास्थ्य में सुधार करना है। अल्पपोषण की व्यापकता एशिया में एक महत्वपूर्ण सामान्य स्वास्थ्य

चिंता है, क्योंकि इसकी विशाल आबादी, सामाजिक आर्थिक मतभेद तदनुसार पोषण की स्थिति का आकलन संभवतः इस देश में औपचारिक तकनीकों की योजना बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

अनुसंधान के उद्देश्य

मातृ साक्षरता और पोषण संबंधी जागरूकता के प्रभाव का अध्ययन करना व बच्चों का स्वास्थ्य और पोषण की स्थिति का अध्ययन करना है। स्वास्थ्य की स्थिति पर मातृ साक्षरता और पोषण संबंधी जागरूकता के प्रभाव का अध्ययन करना। बच्चों की पोषण स्थिति का आकलन करने के लिए उनकी माता, जो विभिन्न सामाजिक–आर्थिक सांस्कृतिक और भौगोलिक पृष्ठभूमि से संबंधित है। मातृ साक्षरता और मातृ पोषण संबंधी जागरूकता के बीच संबंध का पता लगाना । विभिन्न साक्षरता की स्थिति से माताओं के पोषण ज्ञान के स्तर का आकलन करने के लिए।

निष्कर्ष :

यह शोध निश्चित रूप से पोषण के लिए महिलाओं में जागरूकता और सुधार लाने के लिए एक विचार देगा और यह ग्रामीण बच्चों के पोषण मूल्य का एक सटीक आंकड़ा प्रदान करेगा। इस तथ्य के बावजूद कि मातृ साक्षरता को बच्चे के स्वास्थ्य का एक अनिवार्य संकेत माना जाता है। वर्तमान अध्ययन के परिणामों का उपयोग भविष्य में माँ या बच्चे के लाभ के लिए नीतियों या पोषण स्वास्थ्य को विकसित करने के लिए एक दिशा निर्देश के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। बच्चों के स्वास्थ्य और पोषण की स्थिति पर मातृ पोषण जागरूकता का प्रभाव वर्तमान निष्कर्षो से संकेत मिलता है कि मा के पोषण संबंधी ज्ञान का पांच साल से कम उम्र के बच्चों की लंबी अवधि पर एक मजबूत प्रभाव डालता है। साथ ही 1 वर्ष और 4–5 वर्ष के बच्चों की अल्पावधि कल्याण जैसा कि द्वारा इंगित किया गया है) माताओं के पोषण ज्ञान स्तर से महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित पाया गया। क्रिश्चियन एट अल द्वारा 0–72 महीने के बच्चों को पोषण स्थिति निर्धारित करने में भी के पोषण संबंधी ज्ञान के महत्व को भी बताया गया। उन्होंने बताया कि मां का एनके स्कोर बच्चों के दीर्घकालिक कल्याण से जुड़ा था जैसा कि एचएजेड द्वारा दर्शाया गया था। उन्होंने यह भी बताया कि बच्चों कि माँ के पोषण संबंधी ज्ञान से महत्वपूर्ण रूप से संबधित था। ज्योति लक्ष्मी एट अल (2003) ने मैसूर के ग्रामीण पूर्वस्कूली बच्चो ं पर एक अध्ययन किया और पाया कि पोषण के बेहतर ज्ञान वाली माताओं में सामान्य बच्चों का प्रतिशत 25 गुना अधिक था। भविष्य में महिला शिक्षा कार्यक्रम में पोषण संबंधी ज्ञान को शामिल किया जाना चाहिए। बच्चों के स्कूलों मे ं पोषण संबंधी चार्ट उपलब्ध कराए जाए। सरकार को बाल स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता के लिए अभियान शुरू करना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. https://www.schoolofeconomics.net.
2. https://hi.wikipedia.org/wiki.
3. क्रिश्चियन एस गुजराल, और टी गोपालदास (2015)। बच्चों के पोषण और स्वास्थ्य की स्थिति पर मातृ कार्य का प्रभाव। खाद्य और पोषण बुलेटिन 13 (1)20–24।

4. अहमद एफ. खान एमआर इस्लाम एम. कबीर फुच्स जीजे (2016)। पेरी शहरी बांग्लादेश में किशोरियों मे ं एनीमिया और लोहे की कमी। यूर जे क्लिन न्यूट्र 200054: 678–83।
5. अहमद टी (2017) बांग्लादेश में बच्चे और मातृ पोषण पर नीति संक्षिप्त बांग्लादेश जनसांख्यिकीय और स्वास्थ्य सर्वेक्षण 2017– ढाकारू राष्ट्रीय जनसंख्या अनुसंधान और प्रशिक्षण संस्थानय 4490।
6. अकलिमा जेसमिन, शेल्बी सुजैन यामामोटो, अहमद आजम मलिक और एम अमीनुल हक (2017) पूर्वस्कूली बच्चों के बीच दीर्घकालिक पोषण के प्रसार और निर्धारकरू ढाका शहर, बांग्लादेश में एक क्रॉस– अनुभागीय अध्ययन
7. आलम एन. वोज्टिन्यक बी. रहमान एमएम (2016)। एन्थ्रोपोमेट्रिक संकेतक और मृत्यु का जोखिम । अमेरिकन जर्नल ऑफ क्लिनिकल न्यूट्रिशनय 49: 884–8।

The locale of digital education in a Rural Space: A sociological understanding of a block in Odisha

Suraj Kumar Tanty
Lecturer in Sociology
S. N. Degree College, Rajkanika, Kendrapara

Abstract

In this 21st century each and every important information is easily accessible in the palm of humans with the help of information and communication technology. This brought changes in almost each and every corner of social life. Education being one of the important social institutions was no exception of it. Education has a greater responsibility towards the entire mankind in the 21st century as it has changed its Avtar to digital mode through the integration of technology. The digital education or eLearning is a revolutionary phenomenon to aid students in the learning process. However, the phenomenon is not equally accessible for every student. The rural and urban scenario of digital education is completely different. Due to lack of infrastructure, inadequate resources, poor internet connectivity, lack of awareness and digital literacy in a rural setting makes it cumbersome for students to avail the potential benefit of digital education. The scenario is completely opposite in an urban space. This research work tried to understand the location of digital education in a rural setting. It also discussed about the difficulties and challenges faced by students belonging to the rural Odisha.

Keyword: Digital education, E-learning, Rural space, Students, Odisha

Introduction:

Education being one of the important social institutions bears a significant place in the society. As the aspiring member of any social group have to learn and adapt the societal norms, ethics and values through the learning process to become a part of that group, the importance of education in society is unparallel. With the penetration of digital technologies, a gradual change in the education and pedagogy system occurred which gave a new shape to the knowledge system. Digital technologies are employed as principal tools for aiding the teaching and learning process (Drinkwater et al., 2004). Particularly during covid-19 pandemic the world tried to include digital devices and motivated for remote learning through the help of technology. That changed the terrain of education by including digital education into it. The largest public education system of world locates itself in India. A number of enrolled learners in public schools have little to no internet connectivity, and many of them lack the means to buy digital gadgets for their households. There is a digital gap among pupils as a result of online teaching and learning, according to several research (Jena, 2020). This is a serious issue, especially for areas like Odisha, where adequate infrastructure, standards of excellence, and accessibility concerns have long plagued education (Behera & Behera, 2024). The educational system of the state still faces challenges including student dropouts, subpar learning outcomes, and differences between urban and rural areas, despite significant advancements in the past few decades. However, the increasing prevalence of digital technology in education system has provided a viable solution to these issues.

Digital education in Odisha:

The use of digital technology and virtual platforms for education has become a game-changer for addressing disparities and increasing accessibility to high-quality education. In this scenario, Odisha made a significant move in integrating digital technology and e-learning approach into its educational framework. The state administration seeks to increase availability of standardized

educational materials and e-learning resources through programs like the "Odisha State Open School" (Behera & Behera, 2024). The total transformation of school infrastructure happened through the 5t scheme launched by the state in 2019. This scheme changed the entire scenarios of schooling by targeting the necessary steps to inculcate digital infrastructure in the school. Some schools, particularly those in urban areas, have received funding through this 5t initiative to implement smart classrooms. These classrooms facilitate the use of multimedia and interactive learning tools because they have technologies e.g. computers, digital projectors, and internet connectivity for smooth e-learning process. Various ICT initiatives rolled out by central government through aspiration of Digital India e.g. DIKSHA, PM e-VIDYA, SWAYAM, SWAYAM Prabha, E-Pathshala, national digital library are also operating in odisha. In order to guarantee that students have access to region-specific learning materials in both Odia and English, Odisha has also made investments in the creation of customized e-content which can be easily accessible. However, there is a persisting inequal access of digital education prevalent in the rural areas as compared to urban areas. Particularly, the rural-urban dichotomy is where the digital gap is most noticeable. Remote locations and communities with a higher concentration of illiterate and uneducated individuals show the true inequality (B N & Joy, 2022). This research work tries to understand the location of digital education in the rural space, how learners try to negotiate with berries of digital education in the countryside of Odisha.

Review of literature:

Digital learning or digital education is the new normal after the covid-19 pandemic. It became the trend and new developments happened in the scope of education. Digital education can be considered as the assistance of technology in education process to bring better learning practices that can yield excellence. It includes multiple processes e.g. e-learning, online education, blended learning and educational technology. The digital education system works with the help of AI, blockchain, IoT, big data etc. nowadays AI is a important segment as it is important

for digital education for the process of automation e.g. virtual tutors (Janardhanan et al., 2023). Web based or technology-based learning possibilities are the manifestation of E-learning process. In which the process of educational content delivery happens through the help of intranet or internet, Satellite TV, Streaming platforms, animations etc. Being flexible digital learning or e-learning provides opportunity to learn at own pace, which is a very much viable for students in rural place (Anand et al., 2012).

Blended learning is the new approach in the education process in which both traditional and modern approach of learning through technology are blended to bring maximum output. There was a pilot project rolled out in Odisha by Akshara Foundation to understand the efficacy of blended learning. In this initiative, children learned mathematical skills by using digital tablets to study "e-content" given by volunteers. According to this project conducted during the COVID-19 epidemic, blended learning may become a reality with teacher capacity building and digital device availability (Vijayanti, 2022). However, since education is a social endeavour, its predominance varies across society, similar to any other social system. As a result, there is a noticeable gap between those who have access educational opportunities and those who do not (Bandyopadhyay et al., 2021). Apart from socio-economic aspects It also applies to the spatial aspect of rural urban difference. Students from families below the poverty level line inhabit environments that are unsuitable for high-quality online education. Inadequate digital devices for students and a lack of internet access at home due to financial constraints have been the main obstacles to the transition to online education in India. Due to the unfavourable environment within the home, students from disadvantaged economic backgrounds find it difficult to do their online schoolwork (Reich et al., 2020). The accessibility to electronic devices and connection to the internet are ongoing equality concerns, especially in rural communities (Azano &Stewart, 2015a).

In emerging economies like India, where a large number of people are from disadvantaged backgrounds, the rural sector might legitimately be considered a marginalized area. The negative side of the inequal access to education, wherein the current education landscape fails to solve the problems experienced by students from rural India, is caused by the social marginalization that Indian countryside regions experience. Many of the developing and under developed nations are experiencing the same issue of digital divide and inequal access to education. To consider various examples, due to a shortage of digital devices capable of connecting to the internet connection, the educational management system, and software, many students from rural areas in South Africa are denied access to online based learning method, according to research by Dube (2020). A sizable portion of people in Southeast Asia lack the access of Internet and smart gadgets. Even those who have access to the web face hardship due to a number of variables, such as regional variations in internet connectivity. People who live in cities frequently have access to much quicker internet than people who live in countryside (Jalli, 2020). A multitude of factors, including digital literacy, availability smartphones, Tablets, Personal laptops or computers and internet accessibility, all contribute to the existence of the digital divide. The digital gap is caused by a number of factors, including low literacy, poverty level, geographic constraints, lack of incentive to utilize technology, lack of physical access to technology (B N & Joy, 2022). During pandemic Media outlets in Odisha report that students are joining classes by sitting on trees, close to high locations, or along riverside walkways due to poor internet connection (Mohanty, 2020).

Objectives:

- To understand the situation of digital education and e-learning in a rural setting.
- To know the challenges that students face to access digital education in a rural space.

- To examine the possibilities and opportunities of digital education in countryside.

Research Methodology:

This research work tries to understand the location of eLearning and digital education in a rural locality of Odisha. It analysed the pattern through the employment of descriptive research design. A mixed method of both quantitative and qualitative approach was projected to understand the status of digital education in a rural locality. For this research work 110 participants were selected from X district different educational level e.g. Matriculation (9^{th} and 10^{th}), Higher Secondary (11^{th} and 12^{th}) and Graduation in the stratified random sampling method to understand research objectives in a diverse approach.

Tools and techniques:

For the collection of data both the primary and secondary sources were used by the researcher in the research work. Questionnaires and interviews were picked to gather the on-ground reality and secondary data was collected through the help of previously published journals, news articles, books, reports etc. The Rajkanika block of Kendrapara district was selected as research site for the study.

Analysis of Data:

As the research work happened in the mixed method both qualitative and quantitative data were collected and analysed to understand the pattern and possibility of digital education in a rural area. The analysis part is divided into two segments. The first one is the analysis of qualitative data that the researcher collected with the process of both observation and informal interaction, researcher observed the field and indulged with informal conversation with students and their parents to understand the holistic picture of the location of digital education in countryside. The second section is the quantitate data that researcher collected with the help of questionnaire.

Section A:

This section stresses on the experience shard by participants and their parents on the everyday reality of digital education in a rural space. Mostly students engage with the digital education via institutional support e.g. schools and colleges and private computer institutes. Apart from the institutional support, they mostly use their smartphones at home. Platforms namely YouTube, Telegram, WhatsApp, google meet, ChatGPT, Wikipedia are mostly used by students for their studies. Apart from the above-mentioned names some students those who are preparing for competitive exams also subscribed to some private e-learning platforms e.g. Physics wallah, Adda247, unacademy etc. overall students faced lot of challenges to participate in the digital learning process. Due to irregular internet connectivity and an absence of experience with digital technologies, participation among students is less prevalent in rural locations. In these areas, pupils might have no accessibility to electronic gadgets or the internet connection at home for additional study, and the usage of e-learning tools is frequently restricted to regular school hours.

One of the students from 12 respondents who mentioned that they do not have the access of smartphone, Sujata who is studying in 12th standard mentioned that:

"In classroom our teacher teaches in the smartboard with the help of slides. I feel so excited when I see that smart board and I feel happy that it makes the teaching process easy to our sir. Likewise, I have high interest to prepare for my board exams with the help of smartphone but I do not have access to it. I totally depend upon the classes in school and private tuitions for my studies; however, I feel I would have the access of a smartphone then I could have solved my doubts though internet, instantly."

This shows that even if there is a strong motivation to learn and comprehend subject matters, still due to unavailability of digital device students have to limit themselves to traditional method of education. One of the parents of

a participant stressed on the unstable and poor internet connection and mentioned that:

"My daughter has strong will for higher education, she is trying to prepare for NEET entrance, however I feel it is tough to prepare here considering the speed of internet and unstable internet connectivity. I cannot see her like this; I am thinking to send her to Bhubaneswar after her board exams as she is struggling with the preparation"

This shows that even if some have the access to various digital gadgets, still they struggle with the poor internet connectivity. as the network connection is weak in the rural areas students sometimes feel frustrated as it becomes a unavoidable barrier to access education.

Section B:

This section deals with the quantitative data, which was curated through the use of questionnaire. Those questions were converted to different important domains to understand various patterns.

1. Age group:

Age Group	Number of students (N=110)	Percentage (%)
14-16	39	35.45
17-19	33	30.00
20-22	38	34.55

The above table depicts a clear picture of the age group of the participants. This shows that the youngest demographic segment, 14-16 age group is the largest proportion of the sample, consisting 35.45% of the total share of the participants on the other hand the mid demographic space of 17-19 age group is the lowest consisting 30.00%. Additionally, the oldest age group of 20-22 year is the second

largest with 34.55% share in the total population. This shows that students from different age group participated in the survey process.

2. **Gender:**

Gender	Number of Respondents (N=110)	Percentage (%)
Male	58	52.73
Female	49	44.55
Others	2	1.82
Prefer Not to Say	1	0.91

The above table depicts the information regarding the gender wise distribution of participants of the study. All the participants were categorized into four groups namely Male, Female, Others and prefer not to say. Out of the total participants 52.73% consist of male and 44.55% belongs to female. 2 students mentioned about belonging to other categories and one student preferred not to say about the gender identity.

3. **Educational Level:**.

Educational Level	Number of students (N=110)	Percentage (
High School (9^{th} & 10^{th})	38	34.55
Higher Secondary (11^{th}, 12^{th})	37	33.64
Graduation (+3)	35	31.82

This data table depicts the picture of the educational background of the respondents. the majority age group belongs to high school (9^{th} & 10^{th}) students consisting of 35.45% out of the total students. Following closely 34.55%

participants belonging to the higher secondary school constitute the second largest group and the smallest fraction belongs to the graduation students remaining 31.82% of the total respondents.

4. Household income:

Household Income Source	Number of Respondents	Percentage
Agriculture	46	41.82
Daily wage labour	29	26.36
Business/Self employed	14	12.73
Government Job	9	8.18
Others	12	10.91

The above data gives the picture of the household income sources of the respondents participated in the survey process. This can help in understanding the economic condition of the respective participants. As the survey process happened in a rural setting as usual agriculture dominated the household income source being 41.82% of the total respondents. Following to that daily wage labour is the second largest income source segment consisting 26.36% of the total share. Next to wage labour, Self-employment or business income source shared 12.73% of the total respondents. Government and others consisted a minor share of 8.18% and 10.91% respectively.

5. Availability of Digital devices in Household:

Type of Devices	No of Respondents	Percentage
Smartphone	72	65.45
Tablet	09	8.18
Laptop	17	15.45
None	12	10.91

The above data table depicts the picture of availability of digital handheld devices e.g. smartphone, tablet etc in the household for digital education process. In the data smartphone came out as the most used handheld device consisting 65.45% of the total share. Laptop trailed behind with 15.45% share of the total population. Only 9 students (8.18%) have the accessibility of tablet with them for the e-learning process. However, 12 (10.91%) students about non-availability of any digital device for digital education. They rely upon school and colleges for it.

6. Device users:

No of device Users	No of Respondent	Percentage
Single user (Used by one person)	21	21.9
Double User (shared by two users)	34	35.4
Triple User (used by three person)	26	27.1
Multiple users (more than three users	15	15.6

The above table reflects the number of device users in a single household. As 12 respondents mentioned about non availability of digital device only 96 respondents were taken into consideration. This finding is significant to understand the challenges faced by respondents to use digital devices for digital education. the data divided into four sections namely Single user, Double user, Triple user and multiple users to understand the type of device users. The share of double users, triple users and multiple users made is evident that in a rural space students have to negotiate by sharing digital devices among their siblings or parents. The largest among total respondents 35.4% are the double users; who share their device with one more user. whereas 27.1% respondents have to share it with two users. Additionally, 15.6% respondents got minimal access of digital device ad they had

to share it with more than three people. Only 21.9% respondents mentioned that they got their own digital device to use it at their own convenience.

7. Availability of Stable internet Connection:

Type of Internet Connection)	No. of Respondents	Percentage
Yes (Wi-Fi/Broadband)	21	19.10
Yes (Mobile Data only)	77	70
No internet connection	12	10.90

The above table depicts the picture of the availability or source of internet connection in a rural space. The survey question had four options namely Yes (Wi-Fi/Broadband), Yes (Mobile data only), No stable connection and No internet connection. The responses from participants mentioned that the most common type of the source for internet connection is mobile data which is accessed through the cellular towers is 70% of the total share. Around 19.10% respondents use Wi-Fi or broadband services. Additionally, 10.90% participants experienced that they are not having internet connection as they are not having access to the digital devices.

8. Average monthly expenses on mobile data/ internet or any digital course for educational purposes:

Expense Range	No of Respondents	Percentage
Nil	12	10.90
Below 150	34	30.90
150-300	32	29.10
300-500	21	19.10
More than 500	11	10

The above table depicts the information about monthly expenses on mobile data or internet for educational purposes. The expense considered here is the extra expense that they spend on digital education apart from the regular recharge plans. Most of the students consisting 30.90% spend below 150 rupees on mobile data or internet or any digital course for educational purposes whereas 150-300 rupees monthly were spent by 29.10% of students. 19.10% of the total population fall on 300-500 expense range and 10% participants mentioned about expense range more than 500. Additionally, 10.90% participants of total share of the respondents mentioned about no extra expense as they do not have access to the digital handheld devices.

9. Time devoted for digital education:

Time Spent on Digital Education Per Day	Number of Students	Percentage
Less than 1 hour	19	19.8%
1–2 hours	34	35.4%
2–3 hours	24	25.0%
3–4 hours	13	13.5%
More than 4 hours	6	6.3%

The above table is a depiction of the information regarding the time being devoted by respondents for digital education. The above statistical representation is divided into five segments namely less that one hour, 1-2 hours, 2-3 hours, 3-4 hours and lastly more than 4 hours. This table expresses the amount of time participants spend on e-learning and digital education. The largest segment of the table is 1-2 hours, around 34 students mentioned about it as the average time that they spend on digital mode of education. 25% participants mentioned that they are spending around 2-3 hours on e-learning and digital education. Some active students mentioned about spending long time on digital education and e-learning out of them 13.5% spending 3-4 hours and 6.3% are devoting more than four hours

respectively for their studies over online. Whereas 19.8% respondents are giving less than 1 hour to digital education.

10. Usefulness of digital education:

Usefulness of digital education	No of Respondents	Percentage
Yes	84	76.36
No	9	8.18
Maybe	17	15.46

The above table is expressing the data about the opinion about the usefulness of digital education in the present context for the advancement and growth of students in a rural setting. Out of the 110 respondents a majority of participants around 76.36% mentioned about the usefulness of digital education by holding a positive outlook towards the possibilities of digital education in a rural setting. On the other hand, 9 (8.18%) students are not very much hopeful with the usefulness of digital education considering all the challenges that they have to face in a rural setting, made them feel a strong lack of accessibility of digital education. Around 17 (15.46%) students remained unclear about the impact and usefulness of the digital education in contributing their growth and development.

11. Family Support for Digital Study:

Response	No of Respondents	Percentage
Yes	73	66.36
No	14	12.74
Maybe	23	20.90

The above data discusses about the status of family support for the digital education through the use of digital handheld devices e.g. Smartphone, Tablet etc. out of 110 participants 66.36% participants mentioned about the family support

and their contribution e.g. Handheld device, Study support, internet facility, motivation and encouragement for the access of digital education, which shows that majority of participants received support and motivation from their family. However, a small proportion consisting 14 (12.74%) Students responded "No" and mentioned about lack of support. In addition to that 1 in every participant consisting of 20.90% are unclear and answered "maybe" for the family support.

11. Need for the Improvement:

Response	No of Respondents	Percentage
Yes	101	91.81
No	0	0
Maybe	9	8.18

The above statistical information speaks about the opinion of 101 survey participants about the need and requirement of improvements of various infrastructure in a rural space. An overwhelming agreement of 101 respondents consisting 91.81% of the total participants believed in a strong need for the improvement of various infrastructure for the smooth use of technological aid in the educational process. No one felt the need to oppose the requirement of the need for further improvement of infrastructure e.g. network connectivity, digital literacy, device accessibility which shows that there is a long way ahead for digital education in the spaces of countryside. However, a small fraction of participants consisting of 8.18% remained unsure and undecided about their opinion.

12. Gender based restrictions on Device use:

Response	No of Respondents	Percentage
Yes	53	48.18
No	48	43.64
Maybe	9	8.18

The above Statistical data depicts the picture of gender-based restrictions of digital devices e.g. Smartphone, Tablet, Laptop etc in families that were included in the Survey process. Though the data it can be observed that the dominant sentiment consisting of 48.18% goes with the prevalence of gender-based restrictions on device use. Whereas the trailing response of 43.64% refuted with any kind of discrimination regarding the use of devices for digital education. A minor space of 8.18% remained unsure and uncertain regarding their opinion on prevalent discrimination.

Findings:

The population of Odisha is diversified and includes both sizable rural and tribal populations. The state administration is making significant progress in raising student enrollment, lowering student dropouts, and constructing new educational infrastructure, according to statistics from the Government of Odisha. But problems like inadequate education, restricted access to basic amenities, and notable differences between rural and urban areas still exist. There are various findings came out from the research work which are mentioned below:

- Some of the schools of the region face poor internet connectivity, uncertain power cuts and inadequate hardware infrastructure e.g. Computers, smart boards, projectors etc. Consequently, schools face difficulty to implement e-learning sessions. This becomes institutional barrier to access digital education for the students in the region.
- In Odisha, the gap in accessing digital education is still a major challenge. Rural regions are still lagging behind, even if urban areas have improved accessibility to technological advancements. Because they frequently lack sufficient acessibility to digital devices e.g. computers or smartphones at home, learners from poor families are less able to use online educational resources after school hours. 12% participants mentioned that they do not have smartphone at their homes.

- At home many participants suffer with frequent power cuts, low internet speed, as well as limited access to smartphone or gadgets (as they have to share it with their parents and siblings) are some of the major issues that students of countryside are facing in a day-to-day life.
- Many households struggle to afford the necessary handheld gadgets, and the price for electricity or internet connections may be unaffordable for some.
- Parents in rural regions are less mindful of the advantages of e-learning, whereas parents in urban areas are typically enthusiastic supporters of e-learning. Certain parents in remote regions did not understand the necessity for digital educational materials, especially for younger students, on the other hand some parents were worried about the cost of gadgets and subscription fees for internet access. Many parents in remote regions did not know about DIKSHA or other online educational sites, and they did not know how to help their kids learn at their homes. The possibility for online education to have a significant influence in such groups is limited by this ignorance.
- The lack of educational content in local language e.g. odia makes it troublesome for some learners in countryside, which makes it challenging to get the most out of e-learning tools.

Conclusion:

The use of internet and various technologies in education is aiding the student in learning process. The democratization of education happened through the digital technology, in which various information, knowledge and study materials are easily available to everyone. However, in rural areas we still need to do a lot of things to bring such magnitude of change in educational process. Some of the primary setbacks of digital education in rural areas are the lack of enthusiasm among students itself, opposing viewpoints of parents, lack of digital literacy, unavailability of strong internet connection or low bandwidth and paucity of useful

infrastructure etc. however digital education is promising for rural population to gain knowledge, develop contemporary skill sets, advancement or possibilities of better job. Particularly, this can bring change in the societal and individual level of reforms in rural society. Digital education can be considered as one of the pivotal paths to fill the gap between rural and urban contrast in terms of mindset, lifestyle, development and lifestyle. Constant vigilance and strong efforts are required to bring reforms in the inequal access of digital education in rural Odisha. E-learning may help close gaps in education and provide all Odisha kids the chance to thrive in the digital era with the appropriate policies and practices.

Reference

1. Anand, R., Saxena, S., & Saxena, S. (2012). E-Learning and its impact on rural areas. *International Journal of Modern Education and Computer Science*, *4*(5), 46–52. https://doi.org/10.5815/ijmecs.2012.05.07
2. Azano, A. P., & Stewart, T. T. (2015a). Exploring Place and Practicing Justice: Preparing Pre-Service Teachers for Success in Rural Schools. *Journal of Research in Rural Education*, *30*(9), 1–12. https://journals.newprairiepress.org/jrre/article/id/20650/
3. Bandyopadhyay, S., Bardhan, A., Dey, P., & Bhattacharyya, S. (2021). *Bridging the education divide using social technologies: Explorations in Rural India*. Springer Nature.
4. Behera, S., & Behera, S. P. (2024). Study on Educational Implication of e -Learning at Elementary Level of Education in Odisha State, India. *International Journal of Innovations in Science Engineering and Management*, *3*(Special issue 2), 345–352. https://doi.org/10.69968/ijisem.2024v3si2345-352
5. B N, Dr. S. R., & Joy, L. (2022). A STUDY ON DIGITAL DIVIDE AND THE USE OF TECHNOLOGY AMONG TRIBES IN KERALA WITH SPECIAL REFERENCE TO PANIYATRIBE OF KANNUR DISTRICT. *Journal of Emerging Technologies and Innovative Research*, *9*(6), d759–d772.
6. Drinkwater, P. M., Adeline, C., French, S. L., Papamichail, K., & Rickards, T. (2004). Adopting a web-based collaborative tool to support the Manchester Method approach to learning. *Research Explorer (the University of Manchester)*, *2*(1), 61–68.

https://research.manchester.ac.uk/en/publications/7800faaa-54cc-4771-8bcf-d02fd266132e

7. Dube, B. (2020). Rural online learning in the context of COVID 19 in South Africa: Evoking an inclusive education approach. *Multidisciplinary Journal of Educational Research*, *10*(2), 135. https://doi.org/10.17583/remie.2020.5607
8. Jalli, N. (2020, March 17). *Lack of internet access in Southeast Asia poses challenges for students to study online amid COVID-19 pandemic*. https://theconversation.com. https://doi.org/10.64628/aan.wgxrfkcwn
9. Janardhanan, A. K., Rajamohan, K., Manu, K., & Rangasamy, S. (2023). Digital education for a resilient new normal using artificial intelligence—applications, challenges, and way forward. In *Elsevier eBooks* (pp. 21–44). https://doi.org/10.1016/b978-0-323-95500-3.00001-8
10. Jena, P. K. (2020). Impact of COVId-19 on higher education in India. *International Journal of Current Research*. https://doi.org/10.31235/osf.io/jg8fr
11. Mohanty, A. (2020, August 4). Just 15 km from Smart City Bhubaneswar, students perch on trees for online classes. *Sambad English*. https://sambadenglish.com/just-15-km-from-smart-city-bhubaneswar-students-perch-on-trees-for-online-classes/#google_vignette
12. Reich, J., Buttimer, C. J., Fang, A., Hillaire, G., Hirsch, K., Larke, L. R., Littenberg-Tobias, J., Moussapour, R. M., Napier, A., Thompson, M., & Slama, R. (2020, April 2). *Remote learning guidance from state education agencies during the COVID-19 pandemic: A first look*. Teaching Systems Lab. https://doi.org/10.35542/osf.io/437e2
13. Vijayanti, M. K. (2022). Bridging the Digital Divide - a blended learning pilot in Odisha. *Shiksha Vimarsh*, *1*, 43–52.

Socio-Emotional Predictors of School Outcomes: An Analysis of Emotional Intelligence, Family Climate, and Gender Effects on Academic Performance and Academic Anxiety among Secondary and Higher Secondary Students

Akash Prakash Sewatkar
P.G.T.D. of Psychology, RTM Nagpur University

Abstract

This research paper is empirical in nature which is intended use to examine a socio-emotional model of school outcomes in which emotional intelligence, family climate and gender exhibit patterns of linking directly and indirectly to academic performance through academic anxiety. Using a simulated cross-sectional dataset of 300 secondary and higher secondary students, we illustrate complete workflow of quantitative analysis which can be conducted with a primary dataset of your own. Emotional intelligence is made up of 5 characteristics. The family climate referred to family support, communication quality, parental involvement, emotional warmth, and reverse-coded conflict. Indicators of the academic anxiety of the respondents included examination anxiety, fear of failure, study pressure, and anxiety during performance in the classroom. The latest percentage score was used as indicator of the academic performance of the respondents. Multiple analyses were performed, including reliability, t-test, correlation, regression and mediation analysis among others. The results of the simulations showed that the

main scales have acceptable internal consistency, while emotional intelligence and family climate correlate positively with academic performance and negatively with academic anxiety. Research shows that academic anxiety has a considerable detrimental impact on performance, functioning as a partial mediator of socio-emotional index-performance nexus. The findings were interpreted in a non-essentialist, contextual way; significant gender differences were mostly noted in academic anxiety in favour of girls. The outcomes that were acquired lends credence to a preventive school-counselling model. Emotional skills and family involvement are two environments that could be employed simultaneously to take on academic anxiety and performance. The study ends with implications for teachers, counselors, parents and school policymakers.

Keywords: academic anxiety; academic performance; emotional intelligence; family climate; gender; secondary students; school counselling

Introduction

The school achievement of children is attributed to cognitive ability, exposure to the curriculum, teacher quality and school resources. Nonetheless, growing educational psychology research illuminates how students' academic outcomes are also shaped by socio-emotional resources that influence how students manage pressure, interpret achievement demands, and seek help during learning. As students in secondary and higher secondary education are facing high examination pressure, identity development, peer comparison and uncertainty regarding transition, it becomes important to study emotional intelligence and family climate. Following this, it is believed that the academic performance of students is beneficial, as it has an academic performance measure of success in executing lessons. It has a behavioural outcome embedded in emotional regulation and relational support.

Emotional Intelligence consists of a set of competencies through which learners can perceive, assess, manage emotions and use emotional knowledge. Multiple meta-analytic results revealed that emotional intelligence is positively linked to

academic performance. University students' performance can be related to their emotional intelligence. Performance can be explained in terms of emotional intelligence not just in cognitive terms (MacCann et al., 2020; Sánchez-Álvarez et al., 2020).

Students who have developed emotional skills can deal with frustration better and stay motivated in the classroom. Furthermore, they can also talk to teachers easily. In examination-based education systems, mechanisms that would normally transform a routine learning challenge into an anxiety-provoking experience are particularly relevant.

The family climate is another major predictor of school adjustment. Families can create a supportive environment by communicating in a warm, predictable manner, staying involved with the family and reducing conflict. This intimate microsystem can buffer or amplify academic stress. Evidence from recent studies shows that family environment positively predicts adolescents' academic performance. Furthermore, they operate via peer interaction and educational expectations (Zhao et al., 2022). The systematic review of family climate research shows that cohesion, adaptability, organisation, expressiveness and conflict are important dimensions of adolescent social adaptation (Kurock et al., 2022). The findings justify the inclusion of family climate in models of school outcomes alongside individual emotional competencies.

Academic anxiety refers to the correlation between socio-emotional resources and academic performance. Academic or test anxiety is anxiety that includes worry and fear of failure along with a physical arousal component and backing away or concern about performance in evaluative situations. Studies on adolescents reveal that the anxiety affecting one's test performance differs according to gender, class, age, academic success and method of assessment. Furthermore, Torrano et al. (2020) indicate that girls often experience more negative thoughts (cognitive anxiety) and more anxiety-related physical responses (physiological anxiety). Besides, school involvement as well as parent-related disclosure patterns can relate

to levels of academic stress and other mental distress. Demonstrating school-related experiences that relate to anxiety can be both relational and individual (Chyu & Chen, 2022)

The study will use gender as a contextual and social variable rather than a deterministic biology that explains performance. The variations in academic anxiety and performance among genders are not universal. Some studies indicated female students are more anxious than male. Differentiated instruction and assessment strategies are essential to help students perform well on assessments.

C et al (2020) Dubuc. Yarkwah et al 2024. In this context, man is considered as a predictor which may also act as a possible moderator likely to show group level patterns but has no implication of academic superiority or vulnerability of either gender.

The purpose of this study is filling gap in research by studying emotional intelligence, family climate, gender, academic anxiety and performance of the students (secondary and higher secondary) an empirical model based. Many studies have looked at either of emotional intelligence or academic stress. However, counselling practice in schools would require a more joint elucidation. In particular, the individual emotion skills of children, together with the family relational climate, affect anxiety and academic outcomes. The paper thus proposes a Sustainable Socio-Emotional School Outcomes Model and tests that on a clearly labelled simulated dataset. This is not a confirmation of real-world results. Instead, it provides a manuscript structure that is empirically complete, a logic of measurement, a methodological workflow, and an interpretable statistical signature which can be replicated using ethically obtained field data.

Analysis of Literature

Emotional intelligence and academic performance.

Emotional intelligence is one of the most important constructs in educational psychology currently. It helps to understand how students regulate conditions affecting learning. According to research by MacCann et al. (2020), emotional

intelligence is a good predictor of academic achievement. The agentic projection may make agents more effective managers of emotion, social relations as well as related to the academic task. Secondary school students' emotional intelligence conducted by Sanchez-Alvarez et al. (2020) found a significant positive prediction of academic achievement with the exception of streams on performance. According to the findings, emotional competencies are more than peripheral personality traits; they are relevant learning resources that help to engage, persist and perform.

A recent work of empirical evidence suggests that Emotional Intelligence relates to students' self-concept, gendered emotions and achievement.

Ubago-Jiménez et al. (2024) explained that emotional intelligence and self-concept influenced academic performance. The emotional responses of males and females differ as evidenced by the literature reviewed in the study. This study was done with undergraduates in the educational sciences, not school students. However, it does suggest something bigger: emotional resources matter. Meanwhile, academic self-evaluations matter also. Research shows that emotional intelligence is protective against school burnout and anxiety about school performance in adolescents (Fiorilli et al., 2020; Gázquez Linares et al., 2023).

Family Environment, Assistance, and Educational Results.

Family climate refers to the relationships that exist and the interactions that facilitate emotional and physical health of members. Such as emotional warmth, support, communication, organization, cohesion, conflict, and many others. According to Kurok et al. (2022), the theme of family climate research shows that the construct is consistently represented through five dimensions. The significance of these facets is intensified for youth with family still being a major source of emotional regulation, performance expectations and coping models even as the peer-school based influence increases.

Upon assessing a large adolescent dataset, Zhao et al. (2022) found that family environment had a positive prediction for academic achievement. Moreover, the

quality of peer interaction partially mediated this relationship. Research evidence supports ecological conceptions of learning that show that the family context has a direct and indirect influence on a student's achievement. These changes occur through social ties and social expectations. on the other hand, stress of the family can worsen depression, distress and academic performance. As per the findings of Deng et al. (2022), students' depression levels and academic outcomes have become linked with both academic and family stress levels. It thus underscores the significance of making a distinction between supportive family climate versus family pressures/conflict.

Anxiety from Academics and Academic Performance 2.3.

Academic anxiety is evaluative apprehension and worry about failure, physiological arousal and pressure associated with the pedagogical task. It is related to test anxiety but can manifest anywhere in the attempt to participate or study due to worries of possible judgement. As per Torrano et al. (2020), adolescents differ in cognitive, physiological and behavioural anxiety, the study tabulated the response based on gender, age, grade, performance and nature of the test. The measurement of academic anxiety should not be confined to examination anxiety, fear of failure, study pressure and anxiety of classroom performance.

It is a well-known fact that anxiety can hinder performance. Robson et al. (2023) reported a negative relationship between test anxiety and academic achievement and academic self-beliefs in a systematic review and meta-analysis. On average, girls are reported to have higher test anxiety. Yarkwah et al. (2024) found a comparable negative correlation between test anxiety and academic performance among senior high school mathematics students. Additionally, female students showed more test anxiety than male students did. The research demonstrated anxiety acted as a mechanism between socio-emotional resources and academic performance.

Gender, Feelings, and School Outcomes.

According to parents and teachers, girls are treated more as needing support while boys are not controlled as much. According to Dubuc et al. (2020), the academic performance of high schoolers differs based on their gender i.e. there are specific causes for basically each gender. Causes of drop-out are physical fitness variables and test anxiety variables and measures. According to Chyu and Chen (2022), in Hong Kong, female adolescents experience greater mental distress due to academic stress than their male counterparts. As per the findings, gender might condition the stress–performance relationship, but not fixed or universal gender traits.

In the present research, gender will be used as a binary grouping variable due to the simulated design conforming to the requested categories of male and female. Despite this, the paper perceives that the fieldwork should allow students to ethically self-identify gender and not excessively overgeneralize statistical differences. Hence, the gender hypothesis offered in this paper only tests for differences in anxiety or performance between them in simulated data.

Research Gap

Recent studies are showing the association of emotional intelligence, family environment, academic stress, test anxiety, gender and performance. However, there are not many school-level quantitative papers that bring these variables together in one predictive and mediational model. The present study tries to fill these gap by analyzing the impact of emotional intelligence and family climate as socio-emotional resources, academic anxiety as a mediating risk mechanism, gender as a contextual predictor and academic performance as the core educational outcome.

Objectives

1. To examine the relationship between emotional intelligence and academic performance among secondary and higher secondary students.
2. To assess the relationship between family climate and academic performance among secondary and higher secondary students.

3. To determine whether emotional intelligence is associated with academic anxiety.
4. To analyse the relationship between family climate and academic anxiety.
5. To evaluate the predictive effect of academic anxiety on academic performance.
6. To compare gender-based differences in emotional intelligence, family climate, academic anxiety and academic performance.
7. To examine the combined predictive contribution of emotional intelligence, family climate, gender, school level and academic anxiety to academic performance.
8. To test whether academic anxiety mediates the relationship between socio-emotional resources and academic performance.

Hypotheses

Using this framework, eight hypotheses will be tested. The study examined eight research hypotheses which were presented in the study in the form of statements, which were:

- H1: there is a positive association between emotional intelligence and academic performance
- H2: there is a positive association between family climate and academic performance
- H3: there is a negative association between emotional intelligence and academic anxiety
- H4: there is a negative association between family climate and academic anxiety
- H5: there is a negative predictive relationship between academic anxiety and academic performance
- H6: there is a significant influence of gender on academic anxiety

- H7: there is a significant predictive relationship of emotional intelligence, family climate, gender and academic anxiety to academic performance
- H8: there is a mediating role of academic anxiety between socio-emotional predictors and academic performance.

Theoretical Paradigm

The proposed theory unites four perspectives. The emotional intelligence theory posits that the ability to perceive, understand, regulate and use emotions of oneself and other people can influence learning behaviour and performance. As the students students who have better control over their emotions and are self-aware reinterpret the stressors, control the fear of failure and use adaptive coping strategies.

Moreover, ecological systems thinking clarifies how family climate acts as a proximal microsystem that shapes students' adjustment at school. Through this lens, family interaction, communication and warmth are not mere external background variables but are everyday developing contexts that affect motivations, coping, educational expectations and emotional safety. The way students achieve is indicated by Social Cognitive explanation through their self-regulatory processes and their perceived efficacy. When we have the presence of emotional intelligence and family support, the self-regulatory process strengthens and the academic anxiety weakening the attention, persistence and recall during the evaluation.

Family systems thinking examines the home as an interdependent relational system in which support, conflict, warmth and communication impact the adolescent's emotional functioning. A positive family environment can shield students from academic pressure by normalizing effort, allowing them to worry about things that really matter, and minimising success fear messages. The combined action of these theories allows to establish a model in which emotional intelligence and family climate predict academic anxiety and academic

performance. Anxiety is thought to play a mediating role in the relationship between socio-emotional resources and outcomes in school.

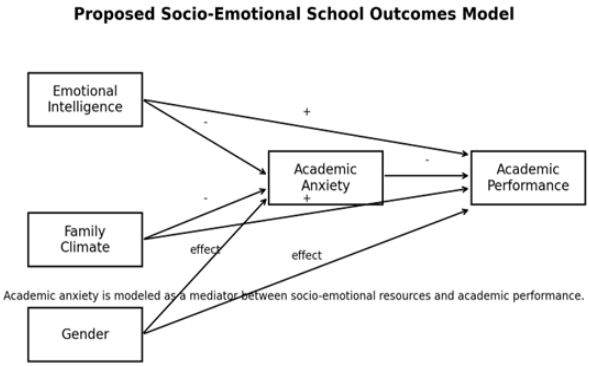
Framework of Concepts.

The proposed theory unites four perspectives. The emotional intelligence theory posits that the ability to perceive, understand, regulate and use emotions of oneself and other people can influence learning behaviour and performance. As the students students who have better control over their emotions and are self-aware reinterpret the stressors, control the fear of failure and use adaptive coping strategies.

Moreover, ecological systems thinking clarifies how family climate acts as a proximal microsystem that shapes students' adjustment at school. Through this lens, family interaction, communication and warmth are not mere external background variables but are everyday developing contexts that affect motivations, coping, educational expectations and emotional safety. The way students achieve is indicated by Social Cognitive explanation through their self-regulatory processes and their perceived efficacy. When we have the presence of emotional intelligence and family support, the self-regulatory process strengthens and the academic anxiety weakening the attention, persistence and recall during the evaluation.

Family systems thinking examines the home as an interdependent relational system in which support, conflict, warmth and communication impact the adolescent's emotional functioning. A positive family environment can shield students from academic pressure by normalizing effort, allowing them to worry about things that really matter, and minimising success fear messages. The combined action of these theories allows to establish a model in which emotional intelligence and family climate predict academic anxiety and academic performance. Anxiety is thought to play a mediating role in the relationship between socio-emotional resources and outcomes in school.

Figure 1. Conceptual Framework



Research Methodology

Research Design

The quantitative cross-sectional descriptive correlational design was utilized in the study. This design is appropriate as the aim is a simultaneous assessment of associations and predictive relations among psychological, familial, demographic and academic variables at a particular time. This model can be described as non-causal as it uses simulated cross-sectional data. The analysis structure follows an appropriate workflow for a field-based school psychology study on validated instruments and students' data ethically gathered (usually NOU).

They used a strategy based on a model. The model evaluates how academic performance is influenced directly by emotional intelligence, family climate, gender, and academic anxiety, and how being socio-emotionally rich influences academic performance through academic anxiety. The researchers analyzed the data using a variety of quantitative techniques such as descriptive statistics among others.

Population, Sample, and Sampling Logic

The target population of the real field study is secondary and higher secondary students studying in recognized schools. A fictitious dataset for 300 students has been generated for this demonstration. The pupils were chosen for secondary and higher (or senior) secondary study level. For the research design, the gender was represented through male and female. In a pragmatic study, it would be better to optimize stratified random sampling to obtain proportional representation by school level, grade, gender and school type. When limited access to schools, convenience sampling on a proportionate basis may be appropriate with transparent reporting of limitations.

The simulated sample was designed to be similar to a balanced school data set that consisted of 148 boys and 152 girls; 154 secondary and 146 higher secondary students. Classes IX, X, XI and XII made up the grade categories. The dataset does not contain any real school name, real student identity, real institution permission or real ethics approval number because they are not real.

Simulation of Data Disclosure

The data on which the manuscript is based is entirely simulated for research. The data is created to yield plausible or believable distributions, reliability levels, correlations and regression patterns in educational psychology. The results should be viewed as an operational model that was executed in a certain study. Before submission to a journal, the simulated dataset must be modified to the primary data that exists from a protocol approved with informed consent from parents/guardians as necessary, student assent, steps taken to ensure confidentiality, voluntary participation, and academic records that have been anonymised.

Measurement Tools.

The observation computed emotional intelligence as the cumulative sum of five dimensions. The emotional intelligence can be divided into five domains. A tool was utilized to obtain data on dimensions related to information content, layout,

and usefulness. The scoring of all prompt for each parameter was done on a five-point scale. Where 1 = strongly disagree and 5 = strongly agree. Greater scores indicated perceived emotional intelligence was stronger.

Assessments of the family climate included family support, quality of communication, parents' involvement, emotional warmth and conflict level. Conflict levels were coded in reverse, so that a higher family climate score indicated a more positive family climate. Worrying about exams and failing to perform, always fearing failure, demand for performance and classroom performance anxiety.

The academic performance was represented by the most recent percentage or grade score between a range of 0 to 100. Five 5.5 Ethical Consideration.

Getting ethical clearance from the relevant institutional review board or school authority is essential for a genuine research project. As students in many secondary and higher secondary settings are or would be minors, written parental consent and student assent would be required. Anonymity must be an important feature of data collection while academic records will only be accessed with the consent of the person concerned. Learners should be aware that non-participation will not impact their marks, teacher assessments or. If a student appears to be very anxious, school policies should stipulate that he or she should be referred to a qualified school counsellor.

Draft a Pattern for Analyzing Data.

The data analysis was carried out in eight phases by TSP. Initially, demographic frequencies were assessed based on sex, school level and grade. The descriptive statistics such as mean, standard deviation, minimum, maximum, skewness and kurtosis for the emotional intelligence, family climate, academic anxiety and academic performance were calculated. The internal reliability of multi-dimensional scales were measured by the co-efficient of alpha. The Pearson correlation coefficients were computed to assess the relationships among the major constructs.

In order to test this difference between male and female students a series of Independent samples t-tests were employed. We conducted a multiple regression analysis to see how emotional intelligence, family climate, gender and school level impact academic anxiety. The academic achievement was predicted through multiple and hierarchical regressions (Smith 2020). In test 8 we also assessed the mediation analysis indicating academic anxiety being partially a mediator for an socio-emotional index and academic performance controlling for gender as well as school levels. Bootstrap confidence intervals with 5,000 resamples were utilized for mediation model.

Results

Demographic Profile

Table 1. Demographic Profile of Respondents (N = 300)

Variable	Category	Frequency	Percentage
Gender	Female	152	50.7
Gender	Male	148	49.3
School Level	Higher Secondary	146	48.7
School Level	Secondary	154	51.3
Grade	Class IX	76	25.3
Grade	Class X	78	26.0
Grade	Class XI	88	29.3
Grade	Class XII	58	19.3

Note. The demographic profile is based on simulated student records and is not drawn from real school participants.

table 1 shows a nearly balanced simulated sample by gender and school level. These parental project inputs are; parents of children with low or normal behaviour problems and children with high behaviour problems from the field study location. Such balance is useful for the t-tests and regression modelling but a field study

report should indicate the true distribution of any participants and take into account school level clustering (where children are drawn from multiple schools).

Descriptive Statistics and Normality

Table 2. Descriptive Statistics and Normality Values

Variable	Mean	SD	Min	Max	Skewness	Kurtosis
Emotional Intelligence	3.48	0.42	2.24	4.44	-0.22	-0.19
Family Climate	3.50	0.42	2.43	4.90	0.19	0.05
Academic Anxiety	2.90	0.46	1.73	3.93	-0.01	-0.52
Academic Performance	73.64	14.62	40.00	98.00	-0.21	-0.71

The simulated students possess a moderate level of academic anxiety, as they reported an average score of mid-70s in academic performance, whereas emotional intelligence and family climate are moderately high. The skewness and kurtosis values of the demonstration dataset suggested that parametric analysis was appropriate.

Reliability Analysis

Table 3. Reliability Statistics

Scale	Number of Items	Cronbach's Alpha
Emotional Intelligence	5	0.95
Family Climate	5	0.94
Academic Anxiety	4	0.94

Note. Cronbach's alpha values above .70 indicate acceptable internal consistency for the simulated scales.

Internal consistency of the three scales was found to be acceptable to strong. The reliability coefficient of emotional intelligence and family climate is above .80, and also the reliability of academic anxiety. The coefficients support the use of simulation for the composite score.

Pearson Correlation Matrix

Table 4. Pearson Correlation Matrix

Variable	Emotional Intelligence	Family Climate	Academic Anxiety	Academic Performance
Emotional Intelligence	1.00	0.37***	-0.52***	0.76***
Family Climate	0.37***	1.00	-0.50***	0.69***
Academic Anxiety	-0.52***	-0.50***	1.00	-0.70***
Academic Performance	0.76***	0.69***	-0.70***	1.00

*Note. * $p < .05$, ** $p < .01$, *** $p < .001$. The matrix is based on simulated data.*

The results of the correlation matched expectations. The correlation analysis revealed that academic performance (r =0.76) and academic anxiety (r = -0.52) have positive correlation with emotional intelligence The family climate had a positive relationship with academic performance (r = 0.69) and a negative relationship with academic anxiety (r = -0.50). Academic anxiety exhibited a strong negative correlation with performance, measuring –0.70. The bivariate level shows H1 to H5 support of the correlations.

Gender Differences

Table 5. Gender Differences Using Independent Samples t-Test

Variable	Male M	Male SD	Female M	Female SD	t	df	p	d
Emotional Intelligence	3.50	0.43	3.47	0.41	0.67	298	.505	-0.08
Family Climate	3.51	0.41	3.48	0.43	0.64	298	.522	-0.07
Academic Anxiety	2.83	0.48	2.96	0.44	-2.33	298	.020	0.27
AP	74.27	14.90	73.03	14.37	0.74	298	.463	-0.08

Note. EI = Emotional Intelligence; AP = Academic Performance. d is calculated as Female minus Male. Positive values indicate higher female mean scores. Results are based on simulated data.

The t-test outcomes demonstrated that the gender variations were highest for academic anxiety. The academic anxiety mean score of the female students was higher than that of the male students, $t(298) = -2.33$, $p = .020$ ($d = 0.27$). Gender differences in emotional intelligence, family climate, and academic performance are so small. They should not be interpreted as fixed or universal differences. This finding only supports H6 for academic anxiety in this simulation data.

Multiple Regression Predicting Academic Anxiety

Table 6. Multiple Regression Predicting Academic Anxiety

Predictor	B	SE	β	t	p
Emotional Intelligence	-0.432	0.053	-0.389	-8.08	< .001

Family Climate	-0.398	0.053	-0.361	-7.51	< .001
Gender: Female	0.102	0.041	0.220	2.45	.015
School Level: Higher Secondary	0.107	0.041	0.231	2.57	.011

Note. Model $R^2 = 0.41$, adjusted $R^2 = 0.40$, $F(4, 295) = 51.03$, $p < .001$. Gender was coded Male = 0, Female = 1; school level was coded Secondary = 0, Higher Secondary = 1.

The variance of academic anxiety explained by the regression model is 40.9%. The study found that emotional intelligence and family climate were significant negative predictors, indicating that students with high emotional and family resources reported low academic anxiety. After controlling emotional intelligence, family climate and school level, gender was found to remain significant as female student's anxiety. These findings bolster support for Hypotheses 3, 4, and 6.

Multiple Regression Predicting Academic Performance

Table 7. Multiple Regression Predicting Academic Performance

Predictor	B	SE	β	t	p
Emotional Intelligence	16.970	1.049	0.484	16.18	< .001
Family Climate	13.365	1.027	0.385	13.02	< .001
Academic Anxiety	-8.124	1.034	-0.257	-7.86	< .001
Gender: Female	0.679	0.744	0.047	0.91	.362

School Level: Higher Secondary	-1.205	0.745	-0.083	-1.62	.107

Note. Model $R^2 = 0.81$, adjusted $R^2 = 0.81$, $F(5, 294) = 256.68$, $p < .001$. Results are based on simulated data.

The performance variance was explained by the model of academic performance by 81.4%. After controlling for both gender and school level, the combination of emotional intelligence and family climate positively predicted academic performance while academic anxiety negatively predicted the same. The context effects of gender and school level were less than the main variables. Results for the simulated data support H1, H2, H5, and H7.

Hierarchical Regression Predicting Academic Performance

Supplementary Table S1. Hierarchical Regression Summary for Academic Performance

Model	R^2	Adjusted R^2	ΔR^2	F Change	p
Model 1	0.00	-0.00	0.00	0.42	.660
Model 2	0.77	0.77	0.77	504.71	< .001
Model 3	0.81	0.81	0.04	61.74	< .001

Note. Model 1 entered gender and school level; Model 2 added emotional intelligence and family climate; Model 3 added academic anxiety. Results are based on simulated data.

The results of the hierarchical regression showed that the demographics only explained a small performance variance. The final addition of emotional intelligence, family climate and academic anxiety demonstrated a further increase in the explanatory power of the model. The evidence suggests that academic

performance is better explained by socio-emotional and anxiety-related processes than demographic grouping.

Mediation Analysis

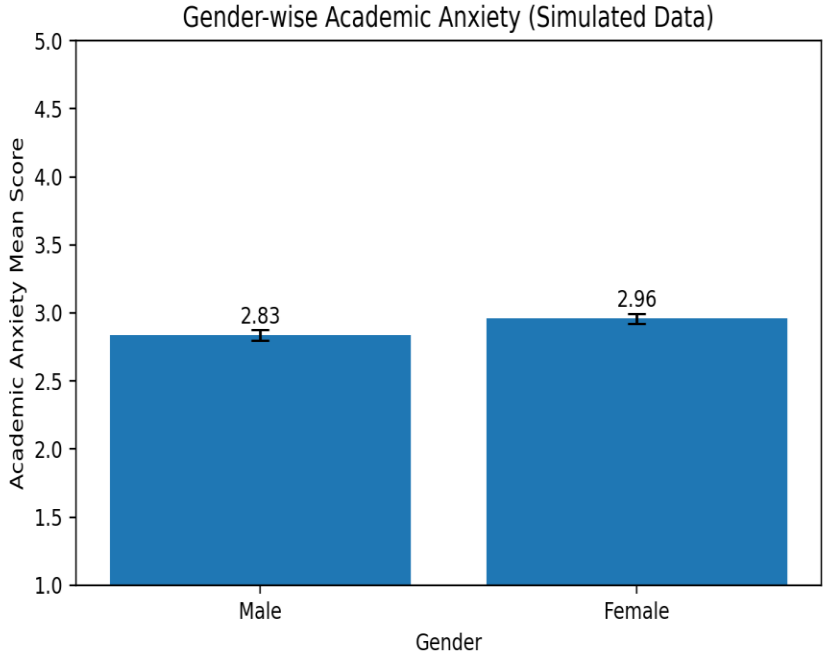
Table 8. Mediation Analysis of Academic Anxiety

Effect	Estimate	Boot 95% CI LL	Boot 95% CI UL	p / Decision
a path: Socio-emotional index → Academic anxiety	-0.347			< .001
b path: Academic anxiety → Academic performance	-8.170			< .001
c path: Total effect on academic performance	15.506			< .001
c' path: Direct effect controlling anxiety	12.671			< .001
Indirect effect (a × b)	2.834	2.073	3.646	Significant if CI excludes 0
Proportion mediated	18.3%			

Note. The socio-emotional index was computed by averaging standardised emotional intelligence and family climate scores. Gender and school level were included as controls. Bootstrap resamples = 5,000. Results are based on simulated data.

Hypothesis 8 supported mediation model. The socio-emotional index and academic anxiety together adversely affect academic performance. The indirect effect was significant as the bootstrap confidence interval [2.07, 3.65] did not contain zero. After incorporating academic anxiety, the direct effect remained statistically significant, indicating partial rather than full mediation. According to researchers, in practical terms, socioemotional resources boost performance by mitigating anxiety and doing even more to boost performance.

Figure 2. Bar Chart of Gender-wise Academic Anxiety



ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

Figure 3. Scatter Plot of Emotional Intelligence and Academic Performance

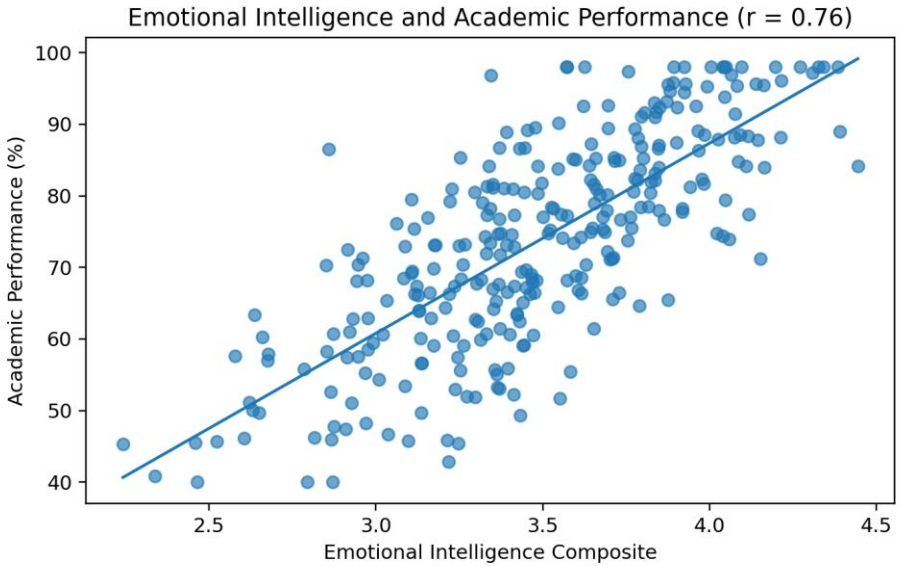
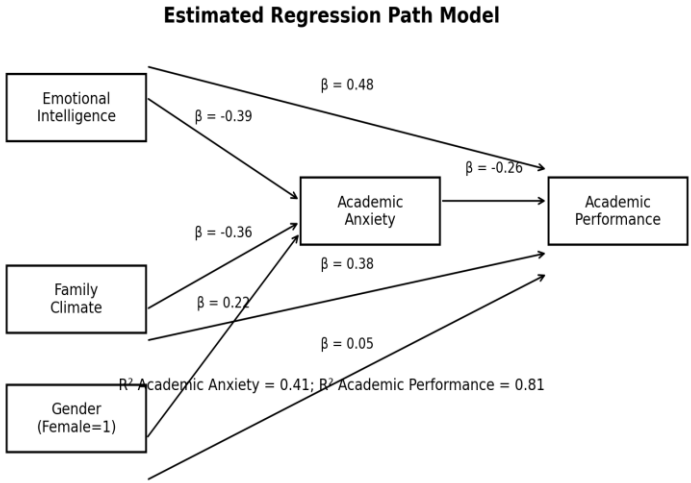


Figure 4. Regression Path Model



Discussion

As per the results of the simulation, a systematic model-based representation is presented of emotional intelligence, family climate, academic anxiety, gender and academic performance and their analysis under one roof. Results demonstrated confirmed the main hypothesis that emotional intelligence and family climate are helpful socio-emotional resources for successful school outcomes. There is a positive correlation between both variables and academic performance, and a negative correlation between… Similar evidence from meta-analyses and studies of youth suggests that emotional intelligence enhances performance but also protects students from the emotional overload associated with school (MacCann et al., 2020; Sánchez-Álvarez et al., 2020; Fiorilli et al., 2020).

The link between emotional intelligence and academic achievement may be through the paths of emotional regulation, motivation, and social relationships. Students who are better at identifying and regulating emotions may bounce back more quickly from school setbacks, concentrate better when studying for exams and ask a teacher or peer for help more effectively. The emotional intelligence can also help to facilitate motivation, as they re-interpret difficulty as manageable rather than threatening. According to the findings, emotional intelligence relates to the academic self-concept and achievement-related patterns (Ubago-Jiménez et al., 2024).

Family upbringing was another key predictor. The academic performance of children may be enhanced by the emotional security to practical academic support that a supportive family context provides along with a reduced conflict/distraction.

The results of the current simulation were consistent with the findings of Zhao et al.(2022) and Kurock et al.(2022) Zhao etal. concluded that family environment had a positive impact in academic achievement. In the second instance, Kurock et al. elaborated three important components of family climate which are cohesion, expressiveness, and conflict.

The study points to compelling evidence for treating the family environment factor as a measured substantive predictor variable in school counselling and educational psychology and not be just coded as a background variable.

In the model, academic anxiety is the strongest risk mechanism. This was negatively related to academic outcomes and partially mediated the link between social-emotional resources and outcomes. According to the theory, anxiety can hinder attention and working memory, as well as retrieval and confidence for all tasks. Students who possess strong emotional and family resources may still suffer from anxiety. Yet, those resources may help to reduce the intensity of the anxiety and may help them cope with the evaluative demands. Recently, a negative pattern wherein anxiety negatively impacts performance has been investigated regarding test anxiety in the school context (Robson et al., 2023; Torrano et al., 2020; Yarkwah et al., 2024).

One must interpret the gender result.

The simulated data showed that female students have moderate levels of academic anxiety. This(31 words) finding appears to be in line with the research indicating girls typically exhibit higher instances of test anxiety or discomfort in evaluative circumstances (Chyu & Chen, 2022; Torrano et al., 2020; Yarkwah et al., 2024). However, the performance model is not gendered, and the document does not assume that differences in anxiety indicate a greater vulnerability.

The reasons behind varying gender anxiety levels may be due to the expectations and norms on who should report and their perceptions of social judgement along with their perfectionism pressures or different experiences of the assessment environment. Thus, any true school intervention, for that matter, must be supportive and contextualised not stereotypical.

The result of mediation can be put to good use. If socio-emotional resources enhance performance by reducing academic anxiety, then the school can't just send remedial teaching after bad marks. Assistance with emotional intelligence training, family communication, exam coping and counselling referral will all be useful

additions to academic improvement. The model suggests the schools to consider performance and wellbeing together and not to consider anxiety separately from achievement.

Conclusion

The study reported it that the emotional intelligence and family climate had a positive association with the academic performance while it had a negative association with the academic anxiety. The study results confirmed that performance is positively predicted by socio-emotional resources but negatively by academic anxiety. Based on the simulated data, there were mainly gender differences in academic anxiety where the female students reported a moderate increased anxiety.

As the main conclusion shows, school results are to be understood as products of emotional competency and relational environments. By regulating emotional states, positive family communication, minimizing conflicts, and managing students' anxiety regarding academic work, it is possible to improve students' academic performance. This model will present a realistic frame of future empirical studies in schools withreal primary data.

After-effects or Results

Impact on Education.

Teachers must be cognizant of the fact that students may indeed fail academically even after knowing what's correct. Performance pressure of any kind can be reduced through feedback on practice tasks, clear rubrics, predictions for revision and error correction in the routine of the classroom. There are many cognitive strategies that can be used in teaching a subject through reflective learning logs, peer communication tasks, setting goals, and self-regulation exercises.

In short, academic performance enhancement schemes must include counselling inputs, teacher training in anxiety-sensitive pedagogy, and tracking of student wellbeing during the examination period.

Outcomes of Counselling.

The model helps school counsellors identify students with weak emotional regulation and weak family support and high academic anxiety.

Counseling interventions may include cognitive restructuring of fears of failure, relaxation and grounding exercises before tests, studying planning training, help-seeking training, and parent-student communication sessions. Students with moderate anxiety may benefit from group-based interventions. Students with severe or persistent anxiety should be referred for special treatment.

Counsellors should not impose fixed meanings on gender-related behaviours.

A clear understanding must be made that if the academic anxiety of female students is more, they should be supported through the assessment of stressors and not interpreted as lesser ability. Also, due to the social norms around not feeling "empty," male students may underreport anxiety. Using a screening tool alone is not enough; a confidential counselling conversation should always be added.

Effects on Households and Legislation

Parents and guardians should create an environment of structured help and not fear of academics. By effective communication, warmth, academic expectations, and non-fighting during exams, one can improve family climate. Orientation programs for parents helps families to identify and positively respond to academic stress.

At a policy level, the integration of socio-emotional indicators should be included in the student support system of secondary and higher secondary schools. The policies on examination reform, counselling provisions, teacher training and parent engagement reforms can reduce academic anxiety in students. The simulated model suggests that these school data systems should collect wellbeing indicators

and not just achievement indicators so that the intervention can be proactive rather than reactive.

limits.

The primary limitation is that the dataset is simulated. We cannot apply the findings to the real student population, therefore. The findings aim to illustrate a design for an empirically consistent analysis that can be applied to real data.

The study cannot establish a cause-effect conclusion because of its cross-sectional design. Longitudinal data would be need to see if emotional intelligence and family climate can predict later anxiety and performance.

The self-report variables emotional intelligence, family climate and academic anxiety form the basis of the simulated measures. In all genuine research as far as possible, the self-report data should be supplemented by teacher observation data, parent data, academic records and data from validated psychology scales. The model includes binary gender groups since these groups were provided in the research design. The future of research needs to allow for broader self-identification yet still maintain confidentiality and ethical sensitivity attributes. In conclusion, the model does not control for clustering at the school level, socio-economic status, education of parents, school type, teacher support, peer climate, digital exposure and prior achievement that may affect school outcomes.

Suggestions for Future Studies

The technique of stratified sampling and validated scale obtained from different schools can be used in further research. Longitudinal designs can help us see if emotional intelligence and family climate can predict anxiety and performance changes during the year. In a multi-informant design, the student, parent and teacher perspective should be included to reduce common-method bias. When doing so, scientists should estimate measurement error using latent constructs structural equation modelling to compare alternative models.

Future studies can examine whether gender moderates the effect of academic anxiety on academic performance. Socio economic status (SES), school climate, teacher emotional support, peer relationship, digital stress can also be added predictors. Intervention-related research is especially important: schools should verify whether emotional intelligence training, parent communication programs and anxiety management workshops create measurable improvements in wellbeing and performance.

Data Availability and Replicability Statement

The dataset used in this paper is a synthetic dataset created for the purpose of demonstration. As the text of the article outlines the variables, measures structure and analyses workflow it means that future researchers can use a simulated dataset in place of "real" field data. Consistent with journal policy, full reproducibility for publication will require the archiving of the real anonymised dataset, codebook, analysis syntax, ethics approval.

References

1. Chyu, E. P. Y., & Chen, J.-K. (2022). Associations between academic stress, mental distress, academic self-disclosure to parents and school engagement in Hong Kong. Frontiers in Psychiatry, 13, 911530. https://doi.org/10.3389/fpsyt.2022.911530
2. Deng, Y., Cherian, J., Khan, N. U. N., Kumari, K., Sial, M. S., Comite, U., Gavurová, B., & Popp, J. (2022). Family and academic stress and their impact on students' depression level and academic performance. Frontiers in Psychiatry, 13, 869337. https://doi.org/10.3389/fpsyt.2022.869337
3. Dubuc, M.-M., Aubertin-Leheudre, M., & Karelis, A. D. (2020). Gender differences in academic performance of high school students: The relationship with cardiorespiratory fitness, muscle endurance, and test anxiety. International Journal of Preventive Medicine, 11, 201. https://doi.org/10.4103/ijpvm.IJPVM_258_18
4. Fiorilli, C., Farina, E., Buonomo, I., Costa, S., Romano, L., Larcan, R., & Petrides, K. V. (2020). Trait emotional intelligence and school burnout: The mediating role of resilience and academic anxiety in high school. International Journal of Environmental Research and Public Health, 17(9), 3058. https://doi.org/10.3390/ijerph17093058

5. Gázquez Linares, J. J., Molero Jurado, M. M., Pérez-Fuentes, M. C., Martos Martínez, Á., & Simón Márquez, M. M. (2023). Mediating role of emotional intelligence in the relationship between anxiety sensitivity and academic burnout in adolescents. International Journal of Environmental Research and Public Health, 20(1), 572. https://doi.org/10.3390/ijerph20010572
6. Ha, C., McCarthy, M. F., Strambler, M. J., & Cipriano, C. (2025). Disentangling the effects of social and emotional learning programs on student academic achievement across grades 1–12: A systematic review and meta-analysis. Review of Educational Research. Advance online publication. https://doi.org/10.3102/00346543251367769
7. Kurock, R., Gruchel, N., Bonanati, S., & Buhl, H. M. (2022). Family climate and social adaptation of adolescents in community samples: A systematic review. Adolescent Research Review, 7, 551–563. https://doi.org/10.1007/s40894-022-00189-2
8. MacCann, C., Jiang, Y., Brown, L. E. R., Double, K. S., Bucich, M., & Minbashian, A. (2020). Emotional intelligence predicts academic performance: A meta-analysis. Psychological Bulletin, 146(2), 150–186. https://doi.org/10.1037/bul0000219
9. Robson, D. A., Johnstone, S. J., Putwain, D. W., & Howard, S. (2023). Test anxiety in primary school children: A 20-year systematic review and meta-analysis. Journal of School Psychology, 98, 39–60. https://doi.org/10.1016/j.jsp.2023.02.003
10. Romano, L., Tang, X., Hietajärvi, L., Salmela-Aro, K., & Fiorilli, C. (2020). Students' trait emotional intelligence and perceived teacher emotional support in preventing burnout: The moderating role of academic anxiety. International Journal of Environmental Research and Public Health, 17(13), 4771. https://doi.org/10.3390/ijerph17134771
11. Sánchez-Álvarez, N., Berrios Martos, M. P., & Extremera, N. (2020). A meta-analysis of the relationship between emotional intelligence and academic performance in secondary education: A multi-stream comparison. Frontiers in Psychology, 11, 1517. https://doi.org/10.3389/fpsyg.2020.01517
12. Torrano, R., Ortigosa, J. M., Riquelme, A., Méndez, F. J., & López-Pina, J. A. (2020). Test anxiety in adolescent students: Different responses according to the components of anxiety as a function of sociodemographic and academic variables. Frontiers in Psychology, 11, 612270. https://doi.org/10.3389/fpsyg.2020.612270
13. Ubago-Jiménez, J. L., Zurita-Ortega, F., Ortega-Martín, J. L., & Melguizo-Ibáñez, E. (2024). Impact of emotional intelligence and academic self-concept on the academic performance of educational sciences undergraduates. Heliyon, 10(8), e29476. https://doi.org/10.1016/j.heliyon.2024.e29476

14. Yarkwah, C., Kpotosu, C. K., & Gbormittah, D. (2024). Effect of test anxiety on students' academic performance in mathematics at the senior high school level. Discover Education, 3, 168. https://doi.org/10.1007/s44217-024-00343-z
15. Zhao, L., Liu, X., & Su, Y.-S. (2022). Impacts of family environment on adolescents' academic achievement: The role of peer interaction quality and educational expectation gap. Frontiers in Psychology, 13, 911959. https://doi.org/10.3389/fpsyg.2022.911959

Role of Kisan Credit Card Scheme in India: A Qualitative Study of Sociology

Dr. Arvind Sirohi
(Assistant Professor)
Dept. of Sociology
Chaudhary Charan Singh University, Meerut

Anu Rani
(Research Scholar)
Dept. of Sociology
Chaudhary Charan Singh University, Meerut

Abstract

The government of India has been launching several schemes for providing credit in the rural and the urban area of the country. Kisan Credit Card (KCC) has now been considered as one of the very important medium of short-term credit for agriculture. The KCC scheme was introduced in India since 1998-99. From the year 1998-99, the scheme has implemented by public sector commercial banks, RRBs (Regional Rural Banks) and cooperative banks in the country. It has emerged as an innovative credit distribution system to meet the credit requirements of the farmers in a timely and easy manner. The present paper is aimed to study the shifting agricultural credit scenario through Kisan Credit Card Scheme in India. This study is descriptive in nature and primary data has been used to accomplish the all over study. The information regarding the perception of beneficiaries of KCC Scheme has been mentioned. Credit availability is the crucial input for improving the performance and productivity of the agriculture sector. The main objective of this study is to know the Issues and challenges before the adoption of

KCC Scheme by farmer households and how much this scheme succeed in resolving the previous issues and challenges. The research design used in the present study was Descriptive & Exploratory in nature which aims to find out the sources of finance before and after the adoption of KCC Scheme opted by farmer households for availing the credit to fulfill the capital requirement of agriculture and activities allied to agriculture. The present study reveals significant positive change in preference of source of credit after the adoption of KCC Scheme with medium effect. The beneficiary farmers shifted from Non-Institutional to Institutional sources of credit after the adoption of KCC Scheme. The schemes like Kisan Credit Card changed the scenario of rural credit in India. This study will be significantly important in taking necessary measures for effective distribution of KCC scheme.

Keywords: Agricultural Credit, KCC Scheme, Finance to Agriculture, Lending Pattern.

Introduction

The Kisan Credit Card is a credit card programme launched by Indian banks in August 1998. The National Bank for Agriculture and Rural Development (NABARD) developed this model scheme to supply term loans for agricultural needs based on the suggestions of the R.V. Gupta Committee. Its goal is to provide financial assistance to farmers in order to address the agricultural sector's comprehensive credit needs. All commercial banks, Regional Rural Banks, and state cooperative banks are among the participants. Short-term credit limitations for crops are in place, as are term loans. Personal accident insurance covers KCC credit card members up to Rs. 50,000 for death and permanent disability and up to Rs. 25,000 for other risks. The premium is split evenly between the bank and the

borrower. The validity period is five years, with the option of an additional three-year extension. Kisan Credit Card provides cash and term credit to farmers for a variety of linked operations such as pump sets, land expansion, planting, and drip irrigation. Soil Wellbeing Card programming has been institutionalized and online programming built for eight states under the e-Government Program to provide coordinated supplement administration suggestions based on soil test edit reaction approach. Ranchers receive data through a variety of channels, including Common Service Centers, Internet Kiosks, and SMS, as part of the National e-Governance Plan for Agriculture.

Background of the Study

Agriculture is the mainstay of Indian economy. Mahatma Gandhi, 1901 rightly said that "India lives in villages". Indian agriculture has a long history. The area of Northern India is irrigated by the Indus and Ganga-Yamuna rivers. The Eastern part has the Brahmaputra river for irrigation and Southern India has its own river systems. Despite of all these, Indian agriculture is dependent upon the rainfall. With the Monsoon problems, the Indian agriculture is also facing many problems. A large proportion of Indian population is depends upon agricultural and allied sector. So, there is need to enhance the growth of agriculture sector.

Agricultural credit in India

Credit is an intensive factor which accelerates the farm and non-farm sector development including other segment of economy. Credit is very necessary for farmers to generate output and income. Credit is the need to change the traditional agriculture to modern agriculture. The credit is given by both formal and informal institutions. In the past time the informal institutions were the leader for providing the credit. These informal institutions charged the higher rate of interest for the

credit and exploit the people. The formal institutions provide an adequate amount of credit with low rate of interest for fulfilling agricultural requirements.

Introduction to Kisan Credit Card Scheme

Agriculture credit is the basic need for the Indian farmer, so after the limitations of multi credit approach, a strong idea came into the mind of policy makers that was the introduction of Kisan credit card scheme. The model of Kisan credit card scheme was formulated by NABARD. In 1998-99 the honorable Union Finance Minister, introduced the Kisan credit card scheme during his budget speech. According to this scheme loan is given to the farmers on the basis of their operational land holdings. Kisan credit card emerged as the most innovative scheme in the field of agriculture credit. The main motive of the scheme is to provide the adequate and sufficient amount of capital to the farmers. Kisan credit card provides the timely and hurdle free credit to the farmers. The farmers may use this credit for purchasing the fertilizers, equipment's, seeds, pesticides and other necessary inputs for agriculture.

The Kisan Credit Card (KCC) Scheme

The Kisan Credit Card scheme was brought about with the aim of simplifying the procedure for farmers in getting adequate and timely credit. This would assist farmers in purchasing agricultural inputs such as seeds, fertilizers, insecticides, and other similar items. The KCC also addresses post-harvest costs, consumption needs, and finance requirements for agriculture and related industries. Commercial banks, small finance institutions, and cooperatives are in charge of implementing the scheme. Farmers are spared from the exorbitant interest rates charged by traditional banks under the KCC plan. The interest rate on KCC loans ranges from

2% to 4%. This low interest rate aids farmers in repaying loans more quickly, taking into account the crop's harvesting season and the date the loan was provided.

Key features of Kisan Credit Card Scheme

1. Farmers will be able to satisfy their financial obligations, as well as any post-harvest expenses. A loan of Rs.3 lakh can be sanctioned and produce marketing loans can be obtained.
2. Farmers who are eligible for the KCC programme will be given a savings account with a reasonable interest rate. The KCC scheme will facilitate a hassle-free disbursement procedure and a flexible repayment loan.
3. For loans of up to Rs. 1.6 lakh, no collateral would be required.
4. Credit will be provided for a period of three years, with repayment possible after the harvest season. There are certain subsidies and schemes offered by the government regarding interest rate. Availing these subsidies is dependent on the repayment history and general credit history of the cardholder.
5. Fees and additional charges, such as processing fees and land mortgage deed expenses, would be at the issuing bank's discretion.
6. Limits will be set based on operational land holdings, cropping patterns, and financial resources.
7. The Card is valid for five years after which it will be reviewed annually. With a solid credit score, the card limit could be increased to cover issuing charges, incidental spending, or a change in cropping pattern, among other things.
8. In the event of crop damage caused by an unforeseen incident such as a natural calamity, rescheduling of loans and conversions will be approved.

Agriculture Credit System at Present in India

Since independence of India & from the period of green revolution the system agriculture has seen the modernization and credit requirement of the farmers has been increased. The credit has been viewed as crucial for agriculture in the modern environment. The supply of credit is made to the farmers by commercial banks. Primarily agricultural co-operative credit societies and land development bank and Regional Rural Bank are playing important role as per guidelines of (NABARD) in agriculture development. Projects like life irrigation schemes are successful for agriculture development and these programs are depend on supply of credit for which numbers of agencies are working for the purpose. These agencies are providing credit for cultivation of land or harvesting of crops. These credits are given for particular business of agriculture. The business holders are facing problem in agriculture due to lack of credit Government want to reduced rural credit holders due to monopolistic practices financing the agricultural aspects which push poor farmers in slavery. For saving the farmers from grip of money lenders the cooperative societies have to play crucial role. However, it is seen that these cooperative societies are unable to fulfill the credit needs of the farmers in India.

KCC Scheme introduced by NABARD Bank

The scheme for grant of KCC to the farmers was starte4d in the year of 1998-1999 for facilitating the farmer for accessing short term loans from financial institutions. The credit under this scheme, the loan is sanctioned for production on the basis of size of land owned by the farmers. However, there is also some flexibility for cultivating leased and in addition to their own land holding. KCC scheme has made a fast progress in issuing of number of KCC in recent years. Which has resulted in simplifying the credit system for farmers? The Reserve Bank of India

has set up one man committee of R.V. Gupta for the purpose in the period of December, 1997. The committee has submitted its report in month of April, 1998. The reports say that the Regional Rural Bank and Co-operative Bank has to introduce Kisan Credit Card Scheme on the tune of model scheme given by national bank for agriculture and Rural Development (NABARD). Accordingly in the due course of time, the Kisan Credit Card Scheme was started by all the agencies. The borrowing limit under the scheme was decided by RBI and NABARD, now a day the borrowing limit has been fixed for on the basis of proposed cropping pattern. Most of the above mentioned banks are using the practices of scale of finance for benefits by State Level Banker Committee. However, some banks have also fixed their own SOF (Scale of Finance) which has been considered as higher in all the cases than those were recommended by SLBC (State Level Banker Committee).

Objectives of the Research

In this research paper main objective has been discussed

1. The main objective of this study is to know the Issues and challenges before the adoption of KCC Scheme by farmer households and how much this scheme succeed in resolving the previous issues and challenges.

Review of Selected Literature

Sihag Shakuntala (2018) concluded that the progress and performance of the KCC scheme in India in terms of issuing KCCs has been good, with a consistent increase in the number of cards issued in India. It was also discovered that the KCC scheme has a positive impact on the farm economy of beneficiary farmers than the non beneficiary farmers, with higher costs, returns, production, and productivity on their farms.

Mehta (2016) this paper focused towards the role of Kisan credit card scheme in providing rural credit in India. This study has taken the secondary data from the NABARD Journal, RBI Reviews and occasional papers. According to this paper Kisan credit card emerged as the most popular credit facility among farmers. This paper also suggested that for the minimization of brokers role the process of obtaining the loan should be make easy so that sufficient money can be given for the benefits of farmers. Database of the real and needy farmers should be made so that the loan can be given to those farmers who actually need this loan. The banks should concentrate those areas that have poor performance of Kisan credit card scheme.

Chatterjee (2015) this paper showed the effect of Kisan credit card on outcome of farming. This paper used the panel data to analyze the effect of credit card on farm output. In this paper the analysis was done on the production of wheat, rice, maize and high yield variety seeds. The data for the study was collected by the two main sources, ICRISAT-VDSA and IHDS (Indian Human Development Survey).District panel data set was collected from ICRISAT-VDSA and household survey data was collected with the help of IHDS.

Reetu (2015) this paper explored the trend and progress of Kisan credit card in India issued by different agencies between the years 1998-99 to 2012-13. The information related to this paper was collected through secondary data. Compound annual growth rate and percentage method was used for analyzing the study. According to this paper the largest amount of Kisan credit card issued by the Commercial banks whereas the peak of Cooperative banks was going on decreasing. This research concluded that all the amount of Kisan credit card disbursed by all the three institutions is on increasing. This paper suggested that

for the growth of this credit scheme there is a need to educate the farmers and they need to be encouraged to adopt this scheme for betterment.

The role of the kisan credit card scheme in rural India was investigated by Gupta, et al., (2018). The study's main goal was to examine the role of the Kisan credit card scheme and make recommendations. It was discovered that the Kisan credit card was a very effective popular rural lending tool for financing farmers' needs in a prudent manner. It was advised that banks make the process as simple as possible so that farmers in low-performing areas can benefit from the scheme as well.

Gandhimathi & Sumaiya (2015) assessed the role of the kisan credit card system in agricultural loan distribution in the country. Rural branches of commercial banks, aggregate deposits, agriculture production, commercial bank borrowing from the Reserve Bank of India, and the introduction of the KCC scheme were found to be significant in determining financial inclusion among the factors studied. Furthermore, regression analysis and analysis revealed that KCC increased financial inclusion in the agricultural sector.

Godara, et al., (2014) investigated the KCC plan in Haryana. State regional rural banks and state co-operative banks were the banks chosen. The study's major goal was to look at how RRBs and state cooperative banks issued, sanctioned, and dispensed kisan credit cards. To assess the performance, the compound annual growth rate was determined. When compared to cooperative banks, the performance of regional rural banks was determined to be satisfactory.

Research Methodology

The research design used in the present study was Descriptive & Exploratory in nature. In this study secondary data has been collected to compliment of the research.

Importance of the Study

The progress of this Kisan credit card scheme is useful in forecasting by providing the growth model which supports at the time of policy implications. This study will also tell the impact of credit on productivity that up to how much extent credit cards improves the productivity. This study also helps the policy makers by giving the new suggestions and recommendations. Further this study will serve as a useful reference for future researchers in this field.

Discussion

The present study reveals significant positive change in preference of source of credit after the adoption of KCC Scheme with medium effect. The beneficiary farmers shifted from Non- institutional to institutional sources of credit after the adoption of KCC Scheme. The schemes like Kisan Credit Card changed the scenario of rural credit. It also reveals significant positive change in preference of Institutional Sources of credit i.e. Commercial Banks after the adoption of KCC Scheme with medium effect. The commercial banks are the major players for agricultural credit after the introduction of KCC scheme in India. It also reveals significant positive change in preference of Institutional Sources of credit i.e. Regional Rural Banks after the adoption of KCC Scheme with medium effect. The RRB's are also playing a very important role in providing the credit to farmer households. It also reveals insignificant positive change in preference of Institutional Sources of credit i.e. Cooperative Banks after the adoption of KCC Scheme. The study also revealed the various reasons for significant positive change in preference of Institutional Sources over Non-Institutional Sources of credit by the beneficiary farmers. The Timely Credit is one of the reason in preference of Institutional Sources, similarly Adequacy of Credit; High Frequency of Withdrawals and Repayment; Benefits of Crop Insurance; Access to Financial

Transactions; Benefit of Early Repayment of Loan; Revolving Nature of Credit Availability and; Flexibility to withdraw cash are the main reasons in availing the credit facility from Institutional Sources. The Low Interest Rate; Symbol of Prestige; Assured Availability of Loan and; Flexibility of Cash Credit Accessibility are also the main reasons.

Conclusion

From the above analysis, it concludes that in terms of total credit card issued and total amount sanctioned in India by the three agencies, there is an impressive increase in Kisan credit card scheme till now which is very good for our economy .Overall the Commercial banks are at the top in the number of Kisan credit cards issuing and amount sanctioning. The Regional Rural banks performance is also satisfactory but the Cooperative banks are showing decline trends and performance. Some fluctuations are shown in the trends and performance of KCC scheme in India due to some reasons like the natural calamities, debt repayment and emergence of MFI (Micro Finance Sector) and other Self-help groups. Beyond all these problems the KCC scheme is showing increasing trends and performance. This chapter concluded that the progress of Kisan Credit Card scheme among these 15 states is good. In the case of number of cards the two states, Andhra Pradesh and Utter Pradesh are more above from other states and Assam is far below as comparison to other states but if we look towards the growth rate Assam growth rate is the highest among all the states and Haryana is at bottom with negative growth rate. In the case of amount sanction through KCC scheme, Utter Pradesh is sanctioned the highest amount and Assam is sanctioned lowest amount but in this also Assam shows the highest annual compound growth rate whereas Karnataka and Orissa shows zero growth rate. From this, it concluded that the highest KCCs are issued among those states that have the largest agriculture land.

References

1. Cherian, J., Jacob, J., Qureshi, R., & Gaikar, V. (2020). "Relationship between entry grades and attrition trends in the context of higher education: Implication for open innovation of education policy" MDPI, Switzerland. Journal of Open Innovation Technology, Market and Complexity, 6(4), 199. https://www.mdpi.com/2199-8531/6/4/199.
2. Gaikar, V., & Lakhani, S.A. (2020). 'Demographic variables influencing financial investment of urban individuals: A case study of selected districts of Maharashtra State'. International Journal of Advanced Science and Technology (IJAST), 29(05), 962 – 974
3. Gaikar, V.B., & Lakhani, S.A. (2019). 'Study of demographic variables on financial goal of urban individuals'. In International Journal of Research, 9(1), 24–34
4. Ananthi, K. M. (2014, May). Kisan Credit Card - A Boon to Small Farmers in India. Tactful Management Research Journal, 2(8).
5. Arvind Sharma, S. C. (2014). A study on impact of Kisan Credit Card Scheme among the Beneficiary farmers in Sehore District of Madhya Pradesh. IJSR.
6. Barik, B. (2010). Kisan Credit Card Scheme- A Dynamic Intervention for Reduction in Rural Poverty. International Journal for Marketing and Technology, 1(2), 45-53.
7. Barman, A. T. (2013, June). Reasons for Poor Performance of Disbursement of Kisan Credit Card and Recovery of Loan under the Scheme in Assam- A Qualitative Study. Journal of Academia and Industrial Research, 2(1).
8. Benson Kunjukunju, S. M. (2002). Institutional Finance and Rural Development. Bhatt, M. S. (2012, April). Kisan Credit Card an Instrument for Financial Inclusion. International Indexed and Referred Research, 1(1).
9. Chanda, A. (2012). Evaluating the KCC scheme - Some Results for Bihar & India. IGC. Dar, J. A. (2015, January). Trend and Growth of Flow of Credit to Agriculture after 1991 in India. IOSR Journal of Humanities and Social Science, 20(1), 51-61. Retrieved from www.iosrjournals.org.
10. Dharmendra Mehta, H. T. (2016, January). Indian Kisan Credit Card scheme: An Analytical Study. BRAND, 6(1). Diwas Raj Bista, P. K. (2012, January). Progress and

Performance of Kisan Credit Card Scheme with a case study of Bihar. Agricultural Economics Research Review, 25, 125-135.

11. Dr. Abhey Singh Godara, S. S. (2014, September). Performance of Kisan Credit Card scheme in Haryana Through Regional Rural and Cooperative banks. Abhinav International Monthly Referred Journal of Research in Management and Technology, 3(9).
12. Farmers, C. i. (2005, July-September). Harpreet Singh and M.K. Sekhon. Indian Journal of Agricultural Economics, 60(3).
13. Gandhimathi, D. S. (2012, September). Distribution of Agricultural Credit in Pre and Post Reform Period. International Journal of Management, IT and Engineering, 2(9).
14. Gill, R. S. (2006, January- March). Agricultural Credit and Indebtness in India: Some Issues. Indian Journal of Agricultural Economics, 61(1).
15. Golait, R. (2007). Current Issues in Agricultural Credit in India: An Assessment. Reseve Bank of India Occasional Papers, 28(1).
16. Sihag Shakuntla., 2018. An economic evaluation of kisan credit card scheme in Haryana.

ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं का योगदान

डॉ. बबीता
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
राजकीय महाविद्यालय चौपाल,
शिमला, (हिमाचल प्रदेश)

मुक्त गगन में उड़ने वाले पंछियों को देखकर अत्यंत सुखद अनुभूति मन को आह्लादित करती है। आजादी पक्षियों का प्राण तत्व है। इसके विपरीत यदि इन स्वच्छंद पक्षियों को कैद कर दिया जाए तो निश्चित है कि ये नभचर एक दुखद खामोशी एवं उदासी की स्थिति में पहुँच जाए। इस पराधीनता की स्थिति को हम भारतीयों ने भी वर्षों तक झेला है। हमारे पूर्वजों ने आजादी के लिए बहुत संघर्ष किया। तभी हम स्वच्छंद भारत में सांस ले रहे हैं। उनकी कृतज्ञता शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं की जा सकती। उस दौर की कल्पना भी अत्यंत दुखद लगती है, जब हम अंग्रेजों के गुलाम थे। अंग्रेजों की अनेकों यातनाओं को हम भारतीयों ने झेला था। उसी दुखद एवं संघर्षपूर्ण दौर में अनेक साहसी लोगों ने देश को स्वतंत्र कराने का संकल्प लिया और अंग्रेजों के विरुद्ध आंदोलन शुरू किया। अपने अत्यंत सीमित संसाधनों में भी इन सभी क्रांतिकारियों ने अंग्रेजों की नींद उड़ाकर रख दी थी। जिसमें अनेक महापुरुषों का योगदान है। भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद, सुभाष चंद्र बोस जैसे अनेकों क्रांतिकारियों ने भारत की स्वतंत्रता के लिए अपने तन, मन, धन, जीवन सबका समर्पण कर दिया था। इस आजादी की लड़ाई में पुरुषों के साथ-साथ महिलाओं ने भी बढ़-चढ़ कर भाग लिया था। यह विचारणीय है कि उस समय महिलाओं की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। शिक्षा का अभाव उनकी सबसे बड़ी कमजोरी थी। पर्दाप्रथा, गरीबी, अज्ञानता, अस्पृश्यता आदि अनेक ऐसे सामाजिक बंधन थे, जो महिलाओं को घरों से बाहर नहीं निकलने देते थे किंतु उस दौर में भी महिलाओं ने आजादी के लिए अपना अविस्मरणीय योगदान भारत माता को समर्पित किया। हाँ, यह अवश्य है कि आजादी के संघर्ष में महिलाओं की गणनात्मक स्थिति पुरुषों से कम हो सकती है; किंतु आजादी के संघर्ष में उनका योगदान अतुलनीय है।

वैदिक कालीन युग में भी अपाला, गार्गी, लोपमुद्रा, रत्नावली जैसी श्रेष्ठ महिलाओं के उदाहरण हमारे देश में उपलब्ध हैं। आजादी की लडाई के सबसे प्रारम्भिक दौर मे भी रानी दुर्गावती, रानी चेन्नम्मा,

रानी गाईडन्ल्यू आदि महान वीरांगनाओं ने देश की आजादी का शंखनाद किया। 19वीं शताब्दी (1857 की क्रांति) में वीरांगना झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, (काशी में जन्मी मणिकर्णिका), तुलसीपुर की असगरी बेगम, त्यागी परिवार की भगवती देवी , उत्तर प्रदेश की आशा देवी, गुर्जर परिवार की हबीबा, जमीला पठानी, आदि अनेकों ललनाओं ने अपना अविस्मरणीय योगदान दिया। 20वीं शताब्दी में कस्तूरबा गांधी, सरोजिनी नायडू, विजयलक्ष्मी पंडित, अरुणा आसिफ अली, सुचेता कृपलानी जैसी महान नारियों ने पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर सहयोग दिया और स्वतंत्रता की लड़ाई में बढ़-चढ़कर भाग लिया।–

"भारत का भव्य स्वाधीनता संग्राम भारतीयों के अनवरत संघर्ष की विजय गाथा है। जिसमें लाखों वीर शहीदों ने अपने प्राण अर्पण कर दिए। इनमें उन वीरांगनाओं का योगदान भी अविस्मरणीय रहा, जिन्होंने रण में अपने अद्भुत जौहर दिखाए।"1

इन महान नारियों के प्रति कृतज्ञता ही हमारी सच्ची श्रद्धांजलि हो सकती है। इनके अप्रतिम योगदान के कारण ही आज हम स्वच्छंदता का आनंद ले पा रहे हैं। इन क्रांतिकारी नारियों का अति सूक्ष्म परिचय यहाँ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, जिससे भावी पीढ़ी हमारे गौरवपूर्ण अतीत और वीरांगनाओं के महान जीवन का परिचय प्राप्त कर कृतज्ञता का अनुभव कर सके। प्रस्तुत श्रृंखला उन वीरांगनाओं के जीवन का सूक्ष्म और सारगर्भित चित्रण प्रस्तुत करती है।

रानी अवन्तीबाई : (16 अगस्त, 1831 - 15 मई, 1857) रानी अवंतीबाई 1857 के स्वतंत्रता संग्राम, जो कि प्रथम स्वतंत्रता संग्राम माना जाता है की वीरांगना थी। रानी अवंतीबाई का जन्म मध्यप्रदेश के सिवनी जिले में हुआ था। यह अपने माता-पिता की इकलौती संतान होने के कारण बहुत लाड-प्यार से पली थी। इनका विवाह मध्यप्रदेश में रामगढ़ के राजकुमार विक्रमादित्य सिंह के साथ हुआ था। जिस क्षेत्र में इनका विवाह हुआ था, वह बहुत ही सुंदर और रमणीय स्थल था। लार्ड डलहौजी अपनी राज्य हड़प नीति के चलते उनके राज्य को अपने क्षेत्र में मिलाने के लिए आतुर था। रानी के पति की मृत्यु हो जाने के कारण रानी ने राज्य की बागडोर संभाली। - "ऐतिहासिक उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा ने अपने चर्चित उपन्यास में :रामगढ़ की रानी' में लिखा- "रानी का हृदय अत्यंत उदार था। वे दीन वत्सला थीं, जिससे उनकी प्रजा उनसे मनसा, वाचा, कर्मणा से जुड़ी हुई थी।" रानी के कुशल शासन से चिढ़कर अंग्रेज प्रजा पर अत्याचार करने लगे, जिससे प्रजा में त्राहि-त्राहि मच गई। ऐसे संक्रमण काल में रानी ने पुरुष वेश धारण कर घोड़े पर सवार होकर घूम-घूम कर अपनी सैन्य शक्ति सुदृढ़ की। जिससे अंग्रेज और भी आग बबूला हो गए।"2

सन 1857 की क्रांति की पूर्व बेला में सारे भारत में क्रांति के प्रतीक कमल व रोटी गाँव - गाँव भेजी जा रही थी। रानी ने भी इसे सहर्ष स्वीकार किया। अंग्रेजों के शोषण से पीड़ित रामगढ़ की जनता और पड़ोस के राजाओं के साथ रानी अवंतिबाई ने अपनी नेतृत्व क्षमता दिखाते हुए अंग्रेजों के विरुद्ध खुले संघर्ष का बिगुल बजा दिया था। बहुत हद तक रानी अपने क्षेत्र को अंग्रेजी व्यवस्था से बचाने मे सफल रही, किन्तु अंत में अपनो की गद्दारी ने रानी को आत्मा-उत्सर्ग करने पर मजबूर कर दिया। रीवा राजा ने अंग्रेजों के साथ मिलकर रानी पर हमला कर दिया। - "जिसमें रानी के अधिकांश सैनिक वीरगति को प्राप्त हुए तथा रीवा राजा की गद्दारी के कारण रानी बुरी तरह से घिर गई। रानी ने अंग्रेजों द्वारा बंदी बनाए जाने की अपेक्षा अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए अपने प्राण उत्सर्ग कर शहीद होना पसंद किया।

इस प्रकार रानी ने जीवन की आखिरी सांस तक बहादुरी के साथ अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध करते हुए 20 मार्च 1858 को मातृभूमि के रक्षार्थ अपने प्राणों की बलि देकर इतिहास में अपना नाम अमर कर दिया।"3

अरुणा आसफ़ अली : (16 जुलाई, 1909 - 29 जुलाई, 1996) अरुणा आसफ अली भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की एक सशक्त सेनानी थी। इनका जन्म कालका हरियाणा में हुआ था। इनका सबसे महत्वपूर्ण योगदान 1942 के 'अंग्रेजों भारत छोड़ो आंदोलन' में साहसिक कार्य के लिए याद किया जाता है। ये कांग्रेस पार्टी की सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में जानी जाती थी। आजादी के लिए कई बार गिरफ्तार भी की गई। अरुणा ने 1932 में तिहाड़ जेल में भूख हड़ताल द्वारा विरोध प्रदर्शन भी किया था। - "8 अगस्त 1942 को मुंबई सत्र में एआईसीसी (AICC) ने भारत छोड़ो प्रस्ताव पारित किया। सरकार ने बड़े-बड़े नेताओं और कांग्रेस कमेटी के सदस्यों को गिरफ्तार कर लिया। अरुणा ने उस समय सत्र की अध्यक्षता की। 9 अगस्त को उन्होंने गोवालिया टैंक मैदान में कांग्रेस का झंडा फहराया। पुलिस ने उस सभा पर गोलियाँ चलाई, जिसका अरुणा ने बहादुरी से सामना किया। 1942 आंदोलन की वह हीरोइन कही गई और बाद में उन्हें ग्रैंड ओल्ड लेडी ऑफ़ इंडिपेंडेंस मूवमेंट (स्वतंत्रता आंदोलन की एक शानदार वृद्ध महिला) कहकर पुकारा गया।"4

अमर शहीद उदादेवी पासी : 1857 क्रांति की महान स्वतंत्रता सेनानी उदादेवी पासी का योगदान भारत की आजादी में सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि इस नायिका ने चुपचाप पीपल के पेड़ पर चढ़कर 36 अंग्रेजों को मौत के घाट उतार दिया था और अंत में वीरगति प्राप्त कर भारत की स्वतंत्रता में स्वर्ण अक्षरों में अंकित हो गई। 1857 में अवध को स्वतंत्रता संग्राम का प्रमुख केंद्र माना जाता है और इसी में अवध की पासी महिलाओं ने युद्ध में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी - "क्रांतिकारियों ने अपनी जान की बाजी लगाकर पूरी वीरता से युद्ध किया। हमारी सेना रास्ता चीरती हुई अंदर घुस गई, तब भी युद्ध बंद नहीं हुआ। एक-एक कोने के लिए युद्ध हुआ। इस युद्ध में रक्षक पासी महिलाएँ बाकी सैनिकों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर लड़ रही थी। फोर्विस मिथाइल ने अपने संस्मरण में वीरांगना ऊदा देवी की वीरता का

भरपूर वर्णन किया है।"5 वीरांगना उदा देवी ने युद्ध में अपनी अद्भुत क्षमता का परिचय देते हुए पीपल के पेड़ में छुपकर 36 अंग्रेजों को मृतक के घाट उतार दिया था क्योंकि उन पेड़ों के नीचे पानी से भरे घड़े रखे थे और जो भी सैनिक पानी पीने के लिए आता था उदादेवी उसको गोली मार देती थी और खुद पीपल के पेड़ में इस प्रकार से छुपी थी कि किसी को दिखाई नहीं दे रही थी। ऐसी महान क्रांतिकारी, वीरांगना उदादेवी के लिए हम सबका हृदय नमन के लिए झुका रहेगा।

एनी बेसेन्ट : (1 अक्टूबर, 1847 - 20 सितंबर, 1933) एनी बेसेन्ट एक साहसी महिला थीं, जिन्होंने इंग्लैंड में ही नहीं भारत में भी अपने अदम्य साहस का परिचय दिया। स्वतंत्र विचारधारा से प्रेरित एनी बेसेंट का जन्म लंदन के आयरिश मूल के मध्यवर्गीय के परिवार में हुआ था। उन्होंने अपने पारिवारिक जीवन में अनेकों संघर्षों का सामना किया। थियोसोफिकल सोसाइटी का प्रतिनिधित्व करते हुए यह भारत आईं और इन्होंने भारत को करीब से देखा। - "एनी बेसेन्ट ब्रिटिश राज में भारतीयों की दुर्दशा से बहुत द्रवित हुई। उन्होंने लोगों के दिलों में राष्ट्रवाद की भावना जगाई और लोगों को विदेशी सत्ता से मुक्ति पाने के लिए लड़ाई के लिए तैयार किया। उनका मानना था कि भारत के युगों पुराने ज्ञान को दुनिया भर में फैलने की जरूरत है, जिसके लिए भारत का स्वाधीन होना जरूरी है। सन् 1913 में एनी बेसेंट ने भारतीय राजनीति में सक्रिय भागीदारी शुरू करते हुए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में शामिल हो गईं।"6

एनी बेसेन्ट ने अपना संपूर्ण जीवन थियोसोफिकल सोसायटी को समर्पित किया और भारत की आजादी के यज्ञ में उन्होंने अपनी अप्रतिम आहुतियाँ दी। थियोसोफिकल सोसायटी के मुख्यालय (अडयार) में उनका देहांत 20 सितंबर, 1933 को हो गया। भारत से अनंत प्रेम की इच्छा व्यक्त करते हुए उन्होंने अपना अंतिम संस्कार बनारस के गंगा तट पर करवाने की इच्छा जाहिर की थी और उनकी अस्थियाँ गंगा में वित्सर्जित की गई। विदेशी धरती पर पैदा होने के बाद भी भारतीय संस्कृति और भारतीय लोगों के प्रति अनन्त प्रेम की महान मूर्ति एनी बेसेंट को भारत की आजादी के लिए हमेशा याद किया जाता रहा है।

कमला देवी चट्टोपाध्याय : (3 अप्रैल, 1903 - 29 अक्टूबर, 1988) कमला देवी चट्टोपाध्याय एक गांधीवादी स्वतंत्रता संग्राम सेनानी (महिला) थी। कमला इनका जन्म मंगलौर (कर्नाटक) में ब्राह्मण परिवार में हुआ था। देश को आजाद करने में इन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया। स्वतंत्रता संग्राम में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका हमेशा स्मरण की जाती रहेगी। कमला के माता-पिता के कई स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों जैसे गोविंद रानाडे, गोपाल चंद्र गोखले, एनी बेसेंट आदि से मित्रता पूर्ण संबंध होने के कारण बचपन से ही इनको राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेने का जोश उत्पन्न हुआ। जो इनके घर के परिवेश से इन्हें मिला था। जब कमला लंदन में रह रही थी तब इन्हें महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन (1923) के विषय में पता चला तो यह भारत लौट आई और इन्होंने गांधी जी के द्वारा बनाए गए 'सेवा दल' की सदस्य बन गयी और उन्हें महिला दल की इंचार्ज बना दिया गया। उनका कार्य महिलाओं का चयन, प्रशिक्षण तथा

संगठन का कार्य देखने का हुआ। - "1930 में उन्होंने गांधी जी के नमक सत्याग्रह में भाग लिया। 26 जनवरी, 1930 को वह लोगों की नजरों में आ गई, जब वह राष्ट्रीय तिरंगे की रक्षा के लिए उससे चिपक गई। 1930 में वह नमक के पैकेट बेचने के आरोप में जेल भेज दी गई और एक वर्ष जेल में रही। 1936 में वह कांग्रेस समाजवादी पार्टी की अध्यक्षा बन गई, जिसमें उन्होंने जयप्रकाश नारायण, राम मनोहर लोहिया आदि के साथ कार्य किया।"7

कमला नेहरू : (1899 - 28 फरवरी, 1936)

कमला नेहरू एक स्वतंत्रता संग्राम सेनानी थी। प्रसिद्ध नेहरू परिवार से संबंधित होने पर भी यह बहुत सरल स्वभाव की थी। इनका जन्म कश्मीरी पंडित परिवार में हुआ था। कमला नेहरू भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू की पत्नी और भारत की प्रथम महिला प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की माँ थी। इन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में बढ़-कर कर भाग लिया। कमला नेहरू एक अत्यंत साहसिक और दृढ़ संकल्पित महिला थी। - "1921 में इलाहाबाद में असहयोग आंदोलन के लिए उन्होंने नारी समुदाय संगठित किया और दुकानों पर विदेशी कपड़ों और विदेशी शराब की बिक्री रोकने के लिए धरना दिया। उन्होंने खादी कपड़ों का प्रचार और विदेशी सामानों का बहिष्कार किया। उन्होंने नेहरू परिवार में भी खादी कपड़ों का प्रचलन किया और पाश्चात्य वस्त्रों की तिलांजलि के लिए उत्साहित किया।"8

कस्तूरबा गांधी : (11 अप्रैल, 1869 - 22 अप्रैल, 1944) भारतवासी जिन्हें प्यार से 'बा' पुकारते हैं ऐसी माँ स्वरूपा कस्तूरबा गांधी का जन्म पोरबंदर (गुजरात) में हुआ था। कस्तूरबा एक कर्मठ और लगनशील महिला थी, जिन्होंने अपने विवाह के उपरांत पढ़ना लिखना सीखा। - "1915 में जब गांधी जी 'इंडिगो प्लांटर्स' को मदद पहुंचाने भारत लौटे तो कस्तूरबा ने भी उनका साथ दिया। उन्होंने महिलाओं और बच्चों को सफाई व अनुशासन के बारे में समझाया तथा पढ़ना लिखना सिखाया।"9 कस्तूरबा यद्यपि बीमार रहती थी फिर भी उन्होंने गांधी के 'भारत छोड़ो आंदोलन' में गिरफ्तारियां दी और हार नहीं मानी।

झलकारी बाई : (1830)

1857 की क्रांति की महान वीरांगना झलकारी बाई का जन्म झांसी जिले में हुआ था। बचपन से ही झलकारी बाई अत्यंत चंचल, गुणवती एवं निर्भीक स्वभाव की थी। झलकारी बाई के पिता पहलवान होने के कारण वह अपने पिता से कुश्ती के दांव - पेंच सिखाती थी। उसकी खेलों में भी रुचि थी। वह प्रतिदिन मलखम्भ और कुश्ती का अभ्यास करती थी। लाठी, भाला, तलवार और बंदूक चलाना उनके बाएं हाथ का खेल हो गया था। प्रतिदिन घोड़े पर सवारी और बंदूक से निशाना भी साधती थी। इसी प्रतिभा के कारण झलकारी बाई और उनके पति पूरन कोरी झांसी की सेना में भर्ती हो गए थे। ऐसा कहा जाता है कि झलकारी बाई ने युद्ध में रानी लक्ष्मी बाई के कपड़े पहनकर युद्ध किया था और अंग्रेजों को

ऐसा लगा था की रानी लक्ष्मीबाई युद्ध कर रही है। रानी लक्ष्मीबाई अंग्रेजो से बचकर निकल गई थी। - "झलकारी अपने पति की मृत्यु के बाद भी विचलित नहीं हुई थी और लगातार युद्ध करती रही। उसने जो देशभक्ति, साहस, शौर्य का परिचय दिया, वह अद्भुत है। उसने मरकर भी नारी जाति का मान बढ़ाया।"10

दुर्गा भाभी : (7 अक्टूबर, 1907 - 15 अक्टूबर, 1999)

भारत को स्वतंत्र कराने में दुर्गा भाभी का अप्रत्याशित योगदान है। उनका जन्म धनाढ्य एवं शिक्षित परिवार में हुआ था। उनके पिता इलाहाबाद में न्यायाधीश थे। स्वतंत्रता के महासमर में उनका योगदान एक क्रांतिकारी के रूप में है। उन्होंने मुंबई के गवर्नर लॉर्ड हेली की हत्या की योजना भी बनाई थी जिसमें वह असफल रही। बाद में उन्हें इसी जुर्म में गिरफ्तार कर 3 साल का कारावास भी काटना पड़ा था। उसके पश्चात उन्होंने भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को बचाने के लिए उनके साथ छद्म वेश धारण कर उनको दूसरे स्थान पर पहुंचने में मदद करी थी। इसी प्रकार वह क्रांतिकारी योजना में हमेशा सहभागिता करती रही। - " इस घटना से दुर्गा भाभी के साहस धैर्य व समर्पण का पता चलता है। वह अत्यंत साहस व जीवट का कार्य था।... .. दुर्गा भाभी का संपूर्ण जीवन एक क्रांतिकारी के रूप में तथा एक समाजसेवी व शिक्षाविद् के रूप में राष्ट्र के लिए समर्पित था। उनका जीवन समाज में महिलाओं के लिए एक आदर्श है।"11

दुर्गाबाई देशमुख : (15 जुलाई, 1909)

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने वाली दुर्गाबाई देशमुख एक साहसी महिला थी। इनका जन्म आंध्र प्रदेश में हुआ था तथा इनका विवाह रिजर्व बैंक आफ इंडिया के प्रथम गवर्नर से हुआ था। इन्हें देश को आजाद कराने में महात्मा गांधी के सहयोगी के रूप में जाना जाता है। - "ब्रिटिश राज के विरुद्ध स्वतंत्रता संग्राम में दुर्गाबाई महात्मा गांधी की अनुयायी थी। वह एक सामाजिक सुधारकत्री भी थीं। गांधी जी द्वारा चलाए गए सत्याग्रह आंदोलन में दुर्गाबाई ने बढ़ - चढ़कर भाग लिया था। इसी कारण ब्रिटिश सरकार के अधिकारियों ने उन्हें तीन बार जेल में भेजा था।"12

भगिनी निवेदिता : (28 अक्टूबर, 1867 - 13 अक्टूबर, 1911) भगिनी निवेदिता की गणना उन विदेशी महिलाओं में की जाती है जिन्होंने भारतीय संस्कृति को अपने जीवन में धारण कर भारतीयों की सेवा में अपना समस्त जीवन लगा दिया। यें एक ऐसी महिला है जो जन्म से भारतीय न होने पर भी भारत-भूमि को अपनी मातृभूमि के समान प्रेम करती थी। भगिनी नवेदिता का जन्म उत्तरी आयरलैंड में हुआ था। इन्होंने भारत आकर बहुत सामाजिक कार्य किए। स्वामी विवेकानंद से जुड़ने के कारण धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक कार्य में बढ़- चढ़कर भाग लेती थी। - "भारत के राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन में भी बढ़-चढ़कर भाग लिया। वे क्रांतिकारियों की संस्था की अनुशासन समिति की सक्रिय सदस्या थीं।

महर्षि अरविंद को अंग्रेजों के षड्यंत्र से सावधान कर उन्हें पांडिचेरी जाने का सुझाव भी इन्होंने ही दिया था।"13

मणिवेन पटेल : (3 अप्रैल, 1903 - 1988)

लोह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल का नाम कौन नहीं जानता, राष्ट्र को एक बनाने में उनका योगदान अप्रतिम है। पटेल के कार्य की महत्वपूर्ण सहयोगी रही मणिवेन हर कदम पर उनका साथ देती थी। मणिवेन पटेल सरदार पटेल की छोटी बहन थी। अत्यंत सरल, सादगी से भरी, विचारशील मणिवेन पटेल एक चिन्तनशील महिला थी। - "मणिवेन सरदार पटेल के हर कदम पर सदैव उनके साथ रही और कहा जाता है कि सरदार पटेल ने देश के लिए जो कुछ भी किया, उसमें मणिवेन सहभागी थी। वे वस्तुतः सरदार पटेल की छाया थी।"14

मदाम भीकाजी कामा : (24 सितंबर, 1861 - 13 अगस्त, 1936) भीकाजी कामा एक निर्भीक, तेजस्वी एवं अत्यंत सुदृढ़ विचारों वाली क्रांतिकारी महिला थी। इनका जन्म मुंबई के एक पारसी परिवार में हुआ था। प्रखर बुद्धि की कामा पढ़ाई - लिखाई में बहुत होशियार थी। बचपन से ही उनके अंदर क्रांतिकारी सोच विद्यमान थी। जब वह भोले-भाले भारतीयों पर अंग्रेजों के अत्याचारों को देखती तो द्रवित हो उठती और क्रांति की लहर हिलोरे लेने लगती। इसी क्रांतिकारी प्रवृत्ति के कारण उनका वैवाहिक जीवन भी सफल नहीं हो सका क्योंकि उनके पति अंग्रेजों के प्रति निष्ठावान थे और श्रीमती कामा अंग्रेजी शासन की विरोधी थी। श्रीमती कामा एक श्रेष्ठ वक्ता थी, जो भारतीयों में आजादी के लिए जौशीले भाषण द्वारा देश प्रेम की भावना भर देती थी। उनके वक्तव्य कौशल का योगदान देश की आजादी में अविस्मरणीय रहेगा। 1905 में मैडम कामा ने ही सावरकर के साथ मिलकर प्रथम भारतीय ध्वज का प्रारूप तैयार किया था, जिसे वर्तमान में तिरंगा कहा जाता है। अपने भाषण में ध्वज को फहराते हुए उन्होंने कहा था - " यह भारतीय स्वतंत्रता का ध्वज है। मैं आप लोगों से निवेदन करती हूं कि असंख्य भारतीयों की स्वतंत्रता के प्रतीक इस ध्वज का अभिवादन कीजिए। इस ध्वज के माध्यम से मैं दुनिया भर के स्वतंत्रता प्रेमियों से इस ध्वज का साथ देने का निवेदन करती हूं।"15

श्रीमती कामा ने देश की आजादी के लिए कई देशों की यात्राएं की और भारतीय को सशक्त बनाने में पूर्ण सहयोग किया । वह अपने जीवन की सार्थकता देश पर मिटने में समझती थी और देश को आजाद कराने के लिए हमेशा तत्पर रहती थी। उनका कहना था - "आगे बढ़ो, मित्रों! आगे बढ़ो। भारत माता के सपूतों को क्रूर ब्रिटिश शासन ने अपने पैरों तले दबा रखा है। वे असहाय होकर निरंतर कुचले जा रहे हैं, उन्हें स्वराज के लिए प्रेरित करो।"16

मृदुला साराभाई : (1911)

स्वतंत्रता के महासमर में मृदुला साराभाई की भूमिका एक श्रेष्ठ स्वतंत्रता सेनानी के रूप में याद की जाती है। यह गांधीजी के विचारों में निष्ठा रखने के कारण उनकी अनुयायी थी। उनका जन्म गुजरात के साराभाई परिवार में हुआ था। नमक आंदोलन में भाग लेने का यह परिणाम हुआ कि उन्हें अपना पैतृक निवास भी छोड़ना पड़ा था तथा स्कूल को भी तिलांजलि देनी पड़ी। यह अत्यंत अल्प आयु में गांधीजी के साथ स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़ी। उन्होंने महिला और समाज उत्थान के लिए अनेक कार्य किए।- " मृदुला एक सच्ची स्वतंत्रता सेनानी, जागरूक संवेदनशील नागरिक तथा सक्रिय समाज सुधारक के रूप में सदैव याद की जाती रहेगी।"17

राजकुमारी अमृत कौर : (2 फरवरी, 1889)

राजकुमारी अमृत कौर पहली ऐसी स्वतंत्रता संग्राम सेनानी हैं, जिन्होंने आजादी के बाद कई वर्षों तक भारतीय कैबिनेट में मंत्री का जब दर्जा प्राप्त किया। यह बहुत ही जुझारू स्वतंत्रता संग्राम सेनानी, गांधीवादी और सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में विख्यात हैं। इनका जन्म उत्तर प्रदेश के लखनऊ में हुआ था। गांधीवादी विचारधारा से प्रभावित होने के फलस्वरूप, महात्मा गांधी से 1919 में मिलने के बाद उनकी दृष्टि देश की ओर गई और जलियांवाला बाग हत्याकांड के बाद इन्होंने देश को आजाद कराने के लिए भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में बढ़-चढ़कर भाग लिया। 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' आंदोलन में भाग लेने के फलस्वरुप में जेल भी गई। - "1942 में उन्होंने 'भारत छोड़ो आंदोलन' में भाग लिया और उन्हें पुन: जेल हुई। उन्होंने पहले बान्नू फिर उत्तरी पश्चिमी फ्रंटियर प्रॉविंस कांग्रेस आंदोलनों में स्वतंत्रता के लिए हिस्सा लिया।"18

लक्ष्मीबाई (झांसी की रानी लक्ष्मीबाई) : (19 नवंबर, 1828 - 18 जून, 1858)

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई भारत के लिए ही नहीं परंतु संपूर्ण विश्व के लिए गौरव की पात्र हैं। उनका जीवन देशभक्ति, त्याग, बलिदान की वीरतापूर्ण एक अनुपम गाथा है। उनका बचपन का नाम 'मनु' था। लक्ष्मीबाई का जन्म काशी में हुआ था। लक्ष्मीबाई ने घुड़सवारी करना, बंदूक एवं तलवार चलाना बचपन में ही सीख लिया था। लक्ष्मीबाई का विवाह झांसी के राजा गंगाराम से हो गया था। वह अब झांसी की रानी बन गई थी। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के एक पुत्र हुआ किंतु वह मर गया था। उसके बाद उन्होंने एक बालक को गोद लिया। अंग्रेजों ने दत्तक पुत्र को नामंजूर कर दिया और रानी को कहा कि वह वह अपना राज्य अंग्रेजों को सौंप दे और अंग्रेज उन्हें ₹5000 पेंशन के रूप में दिया करेंगे। लेकिन रानी ने इस बात को अस्वीकार करते हुए अंग्रेजों के साथ अपने जीवन के अंतिम क्षणों तक युद्ध कर किया और अंत में वीरगति को प्राप्त हुई। - "जब तक मेरी सांस चलेगी तब तक मैं झांसी को अपने हाथ से जाने नहीं दूंगी। गवर्नर ने मेरे साथ अन्याय किया है मुझे उनकी पेंशन की कोई जरूरत नहीं।"19

लक्ष्मी सहगल : 24 अक्टूबर 1914

भारत की शेरदिल महिला के रूप में जाने जाने वाली लक्ष्मी सहगल आजाद हिंद सरकार में महिला कार्यकर्ता, स्वतंत्रता संग्राम सेनानी, कैप्टन आदि उपमाओं को सिद्ध करने वाली महान महिला थी। इनका जन्म चेन्नई (मद्रास) में हुआ था। 'आजाद हिंद फौज' में शामिल होकर स्वतंत्रता के लिए बंदूक लेकर कूदने वाली 'कैप्टन' के रूप में जानी जाती है। पेशे से डॉक्टर होने के बावजूद लक्ष्मी सहगल ने देश की आजादी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। - "नेताजी उनकी बहादुरी व साहस से बहुत प्रभावित हुए और उन्हें रानी झांसी रेजिमेंट का प्रमुख कर्नल बना दिया। किसी सेना में महिला की इकाई बनने जैसी बात एशिया में पहली बार हुई थी। यह सेना अंग्रेजों के खिलाफ सदैव बहादुरी से लड़ी।"20

सुचेता कृपलानी : (25 जून, 1908)

सुचेता कृपलानी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की प्रमुख सेनानी एवं एक कुशल राजनीतिज्ञ थी। यें उत्तर प्रदेश की प्रथम मुख्यमंत्री भी थी। इनका जन्म हरियाणा में हुआ था। वैसे यह एक बंगाली परिवार में जन्मी थी। यें महात्मा गांधी से बहुत प्रेरित हुईं। गांधी जी के विचारों से प्रभावित होकर उन्होंने 'भारत छोड़ो आंदोलन' में भी भाग लिया। आजाद भारत में उत्तर प्रदेश की प्रथम मुख्यमंत्री के रूप में भी प्रभावशाली नेतृत्व क्षमता से युक्त रही।

सरोजिनी नायडू : (13 फरवरी, 1879 - 2 मार्च, 1949)

भारत की कोकिला के नाम से प्रसिद्ध सरोजिनी नायडू का व्यक्तित्व अनेक गुणों से संपन्न था। इनका जन्म हैदराबाद में हुआ था। - " एक ऐसी स्वाधीनता सेनानी जो अत्यंत संवेदनशील व कोमल हृदय वाली होने पर भी विदेशियों के प्रत्येक अत्याचार का सामना बड़ी ही दृढ़ता से करती थी।"21 सरोजिनी नायडू ने 1917 से लेकर 1947 तक के वर्षों में यें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ी रही। इन वर्षों में सरोजिनी नायडू ने अपनी ओजस्वी एवं निर्भीक वाणी से सिंह गर्जना करते हुए अपने भाषणों के माध्यम से स्वतंत्रता की अलख जगाई।

सुभद्रा कुमारी चौहान : (1904 -1948)

सुभद्रा कुमारी चौहान हिंदी की एक राष्ट्रीय विचारधारा से युक्त कवयित्री हैं। इनका जन्म उत्तर प्रदेश में हुआ था। अपने शिक्षण काल में यह 1921 में 'असहयोग आंदोलन' से जुड़ी और इन्हें नागपुर में प्रथम सत्याग्रही नारी के रूप में इन्हें बंदी बनाया गया। यह महान लेखिका 1923 से 1942 तक दो बार अंग्रेजी सरकार के खिलाफ बगावत करने के कारण जेल भेजी गई। बचपन से लेकर प्रत्येक बालक को पढ़ाई जाने वाली उनकी कविता 'बुंदेले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी', 'वीरों का कैसा हो बसंत', 'राखी की चुनौती' और 'विदा' आदि कविताएं स्वतंत्रता आंदोलन की मिसाल पेश करती हैं।

इसके अतिरिक्त महादेवी वर्मा, महाश्वेता देवी आदि कवित्रियों ने भी आजादी की लड़ाई में महत्वपूर्ण भागीदारी निभाई। ये तो केवल वे महिलाएँ है जो इतिहास मे अंकित हो गयी, न जाने कितनी ऐसी वीरांगनाएं होगी जिनके नाम तक हम नही जानते, उनके संघर्षों का सुख हमें प्राप्त है। मैं हृदय से उनके प्रति कृतज्ञता के पुष्प अर्पित करती हूँ और उनकी वीरता को नमन करती हूँ। 6

इस प्रकार कहा जा सकता है कि नारियों का स्वतंत्रता प्राप्ति में अप्रतिम योगदान है। उन्होंने उस समय स्वतंत्रता के लिए सहयोग किया जिस समय महिलाएँ घरों से भी नहीं निकलती थी। इन महान नारियों ने अपने गुणों से ऐसे दीप प्रज्ज्वलित किए जिनकी ज्योति चीरकाल आने वाली पीढियों का पथ प्रदर्शित करती रहेगी। एक बात यह भी विचारणीय है कि यह सभी महिलाएँ भारत के किसी एक क्षेत्र से नहीं परंतु भारत के हर एक कोने जैसे- मध्यप्रदेश, हरियाणा, अवधप्रान्त, कर्नाटक, कश्मीर, गुजरात, उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश, मद्रास, हैदराबाद आदि से यहाँ तक कि विदेश इंग्लैंड, आयरलैंड आदि स्थानों से आ-आकर स्वतंत्रता के यज्ञ में आहुतियाँ देती रही। इन नारियों को अपने क्षेत्र के पुष्प की भांति देखा जा सकता है जिन्होंने ऐसी माला गुम्फित की जो स्वतंत्रता की देवी के गले में आज भी दैदीप्यमान है।

संदर्भ सूची

1. सदानंद राय, विश्व की महान क्रांतियां, प्रकाशन- ग्रंथ अकादमी नई दिल्ली, संस्करण 2018, पृ०- 113
2. जवाहर सिंह गंगवार, गीता सिंह, कालजयी नारियाँ, राधा पब्लिकेशन नई दिल्ली, संस्करण- 2017, पृ०- 54
3. वही, पृ०- 55
4. चित्रा गर्ग, भारतीय शिखर महिलाएँ, प्रकाशक- राजपाल एंड सन्स दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012, तृतीय आवृत्ति 2018, पृ०- 43
5. जवाहर सिंह गंगवार, गीता सिंह, कालजयी नारियाँ, राधा पब्लिकेशन नई दिल्ली, संस्करण- 2017, पृ०- 61
6. श्री ऋषि राज, 50 महान स्वतंत्रता सेनानी, प्रकाशक- ज्ञान गंगा नई दिल्ली, संस्करण प्रथम 2019, पृ०- 26-27
7. चित्रा गर्ग, भारतीय शिखर महिलाएँ, प्रकाशक- राजपाल एंड सन्स दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012, तृतीय आवृत्ति 2018, पृ०- 106
8. वही पृ०- 109
9. वही पृ०- 134
10. जवाहर सिंह गंगवार, गीता सिंह, कालजयी नारियाँ, राधा पब्लिकेशन नई दिल्ली, संस्करण- 2017, पृ०- 50
11. वही, पृ०- 83-84
12. चित्रा गर्ग, भारतीय शिखर महिलाएँ, प्रकाशक- राजपाल एंड सन्स दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012, तृतीय आवृत्ति 2018, पृ०- 175
13. श्री ऋषि राज, 50 महान स्वतंत्रता सेनानी, प्रकाशक- ज्ञान गंगा नई दिल्ली, संस्करण प्रथम 2019, पृ०- 143

14. जवाहर सिंह गंगवार, गीता सिंह, कालजयी नारियाँ, राधा पब्लिकेशन नई दिल्ली, संस्करण- 2017, पृ०- 79
15. श्री ऋषि राज, 50 महान स्वतंत्रता सेनानी, प्रकाशक- ज्ञान गंगा नई दिल्ली, संस्करण प्रथम 2019, पृ०- 177
16. वही, पृ0- 178
17. चित्रा गर्ग, भारतीय शिखर महिलाएँ, प्रकाशक- राजपाल एंड सन्स दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012, तृतीय आवृत्ति 2018, पृ०- 225
18. वही, पृ०- 303
19. श्री ऋषि राज, 50 महान स्वतंत्रता सेनानी, प्रकाशक- ज्ञान गंगा नई दिल्ली, संस्करण प्रथम 2019, पृ०- 238
20. चित्रा गर्ग, भारतीय शिखर महिलाएँ, प्रकाशक- राजपाल एंड सन्स दिल्ली, प्रथम संस्करण 2012, तृतीय आवृत्ति 2018, पृ०-319
21. श्री ऋषि राज, 50 महान स्वतंत्रता सेनानी, प्रकाशक- ज्ञान गंगा नई दिल्ली, संस्करण प्रथम 2019, पृ०- 308

ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

अहिल्याबाई होल्कर का नारी स्वाभिमान जागरण से समाज उत्थान

डॉ. सोनल खरे
सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान
गवर्नमेंट हमीदिया आर्ट्स एंड
कॉमर्स कॉलेज भोपाल,

डॉ. कायनात तरन्नुम
अतिथि विद्वान, राजनीति विज्ञान
बरकतुल्लाह विश्वविद्यालय भोपाल

शोध सार :

भारतीय इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण राजवंशों में से एक मराठा साम्राज्य था, और यह सबसे प्रतिष्ठित राजवंशों में से एक था और इस समय सबसे प्रतिष्ठित महिला शासक अहिल्याबाई होल्कर थीं। उनका जन्म 31 मई 1725 को हुआ था और उन्होंने होल्कर वंश की ओर से 1767 से 1795 तक शासन किया थाA अहिल्याबाई ने खुद को एक उत्कृष्ट शासक, समाज सुधारक और महिलाओं के सशक्तिकरण समर्थक के रूप में स्थापित किया। रानी अहिल्याबाई ने देशभर में कई मंदिरों, घाटों, धर्मशालाओं और कुओं का निर्माण कराया। काशी विश्वनाथ मंदिर का पुनर्निर्माण भी उन्हीं के प्रयासों का फल था, उनका नेतृत्व और उनके द्वारा लिए गए नीतिगत निर्णय आज भी प्रेरणा देते हैं। महिलाओं के सामाजिक और आर्थिक विकास पर बड़ा प्रभाव हुआ है। अहिल्याबाई होल्कर का योगदान इस शोध में महिलाओं के विकास के बारे में विस्तार से प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तावना :

भारतीय इतिहास में वीरांगनाओं और पराक्रमी रानियों का विशेष स्थान रहा है। ऐसी ही एक महान और प्रजावत्सला रानी थीं — **रानी अहिल्याबाई होलकर**। वे न केवल मालवा की प्रतिष्ठित शासिका थीं, बल्कि अपने कुशल प्रशासन, धार्मिक सहिष्णुता और जनकल्याणकारी कार्यों के लिए भी जानी जाती हैं।

अहिल्याबाई का जन्म 31 मई 1725 को महाराष्ट्र के चौंडी गाँव में हुआ था। उनके पिता मानकोजी शिंदे एक सामान्य किसान थे। बचपन से ही अहिल्याबाई में सेवा, दया और साहस का भाव था। उनका विवाह खंडेराव होलकर से हुआ, और विवाह के पश्चात वे इंदौर की होलकर रियासत की रानी बनीं। पति और ससुर की असामयिक मृत्यु के बाद अहिल्याबाई ने शासन की बागडोर संभाली और अपने अद्भुत प्रशासनिक कौशल से राज्य को समृद्ध और सुरक्षित बनाया। वे न्यायप्रिय, धर्मपरायण और प्रजावत्सला शासिका थीं, जिनका जीवन आज भी नारी शक्ति और आदर्श नेतृत्व का प्रेरणास्रोत है।

अध्ययन के उद्देश्य :

1. अहिल्याबाई होल्कर के नेतृत्व और समाज सेवा को समझना।
2. सामाजिक सशक्तिकरण में महिलाओं की भूमिका पर प्रकाश डालना।
3. महिलाओं के आर्थिक विकास हेतु उठाये गये कदमों का विश्लेषण करना।
4. सामाजिक सुधार और धार्मिक सहिष्णुता पर विचार।
5. अहिल्याबाई के कार्य को आज महिला सशक्तिकरण के लिए मार्गदर्शक के रूप में स्थापित करना।
6. अहिल्याबाई के योगदान का आधुनिक समाज पर प्रभाव।

शोध पद्धति :

प्राथमिक स्रोतों के माध्यम से अहिल्याबाई के समय के ऐतिहासिक दस्तावेजों का अध्ययन करना। पुस्तकों का अध्ययन, शोध माध्यमिक स्रोतों के माध्यम से अहिल्याबाई होल्कर पर लेख और अकादमिक पत्रिकाएँ।

मौखिक संचालन स्थानीय इतिहासकारों और शोधकर्ताओं के साथ साक्षात्कार। सामाजिक एवं आर्थिक विश्लेषण तुलनात्मक करना। महिलाओं द्वारा उनके सशक्तिकरण के लिए लिए गए निर्णयों और नीतियों का अध्ययन। अहिल्याबाई के काम की तुलना अन्य महिला शासक और अन्य क्षेत्रों में महिलाओं की प्रगति। अहिल्याबाई के कार्यों का संदर्भ में अध्ययन करना आधुनिक समय की तुलना में आज की महिला सशक्तिकरण। अहिल्याबाई होल्कर की सामाजिक एवं उपरोक्त शोध विधियों के आधार पर आर्थिक योगदान का विश्लेषण किया जाएगा। यह शोध प्रकाश डालेगा महिलाओं के लिए अवसरों, सुधारों और अहिल्याबाई के काम के ऐतिहासिक और आधुनिक महत्व पर।

अध्ययन की आवश्यकता :

यह समझने के लिए कि अहिल्याबाई होल्कर के सामाजिक और आर्थिक सुधार महिलाओं के लिए किस प्रकार सहायक थे। महिला सशक्तिकरण में ऐतिहासिक योगदान को समझना, अहिल्याबाई के

नेतृत्व से नीति परिवर्तन और महिला सशक्तिकरण का उदाहरण कैसे दिया जाता है। महिला सशक्तिकरण आज महिलाओं के साथ-साथ महिलाओं के सामाजिक और आर्थिक सशक्तिकरण को भी प्रेरित कर सकता है। सुधारों के महत्व को समझना, जैसे मुद्दों पर उनकी नीतियों के महत्व को समझना , महिलाओं की शिक्षा, आर्थिक आत्मनिर्भरता और विधवा पुनर्विवाह ,कैसे अहिल्याबाई का योगदान आज के महिला सशक्तिकरण आंदोलन को प्रभावित करता है, यह जानने के लिए इस अध्ययन की आवश्यकता है।

लोक माता अहिल्याबाई होल्कर का योगदान और समाज की वर्तमान स्थिति :

➢ **महिला सशक्तिकरण में योगदान**

- **विधवा पुनर्विवाह का समर्थन**
  अहिल्याबाई स्वयं विधवा थीं। उनके समय में विधवाओं को समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता था, उनके पुनर्विवाह की अनुमति नहीं थी। अहिल्याबाई ने इस अमानवीय प्रथा के विरुद्ध आवाज उठाई और अपने राज्य में विधवा पुनर्विवाह को कानूनी और सामाजिक रूप से स्वीकृति दिलाई। इससे विधवाओं को आर्थिक, सामाजिक और मानसिक सहारा मिला।

- **समाज की वर्तमान स्थिति**
  आज भले ही विधवा पुनर्विवाह पर सामाजिक रोक नहीं है, लेकिन कई ग्रामीण और पारंपरिक क्षेत्रों में अब भी विधवाओं को तिरस्कार का सामना करना पड़ता है। अहिल्याबाई की सोच हमें आज भी यह सिखाती है कि महिलाओं की दूसरी पारी को सम्मान के साथ जीने का अवसर मिलना चाहिए। विधवाओं के पुनर्विवाह, शिक्षा और रोजगार में भागीदारी को प्रोत्साहित करना आज भी प्रासंगिक है।

- महिलाओं के लिए शैक्षिक अवसर
  अहिल्याबाई ने अपने समय में महिलाओं के लिए विद्यालयों और शिक्षण संस्थानों की स्थापना की।
  धार्मिक और व्यावसायिक शिक्षा पर ज़ोर दिया ताकि महिलाएँ आत्मनिर्भर बन सकें और अपनी ज़िंदगी के निर्णय स्वयं ले सकें।

- समाज की वर्तमान स्थित
  आज भी महिला शिक्षा की स्थिति में कई क्षेत्रों में सुधार की जरूरत है। लड़कियों की पढ़ाई छूटना, कम उम्र में शादी, और करियर में रुकावटें आज भी चुनौती हैं। अहिल्याबाई की नीति

हमें प्रेरित करती है कि महिला शिक्षा को केवल पढ़ाई तक सीमित न रखकर, उन्हें स्वावलंबी और आत्मनिर्भर बनाने पर भी ध्यान दिया जाए।

➢ सामाजिक सुधार में योगदान

- **धार्मिक सहिष्णुता**
  उन्होंने अपने राज्य में सभी धर्मों और जातियों के लोगों को एक समान अधिकार दिए। धार्मिक कार्यों में महिलाओं की भागीदारी को प्रोत्साहित किया और महिलाओं को सामाजिक धार्मिक जिम्मेदारियों में स्थान दिया।

- **समाज की वर्तमान स्थिति**
  आज भी धार्मिक कट्टरता और महिलाओं की धार्मिक गतिविधियों में भागीदारी को लेकर कई जगह भेदभाव होता है। अहिल्याबाई की नीति यह संदेश देती है कि धर्म और संस्कृति में भी महिलाओं को समान भागीदारी का अधिकार मिलना चाहिए।

- **जाति विभाजन के विरुद्ध कार्य**
  उस दौर में जातिगत भेदभाव बहुत गहरा था। अहिल्याबाई ने सभी जातियों को समान अवसर देने का काम किया। अपनी सरकार में महिलाओं और सभी वर्गों के लोगों को उच्च पदों पर नियुक्त कर सामाजिक एकता और समानता को बढ़ावा दिया।

- **समाज की वर्तमान स्थिति**
  आज भी जातिगत भेदभाव पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ है। खासकर शिक्षा, रोजगार और सामाजिक मान-सम्मान में असमानता दिखाई देती है। अहिल्याबाई का उदाहरण बताता है कि प्रशासन और समाज दोनों को मिलकर जातिगत भेदभाव मिटाने के लिए सक्रिय होना चाहिए।

- **धार्मिक और सांस्कृतिक प्रथाएँ**
  अहिल्याबाई ने धार्मिक प्रथाओं और सांस्कृतिक परंपराओं में महिलाओं की भागीदारी को अनिवार्य किया। इससे महिलाओं को समाज में सम्मान और धार्मिक स्वतंत्रता मिली।

- **समाज की वर्तमान स्थिति**
  आज भी कई धार्मिक स्थानों और आयोजनों में महिलाओं की भूमिका सीमित रहती है। अहिल्याबाई का आदर्श हमें बताता है कि धार्मिक और सांस्कृतिक मंचों पर भी महिलाओं को बराबरी का दर्जा दिया जाना चाहिए, जिससे उनकी सामाजिक स्थिति मजबूत हो सके।

निष्कर्ष :-

अहिल्याबाई होल्कर का कार्य और योगदान भारतीय इतिहास में एक प्रेरणादायक उदाहरण है। उनकी सरकार के दौरान उन्होंने महिलाओं के सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए उल्लेखनीय कदम उठाए। उनकी नीतियों से महिलाओं को शिक्षा, आर्थिक स्वतंत्रता, सामाजिक समानता और धार्मिक कार्य में भागीदारी के अवसर मिले ।अहिल्याबाई का योगदान उन्हें एक आदर्श महिला नेता बनाता है और उनके कार्यों का अनुसरण भी किया जाता है आज। अहिल्याबाई द्वारा बताया गया मार्ग आज भी महिला सशक्तिकरण के लिए मार्गदर्शक है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. मिश्र, रतनलाल. *अहिल्याबाई होलकर : एक आदर्श शासिका*. भारतीय साहित्य संस्थान, वाराणसी,2001।
2. शर्मा, उषा. ,*नारी स्वाभिमान और भारतीय इतिहास*, साहित्य संगम प्रकाशन, दिल्ली, 2005 ।
3. अवस्थी, मनोज कुमार,*अहिल्याबाई होलकर : समाज सुधार की अग्रदूत*, संस्कृति निकेतन, भोपाल,2012 ।
4. सिंह, मीरा,*भारतीय नारी : गौरवशाली इतिहास*, भारतीय विद्या भवन, मुंबई, 2010 ।
5. दिनांक, के.के. अहिल्याबाई होल्कर: आदर्श शासक, महाराष्ट्र राज्य साहित्य एवं संस्कृति बोर्ड, 1985 ।
6. पाटिल, एम.एस. मराठा साम्राज्य की सामाजिक नीति, लोकप्रिय प्रकाशन, 1990 ।
7. जोशी, सुषमा. अहिल्याबाई और महिला अधिकारिता, महिला अध्ययन केंद्र, विश्वविद्यालय पुणे,2005
8. काले, गोविंद। अहिल्याबाई होल्कर: समाज सुधारक, मराठा इतिहास सम्मेलन, 2007 ।

ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और डॉ. बी.आर. आंबेडकर का शैक्षिक दर्शन: समतामूलक भारत के निर्माण में एक बहु-आयामी आलोचनात्मक, व्यावहारिक एवं प्रभावशीलता अध्ययन

डॉ. रेखा कुमारी

संक्षिप्त सारांश

प्रस्तुत शोध आलेख 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' के प्रमुख प्रावधानों और आधुनिक भारत के वैचारिक निर्माता डॉ. बी.आर. आंबेडकर के शैक्षिक दर्शन के मध्य अंतर्संबंधों का एक व्यवस्थित, तथ्य-आधारित और 30-आयामी (30 आलोचनात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत करता है। डॉ. आंबेडकर ने शिक्षा को केवल एक बौद्धिक विलास या आजीविका का साधन नहीं माना, बल्कि इसे सामाजिक मुक्ति, मानवीय गरिमा और समतावादी लोकतांत्रिक समाज की स्थापना का सबसे अचूक साधन बताया था। यह शोध आलेख एनईपी 2020 के नए 5+3+3+4 स्कूली ढांचे, मातृभाषा के सिद्धांत, कौशल विकास, नेशनल रिसर्च फाउंडेशन और उच्च तकनीकी शिक्षा में भारतीय भाषाओं के समावेश की दार्शनिक प्रासंगिकता की समीक्षा करता है। शोध के विशिष्ट उद्देश्यों को स्थापित करते हुए, यह आलेख छात्रों को मिलने वाले व्यावहारिक लाभों और नीति की वास्तविक प्रभावशीलताविश्लेषण करता है। साथ ही, यह ग्रामीण-शहरी अंतर, डिजिटल विभाजन, निजीकरण की प्रवृत्तियों और सामाजिक प्रतिनिधित्व (आरक्षण) पर स्पष्टता की कमी जैसी व्यावहारिक चुनौतियों का सांख्यिकीय मूल्यांकन करते हुए लोक-कल्याणकारी क्रियान्वयन की एक न्यायपूर्ण राह प्रस्तावित करता है

प्रस्तावना

किसी भी लोकतांत्रिक और प्रगतिशील राष्ट्र की प्रगति उसकी शिक्षा प्रणाली की प्रासंगिकता, सुलभता और समावेशिता पर निर्भर करती है। भारत जैसे विविधतापूर्ण और ऐतिहासिक रूप से जातिगत व आर्थिक स्तरीकरण से प्रभावित समाज में शिक्षा केवल ज्ञान अर्जन का माध्यम नहीं है, बल्कि यह सामाजिक न्याय और मानवीय गरिमा की प्राप्ति का सबसे अचूक साधन है। डॉ. भीमराव आंबेडकर ने आजीवन एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था की वकालत की जो समाज के अंतिम पायदान पर खड़े व्यक्ति को

सशक्त, स्वावलम्बी और जागरूक बना सके। भारत सरकार द्वारा घोषित 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020' 21वीं सदी की पहली ऐसी व्यापक नीति है जो भारत की पुरातन और रटने पर आधारित औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली को पूरी तरह बदलकर उसे आधुनिक, लचीला, व्यावहारिक और वैश्विक स्तर के अनुकूल बनाने का दावा करती है। यह शोध आलेख एक विस्तृत और गुणात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए इस नीति के 30 प्रमुख बिंदुओं का बाबासाहेब के शैक्षिक दर्शन की कसौटी पर आलोचनात्मक विश्लेषण करता है। यह अध्ययन न केवल नीतिगत संभावनाओं को रेखांकित करता है, बल्कि ग्रामीण-शहरी अंतर और निजीकरण के दौर में इसके सफल क्रियान्वयन की व्यावहारिक बाधाओं का भी गंभीर शैक्षणिक मूल्यांकन प्रस्तुत करता है।

शोध के उद्देश्य

इस शोध आलेख का प्राथमिक उद्देश्य राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के बुनियादी सिद्धांतों, संरचनात्मक बदलावों और रणनीतिक घोषणाओं का डॉ. बी.आर. आंबेडकर के सामाजिक न्याय व समतावादी शैक्षिक दर्शन के आलोक में एक तुलनात्मक और आलोचनात्मक मूल्यांकन करना है। शोध का दूसरा मुख्य उद्देश्य यह जांचना है कि नई नीति का 5+3+3+4 स्कूली ढांचा और उच्च शिक्षा में 'मल्टीपल एंट्री-एग्जिट सिस्टम' समाज के सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित समूहों की शैक्षिक सुलभता को कहाँ तक सुगम बनाते हैं। तीसरा उद्देश्य, नीति के तहत तकनीकी, चिकित्सा और कानूनी पाठ्यक्रमों में भारतीय भाषाओं (क्षेत्रीय भाषाओं) के समावेश से होने वाले ज्ञान के लोकतांत्रीकरण की प्रक्रिया का विश्लेषण करना है, जिसे बाबासाहेब अंग्रेजी के प्रभुत्व के कारण होने वाले वर्ग-विभाजन को तोड़ने के लिए आवश्यक मानते थे। चौथा और अंतिम उद्देश्य, नीति की उन व्यावहारिक और ढांचागत चुनौतियों (जैसे कि डिजिटल विभाजन, अंधाधुंध निजीकरण का संकट, आरक्षण नीतियों पर अस्पष्टता और अपर्याप्त वित्तीय बजटीय आवंटन) की पहचान करना है, जो यदि अनियंत्रित छोड़ दी गईं, तो बाबासाहेब के समतामूलक और शोषित-मुक्त समाज के निर्माण के स्वप्न को बाधित कर सकती हैं।

छात्रों के लिए व्यावहारिक लाभ

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 जमीनी स्तर पर विद्यार्थियों, विशेषकर ग्रामीण और वंचित पृष्ठभूमि से आने वाले छात्रों के लिए कई क्रांतिकारी और व्यावहारिक लाभों का मार्ग प्रशस्त करती है। सबसे बड़ा लाभ 'एकेडमिक बैंक ऑफ क्रेडिट' और 'मल्टीपल एंट्री-एग्जिट विकल्प' के रूप में मिलता है, जो गरीब छात्रों को वित्तीय या पारिवारिक संकट के कारण कॉलेज छोड़ने पर भी उनके द्वारा अर्जित की गई पढ़ाई (क्रेडिट) को सुरक्षित रखता है और भविष्य में उन्हें वहीं से अपनी पढ़ाई पूरी करने की अभूर्व स्वतंत्रता देता है। दूसरा व्यावहारिक लाभ स्कूली स्तर पर कक्षा 6 से कोडिंग और व्यावसायिक शिक्षा की शुरुआत से है, जो छात्रों को केवल किताबी कीड़ा बनाने के बजाय स्थानीय कारीगरों के साथ व्यावहारिक

इंटर्नशिप के माध्यम से आत्मनिर्भर और तकनीकी रूप से कुशल बनाता है। तीसरा लाभ कक्षा 5 तक मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करने की स्वतंत्रता से है, जो छात्रों के संज्ञानात्मक विकास को बढ़ावा देती है, विषय की समझ को आसान बनाती है और हीन भावना के कारण होने वाले स्कूल ड्रॉपआउट को रोकती है। इसके अतिरिक्त, 'जेंडर इंक्लूजन फंड' के माध्यम से छात्राओं को सुरक्षित परिवहन और छात्रवृत्तियां मिलती हैं, दिव्यांग छात्रों को विशेष शिक्षकों और ब्रेल/रैंप जैसी सहायक तकनीकों का लाभ मिलता है, तथा 'पीएम पोषण योजना' के तहत सुबह का पौष्टिक नाश्ता छात्रों के स्वास्थ्य और एकाग्रता को सुनिश्चित करता है, जिससे अंततः छात्रों का समग्र विकास संभव होता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के लागू होने के बाद के वर्षों में देश के शैक्षिक परिदृश्य में व्यापक संरचनात्मक और व्यावहारिक बदलाव देखे गए हैं, जो इसके दीर्घकालिक प्रभाव और प्रभावशीलता को(प्रमाणित करते हैं। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में 'एकेडमिक बैंक ऑफ क्रेडिट' पोर्टल पर करोड़ों छात्रों का डिजिटल पंजीकरण इस नीति की सबसे बड़ी प्रशासनिक सफलता है, जिसने छात्रों को विभिन्न विश्वविद्यालयों के बीच बिना किसी कागजी जटिलता के क्रेडिट ट्रांसफर करने और अपनी पढ़ाई को अपनी सुविधानुसार जारी रखने का वास्तविक लचीलापन प्रदान किया है। इसी प्रकार, तकनीकी और चिकित्सा शिक्षा) के क्षेत्र में पाठ्यपुस्तकों का हिंदी सहित प्रमुख भारतीय भाषाओं में अनुवाद और इन भाषाओं में पाठ्यक्रमों की शुरुआत ने भाषाई वर्चस्व को तोड़कर ज्ञान के लोकतांत्रीकरण की दिशा में एक ऐतिहासिक मील का पत्थर स्थापित किया है, जिससे ग्रामीण पृष्ठभूमि के छात्रों के नामांकन में सकारात्मक वृद्धि दर्ज की गई है। स्कूली शिक्षा के स्तर पर, प्रारंभिक बचपन की देखभाल के अंतर्गत आंगनवाड़ियों को 'बालवाटिका' के रूप में प्राथमिक स्कूलों के साथ एकीकृत करने से सरकारी स्कूलों के बुनियादी ढांचे में सुधार हुआ है और प्री-प्राइमरी स्तर पर सकल नामांकन अनुपातमें उल्लेखनीय प्रगति हुई है। इसके अतिरिक्त, कक्षा 6 से व्यावसायिक शिक्षाकी पायलट परियोजनाओं ने छात्रों में 'श्रम की गरिमा' के प्रति नई चेतना जागृत की है और स्कूल छोड़ने वाले बच्चों को वैकल्पिक कौशल विकास से जोड़कर आत्मनिर्भर बनाने में सफलता हासिल की है। यद्यपि राष्ट्रीय स्तर पर समान रूप से डिजिटल बुनियादी ढांचे को मजबूत करने और राज्यों के बीच क्रियान्वयन के अंतर को पाटने में अभी भी चुनौतियां मौजूद हैं, फिर भी एनईपी 2020 ने भारत की पारंपरिक रटने पर आधारित शिक्षा प्रणाली को एक लचीली, योग्यता-आधारित और छात्र-केंद्रित वैश्विक प्रणाली में बदलने के अपने प्राथमिक उद्देश्य में एक अत्यंत प्रभावी और व्यावहारिक भूमिका निभाई है।

1. सामाजिक क्रांति और चेतना का माध्यम

डॉ. बी.आर. आंबेडकर का शैक्षिक दर्शन केवल अक्षरों के ज्ञान, साक्षरता या उपाधि प्राप्त करने तक सीमित नहीं था, बल्कि वह इसे सामाजिक पुनर्निर्माण और मानवीय चेतना के जागरण का एक

महायज्ञ मानते थे। बाबासाहेब के अनुसार, शिक्षा का प्राथमिक कार्य समाज में सदियों से व्याप्त रूढ़ियों, अंधविश्वासों, मानसिक गुलामी और जातिगत असमानताओं को वैचारिक धरातल पर नष्ट करना है। जब एक शोषित या हाशिए पर खड़ा व्यक्ति वास्तविक रूप से शिक्षित होता है, तो उसके भीतर आत्म-सम्मान, विवेक और तार्किक सोच का उदय होता है, जो उसे सामाजिक बंधनों और थोपी गई हीनता को तोड़ने की आंतरिक शक्ति प्रदान करता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भी शिक्षा को केवल एक बाजारोन्मुखी आजीविका का साधन न मानकर मानव की क्षमता को पूर्ण रूप से विकसित करने, व्यक्तिगत गरिमा को पुनर्जीवित करने और एक न्यायपूर्ण व मानवीय समाज के निर्माण के साधन के रूप में देखती है, जो सैद्धांतिक धरातल पर बाबासाहेब के सामाजिक मुक्ति के सिद्धांत से सीधे मेल खाता है।

2. शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो" की नीतिगत प्रासंगिकता

बाबासाहेब का ऐतिहासिक और कालजयी नारा "शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो" केवल एक उद्घोष नहीं है, बल्कि यह सामाजिक परिवर्तन का एक त्रि-स्तरीय क्रमिक विज़न है, जहाँ 'शिक्षा' प्रथम, अनिवार्य और सबसे महत्वपूर्ण आधारशिला है। उनके अनुसार, शिक्षा के बिना किया गया कोई भी संगठन वैचारिक रूप से खोखला होता है, और बिना संगठन के सामाजिक न्याय के लिए किया जाने वाला संघर्ष दिशाहीन व निष्फल हो जाता है। एनईपी 2020 के विभिन्न प्रावधान, जैसे कि बुनियादी स्तर पर छात्र की सोच को तार्किक बनाना और पुरानी रटने की व्यवस्था को योग्यता-आधारित मूल्यांकन से प्रतिस्थापित करना, छात्रों को मानसिक रूप से स्वतंत्र, जागरूक और सजग नागरिक बनाने की दिशा में काम करते हैं। जब शिक्षा विद्यार्थियों को उनके अधिकारों, कर्तव्यों और सामाजिक वास्तविकताओं के प्रति सजग बनाती है, तभी वे समाज को तार्किक आधार पर संगठित करने और संवैधानिक दायरे में रहकर असमानता व शोषण के विरुद्ध एक शांतिपूर्ण वैचारिक संघर्ष करने के योग्य बनते हैं।

3. बुनियादी चरण में शैक्षिक समरूपता

एनईपी 2020 द्वारा लागू किया गया नया 5+3+3+4 स्कूली ढांचा प्रारंभिक बचपन की देखभाल और शिक्षा को औपचारिक स्कूली शिक्षा के दायरे में लाकर एक बड़ा ढांचागत सुधार करता है। इसके प्रथम 'बुनियादी चरण' में 3 वर्ष की प्री-स्कूलिंग (आंगनवाड़ी/बालवाटिका) और 2 वर्ष की प्राथमिक शिक्षा (कक्षा 1 और 2) को शामिल किया गया है, जहाँ पूरी सीख खेल-कूद, खोज और बहु-स्तरीय गतिविधियों पर आधारित है और जहाँ परीक्षाओं का कोई मानसिक तनाव नहीं होता। डॉ. आंबेडकर का मानना था कि मनुष्य के मानसिक और बौद्धिक विकास की नींव बचपन के

शुरुआती वर्षों में ही पड़ती है, इसलिए प्रारंभिक शिक्षा पर सबका समान अधिकार होना चाहिए। पहले भारतीय समाज में गरीब और वंचित वर्ग के बच्चे सीधे छह या सात साल की उम्र में पहली कक्षा में आते थे, जिससे वे महंगे प्ले-स्कूलों में जाने वाले संपन्न परिवारों के बच्चों की तुलना में पहले से ही पिछड़ जाते थे; यह नया ढांचा सरकारी तंत्र के माध्यम से सभी बच्चों को समान शुरुआती अवसर प्रदान करके प्रारंभिक स्तर पर ही वर्ग-भेद और वर्गीय खाई को मिटाने का प्रयास करता है।

4. मातृभाषा में शिक्षा और स्कूल छोड़ने की दर में कमी

नीति के 'प्रारंभिक चरण'कक्षा 3 से 5) का सबसे क्रांतिकारी और स्वागतयोग्य प्रावधान कक्षा 5 तक (और संभव हो तो कक्षा 8 तक) शिक्षा का माध्यम अनिवार्य रूप से मातृभाषा, स्थानीय भाषा या क्षेत्रीय भाषा रखना है। डॉ. आंबेडकर का स्पष्ट मत था कि प्रारंभिक स्तर पर किसी विदेशी, अपरिचित या जटिल भाषा को बच्चों पर जबरन थोपना उनके स्वाभाविक मानसिक विकास को अवरुद्ध कर देता है, जिससे वे कक्षा में जुड़ाव महसूस नहीं कर पाते और हीन भावना का शिकार हो जाते हैं। जब वंचित, आदिवासी और आर्थिक रूप से पिछड़े पृष्ठभूमि के बच्चे अपनी घरेलू भाषा में विज्ञान, गणित और सामाजिक विज्ञान जैसे जटिल विषय सीखते हैं, तो उनका स्कूल के प्रति भय पूरी तरह समाप्त हो जाता है। इससे न केवल उनकी वैचारिक समझ गहरी और मौलिक होती है, बल्कि प्राथमिक स्तर पर विद्यालय छोड़ने की दरमें भी भारी कमी आती है, जो बाबासाहेब के शैक्षिक सुलभता और सार्वभौमिकरण के सिद्धांतों को चरितार्थ करता है।

5. व्यावसायिक शिक्षा और श्रम की सामाजिक गरिमा)

एनईपी 2020 के 'मध्य चरण' कक्षा 6 से 8) के तहत कक्षा 6 से ही व्यावसायिक शिक्षा तकनीकी कौशल और कोडिंग को मुख्य पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया गया है, जिसमें प्रतिवर्ष 10 दिनों का 'बैगलेस और स्थानीय कारीगरों (जैसे बढ़ई, कुम्हार, माली, इलेक्ट्रीशियन) के साथ व्यावहारिक इंटर्नशिप शामिल है। बाबासाहेब भारत की पारंपरिक और रूढ़िवादी जाति व्यवस्था द्वारा किए गए अमानवीय श्रम-विभाजन के कट्टर विरोधी थे, जहाँ शारीरिक श्रम करने वालों को समाज में नीचा देखा जाता था और मानसिक श्रम करने वालों को उच्च स्थान प्राप्त था। स्कूली स्तर पर व्यावसायिक कौशल को अनिवार्य और सम्मानजनक बनाने से छात्रों में 'श्रम की गरिमा') स्थापित होती है। यह प्रावधान मानसिक और शारीरिक श्रम के बीच के ऐतिहासिक भेदभाव को मिटाकर छात्रों को आत्मनिर्भर बनाता है, जिससे वे जातिगत व्यवसायों के बंधनों को तोड़कर स्वतंत्र आर्थिक रास्ते चुनने के योग्य बनते हैं।

6. माध्यमिक स्तर पर बहु-विषयक लचीलापन

स्कूली शिक्षा के अंतिम 'माध्यमिक चरण' कक्षा 9 से 12) में आर्ट्स, कॉमर्स या साइंस के पुराने, औपनिवेशिक और कड़े अलगाव को पूरी तरह समाप्त कर दिया गया है। अब छात्र अपनी रुचि, योग्यता और विज़न के अनुसार भौतिकी के साथ इतिहास, या गणित के साथ संगीत और राजनीति विज्ञान जैसे विषयों का कोई भी बहु-विषयक संयोजन चुन सकते हैं। डॉ. आंबेडकर स्वयं एक असाधारण बहु-विषयक विद्वान थे, जिन्होंने अर्थशास्त्र, कानून, समाजशास्त्र, दर्शनशास्त्र और राजनीति विज्ञान में समान रूप से वैश्विक महारत हासिल की थी और वे शिक्षा में किसी भी प्रकार की मानसिक संकीर्णता या कड़े बंधनों के विरोधी थे। एनईपी का यह लचीलापन छात्रों को अपनी रुचि के अनुसार चौतरफा बौद्धिक विकास करने की स्वतंत्रता देता है, जो बाबासाहेब के वैचारिक और बौद्धिक स्वतंत्रता के सिद्धांत के पूर्णतः अनुकूल है।

7. रटने की प्रणाली से मुक्ति और आलोचनात्मक सोच

नई शिक्षा नीति मूल्यांकन की पुरानी, दोषपूर्ण और क्लर्क पैदा करने वाली प्रणाली को रटने \ और परीक्षा-केंद्रित मॉडल के बजाय आलोचनात्मक सोच वैचारिक स्पष्टता, रचनात्मकता और योग्यता-आधारितमूल्यांकन में बदलती है। बाबासाहेब ने सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वासों, रूढ़ियों और स्थापित असमानता को चुनौती देने के लिए तार्किकता और वैज्ञानिक दृष्टिकोणको शिक्षा का सबसे बड़ा और अनिवार्य गुण माना था क्योंकि वे चाहते थे कि छात्र बिना तर्क के किसी भी सामाजिक व्यवस्था को स्वीकार न करें। एनईपी 2020 की नई विश्लेषणात्मक मूल्यांकन प्रणाली छात्रों में प्रश्न पूछने, स्थापित तथ्यों की वैज्ञानिक जाँच करने और स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता विकसित करती है, जो समाज को मानसिक गुलामी और वैचारिक जड़ता से मुक्त करने में एक बड़ी भूमिका निभा सकती है।

8. मल्टीपल एंट्री और एग्जिट: श्रमिक वर्ग के लिए सुरक्षा कवच

उच्च शिक्षा के स्तर पर कॉलेज की पढ़ाई को बेहद लचीला और मानवीय बनाते हुए 'मल्टीपल एंट्री और एग्जिट विकल्प' लागू किया गया है, जिसके तहत 1 वर्ष पर सर्टिफिकेट, 2 वर्ष पर डिप्लोमा, 3 वर्ष पर डिग्री और 4 वर्ष पर अनुसंधान के साथ ऑनर्स डिग्री मिलती है। गरीब, श्रमिक, दलित और ग्रामीण वर्ग के छात्रों को अक्सर आर्थिक तंगी, पारिवारिक संकट, बीमारी या असमय रोजगार की आवश्यकता के कारण अपनी कॉलेज की पढ़ाई बीच में ही छोड़नी पड़ती थी, जिससे उनकी पिछली पूरी मेहनत, समय और धन बेकार हो जाते थे। एनईपी की यह व्यवस्था ऐसे छात्रों को एक मजबूत अकादमिक सुरक्षा कवच प्रदान करती है, जिससे वे अपनी संचित

क्रेडिट के आधार पर भविष्य में (जब स्थितियां अनुकूल हों) कभी भी वहीं से अपनी पढ़ाई दोबारा शुरू कर सकते हैं, जिससे वंचित वर्ग के छात्रों का उच्च शिक्षा में सकल नामांकन अनुपात (GER) बढ़ेगा और उनकी पढ़ाई स्थायी रूप से नहीं छूटेगी।

9. एकेडमिक बैंक ऑफ क्रेडिट (ABC) का लोकतांत्रीकरण

एकेडमिक बैंक ऑफ क्रेडिट' (ABC) एक डिजिटल लॉकर या केंद्रीय डेटाबेस की तरह कार्य करता है, जहाँ छात्र द्वारा विभिन्न कॉलेजों, विश्वविद्यालयों या मान्यता प्राप्त ऑनलाइन पाठ्यक्रमों के माध्यम से अर्जित किए गए अंक (क्रेडिट) सुरक्षित और डिजिटल रूप से संग्रहित रहते हैं। यह डिजिटल व्यवस्था छात्रों को एक संस्थान से दूसरे संस्थान में जाने, अपनी गति से सीखने और अपनी सुविधा के अनुसार पढ़ाई पूरी करने की अभूतपूर्व स्वतंत्रता देती है। बाबासाहेब शिक्षा के पूर्णतः लोकतंत्रीकरण के पक्षधर थे, जहाँ प्रशासनिक जटिलताएँ, लालफीताशाही या कड़े नियम किसी गरीब छात्र की पढ़ाई के आड़े न आएं। एबीसी का यह प्रावधान कॉलेज बदलने या पढ़ाई के अंतराल को एक तकनीकी सुगमता प्रदान करता है, जिससे पूरी शिक्षा प्रणाली लचीली, छात्र-केंद्रित और लोकतांत्रिक बनती है।

10. तकनीकी और चिकित्सा शिक्षा में भारतीय भाषाओं का समावेश

यह नीति उच्च शिक्षा के स्तर पर भी भारतीय भाषाओं (जैसे हिंदी, तमिल, तेलुगु, मराठी, बंगाली आदि) को बढ़ावा देने की वकालत करती है, जिसके तहत इंजीनियरिंग, चिकित्सा और कानून जैसे उच्च तकनीकी पाठ्यक्रमों की पाठ्यपुस्तकों का क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद किया जा रहा है और इन भाषाओं में कक्षाएं संचालित की जा रही हैं। डॉ. आंबेडकर भाषा के प्रभुत्व के कारण होने वाले सामाजिक अलगाव, हीनता और वर्ग-विभाजन को भली-भांति समझते थे क्योंकि भारत में लंबे समय से अंग्रेजी भाषा उच्च शिक्षा और न्यायपालिका में एक खास विशेषाधिकार का प्रतीक रही है, जिससे ग्रामीण छात्र योग्यता होने के बावजूद पीछे रह जाते थे। उच्च तकनीकी शिक्षा में भारतीय भाषाओं का विकल्प मिलने से ज्ञान का वास्तविक लोकतांत्रीकरण
होगा और वंचित वर्ग के युवाओं को बड़े तकनीकी व प्रशासनिक पदों पर पहुँचने में सहायता मिलेगी।

11. सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित समूहों का सशक्तिकरण

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े क्षेत्रों और समुदायों के सशक्तिकरण के लिए 'विशेष शिक्षा क्षेत्रबनाने की व्यवस्था करती है। ये क्षेत्र उन विशिष्ट भौगोलिक स्थानों, जिलों और ब्लॉकों पर स्थापित किए जा रहे हैं जहाँ अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति

अन्य पिछड़ा वर्ग और अल्पसंख्यकों की आबादी अधिक है, ताकि वहाँ विशेष शैक्षणिक संसाधन, वित्तीय सहायता और उत्कृष्ट बुनियादी ढांचा दिया जा सके। यह प्रावधान बाबासाहेब के 'सकारात्मक भेदभाव'और राज्य द्वारा कमज़ोर, उपेक्षित व शोषित वर्गों को विशेष संवैधानिक संरक्षण व वित्तीय सहायता देने के लोक-कल्याणकारी सिद्धांतों के पूर्णतः समरूप है।

12. जेंडर इंक्लूजन फंड और महिला शिक्षा

डॉ. आंबेडकर महिलाओं की शिक्षा के सबसे बड़े समर्थकों और संरक्षकों में से एक थे; उनका प्रसिद्ध कथन था कि "मैं किसी समुदाय की प्रगति का मूल्यांकन उस समुदाय की महिलाओं द्वारा प्राप्त की गई प्रगति के स्तर से करता हूँ।" एनईपी 2020 बालिकाओं और ट्रांसजेंडर छात्रों की शिक्षा को मुख्यधारा से जोड़ने, उनके स्कूल छोड़ने की दर को समाप्त करने और उन्हें सुरक्षित माहौल देने के लिए 'जेंडर इंक्लूजन फंड' की व्यवस्था करती है। यह कोष छात्राओं के लिए सुरक्षित परिवहन, अलग स्वच्छता सुविधाओं, आत्म-रक्षा प्रशिक्षण और विशेष छात्रवृत्तियों की व्यवस्था करता है, जो बाबासाहेब के महिला सशक्तिकरण, आधी आबादी की मुक्ति और लैंगिक समानता के विज़न को व्यावहारिक धरातल पर उतारने का एक गंभीर प्रयास है।

13. शिक्षक प्रशिक्षण और सामाजिक संवेदनशीलता

बाबासाहेब का मानना था कि एक समतावादी समाज के निर्माण के लिए केवल पाठ्यक्रम बदलना पर्याप्त नहीं है, बल्कि शिक्षकों की मानसिकता का संवेदनशील और पूर्वाग्रह-मुक्त होना भी अनिवार्य है, ताकि कक्षा के भीतर किसी भी छात्र के साथ जाति, वर्ग या लिंग के आधार पर कोई मानसिक या प्रत्यक्ष भेदभाव न हो। एनईपी 2020 में शिक्षकों के व्यावसायिक विकास और 4-वर्षीय एकीकृत बी.एड. कार्यक्रम के माध्यम से शिक्षक प्रशिक्षण के स्तर को व्यापक रूप से सुधारने का प्रावधान किया गया है। नीति इस बात पर बल देती है कि शिक्षकों को न केवल आधुनिक शिक्षण तकनीकों में निपुण होना चाहिए, बल्कि उन्हें सामाजिक-आर्थिक रूप से वंचित समूहों की समस्याओं के प्रति संवेदनशील भी बनाया जाना चाहिए, ताकि वे कक्षा में एक समावेशी, सौहार्दपूर्ण और समतामूलक वातावरण का निर्माण कर सकें.

14. संवैधानिक मूल्यों और नागरिकता का समावेश

भारतीय संविधान के मुख्य शिल्पकार होने के नाते डॉ. आंबेडकर चाहते थे कि भारत की शिक्षा व्यवस्था देश के प्रत्येक नागरिक के भीतर संवैधानिक नैतिकता न्याय, स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व के मूल्यों को गहराई से स्थापित करे क्योंकि इनके बिना लोकतंत्र केवल एक बाहरी आवरण बनकर रह जाएगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 अपने पाठ्यचर्या सिद्धांतों में इस विज़न को प्रमुखता

से स्थान देती है, जहाँ बुनियादी स्तर से लेकर उच्च शिक्षा तक भारतीय संविधान के मूल्यों, मानवाधिकारों, पर्यावरण संरक्षण, राष्ट्रीय एकता और मौलिक कर्तव्यों को पाठ्यक्रम का अनिवार्य हिस्सा बनाने की बात कही गई है। नीति का लक्ष्य ऐसे वैश्विक नागरिक तैयार करना है जो अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़े हों और संवैधानिक राष्ट्रवाद के प्रति प्रतिबद्ध हों, जो सीधे तौर पर बाबासाहेब के प्रबुद्ध और प्रबुद्ध भारत के स्वप्न से मेल खाता है।

15. शोध संस्कृति का लोकतांत्रीकरण और 'नेशनल रिसर्च फाउंडेशन

बाबासाहेब स्वयं एक विश्वस्तरीय उच्च-कोटी के शोधकर्ता और अर्थशास्त्री थे, और वे जानते थे कि स्वतंत्र, निष्पक्ष और मौलिक शोध ही किसी देश को बौद्धिक रूप से स्वतंत्र और आत्मनिर्भर बना सकता है। एनईपी 2020 ने देश में शोध और नवाचार की संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए एक शीर्ष निकाय के रूप में 'नेशनल रिसर्च फाउंडेशन की स्थापना का प्रावधान किया है। एनआरएफ का मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि शोध के लिए केवल बड़े, संपन्न और केंद्रीय विश्वविद्यालयों को ही नहीं, बल्कि ग्रामीण और राज्य-स्तरीय सरकारी विश्वविद्यालयों (जहाँ बहुसंख्यक वंचित, गरीब और पिछड़े छात्र पढ़ते हैं) को भी पर्याप्त वित्तीय अनुदान और विश्वस्तरीय बुनियादी ढांचा मिले, जो शोध संस्कृति का लोकतांत्रीकरण करने की दिशा में एक बड़ा कदम है.

16. डिजिटल विभाजन की गंभीर चुनौती

यद्यपि नीति के सिद्धांत और तकनीकी विज़न उत्कृष्ट हैं, परंतु बाबासाहेब के समतावादी दृष्टिकोण की कसौटी पर परखने पर इसके क्रियान्वयन में सबसे बड़ी बाधा 'डिजिटल विभाजन' है। एनईपी 2020 ऑनलाइन शिक्षा, डिजिटल टूल्स, वर्चुअल लैब्स और ऑनलाइन पाठ्यक्रमों पर बहुत अधिक निर्भर है, परंतु राष्ट्रीय सर्वेक्षणों (जैसेरिपोर्ट्स) के अनुसार, भारत के ग्रामीण, दूरदराज और आदिवासी क्षेत्रों में केवल 15% से 20% घरों में ही इंटरनेट की सुचारू सुविधा उपलब्ध है। सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले वंचित वर्ग के 80% से अधिक छात्रों के पास व्यक्तिगत कंप्यूटर या सुचारू इंटरनेट वाले स्मार्टफोन नहीं हैं; यदि भौतिक स्कूल-कॉलेज की जगह डिजिटल शिक्षा हावी होती है, तो संसाधनों से संपन्न अमीर बच्चे आगे निकल जाएंगे और बुनियादी सुविधाओं से वंचित गरीब छात्र रेस से बाहर हो जाएंगे, जिससे अमीर और गरीब के बीच एक नई सामाजिक खाई पैदा होगी जो आंबेडकर के समानता के सिद्धांत के विपरीत है।

17. शिक्षा के निजीकरण और व्यावसायीकरण का खतरा

नीति में विदेशी विश्वविद्यालयों के प्रवेश और भारतीय शिक्षण संस्थानों को अत्यधिक प्रशासनिक, शैक्षणिक व वित्तीय स्वायत्तता देने की बात कही गई है, जिससे शिक्षा के अत्यधिक निजीकरण और व्यावसायीकरण का खतरा बढ़ जाता है। यदि निजी संस्थान मनमानी फीस वसूलने लगते हैं, तो शिक्षा एक 'व्यापार' बन जाएगी जिससे वंचित वर्ग के मेधावी छात्र उच्च शिक्षा की दौड़ से बाहर हो जाएंगे। बाबासाहेब हमेशा शिक्षा पर कल्याणकारी राज्य के कड़े नियंत्रण और लोक-कल्याणकारी वित्तपोषण के पक्षधर थे ताकि शिक्षा कभी भी मुनाफे का साधन न बने; अतः इस नीति के तहत 'फीस कैपिंग' (न्यूनतम और अधिकतम फीस का निर्धारण) को पूरी तरह पारदर्शी रूप से लागू करना एक बड़ी चुनौती है ताकि शिक्षा सर्वसुलभ बनी रहे।

17. सामाजिक प्रतिनिधित्व (आरक्षण) पर नीतिगत स्पष्टता की आवश्यकता

नई शिक्षा नीति के तहत कई उच्च शिक्षण, शोध संस्थानों और विश्वविद्यालयों को स्वायत्त बनाया जा रहा है तथा सार्वजनिक-निजी भागीदारीको बढ़ावा दिया जा रहा है। समाजशास्त्रियों, बहुजन बुद्धिजीवियों और आलोचकों का मानना है कि इन नए प्रशासनिक ढांचों, स्वायत्त निकायों और निजीकृत होते जा रहे शैक्षिक परिदृश्य में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए संवैधानिक आरक्षण नीतियों को किस प्रकार सख्ती और पारदर्शिता से लागू किया जाएगा, इस पर नीतिगत दस्तावेजों में और अधिक स्पष्टता की आवश्यकता है, ताकि वंचित वर्गों का प्रतिनिधित्व, सामाजिक न्याय और हिस्सेदारी किसी भी स्तर पर कमजोर न हो।

18. वित्तीय संसाधनों की कमी और बजटीय आवंटन

एनईपी 2020 में शिक्षा पर देश की कुल जीडीपी का 6% खर्च करने का ऐतिहासिक संकल्प लिया गया है, लेकिन वास्तविक धरातल पर भारत का शिक्षा बजट हमेशा 3% से 4% के बीच ही सिमटा रहा है। जब तक सरकारें बजट में यह भारी, व्यावहारिक और वास्तविक वृद्धि नहीं करेंगी, तब तक वंचित वर्गों के लिए देश भर में गुणवत्तापूर्ण मुफ्त सरकारी स्कूल, आधुनिक हॉस्टल, वर्चुअल लैब्स और बड़ी संख्या में राष्ट्रीय छात्रवृत्तियां प्रदान करना संभव नहीं होगा। पर्याप्त वित्तीय आवंटन और मजबूत राजनीतिक इच्छाशक्ति के बिना इस नीति के उत्कृष्ट और समतावादी लक्ष्य केवल कागजी दस्तावेज बनकर रह सकते हैं, जो इसके क्रियान्वयन की सबसे बड़ी परीक्षा है.

19. वयस्क साक्षरता और आजीवन

डॉ. आंबेडकर ने केवल बच्चों की शिक्षा पर ही ध्यान नहीं दिया, बल्कि उनका मानना था कि समाज के वयस्क, वृद्ध और श्रमिक लोगों का साक्षर व जागरूक होना भी उतना ही आवश्यक है ताकि वे अपने कानूनी अधिकारों को समझ सकें और शोषण के विरुद्ध आवाज उठा सकें। एनईपी 2020 एक 'वयस्क शिक्षा' ढांचा स्थापित करने का प्रस्ताव करती है, जो बुनियादी साक्षरता, डिजिटल साक्षरता, व्यावसायिक कौशल और आजीवन सीखने के अवसर प्रदान करता है। यह प्रावधान उन लोगों को समाज की मुख्यधारा में लाने का काम करता है जो अपने बचपन में विपरीत सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों, जातिगत उत्पीड़न या गरीबी के कारण शिक्षा प्राप्त करने से वंचित रह गए थे, जिससे संपूर्ण समाज का बौद्धिक उत्थान संभव हो सके।

20. दिव्यांग छात्रों के लिए समावेशी शिक्षा

बाबासाहेब का शैक्षिक और सामाजिक दर्शन बिना किसी शारीरिक, मानसिक या जन्मजात अक्षमता के भेदभाव के प्रत्येक मानव की गरिमा को सर्वोच्च मानता था और उन्हें समाज की मुख्यधारा में देखना चाहता था। एनईपी 2020 दिव्यांग बच्चों के लिए नियमित स्कूली शिक्षा में पूर्ण समावेशन और संवेदनशीलता की वकालत करती है। इसके तहत विशेष शिक्षकों (की अनिवार्य भर्ती, स्कूलों को रैंप, सुलभ शौचालयों और ब्रेल लिपि जैसी सुविधाओं से सुसज्जित करने, और अत्याधुनिक सहायक तकनीकों के उपयोग को बढ़ावा देने का प्रावधान है, जो समाज के सबसे संवेदनशील हिस्से को गरिमापूर्ण जीवन, आत्मनिर्भरता और समान अवसर प्रदान करने की दिशा में एक आवश्यक कदम है।

21. स्कूली परिसरों का सुदृढ़ीकरण

नीति छोटे, बुनियादी सुविधाओं से विहीन और भौगोलिक रूप से अलग-थलग पड़े स्कूलों को एक 'स्कूल कॉम्प्लेक्स' के रूप में जोड़ने का सुझाव देती है। बाबासाहेब ने हमेशा संसाधनों के तार्किक और कुशल उपयोग की बात की थी ताकि कोई भी सरकारी संस्थान धन या बुनियादी ढांचे की कमी से बंद न हो और गरीबों को नुकसान न हो। स्कूल परिसरों के माध्यम से कला, संगीत, खेल के मैदान, विज्ञान प्रयोगशालाओं और आईसीटी लैब्स जैसी आधुनिक सुविधाओं को आपस में साझा किया जा सकता है, जिससे ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों के सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले गरीब छात्रों को भी वही सुविधाएँ मिल सकेंगी जो बड़े शहरों के केंद्रीय या महंगे निजी स्कूलों में उपलब्ध होती हैं।

22. प्राचीन और आधुनिक ज्ञान का संतुलन

एनईपी 2020 जहाँ एक तरफ भारत की प्राचीन ज्ञान प्रणालियों, जनजातीय कलाओं और स्थानीय दर्शन के अध्ययन पर जोर देती है, वहीं दूसरी तरफ आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, बिग डेटा, मशीन लर्निंग और रोबोटिक्स जैसी 21वीं सदी की अत्याधुनिक तकनीकों को अपनाने की बात करती है। बाबासाहेब इतिहास, संस्कृति और दर्शन के गहरे ज्ञाता थे, लेकिन उन्होंने हमेशा वैज्ञानिक चेतना और तार्किक प्रगति को सर्वोच्च प्राथमिकता दी। नीति का यह संतुलन तभी सफल माना जाएगा जब यह छात्रों में अपनी संस्कृति के प्रति अंध-गौरव पैदा करने के बजाय अंधविश्वासों से मुक्त एक आधुनिक, तार्किक, समतावादी और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास कर सके।

23. राष्ट्रीय परीक्षा एजेंसी द्वारा पारदर्शी मूल्यांकन

उच्च शिक्षा में प्रवेश के लिए राष्ट्रीय परीक्षा एजेंसी द्वारा सामान्य विश्वविद्यालय प्रवेश परीक्षा जैसी मानकीकृत परीक्षाओं का आयोजन एनईपी के तहत किया जा रहा है। बाबासाहेब ने हमेशा प्रवेश, नियुक्तियों और परीक्षाओं में पूर्ण पारदर्शिता और योग्यता की वकालत की थी ताकि भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद और पक्षपात को खत्म किया जा सके। हालाँकि, व्यावहारिक स्तर पर यह केंद्रीयकृत मानकीकृत परीक्षा प्रणाली ग्रामीण, दूरदराज के क्षेत्रों और राज्य बोर्डों के उन गरीब छात्रों के लिए अत्यंत चुनौतीपूर्ण हो सकती है जिनके पास महंगे कोचिंग सेंटरों तक पहुँच नहीं है; अतः इस परीक्षा प्रणाली को सभी के लिए समतामूलक और सुलभ बनाना सरकार के सामने एक बड़ी व्यावहारिक चुनौती है।

24. उच्च शिक्षा का एकल नियामक:

नीति चिकित्सा और कानूनी शिक्षा को छोड़कर पूरी उच्च शिक्षा के विनियमन, वित्तपोषण और मानक निर्धारण के लिए 'भारतीय उच्च शिक्षा आयोग'नामक एक एकल शीर्ष निकाय की स्थापना का प्रावधान करती है। बाबासाहेब ने प्रशासनिक सरलीकरण और जटिलताओं को कम करने की बात की थी ताकि आम नागरिकों और छात्रों को त्वरित न्याय व सुगमता मिल सके। एक ही नियामक होने से कॉलेजों और विश्वविद्यालयों को संबद्धताऔर निरीक्षण के नाम पर होने वाले भ्रष्टाचार, लालफीताशाही और अंतहीन प्रशासनिक बाधाओं से मुक्ति मिलेगी, बशर्ते यह एकल निकाय पूरी तरह लोकतांत्रिक, विकेंद्रीकृत और पारदर्शी तरीके से कार्य करे.

25. ड्रॉपआउट छात्रों के लिए 'ओपन एंड डिस्टेंस लर्निंग'

एनईपी 2020 मुक्त और दूरस्थ शिक्षातथा ऑनलाइन पाठ्यक्रमों को सुदृढ़ करने पर विशेष बल देती है ताकि उच्च शिक्षा में ग्रॉस एनरोलमेंट रेशियोको तेजी से बढ़ाया जा सके। बाबासाहेब उन

कामकाजी, गरीब और शोषित युवाओं के संघर्षों को अच्छी तरह जानते थे जो दिन में आजीविका कमाते थे और रात में पढ़ते थे (जिसके लिए उन्होंने नाइट कॉलेज भी शुरू किए थे)। ओडीएल और 'स्वयं' जैसे डिजिटल प्लेटफॉर्म उन कामकाजी युवाओं, दूरदराज के ग्रामीणों, गृहणियों और सामाजिक रूप से बंधित महिलाओं के लिए शिक्षा के द्वार खोलते हैं जो औपचारिक रूप से नियमित कॉलेज जाने में असमर्थ हैं, जिससे शिक्षा अनवरत बनी रहती है.

26. स्कूलों में पोषण और स्वास्थ्य: पीएम पोषण योजना)

नीति छात्रों के स्वास्थ्य और शारीरिक पोषण पर विशेष ध्यान देते हुए मध्याह्न भोजनके साथ-साथ सुबह का पौष्टिक नाश्ता देने का भी सुझाव देती है। बाबासाहेब का मानना था कि एक भूखा, कुपोषित और अस्वस्थ शरीर कभी भी एक प्रबुद्ध, तार्किक और प्रगतिशील मस्तिष्क का निर्माण नहीं कर सकता। ग्रामीण और मलिन बस्तियों के गरीब परिवारों के बच्चों में कुपोषण और एनीमिया एक बड़ी समस्या है; स्कूलों में बेहतर और पौष्टिक भोजन मिलने से न केवल बच्चों का स्वास्थ्य सुधरेगा, बल्कि स्कूलों में उनका नामांकन बढ़ेगा, स्कूल छोड़ने की दर कम होगी और उनकी सीखने की एकाग्रता में भी सकारात्मक वृद्धि होगी।

27. उच्च शिक्षण संस्थानों का बहु-विषयक अनुसंधान विश्वविद्यालय में परिवर्तन

नीति देश के प्रत्येक जिले में या उसके पास कम से कम एक बड़ा, जीवंत और बहु-विषयक उच्च शिक्षण संस्थान स्थापित करने का लक्ष्य रखती है, जिन्हें के रूप में विकसित किया जाएगा। बाबासाहेब चाहते थे कि उच्च शिक्षा और शोध देश के कोने-कोने तक पहुँचे ताकि ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों की दबी हुई प्रतिभाओं को अपनी प्रतिभा निखारने के लिए बड़े महानगरों की ओर पलायन न करना पड़े। जिला स्तर पर ऐसे उत्कृष्ट विश्वविद्यालयों की स्थापना से शिक्षा की सुलभता का लोकतांत्रीकरण होगा और स्थानीय समस्याओं पर शोध को बढ़ावा मिलेगा.

28. भारतीय कला, संस्कृति और भाषाओं का संवर्धन

एनईपी 2020 भारतीय भाषाओं के साथ-साथ देश की पारंपरिक कलाओं, संगीत, शिल्प, भाषाओं और सांस्कृतिक धरोहरों के संरक्षण व संवर्धन को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाती है। बाबासाहेब ने हमेशा सांस्कृतिक पहचान, स्वाभिमान और आत्म-सम्मान की बात की थी, लेकिन उन्होंने ऐसी किसी भी संस्कृति का कड़ा विरोध किया जो इंसानों के बीच ऊंच-नीच और भेदभाव करती थी। नीति का यह सांस्कृतिक संवर्धन यदि प्रगतिशील, मानवतावादी, समावेशी और समतावादी मूल्यों पर आधारित होगा, तभी यह बाबासाहेब के 'बंधुत्व'और सामाजिक समरसता के संवैधानिक आदर्श को वास्तविक रूप से साकार कर सकेगा।

29. निष्कर्ष और भविष्य की न्यायपूर्ण राह

समीक्षात्मक और विश्लेषणात्मक रूप से देखा जाए तो राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 अपने सैद्धांतिक विज़न, संरचनात्मक सुधारों और दूरगामी लक्ष्यों में डॉ. बी.आर. आंबेडकर के समतामूलक, प्रगतिशील, तार्किक और व्यावहारिक शैक्षिक विचारों के काफी करीब दिखाई देती है। 5+3+3+4 का नया स्कूली ढांचा, बुनियादी स्तर पर मातृभाषा का सम्मान, शिक्षक प्रशिक्षण में संवेदनशीलता का समावेश, एनआरएफ के माध्यम से शोध का लोकतांत्रीकरण और उच्च स्तर पर क्षेत्रीय भाषाओं में तकनीकी शिक्षा की अनुमति समाज के कमजोर और शोषित वर्गों को सशक्त बनाने का एक ऐतिहासिक अवसर प्रदान करती हैं। हालांकि, इस नीति की वास्तविक कसौटी इसका क्रियान्वयन है, क्योंकि जब तक सरकारें शिक्षा के अंधाधुंध निजीकरण पर कड़ा अंकुश नहीं लगातीं, ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों में इंटरनेट और बिजली जैसी बुनियादी ढांचागत सुविधाओं को मजबूत करके डिजिटल विभाजन को पूरी तरह समाप्त नहीं करतीं, और समाज के सबसे पिछड़े बच्चे तक बिना किसी आर्थिक या सामाजिक बाधा के विश्वस्तरीय शिक्षा मुफ्त या बेहद किफायती दरों पर नहीं पहुँचातीं, तब तक बाबासाहेब का विज़न धरातल पर नहीं उतर सकता। अतः केवल पर्याप्त वित्तीय बजटीय आवंटन, पारदर्शी आरक्षण व्यवस्था और संवैधानिक मूल्यों को केंद्र में रखकर किया गया निष्पक्ष क्रियान्वयन ही इस नीति को सामाजिक न्याय और वास्तविक सामाजिक परिवर्तन का एक सशक्त माध्यम बना सकता है।

संदर्भ सूची

1. आंबेडकर, बी. आर. (1936). जाति का विनाश. सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली.
2. आंबेडकर, बी. आर. (1946). शूद्र कौन थे?. गौतम बुक डिपो, दिल्ली.
3. कीर, धनंजय. (1962). डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर: जीवन और कार्य. पॉप्युलर प्रकाशन, मुंबई.
4. कुमार, आर. (2010). दलित शिक्षा और अंबेडकर. अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली.
5. कुमार, एस. (2022). अंबेडकर की शिक्षा नीति. अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली.
6. खान, ए. (2015). अंबेडकर और शिक्षा का अधिकार. अलका प्रकाशक, कानपुर.
7. खरे, एस. (2014). अंबेडकर का शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण. शिवा पब्लिकेशन, जयपुर.
8. गौतम, सी. बी. (2005). अंबेडकर के शैक्षिक विचार. गौतम बुक डिपो, दिल्ली.
9. गुप्ता, एम. (2018). अंबेडकर: शिक्षा और मुक्ति का मार्ग. कल्याणी पब्लिशर्स, नई दिल्ली.
10. गुप्ता, आर. (2016). अंबेडकर के शिक्षा संबंधी विचार. भावना प्रकाशन, दिल्ली.

11. चौरसिया, जी. (2003). भारतीय शिक्षा और अंबेडकर. राधा पब्लिकेशंस, नई दिल्ली.
12. जेलोत, एस. (2001). अंबेडकर का सामाजिक दर्शन और शिक्षा. रावत पब्लिकेशंस, जयपुर.
13. जोशी, बारबरा. (1986). अंबेडकर के शैक्षिक सिद्धांत. लोकवांग्मय गृह, मुंबई.
14. तातके, आर. (2012). अंबेडकर और शिक्षा का अधिकार. चिन्मय प्रकाशन, औरंगाबाद.
15. ठाकुर, एस. (2020). शिक्षा की राजनीति: अंबेडकर का चिंतन. ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली.
16. दास, एम. (2012). अंबेडकर और शिक्षा की शक्ति. स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली.
17. नारके, हरि. (2005). डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर: शिक्षा और दलित. महाराष्ट्र सरकार शिक्षा विभाग, मुंबई.
18. पांडे, वी. (2009). डॉ. आंबेडकर के शैक्षणिक सुधार. साहित्यागार, जयपुर.
19. प्रकाश, जे. (2019). अंबेडकर का मानवतावादी शैक्षिक दृष्टिकोण. ज्ञान बुक्स, नई दिल्ली.
20. प्रसाद, बी. (1999). शिक्षा का लोकतंत्र: अंबेडकर के नजरिए से. क्लासिकल पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली.
21. बेले, जी. (2006). शिक्षा का अधिकार और अंबेडकर. कल्पना प्रकाशन, दिल्ली.
22. मुलक, एम. एल. (2000). अंबेडकर का शैक्षिक दर्शन. विद्या प्रकाशन, नागपुर.
23. मून, वसंत. (1993). डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर: लेखन और भाषण (खंड 1-20). शिक्षा विभाग, महाराष्ट्र सरकार, मुंबई.
24. मिश्र, डी. (2013). शिक्षा और समानता: अंबेडकर का दर्शन. अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली.
25. यादव, डी. (2023). डॉ. आंबेडकर: एक शैक्षणिक युग. प्रज्ञा प्रकाशन, दिल्ली.
26. यादव, रामनाथ. (2015). डॉ. आंबेडकर और शिक्षा का दर्शन. नमन प्रकाशन, नई दिल्ली.
27. रॉड्रिगेज, वैलेरियन. (2002). द एसेंशियल राइटिंग्स ऑफ बी. आर. आंबेडकर. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली.
28. राव, पी. (2010). अंबेडकर का सामाजिक और शैक्षिक विकास. अविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर.
29. रेड्डी, के. (2017). अंबेडकर का शिक्षा के क्षेत्र में योगदान. तेलुगु अकादमी, हैदराबाद.
30. लिमये, मधु. (1991). डॉ. आंबेडकर: एक मूल्यांकन. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली.
31. वर्मा, के. (2019). अंबेडकर के शैक्षिक मूल्यों का विश्लेषण. तरुण प्रकाशन, गाजियाबाद.
32. वर्मा, पी. (2007). अंबेडकर: आधुनिक भारत का शैक्षिक निर्माता. अनामिका पब्लिशर्स, नई दिल्ली.

33. वास्के, एस. (2008). अंबेडकर के शिक्षा के विचार. सुगावा प्रकाशन, पुणे.
34. शर्मा, एन. (2011). शिक्षा के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन: अंबेडकर. पंचशील प्रकाशन, जयपुर.
35. शर्मा, आर. (2020). शिक्षा का सामर्थ्य और अंबेडकर. साहित्यागार, जयपुर.
36. सिंह, एच. (2004). अंबेडकर के विचार: एक अध्ययन. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली.
37. सिंह, के. (2021). शिक्षा की क्रांति: अंबेडकर के मार्ग पर. पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली.
38. सिंह, राजपाल. (2018). अंबेडकर का शैक्षणिक चिंतन. अमन प्रकाशन, कानपुर.
39. सुब्रह्मण्यम, एस. (2014). दलित शिक्षा और डॉ. अंबेडकर. ओरिएंट ब्लैकस्वान, नई दिल्ली.
40. सेन, ए. (2008). शिक्षा की भूमिका और अंबेडकर. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली

Relevance of Babasaheb Ambedkar's Navayana Buddhism in the Modern Era

Anshuman Ghosh
Research Scholar
Department of Philosophy, Ranchi University

Abstract

Through the formation of Navayana Buddhism, Babasaheb Ambedkar made a statement that Buddhism is one such religion in this world that treats every individual equally. Buddhism makes individuals feel of being equal worth and it gives space for individual reasoning. When the world is appalled by fanaticism of religious beliefs, Buddhism found a pathway to find solace, to find questions that are of utmost need to ask. According to Dr. Ambedkar, the very fundamental base of Buddhism is **Reasoning** and **Logical arguments i.e. Rationality.** Without rational thinking one is bound to misinterpret the entire Buddhism legacy.

Through this paper I will be discussing about Dr. Ambedkar's preference for Buddhism, why he should be known as a champion of Women's rights, how Education may break the ongoing stereotypes against genders, his initiatives to break the caste system, and his understanding about the true meaning of religion.

It has been noticed that even after 69 years of Babasaheb Ambedkar's demise, he has been acknowledged as a leader of the Dalits. The sole purpose of writing this paper is to clear the fact that the fight that Babasaheb fought was never exclusively for any one community. His tremendous endeavors were significantly important in order to liberate India in general and Women, Dalits in particular from traditional views that were too discriminatory to abide by. Through this paper, I will show

that it maybe years that Babasaheb fought his fight but his endeavours still matter today and that is the highest relevance of Dr. Ambedkar's philosophy.

Introduction

We cannot deny the need of religion in any era and this modern era is not an exception from that. But what the modern era also asks for is rationality made of logic and reason. And the religion which is closest to the hearts of the people in this modern era is Neo-Buddhism. The main reason behind the popularity of Neo-Buddhism is- this is based on one's capability of reasoning; the proponent bothers least about the metaphysical aspects. There are really very less religions in the history of the world that speaks as much about the people so as much about the ongoing fanaticism within religions. We cannot deny that there exists very common conflicts and contradictions among people regarding aspects affecting people in their daily lives. Still, in this modern era we do find out religions that spreads the message of unity in diversity as its sole purpose. Align with this thought, the triadic principle which consists of liberty, equality and fraternity is the very base of Babasaheb's philosophy of humanism. Dr. Ambedkar's sole purpose was to show the moral side of religion out-focusing the unnecessary discussions about the divine. Babasaheb wanted to show how religion can prescribe us the moral path for the betterment of the society. The Buddha never emphasized on the factors that are beyond human control like the metaphysical aspects i.e. God, Soul and World. Through his four Noble Truths, he tried to make the layman understand the basic cycle that starts with our desires leading to sufferings and ending in a common cycle of bondage. Through his propounded path anyone may break the cycle and can achieve Nirvana i.e. a state where material bondage doesn't engulf ourselves. We become free of the cravings of material desires, the everyday attachments with infinite worldly substances. This endeavor of understanding what truly binds us and what relieves our egoist nature is the goal of the entire Buddhism. Keeping the baton of humanity alive, Neo-Buddhism emerged as a philosophy of life, Dr. Ambedkar established a new school of religion whose

philosophy believes in freeing the millions of people, who were tightened by an invincible barrier of caste. This school of thought gave those so-called untouchables- a voice, their due rights and dignity to live as a human.

Why Buddhism?

There are reasons why Babasaheb chose Buddhism. In his own words, "My social philosophy may be said to be enshrined in three words: liberty, equality and fraternity. Let no one, however, say that I have borrowed my philosophy from the French Revolution. I have derived them from the teachings of my Master, the Buddha" (Ambedkar, 1987, p. 503) [1]. As a believer of liberty, equality and fraternity, Babasaheb Ambedkar seek to find a religion that propounds similar views. And through this quote Babasaheb made it clear that Buddhism is one such religion that is aligned with the nature of religion he wants. The two most essential nature of Buddhism is- **reason** and **logic,** which together work as rationality. "All prophets have promised salvation. The Buddha is the one teacher who did not make any such promise. He made a sharp distinction between a **moksha data** and a **marga data**, one who gives salvation and one who only shows the way. He was only a marga data. Salvation must be sought by each for himself by his own effort" (Ambedkar, 1957, p. 119) [2]. For Ambedkar, Buddha was never a believer of the world beyond, the transcendental world. His entire concern was about this worldliness. He wanted people to fight for the sufferings they face in this world. Ambedkar's Buddha was a personality who prescribes paths for the removal of sufferings of human beings in this world.

Women's rights- When majority of the world was covered under the shadow of Patriarchal mindset, stereotypical words and prejudiced societal norms, the champion of people's rights, Dr. B. R. Ambedkar spoke straightforwardly about the rights of women. Women's rights can be divided into segments like Education, Dignity and Empowerment. While speaking about empowerment what the modern generation demands is that, women must be given the right to make choices, they can decide according to their own rationality and above all the quality of life they

want must be solely decided by themselves. Align with this thought Babasaheb Ambedkar quoted- "let every girl who marries stand by her husband, claim to be his friend and equal, and refuse to be his slave" (Ambedkar 1995) [3]. While speaking how the Caste system pulled back the progress of women, Ambedkar vehemently uttered that- "The real remedy for breaking Caste is inter-marriage. Nothing else will serve as the solvent of Caste" (Ambedkar, 2004, p. 67) [4]. Babasaheb Ambedkar always measured the progress of a country by the progress of the women. Through this mindset Babasaheb Ambedkar propagated his ideology for equality. A marriage that has always been seen as the sole responsibility of the woman, Babasaheb defied the age-old view and always upheld the views of mutual respect, shared responsibilities within marriages.

Role of Hindu Code Bill and Women's Reservation Act as upholding of women's rights

Voice of a Woman would never be heard at a higher-level like in the State and National Legislatures, till the time we, the other counterparts make a habit of listening to them inside our own homes and close relationships. After measuring their freedom of expression with a close lens of prejudiced notions, stereotypical norms and patriarchal mindsets and trying to restrict them in a cage will eventually make a huge loss of the entire society. A progressive society must give space to individuals, needs to respect its freedom of expression, needs to accept the opposing views originated due to generational gap. In a circumstance of progressiveness, one's ultimate growth depends upon society's mobility towards accepting separate cultures, downness towards traditions and elasticity to change the age-old views. In this scenario, individuals get access to different views and nurture themselves under a well to thought society not a society of bondage.

The Hindu Code Bill has been a quintessential step in order to make the field level playing-

1) A daughter can now be a successor of the ancestral property. (Ambedkar, 1955, p. 142) [5]

2) the minimum age of marriage increased to 18 years. And this change has significant role in
making women empowered.

3) polygamy has been revoked.

Though the Women's Reservation Act had been introduced in 2023, it will take time to implement its proposals. The main proposal was to reserve 33% of seats for women in the Lok Sabha and State Legislative Assemblies.

Education as the precursor of breaking stereotypes against genders

Dr. Ambedkar's famous slogan that urged education as the very first step to liberation for all was- "Educate, agitate, organize" (Ambedkar, 1942, p. 75) [6]. He had made it clear that no movement in this world can be successful without the masses become educated, they remain agitated for the purpose of their lives and they must remain organized in order to go for further movements. The purpose of Education can never be getting a 6-figure salaried job but for the leaders it has always been important for the ordinary people to know their basic human rights, their duties towards nation building and to their brethren.

Breaking the invincible caste system

Babasaheb Ambedkar labelled the caste system as- "an enclosed class" (Ambedkar, 1916, p. 15) [7]. Firstly, it has always been an endogamous system and secondly, the caste system symbolizes classification of laborers not classification of labor- "the Hindu social order was not based on the division of laborers and on the division of labor. The division of labor is a necessary feature of every civilized society, but the division of laborers is a cruel perversion" (Ambedkar, 1936, p. 47) [8]. What Babasaheb clearly mentioned is that- in order to run any societal or national system in the world, there must exists a proper distribution of work and that distribution must be based one one's ability and should never be based on something that one can never change i.e. one's birth in a certain Jati. Dr. Ambedkar exclaimed that Jati is not in the blood but it is in the mind. Ambedkar wanted the

caste system to be mobile, non-rigid, and above all a person's worth must not be decided over her/his birth but by the deeds.

True meaning of Religion

Babasaheb Ambedkar has vehemently criticized the on-going fanaticism, bigotry and superstitions propagated by misinterpretation of religion. Ambedkar questioned the unjust obligations that are propagated through religion, for him religion must be accord with morality. He believed that the purpose of religion is to keep the society in a balanced position therefore he quoted "Without religion, society will be like a ship without a compass" (Ambedkar, 1989) [9]. Similarly, against prevailing superstitions he exclaimed "The religion that prohibits free enquiry into its tenets is not a religion but a superstition" (Ambedkar, 1989) [10]. "Religion must mainly be a matter of principles only. It cannot be a matter of rules" (Ambedkar, 1936, p. 75) [11]. All these quotations are reflections of the notion that in order to follow religious duties everyday one must look and serve the needy, the poor, the one who is asking for help. Without serving humans, no religion is justified by its principles. For Babasaheb, only religion that could sustain as eternal- must speak about humans. The religion which spreads the message of fraternity, equality and liberal views is going to stay forever.

Conclusion

For the sake of humanity, Neo-Buddhism evolved as one such religion that became saviour of the people who were bound by the shackles of sectarianism, bigotry and fanaticism. People have always been segregated due to the rigid, irrational beliefs they hold as truth. Dr. B. R. Ambedkar not only propagated the spirit of fraternity but also with the establishment of a distinct school he gave the uprooted soul, a place of their own. Neo-Buddhism gave the dehumanized people the rights they have longed for ages. Through his tremendous efforts Dr. Ambedkar proposed a 6E model for the holistic development of the society, which includes- **Eradicate caste system, educate all, Equanimity, Empower, Empathy and Economic Security.** Neo-Buddhism originated in order to give millions of

untouchables their basic human dignity, the equal opportunities, the equal status-quo in the society and above all the feeling on non-degeneration. The motto of Neo-Buddhism is based upon **Prajya, Karuna** and **Samata** i.e. **Wisdom, Compassion** and **Equality**. "I prefer Buddhism because it gives three principles in combination which no other religion does. Buddhism teaches Prajna, Karuna and Samata" (Ambedkar, 1956, p. 155) [12]. These three principles are the heart of Neo-Buddhism, because what Babasaheb searched for nearly 20 years after his announcement of not to die as a Hindu, though he was born as a Hindu on 13th oct, 1935- "I was born a Hindu, but I will not die a Hindu" (Ambedkar, 1935, p. 23) [13], he found the essence of his principles in Buddhism. Acknowledging Buddhism, Babasaheb Ambedkar said- "The greatest thing that the Buddha has done to tell the world that it can be governed without God" (Ambedkar, 1935) [14]. What I can interpret from this quotation is that- the humans should live for their fellow beings, not just for themselves or being devoted to an uncertain entity. I must conclude this paper saying that Navayana Buddhism has been a trailblazer for its millions of followers, and the purpose of establishing this school has been successful.

References

1. Ambedkar, B. R. (1987). Dr. Babasaheb Ambedkar: Writings and speeches. Government of Maharashtra.
2. Ambedkar, B. R. (1957). The Buddha and His Dhamma. Siddharth College Publications
3. Ambedkar, B. R. (1995). Dr. Babasaheb Ambedkar: Writings and speeches. Government of Maharashtra.
4. Ambedkar, B. R. (2004). Annihilation of caste. Columbia University.
5. Ambedkar, B. R. (1995). Dr. Babasaheb Ambedkar: Writings and speeches. Government of Maharashtra.
6. Ambedkar, B. R. (1942). Dr. Babasaheb Ambedkar: Writings and speeches.

Government of Maharashtra.

7. Ambedkar, B. R. (1916). Castes in India: Their Mechanism, Genesis and Development Government of India.
8. Ambedkar, B. R. (1936). Annihilation of caste. Government of India.
9. Ambedkar, B. R. (1989). Dr. Babasaheb Ambedkar: Writings and speeches. Education Department, Government of Maharashtra.
10. Ambedkar, B. R. (1989). Dr. Babasaheb Ambedkar: Writings and speeches. Education Department, Government of Maharashtra.
11. Ambedkar, B. R. (1936). Annihilation of caste. Government of India.
12. Ambedkar, B. R. (1956). Why I like Buddhism (BBC broadcast speech).
13. Ambedkar, B. R. (1935). Dr. Babasaheb Ambedkar: Writings and speeches. Education Department, Government of Maharashtra.
14. Ambedkar, B. R. (1935). Dr. Babasaheb Ambedkar: Writings and speeches. Education Department, Government of Maharashtra.

ग्रामीण विकासाचा दृष्टिकोन, पंचायतराज आणि स्थानिक प्रशासनाची भूमिका

डॉ. कादरी मुजतबा एस. अहेमदुल्हा
प्राध्यापक व विभाग प्रमुख
राज्यशास्त्र मौलाना आझाद आर्ट्स,
कॉमर्स अँडसायन्स कॉलेज,
छत्रपती संभाजीनगर

संजीव पांडुरंग सारक
राज्यशास्त्र विभाग,
विवेकानंद कला, सरदार दिलीप सिंग
वाणिज्य आणि विज्ञान महाविद्यालय,
छ. संभाजीनगर

गोषवारा :

भारत हा लोकसंख्येच्या दृष्टीने जगातील प्रथम क्रमांकाचा देश आहे. भारतातील 71 टक्के लोकसंख्या ग्रामीण भागात वास्तव्य करते. 2011 च्या जनगणनेनुसार भारतात जवळपास 5 लाख 93 हजार 731 खेडे आहेत. भारताची अर्थव्यवस्था कृषी आधारित आहे. त्यामुळे कृषी व ग्रामीण भागातील विकासावर भारताचा विकास आधारलेला आहे. ग्रामीण भागातील पाणी, रस्ते, वीज, आरोग्य, शिक्षण आणि आवास या मूलभूत बाबीकडे स्थानिक प्रशासनाला जातीने लक्ष द्यावे लागते. भारत स्वतंत्र झाल्याच्या सुरुवातीच्या काळात ग्रामीण भागातील प्रश्नाकडे लक्ष देण्यासाठी सक्षम यंत्रणेचा अभाव होता. ज्यामुळे सामुदायिक विकास कार्यक्रम अयशस्वी झाला याचे मूल्यमापन करण्यासाठी विविध समीत्याची निर्मिती करण्यात आली ज्यामध्येबलवंतराव मेहता समितीचा समावेश होता. बलवंतराव मेहता समितीने लोकशाहीचे विकेंद्रीकरण करणारी त्रिस्तरीय पंचायत राजची शिफारस केली. भारताचे पहिले पंतप्रधान जवाहरलाल नेहरूंनी ग्रामीण विकासाचे पंचायतराज मॉडल स्वीकारले आणि या पंचायत राजचा श्री गणेशा राजस्थान मधील नागौर येथे 2 ऑक्टोंबर 1959 रोजी पंडित नेहरू च्या हस्ते करण्यात आला. पंचायत राज मध्ये शहरी व ग्रामीण असे दोन भाग करण्यात आले. ग्रामीण मध्ये जिल्हा परिषद, पंचायत समिती व ग्रामपंचायत, शहरी मध्ये महानगरपालिका, नगरपालिका, नगरपरिषदा, छावणी बोर्ड, कटक मंडळे आणि विशेष प्राधिकरणे इत्यादीचा समावेश होतो.

महाराष्ट्र राज्याची स्थापना 1 मे 1960 रोजी करण्यात आली आणि महाराष्ट्रामध्ये 1 मे 1962 पासून त्रिस्तरीय पंचायत राज लागू करण्यात आले. त्यामध्ये ग्रामपंचायत, पंचायत समिती आणि जिल्हा परिषद यांचा समावेश होतो. सुरुवातीला पंचायतराज संस्थेकडे बघण्याचा लोकांचा आणि प्रशासनाचा दृष्टिकोन नकारात्मक आणि उदासीन होता, परंतु 1993साली 73 व्या घटनादुरुस्तीने पंचायत राजला घटनात्मक दर्जा मिळाल्या पासून पंचायतराज मध्ये लोकांचा सहभाग वाढला आणि प्रशासनाच्या भूमिकेमध्ये महत्त्वपूर्ण बदल झाला. ग्रामसभेला महत्त्वपूर्ण अधिकार देण्यात आले सार्वजनिक निवडणूक, कार्यकाळ, वित्त आयोग, अनुसूचित जाती व अनुसूचित जमातीसाठी 1/3आरक्षणाची व्यवस्था आणि महिलांसाठी 50% पंचायतराज मध्ये आरक्षणाची व्यवस्था करण्यात आली. ज्यामुळे पंचायतराज मध्ये लोकांचा लक्षणीय सहभाग वाढला. ग्रामपंचायतींना विकासासाठी निधीची तरतूद करण्यात आली आदर्श ग्रामपंचायत पुरस्कार, आदर्श सरपंच पुरस्कार, आदर्श जिल्हा परिषद पुरस्कार देण्याची व्यवस्था केल्याने पंचायत राज मध्ये लोकांचा सहभाग आणि प्रशासनाची भूमिका येथे समोर येत आहे ज्यामुळे ग्रामीण विकासाला चालना मिळत आहे.

प्रस्तावना :

भारतातील पंचायत राज संस्थांचा इतिहास हा अति प्राचीन आहे. प्राचीन काळापासून ग्रामीण समाज जीवनात पंचायत संस्थांचे अनन्य साधारण महत्त्व राहिलेले आहे. काळानुरूप पंचायतराज संस्थांचे नाव व स्वरूप बदलत गेले. वैदिक काळात 'ग्रामीणी' म्हटले जात होते ब्रिटिश कालखंडामध्ये स्थानिक स्वराज्य संस्था आणि स्वातंत्र्योत्तर भारतात 'पंचायतराज' असे म्हटले जाते. प्राचीन काळात गावाचा कारभार पंचायत कडून चालविला जात असे. ग्रामीण भागाचे विकासासाठी पंचायत राज संस्था जीवन वाहिन्या ठरल्या आहेत ग्रामीण भागाच्या विकासावरच भारताचा संपूर्ण विकास अवलंबून आहे. म्हणून गांधीजींनी म्हटले 'गावे नष्ट झाले तर भारत नष्ट होईल' या विचारातील वास्तवतेमुळे स्वातंत्र्योत्तर भारतात 'पंचायतराज' अस्तित्वात आले आणि आधुनिक काळात त्या सक्षम बनवण्याकडे सरकारचा कल राहिलेला आहे.

भारतीय संविधान निर्मात्यांनी संविधानामध्ये असे निर्देशित केले आहे की, राज्य ग्रामपंचायतच्या स्थापनेसाठी प्रयत्न करील आणि त्यांना एवढी शक्ती आणि अधिकार प्रदान करेल की, त्या सक्षमपणे काम करू शकतील.[1] स्वतंत्र प्राप्तीनंतर पहिल्या पंचवार्षिक योजनेच्या काळात ग्रामीण जनतेचे कल्याण साधण्यासाठी सामुदायिक विकास कार्यक्रम राबविण्याचा निर्णय केंद्र सरकारने घेतला परंतु जनतेच्या असहभागामुळे ते यशस्वी झाले नाही. याची कारण मिमांसा करण्यासाठी 1957 साली बलवंतराय मेहता समितीची स्थापना करण्यात आली.[2] या समितीने पंचायतराज संस्थेला प्रबळ करण्यासाठी लोकशाही विकेंद्रीकरणाची आवश्यकता आणि पंचायतराज संस्थेला आपल्या समस्या

स्थानिक पातळीवर सोडविण्यासाठी काही प्रमाणात अधिकार देण्याची शिफारस केली. त्याचबरोबर त्रिस्तरीय पंचायत राज व्यवस्था स्वीकारण्याची ज्यामध्ये जिल्हा परिषद, पंचायत समिती, ग्रामपंचायत यांचा समावेश असेल अशी शिफारस असणारा अहवाल केंद्र सरकारला सादर केला.

भारतामध्ये प्रामुख्याने स्थानिक स्वराज्य संस्थांना दोन भागांमध्ये विभागले जाते. ग्रामीण स्थानिक स्वराज्य संस्था त्यामध्ये ग्रामस्तर ग्रामपंचायत, तालुकास्तर पंचायत समिती, आणि जिल्हास्तर जिल्हा परिषद तर नागरी स्थानिक स्वराज्य संस्थांमध्ये महानगरपालिका, नगरपालिका, नगरपरिषद, औद्योगिक नगरी, पोर्ट ट्रस्ट, कटक मंडळे, नोटिफाईड एरिया, कमिटी आणि विशेष उद्देश अधिकरण इत्यादीचा समावेश होतो. 1952 ते 1960 पर्यंत स्थानिक प्रशासनाची ग्रामीण विकासाच्या संदर्भात नकारात्मक भूमिका होती. त्यामुळे स्थानिक लोकांचा सहभाग मिळाला नाही. सदरील काळात नोकरशाही हुकूमशहा आणि विश्वस्ताच्या भूमिकेत होते. बलवंत राय मेहता समितीचा अहवाल स्वीकारल्यानंतर आणि 1993 साली झालेल्या 73 व्या आणि 74 व्या घटनादुरुस्तीने प्रशासनाच्या भूमिकेमध्ये अमुलाग्र बदल झाला. यासंदर्भात पंडित नेहरूचे स्पष्ट मत होते की, गावातील लोकांना संपूर्ण अधिकार देण्यात यावे त्यांनी चुका केल्या तरी काही घाबरण्याचे कारण नाही.महात्मा गांधीजींनी खेड्यांना संपूर्ण अधिकार देण्याबरोबरच ग्रामविकासाची संकल्पना मांडली.

महाराष्ट्र राज्याची स्थापना :

1 मे 1960 रोजी महाराष्ट्र राज्याची निर्मिती वसंतराव नाईक समितीने झाली. महाराष्ट्रमध्ये स्थानिक स्वराज्य संस्थांचे मॉडेल कोणते असावे या संदर्भात विचार करण्यासाठी 22 जून 1960 रोजी वसंतराव नाईक समितीची स्थापना करण्यात आली. या समितीने बलवंतराव मेहता यांनी सुचविलेल्या शिफारशीचा सखोल अभ्यास करून आपल्या 226 शिफारसी महाराष्ट्र सरकारला सादर केल्या. महाराष्ट्र सरकारने वसंतराव नाईक समितीच्या शिफारशीवरून महाराष्ट्र जिल्हा परिषद व पंचायत समिती अधिनियम 1961 असा कायदा केला आणि या कायद्यास 5 मार्च 1962 रोजी राष्ट्रपती कडून मंजुरी मिळाली आणि 1 मे 1962 पासून महाराष्ट्रातील पंचायत राज व्यवस्था अस्तित्वात आली.[3]

73 वी घटना दुरुस्ती व ग्रामीण विकास :

पंचायतराज व्यवस्थेचा घटनात्मक बदल म्हणजे 24 एप्रिल 1993 रोजी 73 वी घटना दुरुस्ती पंचायतराजसाठी मैलाचा दगड ठरली. या घटना दुरुस्तीने पंचायतराज व्यवस्थेला घटनात्मक दर्जा देऊन ग्रामीण विकासाच्या राजकारणाचा मार्ग मोकळा केला.[4] प्रस्थापित राजकारण मोडीत काढून सर्वसमावेशक राजकारणाची नीव टाकली. राजकारणाचे सूत्र ग्रामीण विकासाभोवती फिरू लागले. आणि लोकशाही विकेंद्रीकरणाची प्रक्रिया यामुळे अधिक गतिमान होण्यास मदत झाली. 73 व्या

घटनादुरुस्तीने पंचायत राजला स्वायत्त देण्यात आली लोकसंख्येच्या आधारावर अनुसूचित जाती आणि अनुसूचित जमातीला आरक्षणाची तरतूद करण्यात आली स्त्रियांना 1/3 आरक्षण दिले गेले. वर्षानुवर्षे जंगलात पाड्यात आपले जीवन व्यतीत करणारा आदिवासी आज सक्रिय राजकारणात आला. चार भिंतीच्या आत आपलं विश्व समजणारी स्त्री पुरुषाबरोबर खांद्याला खांदा लावून सक्रिय राजकारणात भाग घेऊ लागली. राष्ट्रीय राजकारणाला स्थानिक राजकारण प्रमाणित करू लागल्याने राष्ट्रीय राजकारणात प्रादेशिक पक्षा च्या नेतृत्वाचा प्रभाव वाढला.

पंचायतराज व्यवस्थेने आता राष्ट्रीय आणि प्रादेशिक राजकारणाचे लक्ष आपल्याकडे वळवले आहे. सत्तेच्या विकेंद्रीकरणामुळे पंचायत राज ला महत्त्व प्राप्त झाले. ग्रामीण विकासाबद्दल जनता सजग झाली. शिक्षण, आरोग्य, पाणी, कृषी, इत्यादी ग्रामीण समस्या सोडविण्यासाठी ग्रामविकासाचे राजकारण समोर येत आहे. 73 व्या घटनादुरुस्ती पूर्वीच्या सहभागापेक्षा कितीतरी पटीने लोकांचा सहभाग वाढला आणि राष्ट्रीय नेतृत्वाला जाणीवपूर्व पंचायतराज राजकारणाकडे लक्ष द्यावे लागत आहे. राष्ट्रीय निवडणुकापेक्षा पंचायतराजच्या निवडणुका अधिक चुरशीच्या होत आहेत. त्यामुळे 73 वी घटनादुरुस्ती ग्रामीण विकासाच्या राजकारणाला व नेतृत्वाला पोषक ठरली.

संशोधनाची उद्दिष्टे :

प्रस्तुत संशोधनासाची उद्दिष्टे पुढील प्रमाणे आहेत.

1. ग्रामीण विकासाचा दृष्टिकोन अभ्यासणे.
2. पंचायत राजची ग्रामीण विकासातील भूमिका अभ्यासणे.
3. ग्रामीण विकासाचा प्रशासनीक दृष्टिकोन अभ्यासणे.

संशोधन पद्धती :

प्रस्तुत संशोधनासाठी विश्लेषणात्मक व ऐतिहासिक संशोधन पद्धतीचा उपयोग करण्यात आला आहे. त्याचबरोबर प्राथमिक साधनांमध्ये महाराष्ट्र शासनाचे राजपत्र, शासकीय स्तरावरील आकडेवारी, प्रश्नावली, मुलाखत इत्यादी आणि दुय्यम साधनांमध्ये सदरील विषयावर आधारित विविध लेखनाचे ग्रंथ, संशोधन पेपर, प्रकाशित अप्रकाशित शोध प्रबंध, नियतकालिके, वर्तमानपत्रे इत्यादीचा आधार घेतला आहे.

प्रशासनाच्या भूमिकेमध्ये झालेला बदल :

भारताला 15 ऑगस्ट 1947 ला स्वातंत्र्य मिळाले. पहिल्या स्वातंत्र्य भारताच्या निवडणुका 1951-52 साली झाल्या. त्यानंतर पंडित नेहरू सरकार सत्तेवर आले.[5] त्यांनी समुदायिक विकास

कार्यक्रम हाती घेतला, परंतु प्रशासनाकडे सक्षम यंत्रणा नव्हती, प्रगतिक विचाराचा अभाव होता. प्रशासन एका विश्वस्तच्या भूमिकेमधून काम करीत होते परंतु 1960 नंतर प्रशासनाच्या या भूमिकेमध्ये थोडाफार बदल झाला. सत्तेचे विकेंद्रीकरण झाले, जबाबदारीची तत्त्व प्रशासकीय यंत्रणेवर टाकण्यात आले. 1960 नंतर भारतातील बऱ्याच राज्यांनी पंचायत राज स्वीकार केला विशेषता महाराष्ट्रात पंचायत राजने ग्रामीण विकासाला चालना देण्याचे काम केले. 1993 ला 73 वी घटना दुरुस्ती करून पंचायतराजला अधिक बळकट करण्यात आले लोकांचा राजकारणात सक्रिय सहभाग वाटला.[6] पारंपरिक प्रशासनाची जागा नवीन लोकप्रशासनाने घेतली जी पारंपारिक विचाराने आधुनिक यंत्रणेची कास धरली आहे. ह्याहीपुढे जाऊन डिजिटल प्रशासन संकल्पना समोर आली आहे. त्या माध्यमातून प्रशासन थेट लोकांशी संवाद, उद्भवलेल्या समस्या, तत्काळ सोडविण्यासाठी तत्पर झाली आहे. पंचायत राज मध्ये लोकांचा सहभाग वाढविण्यासाठी प्रशासन आदर्श सरपंच पुरस्कार, आदर्श सेवक पुरस्कार यांची व्यवस्था केली आहे.[7] त्यामुळे ग्रामीण विकासाला चालना मिळाली हा प्रशासनाच्या भूमिकेमध्ये झालेला महत्त्वपूर्ण बदल आहे.

सारांश :

भारताला स्वातंत्र्य प्राप्तीला 75 वर्षे पुर्ण होत आहेत. स्वातंत्र्याचा अमृत महोत्सव आपण साजरा करीत आहोत. हा महोत्सव खऱ्या अर्थाने तेव्हा साजरा करून जेव्हा ग्रामीण भागाचा सर्वांगीण विकास साध्य होईल. आजही बऱ्याच प्रमाणात शिक्षण, आरोग्य, रस्ते, वीज आणि आवासाच्या समस्या आहेत. गरिबी आणि श्रीमंतीची दरी वाढत आहे. या समस्यांची सोडवणूक केल्यास ग्रामीण विकासाला चालना मिळू शकतो यासाठी पंचायतराज आणि प्रशासनाने एकत्रित पणे काम करावे लागेल.

संदर्भ सुची :

1. भारत सरकार 2002, 'भारताचे सविधान' भारत सरकार विधी न्याय व कंपनी कार्य मंत्रालय शासकीय मध्यवर्ती मुद्रणालय मुंबई, पृ. क्र. 17.
2. मेहता बलवंतराय 1957, रिपोर्ट ऑफ स्टडी ग्रुप ऑन दि वर्किंग ऑफ द कम्यूनिटी प्रोजेक्ट ॲण्ड नॅशनल एक्सस्टेंशन सर्व्हिस, पृ. क्र. 03.
3. नाईक व्ही. पी. 1960, 'कमिटी ऑन डेमोक्रेटिक डिसेंट्रलायझेशन', पृ. क्र. 54.
4. भोळे भा. ल. 2003, 'भारतीय गणराज्याचे शासन आणि राजकारण 'पिंपळापुरे ॲण्ड कंपनी पब्लिकेशअर्स प्रथामावृत्ती, नागपूर, पृ. क्र. 357.

5. पाटिल मनोज 2007, 'नागरिकांमध्ये केंद्र व राज्य शासनाच्या विकासाच्या योजना' चौधरी लॉ पब्लिशअर्स, प्रथमावृत्ती पुणे, पृ. क्र. 05.
6. भोळे भा. ल. 2003, 'भारतीय गणराज्याचे शासन आणि राजकारण', 'पिंपळापुरे ॲण्ड कंपनी पब्लिशअर्स प्रथमावृत्ती, नागपूर, पृ. क्र. 354.
7. महाराष्ट्र शासनाचे 'योजना मासिक' फेब्रुवारी 2022, पृ. क्र. 07.

ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

Gendered Dimensions of Displacement: The Deterioration of Social Status and Economic Autonomy among Displaced Tribal Women

Dr. Amit Kumar Wadaskar
Guest Lecturer, Government College Dipka, Korba (C.G.)

Dr. Khushboo Sahu
Guest Lecturer, Government Naveen College, Chandrapur, Sakti (C.G.).

Abstract

This paper critically examines the gendered consequences of development-induced displacement (DID) among tribal communities in India, focusing on the acute deterioration of women's economic autonomy and social standing. Traditional tribal societies, particularly in the Central Indian belt, exhibit relatively egalitarian gender relations heavily anchored in forest-based economies and communal management of Common Property Resources (CPRs). However, forced relocation violently transitions these communities into market-driven, patriarchal agrarian or peri-urban wage economies. Utilizing secondary demographic data, sociological frameworks, and feminist political ecology, this study argues that displacement disproportionately marginalizes tribal women. The loss of bio-ecological access dismantles their roles as primary economic contributors, relegating them to the lowest tiers of unskilled, insecure wage labor. Furthermore, this transition acts as a catalyst for the fragmentation of traditional rural institutions—notably the shift from joint to nuclear families—which systematically isolates women from customary support networks and decision-making avenues. The paper concludes that current rehabilitation and resettlement

(R&R) policies remain fundamentally gender-blind. By treating households as unitary, male-headed entities, state apparatuses actively deepen the structural inequality faced by displaced tribal women, turning them into invisible casualties of national development.

Keywords: Development-Induced Displacement, Tribal Women, Economic Autonomy, Common Property Resources, Rural Social Systems, Bio-ecology, Patriarchy.

Introduction

The trajectory of post-colonial economic development in India has relied heavily on the aggressive extraction of natural resources and the construction of massive infrastructure projects. These projects—ranging from multipurpose hydroelectric dams and extensive mining operations to industrial corridors and wildlife sanctuaries—are overwhelmingly situated in the resource-rich hinterlands inhabited by India's indigenous (Adivasi) populations. Consequently, the pursuit of national modernization has necessitated the large-scale acquisition of ancestral lands, triggering an ongoing crisis of Development-Induced Displacement (DID).

While the socioeconomic shock of displacement destabilizes entire communities, sociological research increasingly demonstrates that the impacts of DID are profoundly and violently gendered. Tribal women experience a unique, compounding matrix of vulnerability. This vulnerability is not merely a byproduct of poverty, but a direct consequence of the intersection between their gender, their marginalized ethnic identity, and the sudden, forced severance from their foundational bio-ecological environment.

Historically, women in indigenous societies have navigated a social reality quite distinct from the mainstream patriarchal structures of caste-based agrarian societies. They have enjoyed a relatively higher social status and greater economic independence, largely derived from their central, indispensable roles in managing Common Property Resources (CPRs). Their labor—encompassing shifting

cultivation, the collection of Non-Timber Forest Products (NTFPs), and localized ecological management—forms the backbone of household subsistence.

This paper investigates the mechanisms through which the severance from this local bio-ecology acts as a catalyst for the rapid deterioration of tribal women's economic autonomy and social standing. By tracing the breakdown of traditional rural social systems, this study outlines the sociological process of patriarchal assimilation that forces displaced tribal women into the most exploitative sectors of the unorganized labor market.

Theoretical Framework and Methodology

To understand the multidimensional impact of displacement, this paper employs Michael Cernea's Impoverishment Risks and Reconstruction (IRR) model, adapting it through the lens of feminist political ecology. Cernea identifies eight core risks of displacement: landlessness, joblessness, homelessness, marginalization, food insecurity, increased morbidity and mortality, loss of access to common property, and social disarticulation.

When analyzed through a gendered perspective, it becomes evident that women bear the brunt of these specific risks. Feminist political ecology provides the necessary framework to understand how environmental changes and physical dislocation are not neutral events, but processes that restructure power dynamics, labor divisions, and property rights within the household. The methodology of this paper relies on a comprehensive review of secondary sociological literature, demographic data from state and independent reports, and ethnographical case studies focusing primarily on the tribal populations of Central India, where resource extraction and displacement are highly concentrated.

The Pre-Displacement Baseline: Women in the Rural Social System

To comprehend the magnitude of the loss experienced by displaced tribal women, it is essential to establish the baseline of their socio-economic standing within traditional rural systems prior to relocation.

1. **The Economy of the Forest**

In traditional Adivasi communities, the division of labor, while existing, is characterized by complementarity rather than rigid hierarchy. The forest is not merely a physical space but the foundation of the tribal economy and cosmology. Women are the primary interactors with this bio-ecological space. They possess generations of specialized knowledge regarding medicinal plants, seasonal foraging, and sustainable harvesting of NTFPs such as mahua, sal seeds, tendu leaves, and edible tubers.

Studies indicate that in many forest-dwelling communities, the income and subsistence goods generated by women's labor account for 50% to 80% of the household's total consumption. Because women directly control the processing and local sale of these forest products, they retain a high degree of economic autonomy. They do not have to ask for cash to meet daily household needs; they generate the means of survival independently.

2. **Social Status and Customary Rights**

This economic independence translates directly into social capital. While formal land titles may traditionally pass through male lineages in many tribes, women possess undeniable, culturally enforced customary rights to access, use, and manage common lands. The joint family structure and clan networks further ensure that widows, unmarried women, and separated women are not left destitute. Within community councils and informal dispute resolution mechanisms, older women often wield significant influence, grounded in their economic contributions and cultural knowledge.

The Mechanisms of Dispossession and Demographic Realities

Displacement effectively annihilates this complex socio-ecological web. The sheer scale of this dispossession highlights systemic marginalization. While

Adivasis constitute roughly 8.6% of the national population, they represent a staggering proportion of those displaced by development projects.

Table 1: Estimated Displacement by Project Type and Tribal Burden (Post-Independence Era)

Type of Development Project	Total Estimated Displaced (Millions)	Estimated Tribal Displaced (Millions)	Tribal % of Total Displaced
Dams & Irrigation	16.40	6.30	~38%
Mines	2.55	1.33	~52%
Industrial Development	1.25	0.31	~25%
Wildlife Sanctuaries/Parks	0.60	0.45	~75%
Total	**20.80**	**8.39**	**~40%**

*(**Note:** Data synthesized from the foundational estimates by Walter Fernandes and L.K. Mahapatra regarding the historical trajectory of DID. While modern gross figures have increased, the disproportionate tribal burden remains a constant sociological reality).*

When displacement occurs, the state's apparatus engages with the community through the lens of private property and formal legal titles, concepts largely alien to customary tribal land use.

The Gender-Blind Nature of Compensation

The Land Acquisition Acts utilized by the state focus compensation almost entirely on those holding formal patta (title deeds). Because tribal customary law and state revenue records historically recognize the male as the "head of the

household," monetary compensation and alternative land allotments are handed exclusively to men.

In a single bureaucratic stroke, the state invalidates women's customary rights to common property. The forest, which was the woman's domain of economic production, is destroyed, and the compensation for that destruction bypasses her entirely. She is abruptly transformed from an independent producer and resource manager into a legally landless dependent.

From Independent Producers to Unskilled Laborers: The Erosion of Autonomy

The transition from a forest-based subsistence economy to a cash-based, peri-urban or agrarian market economy is profoundly hostile to displaced women.

1. **The Crisis of Joblessness**

   Upon relocation to resettlement colonies—which are frequently barren, poorly planned, and disconnected from natural resources—the traditional skills of tribal women are rendered entirely obsolete. Knowledge of seed preservation, forest ecology, and shifting cultivation holds no market value in a mining town or a concrete resettlement grid.

   Without the forest to supply daily food, fuel, and fodder, the household requires immediate cash to survive. Men, holding the compensation money, often migrate for work or secure the few low-level jobs sometimes offered by the displacing industries (such as peons or sweepers in mining corporations). Women, however, are largely excluded from these formal employment opportunities due to lower literacy rates and gender biases in industrial hiring.

2. **Exploitation in the Unorganized Sector**

   Forced to contribute to the household's survival, displaced tribal women are pushed into the most precarious tiers of the unorganized labor sector. They

become domestic workers in nearby townships, casual laborers on construction sites, or workers in brick kilns.

In these environments, they face severe wage discrimination. Even when performing the same grueling physical labor as men in construction or agriculture, women are consistently paid a fraction of the male wage. Furthermore, working in unregulated sectors outside the safety of their traditional community exposes them to high risks of economic exploitation and sexual harassment by contractors and employers. The dignity of independent forest labor is replaced by the humiliation of subjugated wage labor.

Institutional Fragmentation: The Breakdown of Rural Social Systems

Displacement is a sociological earthquake that shatters the foundational institutions of rural life. The physical uprooting of a village rarely results in the community being resettled together in a cohesive manner. Families are scattered based on compensation status, land availability, and desperation.

Table 2: Institutional Shifts Post-Displacement

Sociological Indicator	Pre-Displacement Tribal Context	Post-Displacement Resettlement Context
Primary Family Structure	Extended/Joint Family Networks	Isolated Nuclear Families
Economic Unit	Communal labor and shared resources	Individual wage-earning
Conflict Resolution	Traditional Village Councils	Formal State Police/Judiciary
Women's Support System	Kinship groups, female peer networks	Highly fragmented, absent

1. **The Rise of the Nuclear Family and Female Isolation**

   One of the most immediate structural changes is the rapid disintegration of the joint family system. In traditional settings, the extended family acts as a crucial social safety net. Childcare, agricultural labor, and resource gathering are shared responsibilities, allowing women flexibility and mutual protection.

   In resettlement colonies, the pressure of a cash economy forces households to fragment into nuclear units. A woman in a nuclear setup in an alien environment finds herself completely isolated. She must manage the household, secure fuel and water (which now require long walks or cash payments), and attempt to earn wages, all without the support of her female kin.

2. **The Escalation of Domestic Violence**

   This isolation is dangerously coupled with shifting power dynamics. Stripped of her economic autonomy, the woman becomes financially dependent on her husband. Meanwhile, men in displaced communities often experience profound psychological trauma, loss of identity, and chronic unemployment. Sociological field studies consistently report that this toxic combination of male frustration, sudden influxes of cash compensation, and female dependence leads to a sharp escalation in alcoholism and domestic violence within displaced households. Without the traditional village elders and extended kin to intervene, women are left highly vulnerable to abuse.

Bio-Ecological Disruption and the Crisis of Social Reproduction

The sphere of social reproduction—the daily tasks required to maintain life, such as cooking, gathering water, and caring for the sick—is deeply tied to the local bio-ecology and falls overwhelmingly on women.

1. **The Burden of Fuel and Water**

   In their native environment, clear streams and abundant forests meant that gathering water and fuelwood, while physically demanding, was integrated into the daily rhythm of life. Displaced communities are frequently relocated to degraded lands or urban peripheries where basic amenities are virtually non-existent.

   Women are forced to walk significantly longer distances to fetch contaminated water or spend scarce household cash on fuel. This drudgery consumes hours of their day, severely limiting their ability to seek paid employment and physically exhausting them.

2. **Nutritional Deficits and Health Impacts**

   The loss of the forest precipitates a nutritional crisis. The traditional tribal diet is remarkably diverse, rich in micronutrients derived from wild vegetables, fruits, and small game. The cash economy forces a shift to a homogenous, market-dependent diet heavily reliant on subsidized carbohydrates like white rice or wheat, lacking vital proteins and vitamins.

   Due to patriarchal cultural norms that dictate women eat last and least during times of scarcity, displaced women bear the brunt of this nutritional collapse. Morbidity rates, severe anemia, and maternal mortality routinely spike in displaced tribal populations, reflecting a slow violence enacted upon women's bodies by poorly planned development.

Cultural Alienation and the Erasure of Identity

Beyond economics and physical health, displacement inflicts a profound cultural trauma. Tribal women serve as the primary custodians of indigenous culture. They are the transmitters of language, folklore, traditional agricultural rituals, and folk medicine.

When the landscape that anchors these practices is destroyed, the culture itself begins to unravel. A woman whose identity is tied to her skill as an herbalist or a seed-keeper finds no respect or utility for these skills in a mining slum. The newer generation, born into displacement, looks toward mainstream urban culture, leading to an intergenerational disconnect. The older women suffer a total loss of intergenerational status and respect, culminating in a deep psychological alienation. They become strangers not only in their new physical environment but within their own evolving families.

Policy Critique: The Blind Spots of Rehabilitation and Resettlement (R&R)

The devastating outcomes outlined above are not inevitable accidents; they are the direct result of flawed, patriarchal state policies. A critical review of India's historical and contemporary R&R frameworks reveals a systemic failure to recognize the gendered reality of displacement.

1. **The "Head of Household" Paradigm:** State policies implicitly treat the household as a unitary, conflict-free entity headed by a benevolent male patriarch. By routing all compensation, land titles, and employment quotas through the male head, the state actively disempowers women, ignoring the reality that resources are not always distributed equitably within the family.
2. **Ignorance of Customary Rights:** By failing to quantify and compensate for the loss of Common Property Resources, policies essentially treat women's traditional labor and economic domain as legally non-existent and economically worthless.
3. **Focus on Cash over Community:** R&R policies heavily favor individual cash settlements rather than the holistic reconstruction of community infrastructure. Cash is easily squandered or captured by dominant male members, whereas communal resettlement with restored ecological access would protect the social networks vital to women's well-being.

Conclusion

Development-induced displacement acts as a forceful agent of involuntary, regressive social change for tribal communities. For Adivasi women, it is a process of systematic dispossession that forcibly assimilates them into the lowest strata of a patriarchal, capitalist system. The destruction of their bio-ecological base dismantles their economic autonomy, while the fragmentation of rural social systems strips them of their institutional protection and social status.

The trajectory of a displaced tribal woman—from an independent manager of forest resources and an equal partner in household subsistence, to an isolated, landless, unskilled wage laborer suffering from nutritional and cultural deprivation—is a glaring indictment of current development paradigms.

If equitable development is to be realized, it is imperative that future policy frameworks undergo a radical paradigm shift. Rehabilitation must move beyond the narrow, male-centric metrics of property titles and cash compensation. It requires recognizing women's customary rights, mandating joint-title compensation, and prioritizing the restoration of the communal and ecological spaces that form the bedrock of tribal women's autonomy. Until the gendered dimensions of displacement are fundamentally integrated into sociological planning and state policy, the burden of national "progress" will continue to be disproportionately subsidized by the silent suffering of marginalized women.

References

1. Agarwal, B. (1994). *A Field of One's Own: Gender and Land Rights in South Asia*. Cambridge University Press.
2. Cernea, M. M. (1997). The Risks and Reconstruction Model for Resettling Displaced Populations. *World Development*, 25(10), 1569-1587.
3. Cernea, M. M. (2000). Risks, Safeguards, and Reconstruction: A Model for Population Displacement and Resettlement. In *Risks and Reconstruction: Experiences of Resettlers and Refugees* (pp. 11-55). World Bank.

4. Fernandes, W. (2008). Sixty Years of Development-Induced Displacement in India: Scale, Impacts and the Search for Alternatives. In *Social Change*, 38(1), 89-122.
5. Fernandes, W., & Thukral, E. G. (Eds.). (1989). *Development, Displacement, and Rehabilitation: Issues for a National Debate*. Indian Social Institute.
6. Mahapatra, L. K. (1999). *Resettlement, Impoverishment and Reconstruction in India: Development for the Deprived*. Vikas Publishing House.
7. Mathur, H. M. (Ed.). (2006). *Managing Resettlement in India: Approaches, Issues, Experiences*. Oxford University Press.
8. Mehta, L. (2009). *Displaced by Development: Confronting Marginalisation and Gender Injustice*. Sage Publications.
9. Parasuraman, S. (1999). *The Development Dilemma: Displacement in India*. Macmillan India.
10. Xaxa, V. (2008). *State, Society, and Tribes: Issues in Post-Colonial India*. Pearson Education India.

ISSN :3049-334X
वर्ष 03 - अंक 01 जनवरी - अप्रैल 2026

साइबर बुलिंग और इसके समाजशास्त्रीय निहितार्थ: एक समीक्षात्मक विश्लेषण

गीतांजलि वर्मा
स्वतंत्र शोधकर्ता

सारांश

डिजिटल प्रौद्योगिकी के तीव्र विस्तार ने मानव संचार के स्वरूप को मौलिक रूप से बदल दिया है। इंटरनेट और सोशल मीडिया ने जहाँ सूचना के आदान-प्रदान को सुलभ बनाया है, वहीं इसने ऑनलाइन उत्पीड़न और हिंसा के नए स्वरूपों को भी जन्म दिया है। साइबर बुलिंग इन्हीं नए स्वरूपों में से एक है, जो डिजिटल प्रौद्योगिकी के माध्यम से किसी व्यक्ति को निशाना बनाकर उसे परेशान, अपमानित या डराने की प्रक्रिया है। यह शोध पत्र साइबर बुलिंग की अवधारणा, इसके स्वरूपों, मनोवैज्ञानिक प्रभावों तथा समाजशास्त्रीय निहितार्थों का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन में पाया गया कि साइबर बुलिंग पारंपरिक बुलिंग से भिन्न है क्योंकि यह चौबीसों घंटे उपलब्ध रहती है, इसमें अनामिकता का तत्व विद्यमान होता है, तथा इसका प्रभाव बड़े पैमाने पर फैल सकता है। शोध से स्पष्ट होता है कि साइबर बुलिंग के शिकार व्यक्तियों में अवसाद, चिंता, आत्महत्या के विचार और नींद संबंधी विकार जैसी गंभीर मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से, साइबर बुलिंग लैंगिक असमानता, जातीय भेदभाव, और सामाजिक बहिष्करण जैसी मौजूदा सामाजिक विषमताओं को डिजिटल स्थान में पुनरुत्पादित और सुदृढ़ करती है। भारत में साइबर बुलिंग से निपटने के लिए सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम (2000) और भारतीय दंड संहिता के प्रावधान विद्यमान हैं, परंतु एक समर्पित कानूनी ढाँचे का अभाव एक महत्वपूर्ण चुनौती है। निष्कर्ष बताते हैं कि साइबर बुलिंग केवल व्यक्तिगत समस्या नहीं, बल्कि एक व्यापक सामाजिक मुद्दा है जिसके समाधान हेतु बहुस्तरीय और एकीकृत दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

मुख्य शब्द: साइबर बुलिंग, डिजिटल हिंसा, समाजशास्त्रीय निहितार्थ, मानसिक स्वास्थ्य, सामाजिक असमानता, डिजिटल नागरिकता, ऑनलाइन उत्पीड़न।

परिचय

डिजिटल युग में इंटरनेट और सोशल मीडिया मानव जीवन का अभिन्न अंग बन गए हैं। विश्व बैंक के आँकड़ों के अनुसार, वर्ष 2023 तक वैश्विक स्तर पर लगभग 5.4 अरब लोग इंटरनेट का उपयोग कर रहे थे, जबकि भारत में यह संख्या 90 करोड़ से अधिक है। संचार के इस नए माध्यम ने जहाँ सूचना के आदान-प्रदान को सुलभ बनाया है, वहीं इसने ऑनलाइन उत्पीड़न और हिंसा के नए स्वरूपों को भी जन्म दिया है। साइबर बुलिंग इन्हीं नए स्वरूपों में से एक है, जो डिजिटल प्रौद्योगिकी के माध्यम से किसी व्यक्ति को निशाना बनाकर उसे परेशान, अपमानित या डराने की प्रक्रिया है। साइबर बुलिंग को पारंपरिक बुलिंग का डिजिटल विस्तार माना जा सकता है, परंतु इसकी विशेषताएँ इसे और अधिक विनाशकारी बनाती हैं। पारंपरिक बुलिंग आमतौर पर स्कूल या कार्यस्थल जैसे सीमित स्थानों तक सीमित रहती है, जबकि साइबर बुलिंग शिकार का पीछा हर जगह करती है—घर, स्कूल, कार्यस्थल, और यहाँ तक कि रात्रि के समय भी। यह न केवल मनोवैज्ञानिक आघात पहुँचाती है, बल्कि सामाजिक संबंधों, शैक्षिक प्रदर्शन और व्यावसायिक जीवन को भी गंभीर रूप से प्रभावित करती है।

साइबर बुलिंग एक बहुआयामी समस्या है जो मनोवैज्ञानिक, कानूनी और समाजशास्त्रीय आयामों को समाहित करती है। मनोवैज्ञानिक स्तर पर, यह शिकार में अवसाद, चिंता, आत्म-सम्मान में कमी और आत्महत्या के विचार तक उत्पन्न कर सकती है। कानूनी स्तर पर, भारत में साइबर बुलिंग से निपटने के लिए कोई समर्पित कानून नहीं है; इसके विरुद्ध कार्रवाई सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम (2000) और भारतीय दंड संहिता के विभिन्न प्रावधानों के माध्यम से की जाती है। समाजशास्त्रीय स्तर पर, साइबर बुलिंग विद्यमान सामाजिक असमानताओं—लैंगिक, जातीय, धार्मिक—को डिजिटल स्थान में प्रतिबिंबित और सुदृढ़ करती है। शोध से पता चलता है कि साइबर बुलिंग के शिकार बच्चों और किशोरों में आत्महत्या का जोखिम दोगुना हो जाता है। इसके अतिरिक्त, महिलाएँ और अल्पसंख्यक समुदायों के सदस्य साइबर बुलिंग और साइबर घृणा के अधिक शिकार होते हैं। इन तथ्यों के बावजूद, भारत में साइबर बुलिंग पर गहन समाजशास्त्रीय शोध का अभाव है। अतः यह आवश्यक है कि साइबर बुलिंग को केवल व्यक्तिगत मनोवैज्ञानिक समस्या न मानकर एक व्यापक सामाजिक मुद्दे के रूप में समझा जाए।

इस शोध पत्र में निम्नलिखित शोध प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास किया गया है: साइबर बुलिंग की अवधारणा और इसके प्रमुख स्वरूप क्या हैं? साइबर बुलिंग के मनोवैज्ञानिक और सामाजिक प्रभाव क्या हैं? साइबर बुलिंग के समाजशास्त्रीय निहितार्थ क्या हैं? भारत में साइबर बुलिंग से निपटने के लिए विद्यमान कानूनी ढाँचा कितना प्रभावी है? साइबर बुलिंग की रोकथाम के लिए किस प्रकार की बहुआयामी रणनीति आवश्यक है? इस शोध पत्र के प्रमुख उद्देश्यों में साइबर बुलिंग की अवधारणात्मक और सैद्धांतिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण करना, इसके विभिन्न स्वरूपों और उनकी विशेषताओं की पहचान

करना, इसके मनोवैज्ञानिक और सामाजिक प्रभावों का अध्ययन करना, इसके समाजशास्त्रीय निहितार्थों को उजागर करना, तथा भारत में विद्यमान कानूनी ढाँचे की समीक्षा करना और सुधार के सुझाव प्रस्तुत करना शामिल है। यह शोध पत्र मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों—शोध पत्रों, सरकारी रिपोर्टों, अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के प्रकाशनों और समाचार लेखों—पर आधारित है। प्राथमिक सर्वेक्षण का अभाव इस अध्ययन की प्रमुख सीमा है। इसके अतिरिक्त, साइबर बुलिंग का क्षेत्र अत्यंत गतिशील है, अतः समय के साथ इसके स्वरूप और प्रभाव परिवर्तित हो सकते हैं। यह शोध पत्र पाँच प्रमुख भागों में विभाजित है। प्रथम भाग में परिचय, समस्या कथन, शोध प्रश्न और उद्देश्य प्रस्तुत किए गए हैं। द्वितीय भाग में साहित्य समीक्षा के माध्यम से साइबर बुलिंग से संबंधित विद्यमान शोध का विश्लेषण किया गया है। तृतीय भाग में शोध पद्धति का वर्णन है। चतुर्थ भाग में विश्लेषण और निष्कर्ष प्रस्तुत किए गए हैं। पंचम भाग में नीतिगत सुझाव और भविष्य की शोध दिशाएँ प्रस्तुत की गई हैं।

साहित्य समीक्षा

साइबर बुलिंग पर विद्यमान साहित्य को मोटे तौर पर चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है: अवधारणात्मक और परिभाषात्मक अध्ययन, मनोवैज्ञानिक प्रभावों पर केंद्रित अध्ययन, समाजशास्त्रीय और लैंगिक आयामों पर केंद्रित अध्ययन, तथा कानूनी और नीतिगत ढाँचे संबंधी अध्ययन। साइबर बुलिंग की परिभाषा को लेकर शोधकर्ताओं के बीच आम सहमति का अभाव है। रोगेनडॉर्फ और वोल्कोव (2025) ने अपने अध्ययन में इस बात पर बल दिया कि साइबर बुलिंग की परिभाषा में एकरूपता का अभाव इस अवधारणा को और अधिक जटिल बनाता है। उनके अनुसार, सामाजिक-सूचनात्मक वातावरण की तटस्थता को समझना आवश्यक है, क्योंकि डिजिटल स्थान विद्यमान सामाजिक शक्ति संरचनाओं को प्रतिबिंबित करते हैं। विक्टोरिया सरकार की परिभाषा के अनुसार, साइबर बुलिंग में मोबाइल फोन, ईमेल और सोशल मीडिया टूल्स के माध्यम से उत्पीड़न शामिल है। इसके प्रमुख स्वरूपों में प्रैंक कॉल, बिना अनुमति के निजी तस्वीरें साझा करना, अपमानजनक संदेश भेजना, ऑनलाइन अफवाहें फैलाना, और किसी की पहचान चुराकर उसका बदनाम करना शामिल है।

पारंपरिक बुलिंग और साइबर बुलिंग के बीच महत्वपूर्ण अंतर हैं। साइबर बुलिंग अत्यंत आक्रामक होती है—इससे बचना कठिन होता है और यह घर जैसे सुरक्षित स्थानों तक भी पहुँच जाती है। इसमें बड़े पैमाने पर दर्शक शामिल हो सकते हैं, क्योंकि हानिकारक सामग्री सार्वजनिक फोरम पर तेजी से फैलाई जा सकती है। साइबर बुलिंग में अनामिकता का तत्व विद्यमान होता है, जिससे अपराधी को दूरी और सुरक्षा का भ्रम होता है। साइबर बुलिंग के मनोवैज्ञानिक प्रभावों पर विद्यमान शोध चिंताजनक निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं। एक व्यवस्थित समीक्षा के अनुसार, साइबर बुलिंग के छह प्रमुख स्वरूप पाए गए: फ्लेमिंग, उत्पीड़न, बदनामी, आउटिंग, प्रतिरूपण, और छल। इनके मनोवैज्ञानिक प्रभावों में अवसाद, चिंता,

मनोवैज्ञानिक व्यथा, आत्महत्या के विचार और नींद संबंधी विकार शामिल हैं। इन प्रभावों को मध्यस्थता करने वाले तकनीकी कारकों में ऑनलाइन अनामिकता और अवरोधन प्रभाव प्रमुख हैं। शोध से पता चलता है कि साइबर बुलिंग का शिकार होने वाले बच्चों और किशोरों में आत्महत्या का जोखिम दोगुना हो जाता है। स्वानसी विश्वविद्यालय, ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय और बर्मिंघम विश्वविद्यालय के शोधकर्ताओं द्वारा 21 वर्ष की अवधि में लगभग डेढ़ लाख बच्चों और किशोरों पर किए गए अध्ययन में यह निष्कर्ष निकाला गया।

साइबर बुलिंग के समाजशास्त्रीय आयामों पर केंद्रित शोध बताते हैं कि यह केवल व्यक्तिगत समस्या नहीं, बल्कि व्यापक सामाजिक विषमताओं का प्रतिबिंब है। नेचर जर्नल में प्रकाशित एक अध्ययन के अनुसार, साइबर बुलिंग और साइबर घृणा के शिकार होने के प्रमुख कारकों में लिंग, प्रवासन पृष्ठभूमि, धर्म और राजनीतिक सक्रियता शामिल हैं। लैंगिक आयाम पर शोध बताता है कि महिलाएँ और लड़कियाँ साइबर बुलिंग की अधिक शिकार होती हैं। ज़ाबोर्स्किस एवं अन्य (2019) के अनुसार, महिलाएँ साइबर बुलिंग का लक्ष्य बनने की अधिक संभावना रखती हैं, जबकि पैचिन और हिंदुजा (2022) बताते हैं कि पुरुष साइबर बुलिंग करने वाले अधिक होते हैं। शोध यह भी दर्शाता है कि महिलाएँ अवसाद, सामाजिक चिंता, अकेलापन और निम्न आत्म-सम्मान जैसी मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं का अधिक सामना करती हैं। साइबर बुलिंग और साइबर घृणा के बीच गहरा संबंध है। नेचर जर्नल के अध्ययन के अनुसार, ऑनलाइन मिसोजिनी लैंगिक शक्ति संबंधों को हिंसक रूप से सुदृढ़ करने का साधन बन जाती है। सोशल मीडिया पर महिलाओं के प्रति हिंसक ट्वीट्स पारंपरिक स्त्रीलिंग मानदंडों और रूढ़ियों को मजबूत करते हैं। टेलर एंड फ्रांसिस जर्नल में प्रकाशित एक समीक्षा में साइबर बुलिंग को एक वैश्विक सार्वजनिक स्वास्थ्य चिंता और सामाजिक मुद्दा बताया गया है जो दुनिया भर के किशोरों के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य, शैक्षिक और व्यवहारिक परिणामों को प्रभावित करता है। अध्ययन में इस बात पर बल दिया गया है कि साइबर बुलिंग पर शोध को केवल व्यक्तिगत स्तर तक सीमित न रखकर व्यापक सामाजिक और सतत विकास के दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए।

भारत में साइबर बुलिंग से निपटने के लिए कोई समर्पित कानून नहीं है। इसके विरुद्ध कार्रवाई सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम (2000) और भारतीय दंड संहिता के प्रावधानों के माध्यम से की जाती है। सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम की धारा 66A अपमानजनक संदेश भेजने पर तीन वर्ष तक की सजा का प्रावधान करती है। धारा 67 अश्लील सामग्री के प्रकाशन से संबंधित है। हालाँकि, शीर्ष अदालत ने धारा 66A को असांविधानिक घोषित कर दिया है। भारतीय दंड संहिता की धारा 509 महिलाओं की मर्यादा भंग करने से संबंधित है। इसके अतिरिक्त, आईपीसी की धारा 499 (मानहानि), 503 (आपराधिक धमकी), और 507 (अज्ञात धमकी) जैसे प्रावधान भी साइबर बुलिंग के मामलों में लागू हो सकते हैं। साइबर

बुलिंग के कानूनी पहलुओं पर केंद्रित एक अध्ययन के अनुसार, भारत में साइबर बुलिंग के मामलों में प्राथमिकी दर्ज कराना और कानूनी कार्रवाई करना अत्यंत जटिल प्रक्रिया है। शोध से पता चलता है कि पुलिस और अदालतों में साइबर अपराधों के मामलों की सुनवाई में देरी और तकनीकी ज्ञान की कमी के कारण पीड़ितों को न्याय मिलने में कठिनाई होती है।

उपरोक्त साहित्य समीक्षा से स्पष्ट होता है कि साइबर बुलिंग पर विद्यमान शोध मुख्यतः चार आयामों पर केंद्रित है: अवधारणात्मक ढाँचा, मनोवैज्ञानिक प्रभाव, समाजशास्त्रीय आयाम, और कानूनी ढाँचा। विद्यमान साहित्य में निम्नलिखित अंतराल पाए गए: भारतीय संदर्भ में साइबर बुलिंग के समाजशास्त्रीय निहितार्थों पर गहन शोध का अभाव है; साइबर बुलिंग के लैंगिक और जातीय आयामों पर भारत-केंद्रित अध्ययनों की कमी है; साइबर बुलिंग के दीर्घकालिक सामाजिक प्रभावों पर अनुदैर्ध्य अध्ययनों की आवश्यकता है; डिजिटल नागरिकता शिक्षा और साइबर बुलिंग रोकथाम के लिए प्रभावी हस्तक्षेपों का मूल्यांकन अभी तक नहीं हुआ है; तथा साइबर बुलिंग और सामाजिक बहिष्करण के बीच संबंधों पर अंतरानुशासनिक शोध की आवश्यकता है।

शोध पद्धति

यह शोध पत्र वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक शोध डिज़ाइन पर आधारित है। अध्ययन में साइबर बुलिंग की अवधारणा, स्वरूप, मनोवैज्ञानिक प्रभाव, समाजशास्त्रीय निहितार्थ और नीतिगत ढाँचे का विश्लेषण किया गया है। शोध में मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है, जिनमें अकादमिक शोध पत्र (साइबर बुलिंग, डिजिटल हिंसा, मानसिक स्वास्थ्य और समाजशास्त्र से संबंधित पीयर-रिव्यूड जर्नल लेख), सरकारी रिपोर्टें (भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों और विभागों के प्रकाशन), अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के प्रकाशन (विश्व स्वास्थ्य संगठन, संयुक्त राष्ट्र, और अन्य संस्थाओं की रिपोर्टें), नीतिगत दस्तावेज़ (सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम, 2000, भारतीय दंड संहिता, और अन्य संबंधित कानूनी दस्तावेज़), तथा समाचार लेख और रिपोर्टें (प्रमुख समाचार पत्रों और ऑनलाइन पोर्टल्स से प्राप्त जानकारी) शामिल हैं। शोध में विषय-वस्तु विश्लेषण विधि का उपयोग किया गया है। द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त जानकारी को व्यवस्थित रूप से वर्गीकृत किया गया और प्रमुख विषयों—स्वरूप, प्रभाव, समाजशास्त्रीय निहितार्थ, नीतिगत ढाँचा—के आधार पर विश्लेषण किया गया। तुलनात्मक विश्लेषण के माध्यम से भारतीय संदर्भ की विशिष्टताओं को रेखांकित किया गया। इस शोध की प्रमुख सीमाएँ निम्नलिखित हैं: प्राथमिक सर्वेक्षण का अभाव, भौगोलिक सीमा (अध्ययन मुख्यतः भारतीय संदर्भ पर केंद्रित है), समय सीमा (साइबर बुलिंग का क्षेत्र अत्यंत गतिशील है), तथा आयु वर्ग की सीमा (अध्ययन मुख्यतः बच्चों और किशोरों पर केंद्रित है)।

विश्लेषण और निष्कर्ष

साइबर बुलिंग डिजिटल प्रौद्योगिकी के माध्यम से किसी व्यक्ति को निशाना बनाकर उसे परेशान, अपमानित, धमकाया या बदनाम करने की प्रक्रिया है। यह पारंपरिक बुलिंग से इस मायने में भिन्न है कि यह चौबीसों घंटे उपलब्ध रहती है, इसमें अनामिकता का तत्व विद्यमान होता है, और इसका प्रभाव बड़े पैमाने पर फैल सकता है। साइबर बुलिंग के प्रमुख स्वरूपों में फ्लेमिंग (आक्रामक और उत्तेजक संदेश भेजना), उत्पीड़न (बार-बार अपमानजनक या धमकी भरे संदेश भेजना), बदनामी (झूठी या अपमानजनक जानकारी फैलाना), आउटिंग (निजी जानकारी सार्वजनिक करना), प्रतिरूपण (किसी और की पहचान चुराकर उत्पीड़न), छल (धोखे से निजी जानकारी प्राप्त करना), साइबर स्टॉकिंग (ऑनलाइन गतिविधियों को ट्रैक करना), ट्रोलिंग (जानबूझकर विवाद भड़काना), और साइबर घृणा (जाति, धर्म, लिंग के आधार पर घृणा फैलाना) शामिल हैं।

साइबर बुलिंग के मनोवैज्ञानिक प्रभाव गंभीर और दीर्घकालिक होते हैं। शोध से पता चलता है कि साइबर बुलिंग के शिकार व्यक्तियों में अवसाद और चिंता के लक्षण सामान्य रूप से पाए जाते हैं। सबसे चिंताजनक प्रभाव यह है कि साइबर बुलिंग के शिकार बच्चों और किशोरों में आत्महत्या का जोखिम दोगुना हो जाता है। 21 वर्ष की अवधि में डेढ़ लाख बच्चों पर किए गए अध्ययन में यह निष्कर्ष निकाला गया। इसके अतिरिक्त, साइबर बुलिंग के शिकार व्यक्तियों में मनोवैज्ञानिक व्यथा, आघात और तनाव के लक्षण पाए जाते हैं। चिंता और तनाव के कारण अनिद्रा और अन्य नींद संबंधी विकार उत्पन्न होते हैं। साइबर बुलिंग के शिकार व्यक्तियों में आत्म-सम्मान और आत्म-विश्वास में गंभीर कमी आती है, जिससे उनके सामाजिक संबंधों और शैक्षिक प्रदर्शन पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

साइबर बुलिंग केवल व्यक्तिगत मनोवैज्ञानिक समस्या नहीं है, बल्कि इसके गहरे समाजशास्त्रीय निहितार्थ हैं। यह विद्यमान सामाजिक असमानताओं और शक्ति संरचनाओं को डिजिटल स्थान में प्रतिबिंबित और सुदृढ़ करती है। शोध से पता चलता है कि महिलाएँ और लड़कियाँ साइबर बुलिंग की अधिक शिकार होती हैं। साइबर बुलिंग और साइबर घृणा के माध्यम से लैंगिक शक्ति संबंधों को हिंसक रूप से सुदृढ़ किया जाता है। सोशल मीडिया पर महिलाओं के प्रति हिंसक ट्वीट्स पारंपरिक स्त्रीलिंग मानदंडों और रूढ़ियों को मजबूत करते हैं। ऑनलाइन मिसोजिनी महिलाओं के खिलाफ हिंसा को सामान्य बनाती है। साइबर बुलिंग के माध्यम से अल्पसंख्यक समुदायों—धार्मिक, जातीय, या यौन अल्पसंख्यकों—को डिजिटल स्थान से बहिष्कृत करने का प्रयास किया जाता है। टेलर एंड फ्रांसिस जर्नल में प्रकाशित समीक्षा में इस बात पर बल दिया गया है कि साइबर बुलिंग मैक्रो-स्तरीय प्रक्रियाओं—जैसे 'अन्यीकरण'—को डिजिटल स्थान में कैसे साकार करती है, इस पर शोध की आवश्यकता है। साइबर बुलिंग विद्यमान सामाजिक स्तरीकरण को सुदृढ़ करती है। शोध बताता है कि प्रवासन पृष्ठभूमि,

धर्म, और राजनीतिक सक्रियता के आधार पर व्यक्तियों को ऑनलाइन उत्पीड़न का अधिक सामना करना पड़ता है। यह दर्शाता है कि डिजिटल स्थान में भी सामाजिक पदानुक्रम और शक्ति असमानताएँ कायम रहती हैं। साइबर बुलिंग का एक महत्वपूर्ण समाजशास्त्रीय पहलू पीड़ित को दोष देना है। शोध से पता चलता है कि किशोर अक्सर मोटापे के आधार पर साइबर घृणा के शिकार व्यक्ति को दोषी मानते हैं। लड़के लड़कियों की तुलना में ऐसा अधिक करते हैं। यह प्रवृत्ति समाज में विद्यमान पूर्वाग्रहों और रूढ़ियों को प्रतिबिंबित करती है। साइबर बुलिंग डिजिटल विभाजन से भी जुड़ी हुई है। जिन समुदायों के पास डिजिटल साक्षरता और तकनीकी संसाधनों की कमी है, वे साइबर बुलिंग से निपटने में अधिक असमर्थ होते हैं। यह सामाजिक असमानता को और गहरा करता है।

भारत में साइबर बुलिंग से निपटने के लिए कोई समर्पित कानून नहीं है। इसके विरुद्ध कार्रवाई सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम (2000) और भारतीय दंड संहिता के प्रावधानों के माध्यम से की जाती है। सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम की धारा 66A अपमानजनक संदेश भेजने पर तीन वर्ष तक की सजा का प्रावधान करती है, परंतु शीर्ष अदालत ने इसे असांविधानिक घोषित कर दिया है। धारा 67 अश्लील सामग्री के प्रकाशन से संबंधित है। धारा 69 सरकार को सूचना को इंटरसेप्ट करने की शक्ति प्रदान करती है। भारतीय दंड संहिता की धारा 509 महिलाओं की मर्यादा भंग करने से संबंधित है। धारा 499 मानहानि, धारा 503 आपराधिक धमकी, और धारा 507 अज्ञात धमकी से संबंधित है। भारत में साइबर बुलिंग के मामलों में प्राथमिकी दर्ज कराना और कानूनी कार्रवाई करना जटिल प्रक्रिया है। पुलिस और अदालतों में साइबर अपराधों के मामलों की सुनवाई में देरी और तकनीकी ज्ञान की कमी के कारण पीड़ितों को न्याय मिलने में कठिनाई होती है। इसके अतिरिक्त, सोशल मीडिया कंपनियों पर अमेरिकी कानून लागू होने के कारण भारतीय उपयोगकर्ताओं की शिकायतों पर प्रभावी कार्रवाई नहीं हो पाती। भारत में बच्चों को साइबर बुलिंग से बचाने के लिए कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं है। शोध से पता चलता है कि बच्चों की सुरक्षा न तो भारतीय कानून का उद्देश्य है, और न ही इसके लिए कोई विशिष्ट प्रावधान है।

साइबर बुलिंग की रोकथाम के लिए बहुआयामी और एकीकृत दृष्टिकोण की आवश्यकता है। शोध में निम्नलिखित हस्तक्षेप रणनीतियाँ पाई गई हैं: तकनीकी हस्तक्षेप (स्वचालित निगरानी और पहचान प्रणाली, डिजिटल रिपोर्टिंग प्लेटफ़ॉर्म, वेबसाइट-आधारित हस्तक्षेप, मोबाइल सहायता ऐप्स, और ऑनलाइन परामर्श), शैक्षिक हस्तक्षेप (डिजिटल जागरूकता को बढ़ावा, साइबर बुलिंग की रोकथाम को स्कूल पाठ्यक्रम में शामिल करना, और सामाजिक-भावनात्मक शिक्षा के माध्यम से छात्रों में सहानुभूति और सामाजिक कौशल का विकास), सामाजिक हस्तक्षेप (डिजिटल सहकर्मी सहायता नेटवर्क, सामुदायिक जागरूकता अभियान, और सहानुभूति प्रशिक्षण के लिए वर्चुअल रियलिटी का उपयोग), कानूनी हस्तक्षेप (साइबर बुलिंग के लिए समर्पित कानून का निर्माण, सोशल मीडिया कंपनियों

के लिए जवाबदेही तय करना, और पुलिस तथा न्यायपालिका में तकनीकी क्षमता का विकास), तथा पारिवारिक और सामुदायिक हस्तक्षेप (माता-पिता और अभिभावकों को साइबर बुलिंग के संकेतों के बारे में जागरूक करना और बच्चों से खुलकर बात करने के लिए प्रोत्साहित करना)।

इसके आधार पर निम्नलिखित नीतिगत सुझाव प्रस्तुत किए जा सकते हैं। भारत सरकार को साइबर बुलिंग के लिए एक समर्पित कानून बनाना चाहिए, जिसमें साइबर बुलिंग की स्पष्ट परिभाषा, दंडात्मक प्रावधान, और पीड़ितों के लिए मुआवजे का प्रावधान शामिल हो। स्कूलों और कॉलेजों में डिजिटल नागरिकता शिक्षा को अनिवार्य किया जाना चाहिए, जिसमें ऑनलाइन सुरक्षा, डिजिटल शिष्टाचार, और साइबर बुलिंग की रोकथाम शामिल हो। साइबर बुलिंग के मामलों की सुनवाई के लिए विशेष अदालतों और त्वरित न्याय व्यवस्था की स्थापना की जानी चाहिए। सोशल मीडिया कंपनियों को साइबर बुलिंग की रिपोर्टिंग और हटाने के लिए स्पष्ट समयसीमा और प्रक्रिया का पालन करना अनिवार्य किया जाना चाहिए। साइबर बुलिंग के पीड़ितों के लिए मानसिक स्वास्थ्य परामर्श और सहायता सेवाओं का विस्तार किया जाना चाहिए। साइबर बुलिंग के स्वरूप, प्रभाव और रोकथाम पर व्यवस्थित शोध और आँकड़ों का संग्रह किया जाना चाहिए, जिससे प्रभावी नीतियाँ बनाई जा सकें।

भविष्य की शोध दिशाओं में भारतीय संदर्भ में साइबर बुलिंग के समाजशास्त्रीय निहितार्थों पर गहन शोध, साइबर बुलिंग के लैंगिक और जातीय आयामों पर भारत-केंद्रित अध्ययन, साइबर बुलिंग के दीर्घकालिक सामाजिक प्रभावों पर अनुदैर्ध्य अध्ययन, डिजिटल नागरिकता शिक्षा और साइबर बुलिंग रोकथाम के लिए प्रभावी हस्तक्षेपों का मूल्यांकन, साइबर बुलिंग और सामाजिक बहिष्करण के बीच संबंधों पर अंतरानुशासनिक शोध, तथा साइबर बुलिंग के पीड़ितों के अनुभवों पर गुणात्मक शोध शामिल हैं।

निष्कर्ष

साइबर बुलिंग डिजिटल युग की एक गंभीर सामाजिक और मानसिक स्वास्थ्य समस्या है। यह पारंपरिक बुलिंग से भिन्न है क्योंकि यह चौबीसों घंटे उपलब्ध रहती है, इसमें अनामिकता का तत्व विद्यमान होता है, और इसका प्रभाव बड़े पैमाने पर फैल सकता है। शोध से स्पष्ट होता है कि साइबर बुलिंग के शिकार व्यक्तियों में अवसाद, चिंता, आत्महत्या के विचार और नींद संबंधी विकार जैसी गंभीर मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से, साइबर बुलिंग विद्यमान सामाजिक असमानताओं—लैंगिक, जातीय, धार्मिक—को डिजिटल स्थान में पुनरुत्पादित और सुदृढ़ करती है। यह लैंगिक असमानता, सामाजिक बहिष्करण, और सामाजिक स्तरीकरण को बढ़ावा देती है। साइबर बुलिंग केवल व्यक्तिगत समस्या नहीं, बल्कि एक व्यापक सामाजिक मुद्दा है जिसके समाधान हेतु बहुस्तरीय और एकीकृत दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

भारत में साइबर बुलिंग से निपटने के लिए सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम (2000) और भारतीय दंड संहिता के प्रावधान विद्यमान हैं, परंतु एक समर्पित कानूनी ढाँचे का अभाव, क्रियान्वयन में कठिनाइयाँ, और बच्चों की सुरक्षा के लिए विशिष्ट प्रावधानों की कमी महत्वपूर्ण चुनौतियाँ हैं। आवश्यक है कि सरकार, शैक्षिक संस्थान, सोशल मीडिया कंपनियाँ, और नागरिक समाज मिलकर साइबर बुलिंग की रोकथाम के लिए एक व्यापक और प्रभावी रणनीति विकसित करें। साइबर बुलिंग का सतत समाधान तभी संभव है जब इसे केवल व्यक्तिगत मनोवैज्ञानिक समस्या न मानकर एक व्यापक सामाजिक मुद्दे के रूप में समझा जाए। इसके लिए डिजिटल नागरिकता शिक्षा, सामाजिक-भावनात्मक शिक्षा, कानूनी सुधार, और सामुदायिक जागरूकता जैसे बहुआयामी उपायों की आवश्यकता है। साइबर बुलिंग केवल तकनीकी या कानूनी मुद्दा नहीं है, बल्कि यह सामाजिक न्याय, समानता और मानवीय गरिमा से जुड़ा हुआ गहरा सामाजिक प्रश्न है, जिसका समाधान सामूहिक प्रयास और दीर्घकालिक प्रतिबद्धता से ही संभव है।

संदर्भ

1. अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन. (2021). *World employment and social outlook: The role of digital labour platforms in transforming the world of work*. International Labour Organization.
2. केली, जे. (2019). Data and the gig economy. *Journal of Information Ethics, 28*(2), 45–59.
3. ग्रीसबाख, के., कीथ, एम., & रोज़ेनब्लाट, ए. (2019). Algorithmic control in platform work. *Proceedings of the ACM on Human-Computer Interaction, 3*(CSCW), 1–21.
4. टिकोना, जे., & माटेस्कु, ए. (2018). *Gendered platform work*. Data & Society Research Institute.
5. नीति आयोग. (2022). *India's booming gig and platform economy: Perspectives and recommendations on the future of work*. NITI Aayog, Government of India.
6. फेयरवर्क. (2021). *India gig workers survey*. Fairwork Foundation.
7. बर्ग, जे., फ़ुरर, एम., हार्मन, ई., रानी, यू., & सिल्बरमैन, एम. एस. (2018). *Digital labour platforms and the future of work: Towards decent work in the online world*. International Labour Office.

8. रोज़ेनब्लाट, ए., & स्टार्क, एल. (2016). Algorithmic labor and information asymmetries: A case study of Uber's drivers. *International Journal of Communication, 10*, 3758–3784.
9. वालास, एस., & शोर, जे. बी. (2020). What do platforms do? Understanding the gig economy. *Annual Review of Sociology, 46*, 273–294.
10. वुड, ए. जे., ग्राहम, एम., लेहदॉनविर्टा, वी., & हर्थ, आई. (2019). Good gig, bad gig: Autonomy and algorithmic control in the global gig economy. *Work, Employment and Society, 33*(1), 56–75.
11. श्रम और रोज़गार मंत्रालय. (2020). *Social Security Code, 2020*. Ministry of Labour and Employment, Government of India.
12. सामाजिक सुरक्षा संहिता. (2020). *The Code on Social Security, 2020*. Government of India.